

मिताक्षरा सटीक ॥

आचाराध्याय का मूलसहित भाषाऽनुवाद

जिसमें

गर्भाधानादि संस्कारों की विधि; आठप्रकारके विवाहोंके लक्षण, वर्णों और विविधजातोंकी उत्पत्ति; वर्णाश्रमधर्म; पंच यज्ञादि; स्नातक पुरुषोंके नियम, साधारण शिक्षा और वेदाध्ययनकी मर्य्यादा, भक्ष्याभक्ष्य वस्तुओं का विवेक, वस्तुओंके शुद्धकरनेके उपाय; दानलेने देनेकीरीति; सबप्रकारके श्राद्धोंका निर्णय; नवग्रहादिकी शांति; राजाओं के धर्म, आचारआदि अनेकानेक विषययुक्ति- उक्ति पूर्वक सब स्मृतियों के मतसे अति विस्तार पूर्वक वर्णित हैं—

जिसको

आगरानिवासि श्रीविद्वज्जनशिरोमणि मर्य्यादाप्रिय पंडित दुर्गाप्रसादजी ने सम्पूर्ण मर्य्यादाहितैषी पुरुषोंके अवलोकनार्थ साधारण भाषा में निर्मित कियाथा उसीको श्रीमान् मुंशीनवलकिशोरजी (सी, आई, ई) ने उक्त पण्डितजी को बहुतसा धन पारितोषिककी रीतिपर देकर मुद्रित करनेका हकलिया और यही सर्वसाधारण के उपकारार्थ

प्रथम बार

लखनऊ

मुंशी नवलकिशोर (सी, आई, ई) के छापेखाने में छपा

अप्रैल सन् १८८७ ई० ।

मिताक्षरा भाषा टीका सहित ॥

यह पुस्तकसम्पूर्ण धर्म्मशास्त्रोंका शिरोमणिहै जिसमें आचारकांड, व्यवहारकांड और प्रायश्चित्तकांड नामक तीनकांड हैं, जिनसेगृहस्थादिचारों आश्रम और ब्राह्मणादि चारों वर्णोंके सम्पूर्णकर्म धर्मादि और राजसम्बन्धी कार्योंमेंदायभागादि व्यवहारोंमेंवादी प्रतिवादियोंके धर्म्मशास्त्र सम्बन्धी मामिले और मुक़द्दमोंकी व्यवस्था वर्णितहै,

इस यन्त्रालयमें जितने प्रकारकी महाभारतें छपी हैं उनकी सूची नीचे लिखी है ॥

महाभारत वार्त्तिक ॥

जोकि सम्पूर्ण पुराणोंमें श्रेष्ठहै जिसको पंचमवेद भी कहते हैं जिसमें आदि १ सभा २ वन ३ विराट ४ उद्योग ५ भीष्म ६ द्रोण ७ कर्ण ८ शल्य ९ सौप्तिक १० विशोक ११ स्त्री १२ शांति १३ अनुशासन १४ अश्वमेध १५ आश्रमवासिक १६ मुशल १७ स्वर्गारोहण १८ और हरिवंशपर्व १९ हैं जिसको भागरपुर पीपलमंडी निवासि चौरासियागौड़ वंशावतंस प्रधान पंडित कालीचरणजी संस्कृताध्यापक केनिंगकालेज लखनऊने संस्कृत महाभारतसे प्रत्यक्षरका भाषामें उल्था कियाहै इसके पृथक् २ पर्व्वभीख़रीदारोंको मिलसक्तेहैं—यहपुस्तकभी अवश्यही अवलोकन करनीचाहिये ॥

महाभारतदर्पण काशीनरेश कृत ॥

जो काशीनरेश की आज्ञानुसार गोकुलनाथादिक कवीश्वरों ने अनेक प्रकारके ललितछन्दों में अठारहपर्व औरउन्नीसवें हरिवंशको निर्माण किया-यह पुस्तक सर्वपुराण और वेदकासारहै वरन बहुधा लोग इसविचित्र मनोहर पुस्तकको पंचमवेद बताते हैं क्योंकि पुराणान्तर्गत कोई कथा व इतिहास और वेदकथित धर्माचारकी कोई बात इससे छूट नहीं गई मानों यह पुस्तक वेद शास्त्र का पूर्णरूपहै—अनुमान ६० वर्षके बीते कि कलकत्तेमें यह पुस्तक छपीथी उस समय यह पोथी ऐसी अलभ्य होगईथी कि अन्तमें मनुष्य ५०) रु० देनेपर राज़ीथे पर नहीं मिलती थी पहले सन् १८७३ ई० में इस छापेख़ाने में छपीथी और क़ीमत बहुत सस्ती याने वाजिबी १२) थे जैसा कारख़ानेका दस्तूर है ॥

अब दूसरीवार डबलपैका बड़ेहरफ़ोंमें छापीगई जिसको अवलोकन करनेवालोंने बहुतही पसन्द किया है—और सौदागरी के वास्ते इससे भी क़ीमत में किफ़ायत होसक्ती है पैमाना १२+८ छपीहुई सन् १८८४ ई० २५६८ सफ़े क़ीमत१०) पुख्ता। इस महाभारतके भागनीचे लिखे अनुसार अलग २ भी मिलतेहैं ॥

पहिले भागमें (१) आदिपर्व्व (२) सभापर्व्व (३) वनपर्व्वसफ़े५२० जुज़ ३२ वर्क़६ क़ीमत२)
दूसरे भागमें (४) विराटपर्व्व (५) उद्योगपर्व्व (६) भीष्मपर्व्व (७) द्रोणपर्व्व सफ़े ४०२ जुज़ २५ वर्क़ १ क़ीमत ३)

भूमिका॥

भगवान् याज्ञवल्क्यजीने संसारमें मर्यादास्थित रखने और सर्वसाधारणकेउपकारदृष्टिसे अनेकानेक प्राचीन आचार्यों और महर्षिगणोंके मतलेकर मिताक्षरा नामक धर्मशास्त्र आचार,व्यवहार,प्रायश्चित्तकाण्ड नामक तीनभागोंमें निर्माण कियाथा–

यह याज्ञवल्क्यस्मृति, भारतवासी मात्र चतुर्वर्णों का मुख्य धर्मशास्त्रहै और इसीके अनुसार यहांकेलोगोंके धर्मसम्बन्धी समस्तकार्य होते चलेआते हैं–

इस आचाराध्याय नामक प्रथमखंडमें गर्भाधान से लेकर मरण पर्यन्त के समस्त संस्कार चतुर्वर्णों और विविध जातियोंकी उत्पत्ति ब्राह्मण आदि चतुर्वर्णों और ब्रह्मचर्यादि चतुराश्रमों के धर्माचरण,साधारण शिक्षा,आठप्रकार के विवाहों के लक्षण,भक्ष्याभक्ष्य पदार्थोंका विवेक,दान लेने देने की विधि,सर्वप्रकारके श्राद्धोंका निर्णय,नवग्रहोंकी शांति,राजाओंके धर्म आचारादि अनेक विषय विस्तारपूर्वक वर्णन कियेगये हैं–

परन्तु यह विस्तृत ग्रंथ संस्कृतमें होनेके कारण सर्व साधारण के देखनेमें नआताथा इस कारण भारत देशनिवासी पुरुषों के उपकारार्थ इस यंत्रालयके अध्यक्ष ने बहुत सा धन पारितोषिक की रीतिपर देकर आगरा निवासी मर्यादाप्रियपण्डित श्रीदुर्गाप्रसादजी से श्लोकका उल्थाकराय स्व यंत्रालयमें मुद्रितकराया–

आशाहै कि धर्मसम्बन्धी कामोंमें सर्वसाधारणको यथादर्शक होनेके सिवाय भाषाग्रंथोंकेभंडारमें यहभी एक अपूर्वग्रंथ होगा और मर्यादाप्रियबंधुगण इसे आदर पूर्वक स्वीकार करेंगे–

द० मालिक मतबा अवधअख़बार
लखनऊ हज़रतगंज

आशय प्रयोजनीक	श्लोक मूल	अर्थप्रमाण	[illegible]	भेद
मांसादि द्रव्योंके श्राद्धों की अपेक्षा में पुलस्त्य की व्यवस्था ॥	〃		२६१/२६०	१
महागणपत्यादिकल्पः ॥	२९३	अर्थ २	०	०
मन्त्रियोंके लक्षण राजयका विचार उपधाशोधन ॥	३११	ऐ०	३११	+
मन्त्र की रक्षा मन्त्रों का भेद नहीं होनेदे ॥	३४३	अर्थ २	३४३	०
(य)				
योगीश्वर याज्ञवल्क्यसे ऋषियों ने धर्म पूछा ॥	१	अर्थ २	०	०
योगीश्वरने काले मृगवाले देश में बतलादिये ॥	२	अर्थ २	०	०
योगीयती आदि धूर्तों का सग नहीं करना ॥	〃		६८	०
यानकाल और यानके सम्बन्ध से पूर्वोक्त के गुणोंसे भी काल ॥	३४०	ऐ०	३४०	
याज्ञवल्कीयशास्त्रकी परिभाषा उत्तम मध्यम अधम दण्ड ३ ॥	३६५	ऐ०	३६५	०
(र)				
राजा के स्वाभाविक लक्षण शारीरक ॥	३०८ से ३१० तक	अर्थ २		०
राजाको आन्वीक्षिकी आदि विद्याओं का संग्रह करना ॥	〃		३०८ से ३१०तक	+
राजा को दुःखदायक व्यसन अठारह १८ ॥	〃		〃	+
राजा को समग्र राज्य की रक्षा करनी ॥	〃		〃	+
राजा का निवासस्थान — दुर्ग निर्माण — अध्यक्षों के लक्षण ॥	३२०/३२१	ऐ०	३२०/३२१	०
राजसामयिक धर्माः ॥	३२२/३२५	ऐ०	+	०
राजा को आठों प्रहर के धन्धे दूत और चारों का भेजना — दूत या चारों के लक्षण ॥	३२९ से ३३२तक	ऐ०	३२९ से ३३२ तक	०
राजाका स्वभाव और प्रजा की रक्षा आदि पालन विधि ॥	३३३ से ३३६तक	ऐ०	३३३ से ३३६तक	०
राजाका अन्याय — प्रजा पीड़ा राज्यपालन का फल ॥	३३८ से ३४१तक	ऐ०	०	०
राजनीतिके षड्गुणसन्धिविग्रह आदि ॥	३४६	ऐ०	०	०
(व)				
वृद्धोंकेअभिवादनप्रणामआदि ॥	,१६	अर्थ २	९६	०

आशय प्रयोजनीक	श्लोक मूल	अर्थप्रमाण	[illegible]	भेद
विद्यार्थीकी भिक्षावृत्ति ॥	〃		२९	०
वेद पढने को अवधि तीनों वर्णों को ॥	३६	अर्थ २	०	०
वेद — शास्त्र आदि सब साधारण भी विद्याओं का नित्य पाठ करने के फल ॥	४१ से ४८ तक	+	+	०
विवाह करना पर ऐसी स्त्रीसे करना ॥	५२/५३	अर्थ २	०	०
वरके ऐसे लक्षण हो तिसको कन्या देना ॥	५५	अर्थ २	०	०
विवाह में दिये और आये हुये धनका चर्चा — वर परीक्षा ॥	〃		५५	
विवाह करनेके हेतु तीनि ॥	〃		५६	०
विवाहों के अनुकूल पहिली रीतों के अनुसार ॥	५०	अर्थ २	५०	०
विवाहोंके आठ भेद ब्राह्मआदि सन्तर्पोंके लक्षण और विधि ॥	५८ से ६२ तक	+	+	०
व्यभिचारिणीकाअधिकारहरना ॥	७०	अर्थ २	७०	
व्यभिचारसेशुद्धिऔर गर्भसेत्याग ॥	७२	अर्थ २	७०	०
विवाह करनेके फल स्त्रियों की रक्षा = सेवन ॥	८८	अर्थ २		०
वर्ण सकर प्रतिलोम जातों की उत्पत्तिसूत वैदेहिक आदि ॥	९३/९४	अर्थ २	०	०
वणिग्कर्म परपाक कृषि आदि इनका विचार ॥	१११	ऐ०	०	०
वेद पढनेकीमर्यादें औरसमय ॥	१४२/१४४	+	+	+
विप्र हुये इतने अन्नो को छोड़दे मांसवासी आदि ॥	१६६/१६७	ऐ०	१६६/१६७	०
विद्याविहीनकोप्रतिग्रहनहींलेना ॥	२०१	ऐ०	२०१	०
विद्यादान सब दानों का फल देता है ॥	२११	अर्थ २	२११	०
वृद्धि श्राद्धकी समस्त विधि ॥	२४८	अर्थ २	२४८	०
विघ्नकारकहेतुविघ्नोंकेकारण ॥	२७०	अर्थ २	२७०	०
विघ्नज्ञापक हेतु — विघ्नों के आनेवाले स्वप्न ॥	२७१ से २७३तक	ऐ०	०	०
विघ्नज्ञापक प्रायश्चित्त — आपत्ति अवस्था में ॥	२७१से २७३तक	ऐ०	०	०
विघ्नशान्तिके लिये विनायक स्नपन आदिसर्वकर्म ॥	२७६ से २९१तक	+	+	०
विघ्नशान्तिप्रयोगक्रम ॥	२९१		२९१	०
विक्रमार्जित धनदान का फल रणमें मरन ॥	३२३/३२४	ऐ०	०	०

टहलें करीजाती हैं तब उनसेवाटहलोंको भक्ति और सेवाकरनेवालेको भक्तजनकहते हैं सो यह संसारही मेरा देहहै इसकी सेवा टहलें सबकोई करो-अर्थात् इसकी रक्षा और बढ़वारी में मर्य्यादापूर्व्वक तत्पर बनेरहकर अपने२ घर और देहों के भी धन्धे मर्यादापूर्वक साधनकरो परन्तु जोकोई भिन्नमर्यादा होकर अपनेघर वा देहोंके धन्धे साधनकरतेहैं वे मेरीभक्तिसे रहितकहलाते हैं-इसीलिये उसजगत्कर्ता ने मुनीश्वरोंके हृदयमें निर्मलबुद्धिरूप आपही विराजमानहोकर नानाभांतिके मर्यादप्रचारक शास्त्र भी निर्माणकरवाये हैं कि इनशास्त्रोंकीमर्यादा अनुसार जो कोई संसारका आचरण राखेगा वही मेरा भक्तकहलावेगा—और वह आचरण उसका मेरी भक्तिरूप होकर दिनों दिनबढ़वारी पावेगा जिसके बढ़वारी पानेसे उसमेरे भक्तको संसारकी सारीही सम्पत्तें मिलनी सुगमहोजायँगी १॥

नज्ञायतेजगद्रीतिर्विनाशास्त्रैःपुरातनैः। तस्माद्याज्ञवल्कीयमतरीतिःप्रकाश्यते २॥

भक्ष०—नहीं जानिये है जंगत्की रीति विनापुरातनशास्त्रों के तिस्सेही याज्ञवल्क्य के मतकीरीतिको प्रकाशकरियेहै २॥

भभि०— अर्थात् यद्यपि संसारका बर्तावा सब कोई कराकरताहै पर उस बर्तावे की रीति तो प्राचीनशास्त्रों के देखेविना नहीं जानीजाती है तिसकारणसे याज्ञवल्क्य मुनिकेमतसे जो रीति निर्मितकरीगईथी उसे प्रकाशितकरतेहैं २॥

अधि०—यद्यपिसंसारकी बहुधारीतें और पृथ्वीआदि दृश्यपदार्थोंका स्वरूप,आकार,डौल और मनुष्योंकी प्रकृतिबोलचाल आदि यहसबबातें परिणाम पाकरबारह बारह वर्षोंपीछे पलटकरकुछ औरही और भांतिकी होजायाकरती हैं-क्योंकि- सारा संसारही परिणामवान् कहाता है फिरयह वस्तुसंसार से बाहरतो हैहीनहीं- सो यह परिणामभी कुछबारहवर्षपीछे इकट्ठाएकही दिनमें नहीं होजाताहै अर्थात् निरन्तर दिनोंदिन किंचित् किंचित् परिणाम प्रतिक्षण होता रहता है परवह प्रतिक्षण होताहुआ किसीको मालूम नहींहोता किंतु बारहवर्ष बीतजानेपर जबकोई बुद्धिमान् उससमयसे बारहवर्ष पहली दशाओंको ध्यानलगाकर यादकरता है और अपनी ज्ञानदृष्टि से शोचता है तब उसे दिखाईदेता है किजो वस्तु अथवाबातें या मर्यादें पहिलेकुछ अन्यथाथीं वह अबकुछ अन्यथाही प्रतीतपड़ती हैं-इसीप्रकार ६ वर्षमें पौना और ६ वर्षमें आधा और तीनवर्ष में चौथाईभाव उसका प्रकट होजाता है-इसपरिणामके लिखने का यह अभ्यन्तर है कि बहुधा शास्त्रोक्तरीतें मर्यादेंभी परिणामपाती हैं उनमें बहुतेरी तोनष्टाग्निवत्प्रलोप होजाती हैं१ और बहुतेरी भस्माग्निवत् निगूढ़ होजाती हैं२बहुतेरी धूमाग्निवत् निरुद्धहोजाती हैं३बहुतेरी निर्धूमाग्निवत् चमत्कृत रहती हैं४बहुतेरी प्रदीप्ताग्निवत् सदाही प्रकाशकरा करती हैं ५-इनमें

पूर्वोक्तोंके स्थान बहुतेरी नवमर्य्यादेंभी प्रतिपक्षी होजाती हैं किभाव जिनका चिह्नभी पुरातनोंमें न मिलताहो बहुतेरी रीतें नवसंचरितभी ऐसीहोती हैं किजो प्राचीनोंसे सम्बन्धित और उन्हींके आधीनहोती हैं-इनकारणों से बहुधा लोगोंको भ्रमउत्पन्न होजाताहै सो वह उनकीबुद्धि,भ्रमताभी शास्त्रों के देखनेसे मिटसक्ती है और शास्त्र भी दोप्रकारके होते हैं एकतोप्राचीन दूसरे नवीन तहां थोड़े मनुष्यतो प्राचीनोंपर अभिरुचि रखते हैं और बहुधा नवीनोंपर परन्तुऐसे मनुष्य तो बहुतही थोड़े देखने में आते हैं कि प्राचीन,और नवीन दोनोंपर अभ्यास रखते हों-और संसारकी निर्विकाररीति तथा निर्मल मर्यादेंतभी जानीजातीहैं कि जब नवीन और प्राचीन इनदोनों प्रकारके शास्त्रों का आलोकन और विचार करे और उन दोनों के मध्य अन्तरको समुझै क्योंकि नवीनभी प्राचीनों केही अनुसार और आधीनहुआ करते हैं केवल किसी वार्त्तामें परिशोधनकी रीति से अन्तर होजाताहै-इसहेतुसे याज्ञवल्क्य मुनिके मतसे,जो प्राचीनरीतें उनके धर्म्मशास्त्रमें लिखी हैं उन्हें प्रकाशित करते हैं कि सब लोग उनको देखें और नवीनोंमें जो उनका आशयहै उसको समुझैं २ ॥

योजानातिजगद्रीतिंकुशलःकुलवानपि। परेषांधनमनोहर्तुंवेश्याःकिंनमहाशयाः ३ ॥

अक्ष०—जो जानताहै जगत्की रीतिको कुशल और कुलवान्भी है औरों के धन मन क्या हरनेको वेश्यानहीं महाशय होती हैं ३ ॥

अभि०—इसजगत्में आकर जो कोई जगत्कीरीति मर्यादको विधिपूर्वक जानताहै वहीप्राणी कुशल कहिये चतुरोंमें चतुर और कुलवानोंमें कुलवान्भी वहीहै—अर्थात् धन जनसे हीन भी जगत्की रीतिको जाने तो वहचतुर और कुलीनहै और जो धन जनसे संयुक्तहोकर जगत्कीरीतिको न जाने वह अज्ञानी और अकुलीन कहाताहै—क्योंकि यद्यपि उसमें धनोपार्जनकी अनेक चतुराइयां भी हों परन्तु परायाधन और पराया मन हरलेने को क्या वेश्या बड़े मनवाली नहीं हैं अर्थात् इनदोनों बातोंकी चातुर्यतामें तो वेश्याभी बड़े उत्साह और मनवालीहोती हैं-सोई किसीभाषा कविका वचन भी दोहाहै कि-जानत जो जगरीतिको सोइनर चतुरकुलीन। परधन परमन हरनको वेश्या परम प्रवीन ३ ॥

योगीश्वरंयाज्ञवल्क्यंसंपूज्यमुनयोऽब्रुवन्। वर्णाश्रमेतराणांनोब्रूहिधर्मानशेषतः १ ॥

अक्ष०—योगीश्वर याज्ञवल्क्यको अच्छे पूजिकर मुनिलोग बोलतेभये—वर्ण आश्रम इतरोंके अशेषधर्म हमसे कहो १ ॥

अभि०—योगवालों में ईश्वर कहिये मान्य और समर्थ ऐसेयाज्ञवल्क्यमुनीश्वरका पूजन कहिये सत्कार मनसे वाणीसे कर्म्मसेभीकरिके सामश्रवा आदि मुनिलोगबोले कि हमसेवर्णोंके और आश्रमोंके और इतरकहिये अनुलोम प्रतिलोमजातें जो मूर्द्धा-

वसिक्त आदि वर्णसंकर कहलातीहैं इनसबकेधर्म्माचरणोंको निश्शेष वर्णनकरो १॥

अथि०—अनुलोम प्रतिलोम जातोंकी उत्पत्ति आगे इसीशास्त्रमें आवेगी और जो धर्मोंकाआचरण मुनिलोगोंने ऊपरपूँछाहै सो वहधर्मभी छःप्रकारकाहोताहै और धर्मशास्त्रकी स्मृतियोंद्वारा जानाजाताहै जैसे १वर्णधर्म २आश्रमधर्म ३वर्णाश्रमधर्म ४गुणधर्म ५निमित्तधर्म ६साधारणधर्म-इनछःप्रकारोंमेंसेही एक२के सहस्रोंभेदहोनेसेधर्म के लाखों किरोड़ों लक्षणहोतेहैं(दृष्टांत)जैसे ब्राह्मणआदि तीनिवर्णोंको संध्याआदि कर्म नित्यही करना उचितहै-या जैसे ब्राह्मणको मद्यकदाचित्भी न पीनाचाहिये—या जैसे शूद्रको तीनोंकी सेवाइत्यादि नानाभेद एकवर्ण धर्मकेहोतेहैं १ दूसराआश्रमधर्म सो वह आश्रम चारप्रकारकाप्रसिद्धहै १ब्रह्मचारी २ गृहस्थी ३ वानप्रस्थ जो स्त्रीसहित वन मेंतपकरे ४ संन्यस्त ये चारों केवल गृहस्थोंमेंसेही होजातेहैं जोकोई इनचारोंको क्रमसे विधिपूर्वक सेवनकरताहै वह परमगतिको पहुँचताहै सोइनचारोंके भिन्न२ धर्म-जैसे-ब्रह्मचारीका धर्म्म स्वाध्याय कहिये वेदकापढ़ना नियम शुश्रूषाआदि अनेकलक्षणहोतेहैं जोआगे इसीशास्त्रमें आवेंगे १ ऐसेही गृहस्थीका धर्मदमदान यज्ञआदि अनेकलक्षणवाला होताहै वहभीआगे इसीशास्त्रमेंआवेगा २ ऐसेही वानप्रस्थकाधर्म नियमसे वनमेंरहिकर स्त्रीसहित तपकरनाआदि ३ ऐसेहीयतीकहिये संन्यासीकाधर्म शम अभयसत्त्वकी संशुद्धि ज्ञानयोगमें आरूढ़ होनाआदि ४ जोकोई जिसआश्रम का सहारालेकर उसके अधिकारोंका विधिपूर्वक बर्तावाकरता है वही आश्रमधर्मा कहलाताहै कलियुगमें वानप्रस्थका चिह्नभी दिखाई या सुनाईनहींदेताहै-ब्रह्मचर्यका चिह्नकही २ कल्पित देखपड़ताहै पर कलियुगमें उसकीभी नास्ति है संन्यस्ताश्रम जिसकाहोना कलियुगमेंनिषेधहै परवहबहुधावर्तमानहै तथापिउसमें स्वाभाविकधर्मों का होनानहीं दिखाईदेताहै-गृहस्थआश्रम यहसबसे उत्तमहै क्योंकि यह भिक्षादेकर सबके फलमें साझीहोजाता और वहतीनों आश्रमइसकी आशा किया करते हैं पर इसकी उत्तमता उसीअवस्थामें होसक्तीहै जो धर्मशास्त्रोंकी रीति अनुसार आचरण हो २ तीसरावर्णाश्रमधर्म जिसमेंवर्ण और आश्रम इनदोनोंके लक्षणहोतेहैं-जैसे वर्णसे ब्राह्मणहै और आश्रमउसने ब्रह्मचर्यकालिया या गृहस्थका-या वर्णसेक्षत्रिय अथवा वैश्यहै और आश्रमउसने ब्रह्मचर्य या संन्यस्तकालिया इत्यादि दोनों बातें जिसमें हों और उसकेलिये ढाकेकादंड आदिजोमर्यादें नानाभांतिकी उचित होतीहैं तिनको वर्णाश्रम धर्मकहते हैं ३ चौथागुणधर्म उसको कहते हैं किजैसे वर्णसे तो कोईजातिका मनुष्यहो वहकिसी दूसरेवर्णका गुणधारणकरै या दैवयोगसे पावे तो उस गुणसंबंधी जोमर्यादेंहोतीहों वहभीउसको करनीचाहिये उन्हींमर्यादोंको गुणधर्मकहतेहैं (दृष्टांत) जैसे कोईजातिका मनुष्यहो अभिषेकआदि गुणोंसेसंयुक्त राजाहोनेपर उसको अपन

जातीधर्मोंके सिवाय प्रजाकी रक्षाआदि भी करनाचाहिये(दूसरादृष्टांत)जैसेजातिअथवा कर्मसे या आश्रमसे वह भिक्षुकहै इसकारण राजकर देनेसे मुआफ़है पीछेवहीमनुष्य व्यापार आदि वैश्यजाति काजो गुणहै उसको अङ्गीकारकरै तो उसगुणकाधर्मयहभीहै कि उस व्यापारके लाभमेंसे राजकर देवै ४ पांचवानिमित्तधर्म जोनिमित्तकहिये हेतुसे करनापडै(दृष्टान्तजैसे)जो करनाउचितथा वहनहीं किया अथवाजो न करनाउचितथासो कियाउसकाप्रायश्चित्त अथवादण्डआदि जोकुछप्रतिकारहोताहैतिसकोनिमित्तधर्मकहतेहैं ५-छठासाधारणधर्म वहकहलाताहै कि जोएकसूतसे सबको करनाउचितहो अर्थात् चाहेकिसीजाति या किसीवर्ण या किसीआश्रमका मनुष्यहो(दृष्टांत)जैसे किसीजीवकी हिंसानहींकरना किसीको पीड़ानहींदेना चोरीनहीं करना असत्यनहीं बोलना औरोंके धनप्राणोंकी रक्षासे अपनी सामर्थ्यहोते हुये गई नहींकरना इत्यादि नानालक्षण एक साधारण धर्मकेहोतेहैं ६ यद्यपि इसशास्त्रके आचरणसे धर्मअर्थ काममोक्ष इनचारों की प्राप्तिहोतीहै और इनचारोंकेही लक्षण इसमें आवेंगे तथापि धर्मकी प्रधानतासे धर्मशास्त्र इसकानामहै—अर्थात्-धर्मनामहै मर्यादोंका सो इनचारोंकी मर्यादें इसमें मिलतीहैं क्योंकि मर्यादाविना कोईकाम नहींहोता इसहेतुसे सर्वथा धर्मही सबमें मुख्यहै सो उसधर्मको उन सामश्रवाआदि मुनियोंने याज्ञवल्क्यजीसे पूँछा-और एकउस कोभी धर्मकहतेहैं कि जिस्से परमगति मिलसके सो वहभी यहीधर्महै जो ऊपरलिखचुकेहैं कुछइसमेंयाउसमें अंतरनहींहै केवल अज्ञानियोंकी समुझका अंतरहै अर्थात्जो परमगति मिलनेकी मर्यादेंहैं वहभी उन्हीं मर्यादोंमें मिलरहीहैं जो संक्षेपतासे ऊपर कहीगईहैं-हाँ-केवलइतना अंतरहै कि जो और सब संसारीधंधों के परिसाधन करने कीरीतें मर्यादेंहोतीहैं उनकानामतो धर्महै और जो परमगति मिलनेके उपकारीधंधों के परिसाधन करनेकी मर्यादेंहोतीहैं तिनको परमधर्म कहते हैं अर्थात् वहसबधर्मोंसे बडाधर्महै इस्से उसेपरमधर्मकहतेहैं-परन्तु-जो ध्यानलगाकर शोचोतो धर्मकाकोईभी दूसरारूप नहींदेखपड़ता अर्थात् वहधर्मएकहीहै फिरवही अनन्त और असंख्यलक्षणवालाहै इसकारणसे कि कहींउसकीशाखा देशभेदोंसे बढ़जातीहैं-कहींमनुष्योंकी जातिभेदसे-कहीं कर्मभेदसे-कहींप्रकृतिभेदसे-कहीं गुणभेदसे-कहींस्वरूप आकार आचार आदिभेदसे शाखाबढ़जाती हैं-कहींकालभेदसे विस्तृत होजातीहैं-और वहधर्म पशुपक्षी आदि सबजीवोंमें होताहै क्योंकि वहधर्म परमात्मा विश्वरूपीका चित्प्रति विम्ररूप होताहै इसहेतुसे वायुकेतुल्य अतिसूक्ष्मरूपी और अदृश्यमान होकर सारे विश्वमें फैलारहाकरताहै-देखोजोहाथी आदि प्रबलजीवोंके हृदयमें धर्मकीछाया का निवासनहींहोवे तो क्षणमात्रमें वह अनेक मनुष्योंको फाडडालें क्यों अपनेऊपर मनुष्यको चढ़ाकर उसकीइच्छाके अनुसार अंकुशके वशहोकरचलें-देखोपक्षीजाति में

कौआ बड़ामलीन और हिंसक और चंडालपक्षी कहलाताहै इससे कि वहबहुधा पक्षियोंको मार२कर भक्षणकरताहै परंतु जो ध्यानलगाकर शोचौ तो उसमेंभी धर्मका वास है क्योंकि जीवोंका भक्षणकरना यहतोउसका जातीधर्म स्वाभाविकहै सो क्यों-करछूटै-परंतु जिसस्थलपर किसी द्वितीयधर्मका औचित्य देखता है तहाँवह कौआ भी धर्मनीतिकी रीतिसेही कामकरताहै अर्थात् जिससमय गायभैंस आदिपशुओंकी आँखों या कानों या गुदामेंसे मैल अथवाकीड़े काढ़करखाताहै उससमयकी चतुराई उसकीदेखो कि ऐसीसुहाती२चोंचलगाकर मैलकोनिकासलेताहै कि उसपशुकीआँख में चोंचकाधक्का या चोटकिंचित्भी नहीं लगनेदेताहै-अबकहो कि जो उसकौआमें धर्मछाया नहींहोती तो अचानक चोंचके झटकासे आँखेंफोड़देता या कान और गुदामेंसे मैलकेबदले मांसभीनोचकर खानेलगता क्योंकि मांसउसका आहारहै परंतु यहस्वार्थीकाक इसधर्मको जानताहै कि (नहिधर्म्माऽभिरक्तानां लोकेकिञ्चनदुर्लभम्) किंतुजोप्राणी धर्ममर्यादमें तत्परबने रहतेहैं उनको संसारमें कुछभी दुर्लभनहींहै-अर्थात् जो आजमेंइसकी आँखेंफोड़ डालोंगा तो मुझेइसमैलका निकालना दुर्लभहो जावेगा क्योंकि ये पशुमुझे अधर्मीजानिके फिर अपनेपास कदाचित् नहींआनेदेंगे इस्से उलटी मेरेहीस्वार्थकी हानिहोजायगी अर्थात् यहभीएक धर्मकालक्षणहै कि जो कोईजीव किसीमें अपनास्वार्थसाधाचाहे तो ऐसीरीतिसे कामनिकाले जिस्से उसको पीड़ा नहीं पहुँचे(दृष्टान्त)जैसे कौआ मैलको निकालताहै ऐसेही सब जीवोंकी धर्ममर्यादाको अपने अनुमानसे जानलो और यहजानो कि यह सारासंसार केवल एक धर्मरूपी बंधनमें फँसाहुआ खड़ाहै-जिससमय कोई जीव या कोईदेश या कोईकाल या कोईवस्तु अपनी नियत मर्यादाको छोड़देतीहै उससमय जोजो उत्पात उठाकरते हैं ये सब अधर्म के लक्षणहैं इसहेतुसे उन मुनियोंने धर्माचरणकी मर्यादपूंछी जिनसे सृष्टिका कल्याण और वढ़वारीहो १॥

मिथिलास्थःसयोगीन्द्रः क्षणंध्यात्वाऽब्रवीन्मुनीन्। यस्मिन्देशेमृगःकृष्णस्तस्मिन्धर्मान्निबोधत २॥

भ०—मिथिला में बैठाहुआ वह योगीन्द्र क्षणभर ध्यानकरिके मुनियों के प्रति बोलताभया—जिसदेशमें कृष्णमृग हो तिसमें धर्मोंको समुझो २॥

मि०—मिथिलानाम नगरी में विराजमान वह योगीन्द्र याज्ञवल्क्य एकक्षणमात्र मनमें ध्यानसे शोचकर मुनियोंसे बोला कि जिसदेशमें कृष्णसार मृग अर्थात् काला हिरण होताहै किंतु स्वाभाविक अपनी प्रकृतिसे फिरता है तिस देशमें उन धर्म्मोंको जानो जो हम आगे कहेंगे २॥

भवि०—उसदेशमें उनधर्मोंको समुझो अर्थात् जिनधर्मोंको हम अब कहते हैं उनको श्रवणकिये पीछे जो समुझनेमें संदेह शेषरहजावै तो वहां जिसदेशमें कालामृग

होताहै तहां आंखोंसे देखकर समुझलेना क्योंकि सुनीहुई वार्ता प्रत्यक्ष देखेबिना निश्चित नहीं होती है अर्थात् उसदेशमें इनधर्मोंका सदैवही आचरणहोतारहताहै-कालाहिरण कहनेका यह अभिप्रायहै कि जहां कालामृग होताहै वहदेश यज्ञादि धर्म कर्मोंकेलिये उत्तम और पवित्र गिनाजाताहै और कालेहिरणका होनाभी यहनहीं है कि किसी ऐसे देशमें पालकर बाँधाजाय जहां वह न होताहो अर्थात् उसकी स्वाभाविकउत्पत्ति यज्ञेश भगवान्कीइच्छासे होतीहो सो वह देश यह भरतखण्डसंबंधीही निश्चितहै किन्तु कोई और नहीं-सोई मनुसंहितामें बहुधा देशों के सीमा चिह्न भी लिखे हैं-तथाच-सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्य्यदन्तरम् । तन्देवनिर्म्मितंदेशं ब्रह्मावर्त्तंप्रचक्षते १ कुरुक्षेत्रञ्चमत्स्याश्च पाञ्चालाःशूरसेनकाः। एषब्रह्मर्षिदेशोवै ब्रह्मावर्त्तादनन्तरः २ हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्यंयत्प्राग्विनशनादपि । प्रत्यगेवप्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्त्तितः ३ आसमुद्रात्तुवैपूर्वादासमुद्रात्तुपश्चिमात्। तयोरेवान्तरंगिर्योरार्यावर्त्तंविदुर्बुधाः ४ कृष्णसारस्तुचरतिमृगोयत्रस्वभावतः । सज्ञेयोयज्ञियोदेशो म्लेच्छदेशस्त्वतःपरम्५इतिमनुः-इनपांचों श्लोकोंका यहभावहै कि सरस्वती और दृषद्वतीइन दोनों देवनदियोंके बीचमें जो देशबसता है उसको देवनिर्मितदेश और ब्रह्मावर्त्तभी कहतेहैं अर्थात् ब्राह्मणआदि वर्णोंके रहनेका आवर्त्त कहिये घेरायहनामहै-कुरुक्षेत्र और मत्स्य पांचाल शूरसेनक इनदेशोंको ब्रह्मर्षिदेशकहतेहैंयेसबदेश ब्रह्मावर्त्तसे अनन्तर कहियेमिलेहुये औरपासमें हैं—उत्तरमें हिमालय और दक्षिण में विंध्याचल इनदोनोंके बीचमें पश्चिम सीमा कुरुक्षेत्रसे लेकर पूर्वसीमा प्रयागताईं जो बीचका देशहै वहमध्यदेश कहलाताहै-ऐसेही पूर्वसमुद्रसे लेकर पश्चिम समुद्रतक उत्तर दक्षिण उन्हींदोनो हिमालय और विन्ध्याचल पहाड़ोंके बीचबीचका देश आर्यावर्त्त कहलाताहैइस आर्यावर्त्तकेही बीचमें वह ब्रह्मावर्त्त आदि भी सबआगये-कृष्णसार मृगभी जहां इनदेशों में स्वाभाविक अपनी इच्छासे विचरता है वहदेश यज्ञकरने योग्यहै यहजानलो २ ॥

पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्रांगमिश्रिताः । वेदाःस्थानानिविद्यानां धर्मस्यचचतुर्दश ३ ॥

अक्ष०—पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र, अंगोंसे मिलेहुये वेद,विद्याओ के धर्म केभीचतुर्दशस्थान ३ ॥

अभि०—अर्थात् प्राचीन रीतिके अनुसार ब्राह्मण आदि तीनिवर्णोंकालघु अवस्था सेही पहले पहल एकधर्म तो यहीहै कि-पुराणोको न्यायशास्त्रको मीमांसाशास्त्रको धर्मशास्त्रको और वेदके ६ अंगोंकरके सहित वेदको और लोकमें प्रसिद्ध विद्याओं के १४ स्थान और धर्मके भी १४ स्थानोंको पढ़ें और सीखें ३ ॥

अधि०—वेदके ६ अंगोंकेनाम-यथा-१ शिक्षा २ कल्प ३व्याकरण ४ निरुक्त ५छंद

६ ज्योतिष ॥ विद्याओंके १४ स्थान यद्यपि लोकहीमें सब प्रसिद्धहैं परंतु उनकेनाम योगविद्या, जलविद्या, अस्त्रशस्त्रविद्या गानविद्या, वैद्यविद्या, वाजिविद्या, चित्रविद्या, यंत्रविद्या, विश्वकर्मविद्या, नटविद्या, दास्यविद्या, आदि सब शंखस्मृतिमें कहेहैं-और यद्यपि वह १४ विद्यायें क्षत्रिय वैश्य आदिजातोंके कामकीहैं परंतु ब्राह्मणको उन सबोंका पढ़ना सीखना इसहेतुसे उचितहै कि ब्राह्मण सबको शिक्षादेनेवाला गुरुहै इसलिये यद्यपि उसको उन विद्याओंसे कोई पेशाकरनेकी अपेक्षा नहीं भी हो परंतु पहले आप सीखेगा तब पीछे औरोंको सिखलासकेगा और गुरु कहलावेगा नहीं तो कोरे बावाजी-अर्थात् प्राचीन शास्त्रोंकीरीति अनुसार यह क्रमहै कि शूद्रजातें केवल अपने २ कामकी विद्यासीखें-और वैश्य अपनी और शूद्रकी विद्याओंको भी जाने क्योंकि जो शूद्रकी विद्याओंको न जानेगा तो उनसे क्योंकर अपनेकामोंको बनवासकेगा-क्षत्रियको ब्राह्मणके समान अपनी और वैश्यकी और शूद्रकी और ब्राह्मणकी भी विद्याओंका सीखना आवश्यकहै ३ ॥

मन्वत्रिविष्णुहारीतयाज्ञवल्क्योशनोंगिराः । यमापस्तम्बसम्वर्त्ताःकात्यायनबृहस्पती ४ ॥
पराशरव्यासशंखलिखितादक्षगौतमौ । शातातपोवसिष्ठश्चधर्मशास्त्रप्रयोजकाः ५॥

भक्ष०-मनु, अत्रि, विष्णु, हारीत, याज्ञवल्क्य, उशना, अंगिरा, यम, आपस्तंब, सम्वर्त्त,कात्यायन, बृहस्पति ४ पराशर, व्यास, शंखलिखित, दक्ष, गौतम, शातातप, वसिष्ठ, यहसब धर्मशास्त्रोंके संग्रहकरनेवाले हुयेहैं ५ ॥

भभि०-याज्ञवल्क्यजीने अपना नाम सबके संगमें मिलाकर इसहेतुसे कहाहै कि धर्मशास्त्रका निर्माणकरनेवाला केवल मैंहीं नहींहूं अर्थात् मनुको आदि लेकर इतने यह सब और इनके सिवाय और भी अनेकों मुनिलोग धर्मशास्त्रोंके बनानेवाले पहले से भी होते चलेआयेहैं-और धर्मशास्त्रके ग्रंथो या बनानेवालोंकी बाहुल्यताका यही कारणहै जो पहले श्लोककी अधिकोक्तिमें लिखाहै कि देश,जाति,काल आदि भेदोंसे धर्मकी अनंत शाखा और परिणामहोजातेहैं किंतु वह सदा और सर्वत्र एकसा नहीं होताहै ४।५ ॥

अब यहाँ पहले थोड़ेसे परमधर्मके लक्षण जतलातेहैं सो देखो नीचे ॥

देशेकालउपायेनद्रव्यंश्रद्धासमन्वितम् । पात्रेप्रदीयतेयत्तत्सकलंधर्मलक्षणम् ६ ॥

भक्ष०-देशमें कालमें उपायसे जो द्रव्य श्रद्धापूर्वक पात्रमें दीजियेहै सो यह सब धर्मके लक्षणहैं ६ ॥

भभि०-देशके कहनेका यह अभिप्रायहै कि जैसे जहाँ कालामृग होताहै उस देशमें बैठकर दानकरना यह अन्यदेशोंकी अपेक्षा अधिक फलदायक है फिर कालेमृगवाले देशमें भी जहाँ२ उत्तम तीर्थ प्रयाग कुरुक्षेत्र आदि प्रसिद्धहैं या राजद्वार और

गोशाला आदि उनमें करना यह भी एकधर्मकाही लक्षणहै-ऐसेही कालके कहनेका यह अभिप्रायहै कि जो२ समय दानकेलिये लोकमें प्रसिद्धहैं जैसे संक्रांति आदि पर्व या पाणिग्रहणका समय या पुत्र जन्मका समय या प्राणांत समय आदि इनमें दान करना यह भी एक लक्षण धर्मकाहीहै-उपायसे कहनेका यह अभिप्राय है कि दान करनेके लिये जो२ विधि शास्त्रमें या लोकमें प्रसिद्धहों उन संपूर्ण विधियोंसे दानकरना यह उपायपूर्वक दान कहलाताहै सो यहभी एकलक्षण धर्मकाहीजानो-ऐसेहीद्रव्य कहनेका यह अभिप्रायहै कि उसद्रव्यका दानकरना जो अपनेसत्य परिश्रमसेकमाया हो या ब्राह्मणत्व के कारणसे कहीं प्रतिग्रह आदि में पायाहो सो यह भी एकलक्षण धर्मकाहीहै अर्थात् परसंबंधी धनकादानकरदेना धर्मका लक्षणनहींहै-श्रद्धा समन्वित कहनेका यह अभिप्राय है कि श्रद्धा जो आस्तिक्य बुद्धिहै तिसकरके सहित दानका करना किंतु नास्तिकताका प्रवेश बुद्धिमें न होने देना यहभी एकलक्षण धर्मकाहीहै— पात्रमें कहनेका यह अभिप्रायहै कि दान देनेयोग्य जो सुपात्र कोईहोवे जिसकीसुपात्रताकेलक्षण आगे इसीशास्त्रमेंआवेंगे ऐसेकोदेना किंतु अयोग्यकोनदेना सो यहभी एकलक्षण धर्मकाही जानो-प्रदीयते यह कहनेका अभिप्राययहहै कि-दीयते का अर्थ तो दीजिये है इतनाही होताहै अर्थात् देना सोवह देना एकऐसाभी होताहै कि कोई वस्तु किसीकोदेकर फिर उसके लौटारलेनेका अधिकारबनारहै और श्लोकमेंप्रदीयते लिखाहै तहां (प्र) उपसर्ग इस प्रकर्पताके लियेहै कि अतिशय करके बिल्कुलिही दे दियाजावे जिसके लौटारलेनेका अधिकारनबाकीरहै अर्थात् वहधनदूसरेका कहलाने लगे किंतु चाहेंदानपत्रके द्वारा या संकल्पवाक्यके संबंधसेही दियाजावे सोयहभीएक लक्षण धर्मकाहीहै इत्यादि और भी नानाप्रकारके लक्षण जो शास्त्रोंमें जातिगुणयाग होम आदि लिखेहोते हैं सोसब परमधर्मके लक्षणहैं ६ ॥

भधि०—परमधर्मका लक्षण मनुस्मृतिमेंभी लिखाहै कि(धृतिःक्षमादमोऽस्तेयं शौच मिन्द्रियनिग्रहः। धीर्विद्यासत्यमक्रोधो दशकन्धर्मलक्षणमितिमनुः) अर्थात् परमधर्मके दशलक्षण होतेहैं एकतो १ धृति जिसको धीरज या संतोष कहते हैं॥ दूसरा २ क्षमा जो अपनी सामर्थ्य होतेहुये भी दूसरेकीबात सहलेना ३ दम किंतु बाहरली इंद्रियों को चंचलतासे रोकलेना ४ अस्तेय अर्थात् किसीकाधन बिनादिये नहीं हरलेना या चुराना ५ शौच अर्थात् नित्यक्रिया ६ इंद्रिय निग्रह अर्थात् इंद्रियोंको कुभोगों से रोकना ७ धीः अर्थात् शास्त्रोक्त ज्ञानकीधारणा बुद्धिबनीराखना ८ विद्या ९ सत्य बोलना १० अक्रोध अर्थात् क्रोधकी वार्त्तापरभी क्रोध न करना-ये दशलक्षण पर मधर्म्म के हैं (अन्यत्रापिपड्विधम्) यथा (पात्रेदानंमतिःकृष्णेमातापित्रोश्चपूज नम्। श्रद्धाबलिर्गवांग्रासः पड्विधंधर्म्मलक्षणम्) अस्यार्थः-दानकरना तो सुपा-

ओंकोही १. परमेश्वर में बुद्धि बनीराखना २ मातापिताकी सेवाभक्ति राखना ३ पुण्यमें-श्रद्धाराखनी ४ बलिवैश्वदेव नित्यकरना ५ गो ग्रास निकालना ६ ये भी छः प्रकारके लक्षण परमधर्म्म केही होते हैं ॥ ६ ॥

श्रुतिस्स्मृतिस्सदाचारस्स्वस्यचप्रियमात्मनः। सम्यक्संकल्पजःकामोधर्ममूलमिदंस्मृतम् ७ ॥

प्रश्न०— श्रुति-स्मृति-सदाचार-अपनी आत्माका प्रिय भी-सम्यक्संकल्प जातकामना- ये धर्म्म के मूल कहे हैं ७ ॥

भभि०—श्रुति कहिये वेद-स्मृति कहिये धर्म्मशास्त्र-सदाचार कहिये सज्जनों का आचार अर्थात् जिस आचरणको अच्छे प्रमाणिकलोग करतेहों सो-और अपना आत्माकहिये मनबुद्धि तिसमेंजो बात समावे अर्थात् जहांएकही कामकी दो मर्य्यादें लिखीहों यालोकमें प्रसिद्धहों जैसे जनेऊकरना ब्राह्मणके पुत्रको गर्भकालसे और जन्मकालसे भी आठवेंवर्ष में लिखाहै और दोनोंरीतें धर्ममर्यादसे उचितहैं तहांइन दोनोंमें से जोकोईसी एकरीति अपने मनबुद्धिमें अच्छीमालूम हो तिसकेअनुसार कामकरना सो यह अपनेआत्माका प्रियकहलाताहै और जनेऊ यहएक दृष्टांतमात्र यहांपरलिखाहै किन्तु ऐसेसहस्रोंकाम संसारमेंहोतेहैंकि जिनमें दुभाँतितिभाँतिकीरीतें होतीहैंतिनमेंअपने मनबुद्धिका विचारहोताहै और जिसमेंएकहीरीतिहो उसमेंभीफिर अच्छेलोगोंका आचार अर्थात् बर्तावा प्रमाण होताहै-चौथी-सम्यक्संकल्पकामना उसे कहतेहैं कि सम्यक्नामहै अच्छेका और संकल्पनामहै मनकेविचारका कि ऐसा काम करनाचाहिये सो मनकाविचार दो प्रकारका होताहै एक तौबुरा दूसराअच्छा तिसमें अच्छेसंकल्पसे जो कामनामनमें पैदाहुईहो कि अपने या औरोंके कल्याण वाला अमुककाम इसउपायसे करनाचाहिये तिसको-सम्यक्संकल्पजातकाम-कहतेहैं सोयेचारोंबातें धर्मकीमूलहैं अर्थात्वेद १ धर्मशास्त्र २ सदाचार ३ सम्यक्संकल्पज कामना ४ इनचारोंसेही धर्मकी मूल वस्तु पहिंचानी जातीहै ७ ॥

भवि०—ऊपर लिखाहै कि एकरीति में भी अच्छेलोगोंका बर्तावा प्रमाणहोताहै तिसकायह अभ्यन्तरहै कि किसी २ केवलमर्यादामें भी अपनीबुद्धिके भ्रमसे गड़बड़ झालासाप्रतीत होताहै इससे कि उसएकही परिनियमित मर्यादाको कोईतो सुरीति से आचरणकरतेहैं और कुछलोग कुरीतिसे-तहांपर अच्छेसत्पुरुषोंकी सुरीतिको प्रमाणमानिकर आपभी अंगीकारकरे इसका एकसंभूत और संदृष्टदृष्टांतहै-जैसे-प्रातःक्रियामध्येशौचविधिमें दिशाजानेकी केवल एकही मर्यादा शास्त्रमें लिखीहैकि पहले जंगलजाकर उत्सर्गकर्मसेनिपटे फिरपीछे मुखमंजनदंतधावनकरे और इसीएकमर्यादा के वर्त्तावामध्ये कुरीतिऔरसुरीतिवालेदोनांभांतिकेलोगयद्यपिथोड़ेबहुत सर्वत्रहोतेहैं परन्तु-विशेषतरएक अच्छाचातुर्वर्ण्योपित शहरजो यहांसे पश्चिमोत्तरकोणमें समीप-

हीवसताहै वहांके निवासीवड़े धनाढ्य और गुणवान् और कुलवानोंकी भी यहरीति है कि सारेनगरके पुरुष और स्त्रियां भी बालकसे बूढ़े पर्य्यंत शहरके बाहरशौचको जातेहैं घरोंमेंशौचस्थान नहीं बनाते यहकहते हैं कि हिन्दूको घरमें मलीनता करना अनुचितहै बहुधारातिविरातिकी आवश्यकताकेलिये जो किसी२ ने बनारक्खाहै सो भी घरकेअन्दरनहीं किंतुबाहरड्योढ़ीके आगे चबूतरापर पत्थरआदिखड़ेकरवालिये हैं परंतुजातेवेभी बाहरहैं-और सफ़ाईके धर्मक़ानूनसे सरकारी रक्षकछूटे रहतेहैं इस हेतुसे बहुधादूरजाने पड़ताहै-इससेशीतकालमें चिल्लाजाड़ेकेमारे दिनके दशग्यारह बजेतक शौचकोजातेहैं तबखेतों और कूपोंपरपवंसीपड़तीहैं- एकदिनकासंयोगहै कि एक विदेशी विद्वान् विज्ञानी दो घटिकादिन चढ़ेपरकूपके समीपबैठिकर मुखमंजन करनेलगा उसको वहांकेलोगोंने देखकर टोका कि आपऐसे ज्ञानीहोकर ऐसाअनुचितकरतेहो कि अभी आपशौचकोगये नहीं और कुल्लाकरनेलगे- उसमहात्माने उत्तरदिया कि हम एकाहारीरहतेहैं इससेशौचतो दोचारघटिकादिनचढ़े आवेगा तब तकबासी मुखकैसेबैठेरहें मुखमंजन तौदोघड़ीके तड़के हमकरचुकतेहैं तबयहांशौचको आतेहैं आजनिद्राने दिनचढ़ेआँखखोली सो हमसीधे यहांचलेआये और कुल्लाकिया तब तुमनेजाना किन्तु हम पूछतेहैं कि जबशौचको जायँगे तब क्या फिरकुल्लानहीं करेंगे और मुखमंजन तो चित्तकी शुद्धि और प्रसन्नताका हेतुहै जो मुखमंजन विना हमशौचकोचलेजाते तो चित्तकीमलीनता और अप्रसन्नतासे प्रथम तो उत्सर्गभी भलीभांति नहींहोता और बारम्बार मलीन मुखसे थूकनापड़तातो वहबात क्याअच्छीथी-इतना निर्णयसाथ समुझानेपर भी वहसबलोग एक मुखहोकर उस विदेशी विज्ञानीकोही उलटेकायल करनेलगे और तालीपीटकरबोले कि वाह २ पण्डितजी आपभलेज्ञानी मिले हमारेयहां यहरीति नहीं है कि उत्सर्गसे पहले कुल्लादांतोनिकरें परंतु आपभलेपढ़ेहो कहोकौनसे शास्त्रमेंलिखाहोकि जंगलपीछेजाना और मुखपहलेधोना-तब उनमहात्माने फेर उनकुविचारियोंको समुझाया कि हांठीकहै शास्त्रमें यहीबातहै कि जो तुमकहतेहो परंतु किसकेलिये कि जिसेउठतेके साथही शौचबाधाका तीव्रवेग वेदनासहितहोआवे और वहतत्कालचलाजाय- और जिसको उठेपीछे आधी घड़ीकाभी बिलंब होजानेकी संभावनाहो तिसको यह उचितहै कि तत्कालखट्टा सेउठतेही चाहैतैसा शीतहोपर आधेकपालताई सब छिद्रोंसहित मुखमंजनकरे और मूत्रेन्द्रियकोभी प्रक्षालनकरे तब पीछे किसीसे वार्त्तालापकरे क्योंकि जो पहले किसी से बोलेगा तो बासीमुखमेंसे मलीनलार जो छूटेगी सो घूँटनीपरेगी-इस्से यह जानों कि शास्त्रजोहैं सो बुद्धिबोध्यहोते हैं क्योंकि शास्त्रों में प्रत्येकशिक्षाकी समस्या मात्र लिखीहोतीहै इसीसे शास्त्रोंमें बुद्धिकाविचारतो सारहै और विचारविना शास्त्रका अ-

क्षरभी अपारहै-इतनानिर्णय साथसमुझाने परभी उन कुविचारियोंने तानादिया कि जो सब लोग तुमसेही ज्ञानीहोजावें तो शीघ्रही सबशास्त्र उलटे होजावें हम तुम्हारी इस कपोलकल्पनाका प्रमाण नहीं मानते और तुम्हारे कहनेपरभी शास्त्रसे विरुद्धभी नहीं करसक्ते हें यह तुम्हाराज्ञान तुम्हींको फलदायकहो-तब उनमहात्मानेकहा कि तुमलोगनकी यहशास्त्रबुद्धिहीव्यर्थहै क्योंकि जब दशग्यारहबजेताईं तुमलोग यहां शौचको आतेहो तभी मुखमंजनकरतेहो तो निश्चितहुआ कि क्या यहशास्त्रबुद्धि जिस्से एक तो उदरमें मलकाबोभ्कदावेहुये घर या दूकानपर बैठेरहते हो दूसरे बासीमुख भी नहीं धोतेहो तीसरे जो ऐसेही तुमशास्त्रपर आरूढ़हो तो शास्त्रमें शौचजाना भी प्रातःकालकहा हे सो क्यों नहीं करते हो चौथे तुमलोगों ने जो निजदरवाजे आगे शौचस्थान बनाये हैं यह भी शास्त्रसे अनुचित है क्योंकि पितर तो रोजरोज और देवता पर्वोंके दिन आनिकर गृहस्थोंके दरवाजेपर विश्राम इसहेतुसे करते हैं कि न जाने आजकुछ हमारे नामका इसघरमें होताहो सो वह उसदुर्गंधिको देखकर उलटे फिरजाते हैं इसके सिवाय संसारीमनुष्य जो अपनेइष्टमित्र किसीआवश्यकतासेआते या जोकोई उसमार्गमें जातेआते हें वेसब नाक सकोड़कर थूकते और दुर्नामता देते जातेहैं इससे मार्गनिर्मलता धर्म्मजो प्राचीन और सनातनहै उसकीमर्य्यादाअनुसार शौचस्थान का बनानाभी घरके किसीऐसे कोणमें उचितहोता है कि जहां किसीकी दृष्टिनहीं पहुंचे-इतनावाद विवादहुआ परउन कुविचारियों से अपनीकुटेव अबतक नहीं छोड़ीगई- हेजिज्ञासो अब उसबातके सिद्धांतपर दृष्टिधरनी चाहिये कि यद्यपि वह एकहीरीति शास्त्रमेंलिखीहे परन्तु आत्माजो मन बुद्धि चित्त अहंकाररूप चतुष्टय तिसकाप्रिय (प्रसन्नता) सोउस लिखीहुई रीतिसे न होसकी तबउन महात्माने अपने विचारके अनुसार उत्सर्गसे पहलेही मुखमंजन नियतकिया और यथार्थमें यही धर्मका लक्षणहै-और उन उक्तलोगोंकी शास्त्रबुद्धि यद्यपि शास्त्रोक्त है परन्तुधर्म के लक्षणमें गिनती न रही अर्थात् अधर्म औरमलीनता निश्चितहोगई क्योंकि उन्होंने शास्त्रोक्त आचारका विचार करना नहींजाना-अबउस ऊपरलीबात को शोचो कि वे महात्मातो अच्छेलोगोंकी गिनतीमें हें १ औरवेलोग कुविचारी हें २ इनदोनोंमें से जिस किसीका आचरण-तीसरे ज्ञानवान् जिज्ञासुओं को अपने आत्माके बीच प्रियमालूम हो तिसके आचरणको आपभी सीखें*धर्मकीमूल पहिंचाननेके और भी उपलक्षण ग्रंथांतरमेंलिखेहें-यथा(अद्रोहश्चाप्यलोभश्चदमोभूतदयातपः । ब्रह्मचर्यं ततःसत्यमनुक्रोशःक्षमाधृतिः) अर्थात्-एकतो १ अद्रोह किंतु किसीका द्रोहनहींकरना २ अलोभ किंतु अपने परिश्रमके यथोचित फलके सिवाय वृथालोभका न करना३ दम किंतु बाहरली इंद्रियोंकी चंचलताका रोकना ४ भूतदया ५ तप ६ ब्रह्मचर्य्य ७

सत्य ८ अनुक्रोश अर्थात् किसीकी मूर्खता या पीड़ा या अप्रतिष्ठा आदिको देखसुनि कर अपने चित्तमें क्लेश मानकर दयापूर्वक जोकुछ मुखसेकहे या मनमें विचारकरे सो अनुक्रोश कहाताहै ९ क्षमाकिंतु दूसरेकी प्रवलता या कुवाक्यों को अपनी सामर्थ्यके होनेपरभी सहलेना १० धृति अर्थात् धीरज संतोष ये भी दशलक्षण सनातन धर्मकी मूल कहलाते हैं-सो ये दशोंलक्षण मनुष्यको मिलने वड़े दुर्लभहोते हैं किंतु इनका साधनकरना वड़ा कठिनहै और जिस मनुष्यमें ये सब लक्षण पायेजायँ उसे यहजानो कि यहसाक्षात् आपही धर्मकीमूर्त्ति है ७॥

इज्याचारदमाहिंसादानस्वाध्यायकर्म्मणाम्। अयन्तुपरमोधर्मोयद्योगेनात्मदर्शनम् ८॥

भक्ष०—पूजा आचार दम अहिंसा दान स्वाध्याय कर्मोंका परमधर्म यही है कि जिसके योगसे आत्मदर्शनहो ८॥

भभि०—ऊपरलिखेहुये पूजाआदि अनेककर्मोंका परमधर्मसिद्धांतरूप केवल इतनाही है कि जिसके करनेसे आत्माका दर्शनहोसके अर्थात् आत्माशब्दके यद्यपि अनेक अर्थहैं परन्तु यहां उनमेंसे एकमुख्यहै किंतु आत्माशुद्ध निर्मल ज्ञानको कहते हैं सो ऐसाशुद्ध और निर्मलज्ञान जिसकामके साधन करनेसे मिलसके वस वही काम परमधर्म रूपहोता है फिर उसमें कुछ देशादिक लक्षण जो बहुधा ऊपर कहेगये हैं उनका नियम नहीं होता क्योंकि वे सबवातें उपकरणमात्रहैं जैसे कूप खोदने और उसमेंसे जलकीप्रवृत्ति करनेके झाम, टोकरा. खंता, पंप, फाउड़ा, रस्सी आदि अनेक उपकरणहोते हैं सो उनकानियम और आवश्यकता भी तभीतक रहतीहै कि जवतक उसमें जलकाझरना सोत अच्छीतरह जारीनहीं होता ८॥

भधि०—अर्थात् धर्मके नानाप्रकारके चिह्न लक्षण देश जाति आदिभेदोंसे जो वारम्वार वर्णन कियेजाते हैं सो इसलिये हैं कि धर्मजिज्ञासु की बुद्धि उनमें सबओरको फैले और फैलनेपीछे सबओरसे इकट्ठीहोकर निर्मलज्ञानका बिम्बरूपी होकर हृदय में प्रकाश करनेलगे ८॥

चत्वारोवेदधर्मज्ञा·पर्षत्त्रैविद्यमेववा। साब्रूतेयंसधर्म्मःस्यादेकोवाध्यात्मवित्तमः ९॥

भक्ष०—वेद-धर्म-के जाननेवाले चारयह पर्षत् अथवा त्रैविद्यसमूह यहपर्षत् होती है यहपर्षत् जिसबातको कहेहैं या अध्यात्मवित्तमपुरुष एकही जोकुछ कहेहै वहीधर्म होताहै ९॥

भभि०—यहबात कि चार ब्राह्मण वेद और धर्मशास्त्र के जाननेवाले एकत्रबैठें उसको पर्षत् किंतु सभाकहतेहैं- अथवा त्रैविद्य जोतीन विद्याओंको जाने और धर्मशास्त्रभी जानतेहों ऐसे मनुष्योंका समूह यहभी सभाहोती है तीनविद्या अर्थात् शि-

क्षाशास्त्र १ राजनीति शास्त्र २ आन्वीक्षिकी जिसे तर्कशास्त्र कहते हैं ३ अथवा ये तीनविद्या कि प्रथम अपनेकुल जातिकी समस्तविद्या १ दूसरी वर्त्तमान समयके राजाकी सारी विद्यायें २ तीसरी उसदेशकी विद्याकि जहांकी किसी वार्त्ताका निर्णय या जिसदेशके मनुष्यका कोई निर्णयकरना हो ३ यह ऊपर कहीहुई दोनोंप्रकार की पर्षत् जो कुछ निर्णयकरके कहें वहीधर्म्म कहलाता है-और वहभीधर्महै किजोएकही पुरुष अध्यात्मविद्या जाननेवालोंमें बड़ा चतुरहो और धर्म्मशास्त्रको जानताहो वह अपने मुखसे विचारकर कहे ६ ॥

अभि०—निर्णयकरके और विचारकर मुखसे कहनेका यह सिद्धांतहैकि धर्म केवल वहीनहीं है किजो धर्मशास्त्रोंके कानूनमें लिखाहोताहै अर्थात् कोईवार्त्ता या किसी पद या मुकद्दमेका ऐसा विचारकरनेको आनिपड़े कि जिसकाचिह्नभी शास्त्रोंमें न पाया जाय तब उसवार्त्ता या पदका वही धर्महै जो ऊपरली पर्षत्कहें किंतु इस आग्रह से उसका त्याग वा उपेक्षा उचितनहींहै कि धर्मशास्त्र में तोकुछ लिखा नहीं अब हमक्या करें-और वेद वा धर्मके जाननेवाले ब्राह्मण यह एक उपलक्षण है अर्थात् वैसे विद्यावान् ब्राह्मणोंके अभावमें और प्रकारके ब्राह्मणभी ग्राह्यहैं-ब्राह्मणोंके अभावमे अन्यवर्णभी ग्राह्यहैं-देश जाति कालके अनुसार सर्वत्र सबको अपनी योग्यताके अनुसार धर्म निरूपण करने का अधिकार होताहै सोई अनंतरोक्त आठवें श्लोक में कहचुके हैं ६ (इत्युपोद्घातप्रकरणम्)इन ६ श्लोकोंमेंसारेशास्त्रकासिद्धांतरूप आशयकथन करके अब आगेवर्ण आदिकोंके धर्मकहनेके लियेवर्ण विनिश्चय ॥

ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रावर्णास्त्वाद्यास्त्रयोद्विजा । निषेकाद्या श्मशानांतास्तेषांवैमंत्रत क्रियाः १० ॥

मक्ष०—ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र येवर्णहैं इनमें पहले तीनों द्विजकहातेहैं उनतीनों के गर्भाधानसे लेकर श्मशान ताईंकी सारीक्रियायें वेदमंत्रों से होती हैं किंतु शूद्रकी वेदमंत्रोंके विना १० ॥

अबनीचेइनकी सबक्रियाओंकी संख्या और अनुक्रम कहतेहैं ॥

गर्भाधानमृतौपुंसः सवनंस्पंदनात्पुरा । षष्ठेऽष्टमेवासीमंतोमास्येतेजातकर्म्मच ११ ॥

मक्ष०—ऋतुकालमेंगर्भाधान—गर्भचलनेसेपहलेपुंसवन—छठे वा आठवेंमासमेंसीमंत-गर्भमेंसेनिकल जानेपर जातकर्मकरे ११ ॥

अभि०—द्विजातीलोगोंका सबसेपहला कर्म गर्भाधान होताहै सो स्त्रियोंका ऋतुकाल जोप्रसिद्धहै और उसकीनियमविधि आगेइसीशास्त्रमें कहेंगे उसनियमके भीतर २वेद मंत्रोंकी विधिक्रियासे गर्भधारणकरें १-इसपीछे दूसराकर्म पुंसवन नामहोताहै उसको उससमयसे पहले करलेनाचाहिये कि जबउदरमें गर्भफरकने लगताहै २-तीसराकर्म सीमंत और उन्नयनभी उसीकेसाथ होताहै सो ये दोनों गर्भधारण समयसे छठे और

आठवें मासमेंकरे ३-चौथाजातकर्मजो नालछेदनआदिक्रियाकहाती हैं सोबालकपैदा होनेपर करे ४॥ ११ ॥

अभि०(सकृत्सुसंस्कृतानारीसर्वगर्भेषुसंस्कृता)इसदेवलऋषिकेवाक्यका यह अर्थाशहै कि सीमंत और उन्नयन येदोकर्म यद्यपि प्रत्येकगर्भ में करनेउचितहैं परंतु एक वार सबसेपहलेगर्भमेंतो अवश्यहीकरनाचाहिये-इसलिये उन्होंने इसअद्धामें यहकहाहै कि-जो स्त्रीएकवारअच्छीरीतिसे संस्कारकरीजावे वहसभीगर्भोंमें संस्कारवतीवनी रहतीहै-स्त्रीक्षेत्ररूपहै यहदोनोंकर्म खेतकाकमाना और नलावना सींचना आदि संस्कारहैं जैसे जिसखेतकीधरतीको किसान एकवारअच्छीतरह कमालेताहै वहधरती फिर सदाको फलदायकवनीरहती है और जो हरसाल उसीतरहकमातारहै तौ और भी अधिकफलती फूलती है ऐसेही स्त्रीका हिसाव है ११ ॥

अहन्येकादशेनामचतुर्थेमासिनिष्क्रमः । षष्ठेऽन्नप्राशनंमासिचूडाकार्यायथाकुलम् १२ ॥

अक्ष०—ग्यारहवें दिवस नामकर्म-चौथे महीना निष्क्रमकर्म्म-छठेमास अन्नप्राशन-चूड़ाकर्म अपनेकुलके अनुसारकरे १२ ॥

अभि०—जन्मकेदिनसे ग्यारहवें या बारहवें दिवस नामकरण किंतु दसूठनि दष्टौन आदि भाषामें प्रसिद्धहै जिसदिन बालककानाम धराजाताहै सो वह नाम दादा या नाना या कुलदेवता या गुरुकुलकी संप्रदायसे संबद्धकरकेधरे यह पाँचवां कर्म है ५-चौथेमहीनामें निष्क्रम अर्थात् बालकको बाहरनिकासना और सूर्यकेदर्शन कराना यह छठाकर्महै ६-छठेमहीनामें अन्नप्राशन किंतु बालकको अन्नचटाना यह सातवां कर्महै ७- आठवांकर्म चूड़ाकहिये मुंडनहै सो जैसी जिसके कुलमें रीतिहो तैसाकरै किंतु किसीके वर्षभीतर होजाताहै किसीके तीसरी में किसीके पाँचवीं या सातवी में किसीके स्थानभेदसे अमुक तीर्थआदिमें होताहै १२ ॥

एवमेनःशमंयातिबीजगर्भसमुद्भवम् । तूष्णीमेताःक्रियाःस्त्रीणांविवाहस्तुसमंत्रकः १३ ॥

अक्ष०—इसप्रकार बीज और गर्भसे उत्पन्नभया एनस् जोपापहै सो नाशको पहुँचताहै-इतनी क्रियायें स्त्रियोंकी चुपके होतीहैं और विवाह उनकाभी मंत्रोंसे १३ ॥

अभि०—इसप्रकारकहिये पूर्वोक्तरीतिसे गर्भाधानआदि संस्कारकर्मोंके करनेसे यह फलहोताहै कि माताके गर्भरक्तमें जो ववासीरआदि रोगरूपीपाप या पिताके बीजमें कोई कुष्ठआदि रोगरूपीपापहो सोनाशहोजाताहै अर्थात् वर्णसंकरत्वआदि पापनहीं नाशहोतेहैं किंतु केवल रोगमात्र जो पीछे पुत्रकेभीशरीरमें होजातेहैं-यह इतनीपूर्वोक्तक्रियायें स्त्रियोंकीभी अर्थात् कन्याकीभी होतीहैं परंतु मंत्रोंके विनाही चुपचाप हुआकरती हैं ऐसेही शूद्रोंकीभी चुपचाप परंतु द्विजातीकी स्त्रियोंकाविवाह मंत्रोंसेही होताहै और शूद्रकाविवाहभी मंत्रों विना १३ ॥

अब नीचे ब्रह्मचारीके नियम कहनेकेलिये जनेऊका प्रारंभकरते हैं ॥

गर्भाष्टमेऽष्टमेवाब्देब्राह्मणस्योपनायनम्। राज्ञामेकादशेसैकेविशामेकेयथाकुलम् १४ ॥

अक्ष०–गर्भसे आठवें अथवा जन्मसे आठवेंवर्पमें ब्राह्मणका उपनयनहो क्षत्रियों का ग्यारहवें में वैश्योंका बारहवें मेंहो और एक यहकहतेहैं कि अपने २ कुल आम्नायके अनुसार हो १४ ॥

अभि०–एक यहकहते हैं अर्थात् थोड़ेसेआचार्य ऐसाकहते हैं कि कुलरीतिके अनुसारहो परंतु यह वाक्यनिर्मूलहै क्योंकि थोड़ेओंका कहना प्रमाणमेंनहीं आता है-और गर्भ अथवा जन्मसे जो अवधिहै वह तीनोंवर्णमें लगतीहै और दोनों अवधि मेंसे जिसएकके अनुसार बनसक्ताहो या जो कोईसी एक अपनेमनभावे उस्से करे १४-सो यह उपनयन कहिये यज्ञोपवीत कर्म नववां है १४ ॥

उपनीयगुरु शिष्यंमहाव्याहृतिपूर्व्वकम्। वेदमध्यापयेदेनंशौचाचारांश्चशिक्षयेत् १५ ॥

अक्ष०–यज्ञोपवीतकरिके उस शिष्यको अपनेपासरखकर गुरु सातमहाव्याहृतियों सहित वेदपढ़ावे और शौचके आचारभी सिखावे १५ ॥

अबनीचे शौचके आचारोंको कहते हैं ॥

दिवासंध्यासुकर्णस्थब्रह्मसूत्रउदङ्मुखः। कुर्य्यान्मूत्रपुरीषेचरात्रौचेद्दक्षिणामुखः १६ ॥

अक्ष०–दिनमें दोनोंसंध्याओंमे कानपरधरेहुये ब्रह्मसूत्रको उत्तरमुख बैठाहुआ मूत्र और पुरीष इनदोनोंको करे-जो रात्रिमेंकरै तो दक्षिणमुख बैठके करे १६ ॥

अभि०–किंतु शंका या लघुशंका करनाचाहे तो दाहिनेकानपर जनेऊरखकर जो दिनहो या साँझ सवेरेका संध्याकालहो तो उत्तरमुख और रात्रिसमय होय तो दक्षिणमुखबैठे और मार्ग आदि तथा राख आदि स्थानोंको छोड़कर बैठे १६ ॥

गृहीतशिश्नश्चोत्थायमृद्भिरभ्युद्धृतैर्जलैः गंधलेपक्षयकरंशौचंकुर्य्यादतन्द्रितः १७॥

अक्ष०–फिरइन्द्रियथांभकर उठिके भरेधरेहुये जलोंसे निरालसीहोकर गन्धि और लेपकाक्षयकरनेवालाशौचकरै १७ ॥

अभि०–इंद्रियथाँभकर उठना इसलिये है कि विनाथाँभे मूत्रकीछिटकारोंसे जंघा आदिअशुद्ध होजायँगी-और उठना इसलियेकहाहै कि उसीजगह विष्ठाकेऊपर जल को नहीलेवै यहभी बड़ामैलापनहै माक्खियोंके उड़ने भिनभिनाने और जलके छींटे मलकेऊपरसे उछलआने आदि कारणोंसे-भरेहुये जलसे इसलिये कहाहै कि नदी आदि बहते जलमें शौच न करै क्योंकि उसमेंसब लोगस्नान और पानभी करते हैं और यहभी कि जल वरुणात्माहै और पंचमहातत्वोंमेंगिनतीहै इस्सेबड़ादोषहै कदाचित् कोई यहकुतर्कणाकरै कि लोटामेंभी वहीवरुणात्मा जलहै तहांयह वातहै किइसी कारण से शौचकेजलको पहले जुठारलेते हैं तबलेजातेहैं-गंधलेप-क्षय करनेवाला

यहबात कि यहांतक निरालसी होकर शौचकरैकि दुर्गंधि अथवालेप शेषनहींरहै १७

भधि०— शौचलिये पीछेउस वामेहाथसे लोटाकोभी नहींछूवै और अधोवतीको भीनहींछूवै किंतुऐसी बुद्धिमानी और चतुराईसे कामसाधै कि दाहनेहाथ से पहले कांछलगा करपीछे उसीसेलोटा को उठाले और वामेहाथको सबसेदूर कियेहुये उठ आवै [illegible] शौच [illegible] नें [illegible] वस्त्र ओढ़ने या पहरनेका नहींले जावै [illegible] नहीं [illegible] १७ ॥

अन्तर्जानुःशुचौदेशउपविष्टउदङ्मुखः। प्राग्वाब्राह्मेणतीर्थेनद्विजोनित्यमुपस्पृशेत् १८॥

मक्ष०—अंतर्जानु होकर शुचिदेश में उत्तर वा पूर्वमुख बैठकर ब्राह्मनाम तीर्थ से द्विजाती पुरुष नित्य आचमनकरे १८॥

भभि०— अंतर्जानु अर्थात् दोनोंघूंटों के बीचमें हाथोंकोकरले-शुचिदेशमें अर्थात्पवित्रभूमिपर किंतु जहां थूक खँखारआदि कुछनहो और इसी उपलक्षण से जूता या खाट पीढ़ीआदिसेभी अलग बैठकर द्विजातीकहिये ब्राह्मणआदि तीनोंवर्णका मनुष्य प्रतिदिनपूर्व या उत्तरमुख बैठके आचमन करे सो कैसेकरे कि ब्राह्मतीर्थ जो अँगूठाके पास हथेलीका स्थानहै तिसपर जलधरके तीनवार आचमनले १८॥

॥ अब नीचे तीर्थोंके नाम और स्थानचिह्न भी लिखतेहैं ॥

कनिष्ठादेशिन्यंगुष्ठमूलान्यग्रंकरस्यच। प्रजापतिपितृब्रह्मदेवतीर्थान्यनुक्रमात् १९॥

मक्ष०—कनिष्ठा १ आदेशिनी २ अँगूठाकामूल ३ हथेलीकाआगा ४ ये क्रमसे चारोंतीर्थ प्रजापति १ पितृ २ ब्रह्म ३ देवतीर्थ ४ कहातेहैं १९॥

भभि०—ये चारोंतीर्थ हाथकी हथेलीमेंही इसभेदसे होतेहैं कि कनिष्ठा सबसे छोटी उँगली तिसकी जड़के निकट हथेलीपर प्रजापति नामतीर्थ १ इसी प्रजापतितीर्थ को ऋषितीर्थभी ग्रंथांतरमें इसीको मनुष्य तीर्थ या नृतीर्थ भी कहतेहैं इसीसे ऋषियोंका तर्पण कियाजाताहै १-आदेशिनी तर्जनी किन्तु अँगूठाके समीपकी उँगली तिसकी मूलके निकटहथेलीपर पितृतीर्थ कहाताहै इसीसे पितरोंको जलदियाजाता है२-अँगूठाकी जड़के निकटहथेलीपर ब्रह्मतीर्थ होताहै यह आचमनका स्थानहै इसी जगह जलधरके आचमनकरना अनंतरोक्त १८ के श्लोक में कहचुके हैं३-हाथका अग्रभाग अर्थात् उँगलियोंकी जड़के निकट हथेलीपर देवतीर्थ कहाताहै इसीसेदेव तर्पण किया जाताहै १९॥

[illegible] ाद्भिस्तुप्रकृतिस्थाभिर्हीनाभिःफेनबुद्बुदैः २०॥

[illegible] र पोछकर फेन बुलबुलाओंसे रहित ऐसे

[illegible] २०॥

भभि०—अठारहके श्लोकमें जो आचमन करना लिखाथा उसकी विधिकहतेहैंकि

ब्रह्मतीर्थ में धराहुआ जलतीनवार पीकर फिर अँगूठाके मूलभागकी गुद्दीसे दोबार मुखको पोंछकर-ऊपरलीकायाके नाक कान आदि छिद्रोंको जलस्पर्शकरे-वे जलभी कैसेहों कि प्रकृतिस्थहों किन्तु जैसे तालाव नदी आदिमें स्वयंभूतहोतेहैं और फेना या बुलबुला आदि विकारोंसे विगड़ेहुये नहीं निर्मलहों-अर्थात् कोई अमीर अपनी अमीरीसे यह चाहे कि गुलाव आदिके खींचेहुये जलोंसे आचमन या संध्यावंदनकरलें क्योंकि वेभी जलहैं और वड़ेकीमती हैं सो नहीं प्रकृतिस्थ जलसे करे २० ॥

हृत्कंठतालुगाभिस्तुयथासंख्यंद्विजातयः। शुद्ध्येरन्स्त्रीचशूद्रश्चसकृत्स्पृष्टाभिरंततः २१॥

भक्ष०—हृदयकंठ तालुमें पहुँचेहुये जलोंसे यथोक्त संख्याके क्रमसे द्विजातीलोग शुद्ध होवें-स्त्री-शूद्र ये भी एकवार तालुमें पहुँचेहुये जलसे शुद्धहोवें २१ ॥

अभि०—यथासंख्य कहिये ब्राह्मण तो हृदयतक पहुँचेहुये जलसे और क्षत्रियकंठ तक पहुँचेहुये से और वैश्य तालुताई पहुँचेहुये जलसे शुद्धहोताहै-ऐसेही स्त्री और शूद्र यह तालुतक पहुँचेहुये जलसे शुद्धहोतेहैं परंतु एकहीवार पीनेसे और इनके लिये कुछ तीर्थकाभी नियम नहींहै कि कौनसे तीर्थमें धरके पीवें-ऊपरकहेहुये द्विजातियोंको तीनवार आचमन और ब्रह्मतीर्थका नियमहै-और जो नियम इसमें स्त्री और शूद्रका लिखाहै वही द्विजातीके विना जनेऊवालेलड़के का है २१ ॥

स्नानमब्दैवतैर्मंत्रैर्मार्जनंप्राणसंयमः। सूर्यस्यचाप्युपस्थानंगायत्र्याःप्रत्यहंजपः २२ ॥

भक्ष०—स्नान वरुणके मंत्रोंसे मार्जन प्राणायाम सूर्य्यके सन्मुख उपस्थान गायत्रीका जप- ये सब बातें जैसी संध्याकी पुस्तकमें लिखी हैं उसीरीतिसे द्विजातीलोग प्रतिदिन कियाकरें २२ ॥

गायत्रींशिरसासार्द्धंजपेद्व्याहृतिपूर्विकाम्। प्रतिप्रणवसंयुक्तांत्रिरयंप्राणसंयमः २३ ॥

भक्ष०—ऊपरकहीहुई गायत्रीको (आपोज्योतिः) इत्यादि शिरसेकरके सहित सात व्याहृतियों पूर्वक प्रत्येक व्याहृतिमें प्रणव लगीहुईको-तीनिवार मनमें जपे, इसरीतिसे कि मुखनाकमें निकलनेवाली वायुको रोककर सो यह प्राणायाम कहाताहै- इसकी विधि संध्यामें विस्तारसे कहीहैं २३ ॥

[illegible] २४ ॥

[illegible] २५ ॥

[illegible] ...तपर प्राणायाम करके और वरुण देव- की ऋचा किंतु मार्जनके मंत्रसे शरीरको छींटादेकर प्रातःकाल ताराओंकी उदयअवधिसे पहले २ अर्थात् जवतक ताराअस्त न हों [illegible] उदयताई पूर्वमुखखड़ाहो अथवा वैठे तिसपीछे [illegible] करे-येसारी बातें जैसी एक संध्याकी कहीं ऐसेही दोनों संध्याकालमें करे २४ । २५ ॥

भाषि–संध्याविधिकी पुस्तकमें यद्यपि संध्याकरनेका प्रचार मध्याह्नकाभी लिखाहै परन्तु यह धर्मशास्त्रकावाक्य सबकेऊपर प्रमाणहोताहै क्योंकि धर्मशास्त्र जिसबातकी आज्ञादेदेताहै वहबातचाहै दूसरेविषयमेंनहींभीहो तौ भी कर्त्तव्यहोतीहै और जो बात धर्मशास्त्रमें पाईनहींजावे और किसीद्वितीय विषयमें कहीहो तौभी निर्मूलसीहोती है अर्थात् धर्मशास्त्रमें संध्यावंदन-दोहीकालका आवश्यकहै-परन्तु यहबात सत्य है कि (अधिकस्यअधिकंफलम्) किंतु पुण्यकर्मका अधिककरनाभी कुछ दोष नहींहै-तथापि गृहस्थीको उतनाही नियमलेना चाहिये जितना आवश्यकहो और सुखसाध्यहो जिस्से उसकी कोईसी जीविका आदिकामोंकी हानि नहींहोनेपावे क्योंकि जीविकाआदिकामोंकी हानिसे पीछेसबधर्मकीहानि होसक्तीहै क्योंकि धनके विना कोईसाभी धर्मनहीं साधिसक्ताहै-ऐसाधर्म भी अधर्मकी गिनती में होजाता कि जिसएकहीकाम के व्यसन से अनेककामोंकीहानि होजाय-इसीलिये धर्मशास्त्रउतनीही आज्ञादेताहै कि जिस्सेमनुष्यकाकल्याणहो-धर्मशास्त्र संसारकेकल्याणकेही लियेहोताहै-और (अधिकस्यअधिकंफलम्) इसबातका यह सिद्धांतहै कि जोसत्कर्म जिसमनुष्यसेसधिसकनेयोग्यहो वह जो कुछ अधिककरैतो -अधिकफलकाभागीहो अर्थात्तपसंबंधी सत्कर्मकोवानप्रस्थ और नैष्ठिकब्रह्मचारी नियमसेभी अधिकसाधें तो अच्छीबातहै नैष्ठिकब्रह्मचारीकीचर्चा आगे ४९ केश्लोकमें आवेगी-और ४९ केपहिले अनेकश्लोकोंमें साधारणब्रह्मचारी के नियम लिखे हैं उसकोभी नियमसे सिवायकरना नहीं चाहिये क्योंकि वहसाधारण ब्रह्मचर्य्य केवल विद्यासंग्रहका हेतुहै फिर विद्यासंग्रहकरनेवाला नियमोंसेभी अधिक तपकरनाचाहैगा तो विद्यासंग्रहमें हानि होजायगी और विद्याकीहानिसे उसके सारे जन्मकी हानिहै-और गृहस्थीको उनकामों में अधिकताका अधिक फल होताहै कि जिस्से उसके सौख्य और सुकीर्त्तिकी वृद्धिहो-और तपसंबंधी नियमों में अधिकता जो गृहस्थीको करनी भी उचितहै जो उसकी यह रीति है कि जिस घरके दशपांच पुरुषोंमें मुखिया एक वड़ाबूढाहै कि उसको धनोपार्जनकी चिंतानहीं है वह घरबैठे-हुये चाहै तितनो अधिक नियम साधो जैसे त्रैकालिक संध्या एक दृष्टांतहै और जो युवान्हैं वे धन उपार्जनकरैं और बालक विद्योपार्जनकरैं और सबके सबछोटे बड़े उस मुखिया बड़ेबूढेकी आज्ञामें तत्पर रहिकर घरके पालन योग्यधन उसके आगे लाकर धरैं और वह बड़ाबूढा भी उनसबोंकी यथोचितरक्षा और पालनमें तत्पर बनारहकर अपने नियम और धर्मको साधै तो उस एकहीके पुण्य प्रभावसे सारे कुटुम्बको पुण्यफल पहुँचताहै और किसी भाँतिके कल्याणमें हानि नहींपड़तीहै जैसे वृक्षकी केवल एकमूलमें पानीभरदेने से सारे वृक्षकी चोटीताईं ठंढकपहुँचकर फल, फूल, शाखा, पत्रों आदिसे अमित संपन्नताहोतीहै-जो कदाचित् वृक्षकी जड़को छोड़

पल्लव सींचेजायँ तो उस वृक्षकी संपत्तिमें हानि पड़जाय-ऐसीही कुल वृक्षकी व्यवस्था है २५ ॥

ततोभिवादयेद्वृद्धानसावहमितिब्रुवन् २६ ॥

भक्ष०—तिसपीछे वड़ोंको यह कहताहुआ अभिवादनकरे कि यह अमुक नामा मैंहूं २६

भभि०—तिसपीछे अर्थात् सवेरे सांझ दोनों संध्याओंके पूर्वोक्त नित्यकर्मोंसे निपट पीछे जुदी जुदी दोनों वेलामें पिता, माता, गुरु आदि वड़ेबूढ़ोंके सन्मुख जाकर अभिवादनकरे अर्थात् यह कहताहुआ कि यह मैं फलानाहूं प्रणामकरताहूँ २६ ॥

भावि०—मैं फलानाहूं इस प्रकार नामसुनादेनेका यह हेतुहै कि अँधेराहो या ओट हो या उन वड़ेबूढ़ोंकी मंदद्दष्टिहो जिस्से वे अपनेको न चीन्हें और न चीन्हनेसे किसी और के धोखेमें या उनकी क्रोध प्रकृतिके कारणसे न जानिये उनके मुखसे क्या कुवाक्य निकलजावे तो अशीशके वदलेमें शापहोजावे-दूसरा यह हेतुहै कि वे वड़े बूढ़े जिसस्थानमें विद्यमानहैं एकांतमें जाने किसदशामें बैठेहैं या किस्से वातचीत कररहे हों जहाँ अपनेको पुकारे विना चलाजाना उचितनहीं है इस्से नाम कहदेने में वे उचितसमुझेंगे तो पास बुलावेंगे या वहींसे अशीशकहदेंगे या कुछ और उत्तरदेवेंगे २६ ॥

गुरुंचैवाप्युपासीतस्वाध्यायार्थंसमाहितः । आहूतश्चाप्यधीयीतलब्धंतस्मैनिवेदयेत् ॥ हितंतस्याचरेन्नित्यंमनोवाक्कायकर्मभिः २७ ॥

भक्ष०—फिर पढ़नेके लिये भी समाहितचित्त होकर गुरुके समीप जावे-और गुरुके मुखसे पुकाराहुआ संथालेवे पहला पढ़ाहुआ गुरुको सुनादेवे और मन वाणी कर्म से उस गुरुकी नित्यही भलाई आचरणकरे २७ ॥

भभि०—समाहितचित्त अर्थात् चंचलता छोड़दे-पुकाराहुआ अर्थात् गुरुपर आपही प्रेरणा न करे कि शीघ्र संथादेदो अलगवैठा अपना पाठकरतारहे संथाके लिये बुलानेपर पासजावे-और शुद्धवाणीवोले किंतु गुरुके सन्मुख जाकर गलेसे हिचकी नहीं लेनेलगै इत्यादि और भी शिष्टाचार अपनी बुद्धिसे जानो २७ ॥

कृतज्ञाद्रोहिमेधाविशुचिकल्पानसूयकाः । अध्याप्याधर्मतःसाधुशक्ताप्तज्ञानवित्तदाः २८ ॥

भक्ष०—कृतज्ञः अद्रोही मेधावी शुचिः कल्पः अनसूयकः साधुः शक्तः आप्तः ज्ञानदः वित्तदः-इतने लक्षणवाले जो शिष्यहों वह धर्मके अनुसार पढ़ाने योग्यहैं २८ ॥

भभि०—इन ग्यारह लक्षणोंका यह भावहै कि-कृतज्ञ जो कियेहुये उपकारको न भूले १ अद्रोही-दयावान् २ मेधावी बुद्धिमान् जो ग्रंथके समझने और यादरखने में समर्थहो ३ शुचि जो भीतरले चित्त और वाहरली क्रिया और आचरणों से शुद्धहो ४ कल्प उसे कहतेहैं जिसका शरीर आधि और व्याधिसे रहितहो ५ अनसूयक जो दोषके ढाँकने और गुणके प्रकटकरनेका स्वभाव रखताहो किंतु निंदक न हो ६ साधु

जो चाल चलनका अच्छाहो ७ शक्त जो शुश्रूषाकी शक्तिवालाहो ८ आप्त उसे कहतेहैं जो ठीक विश्वासका पात्रहो और विक्षिप्त न हो ९ ज्ञानद जो विद्यापाकर और को पढ़ावै किंतु विद्याको छिपावै नहीं १० वित्तद जो धनदेनेवालाहो ११ ये लक्षण जिनमें सब या आधे पर्द्ध भी हों ऐसे शिष्य तो अवश्यही धर्मके अनुसार पढ़ावने योग्यहैं किंतु विद्या सबहीको देनी उचितहै परइनको तो अवश्यहीदेना यह भावहै २८॥

दंडाजिनोपवीतानिमेखलांचैवधारयेत्। ब्राह्मणेषुचरेद्भैक्ष्यमनिंद्येष्वात्मवृत्तये २९॥

प्रक्ष०—दंड अजिन उपवीत मेखला इनकोधारणकरै और अनिंद्य ब्राह्मणोंमें अपनी वृत्तिकेलिये भिक्षाको आचरणकरै २९॥

मिभि०—दंड जोमनुस्मृति में तीनोंवर्णके ब्रह्मचारियों के लियेढाकेआदिकाष्ठ के जुदे२ कहेहैं-अजिनकहिये कृष्णमृगछाला आदि-उपवीत कहिये जनेऊ जो तीनोंवर्णका जुदा कपास आदिका कहाहै-मेखला जो मूँज आदिके बनायेहुये कहेहैं ये चीजें जातिलक्षण पहिंचाननेके चिह्नहैं तिनकोधारणकरै और शुद्धब्राह्मणोंके घर जाकर भिक्षा अपने आजीवनके लिये माँगै-ब्राह्मणके घरयह उपलक्षणमात्र है किंतु असंभवता में द्विजातीमात्र तीनोंवर्णकी भिक्षालेनी २९॥

भाषि०—यह ऊपरले कईश्लोकोंसे ब्रह्मचारीका प्रकरण वर्णनकररहेहैं सो यह ब्रह्मचर्य जनेऊहोने पीछे बालापन सेही धारण कियाजाता है और इसका अभिप्राय केवलविद्या संग्रहकरनाहै अर्थात् ब्रह्मचर्यके नियमोंसे शरीरकी रक्षा करताहुआ और संसारकी मर्यादें शिष्टाचारी आदि सीखताहुआ विद्या संग्रहकरै तब पीछे दशवां संस्कार जो विवाहहै तिसकेहोनेका अधिकार उसकोहोता है इसलिये यह ब्रह्मचर्य का प्रकरण वर्णनकिये पीछे विवाहका प्रकरण कहेंगे-और ब्रह्मचर्य की धारणामें जो भिक्षावृत्तिलिखीहै सोकेवल निर्वाहकी रीतिहै अर्थात् भिक्षाका मांगना यहबात कुछ धर्म संबंधी नहींहै कि भिक्षामांगे विनाधर्म पूरानहींहोता किंतु भिक्षाका मांगना परम निंदितहै-और जो कि यहबात कहतेहैं कि ब्राह्मणका कर्महै सोयहभी कहनाव्यर्थहै यहबात ऐसे मूर्ख कहतेहैं जिन्होंने शास्त्रनहींदेखा है क्योंकि शास्त्रमें ध्यान लगाकर देखोकि भिक्षा ब्रह्मचारीके लियेलिखीहै और ब्रह्मचारी ब्राह्मण,क्षत्रिय,वैश्य इनतीनों काही बालकहोताहै और तीनोंका भिक्षा मांगनेकी मर्यादें जुदी२ इस श्लोकमें और इससे नीचेके श्लोकमें विशेष प्रत्यक्षकरके कहाहै सोदेखो-जो यहकर्म ब्राह्मणकी जातिकाहोता तो तीनोंकेलिये क्योंलिखते-अर्थात् ब्रह्मचारी होनायह उपलक्षण केवल विद्यार्थीकाहै चाहेवह किसीवर्णका विद्यार्थीहो-सोउस विद्यार्थीकाभी भिक्षामांगना कुछधर्मकी गिनतीमें नहींहै कि भिक्षामांगे विना विद्यानहीं पढ़सक्ता अर्थात् यहबात ऋषियोंने केवल इसनिर्वाहके लिये लिखीथी कि पहलेसमय में विद्याके पढ़ानेवाले

थोड़ेथे- और दूरदेशों में जानेपर मिलसक्तेथे और विद्यार्थीलोग ,अनेक वर्षोंतक उनकेपास विदेशमें रहकर विद्या संग्रहकरतेथे और ऐसेमाता ,पिता धनवान् कुछ सबही नहीं होतेहैं ,कि उनकेलिये वर्षोंतक घरसे खर्च भेजाकरें और घरके,खर्च नमिलनेसे सहस्रोंलड़के विद्यापढ़नेसे रुकजाते केवलवेही ,लड़केथोडे वहुतपढ़ते कि जिनकोघरसे ,खर्चमिलसक्ता इसलिये धर्ममर्यादा के वक्ता मुनीश्वरोंने प्रजाका कल्याण विचारकर धर्मशास्त्रोंमें विद्यार्थीको भिक्षामांगनेकी मर्याद लिखदई क्योंकि लिखीहुई वातपरकोई निंदानहीं करसक्ता वरन उत्साह देसक्ताहै इसकारणसे विद्यार्थीलोग मांगनेकीलज्जाको छोड़कर द्रव्यके नहोनेपर भिक्षावृत्तिकी सहायतासे पढ़नानहीं छोड़ेंगे इसलिये भिक्षावृत्तिको उनकाधर्म निश्चितकिया कि विद्याकी बढ़वारी बनीरहे-सोई विद्यार्थीके लिये अवतकभी वह परिपाटी बनरहीहै और विद्यार्थीको देनेसे पुण्यभी बड़ाभारीहै किंतुऐसेविद्यार्थीकोदेना अधिकपुण्यहै किजिसविद्याकेपढ़ने से पीछेवह विद्यार्थी उसविद्याकेद्वारा सौपचासमनुष्योंका पालनकरसके चाहैकोईविद्याहो और विद्यार्थीकादेना कुछइसकानामनहींहै किवहलोटालेकर जवदरवाजे आगेआवे तवचुटकीभर आटादेदेना अर्थात् जैसीयोग्यताकाविद्यार्थीहो या जैसीयोग्यता अपनी होतैसादेना औरवर्त्तमान समयकीरीतिके अनुसारदेनेमेंधर्म और पुण्यभी अपरिमित होताहै अर्थात् चुटकीआदिका। देनायेपहले समयकीरीतैंथीं अवइसकालमें विद्यार्थी भीऐसे २ प्रतिष्ठितहैं किवे मांगनहींसक्ते परंतुजोदेनेवाले हैं वे विनामांगेही सैकड़ों और हजारोंरुपया विद्याकेउपकारमेंदेते हैं किंतुदेनाकुछयहीनहीं है किउसकेहाथमेंही देवैतव देनाकहावे अर्थात् देनेकेअनेकप्रकारहैं किंतुचाहैं विद्यार्थियोंको प्रसादकीरीतिसेदेवै यामासिककीरीतिसेदेवै यापुस्तक और विद्याकेस्थान आदिकीरचनामें लगावे या पढ़ानेवालोंकी पालनाकरै अर्थात् कोईतरहका उपकारजोविद्यासे संबंधरखताहो वह विद्यार्थीकी भिक्षाकहलाती है-इससमय मे विद्यार्थियोंके भिक्षासंबंधी उपकारों में जैसाकुछ उद्योग और द्रव्यका उठाना धर्मज्ञ सरकार अंगरेजी गवर्नमेंट और उसके शुभचिंतकलोग करतेहैं सोयह सनातनधर्मकी परमअवधिहै-परंतु शास्त्रोंके सिद्धांतमें यहकहींनहींपायाजाता कि विद्यापढ़ने पीछेभीगृहस्थीधर्म धारणकरके भिक्षामांगे २९

आदिमध्यावसानेषुभवच्छब्दोपलक्षिता। ब्राह्मणक्षत्रियविशांभैक्ष्यचर्यायथाक्रमम् ३०॥

मक्ष०— आदि में मध्यमें अंतमें (भवत्) शब्द से उपलक्षित करीहुई भैक्ष्यचर्या यथाक्रमसे ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यकीहोती है ३०॥

अभि०—यथाक्रमका यहअभिप्राय है कि जो ब्राह्मणकापुत्र ब्रह्मचारीहो और वह किसीकेघर भिक्षामांगनेजायतो (भवत्) शब्दकोआदिमेंहीलगावे अर्थात् इसप्रकारसे कहैकि(भवतिभिक्षांदेहि)इस(भवत्)शब्दको आदिमें जोड़नेसेसुननेवालीने झटसमुझ

लिया कि यहकोईब्राह्मणका बालक है-ऐसेही जो क्षत्रियकापुत्र ब्रह्मचारीहोतो मध्यमें लगावै-जैसे (भिक्षांभवतिदेहि) इसआवाजकेसुननेसे जानागया यहकोईक्षत्रियका बालक है-ऐसेही वैश्यकापुत्र ब्रह्मचारीहोतो अंतमेलगावे-जैसे (भिक्षांदेहिभवति) इस्सेसुनने वालीस्त्रीने झट पहिंचाना कि यहकोई वैश्यका बालकहै ३० ॥

भवि०—२९ के श्लोकमें जोदंड अजिन उपवीत मेखला जुदेजुदेसबके जतलायेथे वे तौआँखोंसे देखकर जातिपहिचाननेके चिह्नथे और इसश्लोकमें जो भवत्शब्द काभेदहै सोआँखोंसे बिनादेखेभी आवाजहीसुनिकर वर्णजातिका पहिंचाननाहै ३० ॥

कृताग्निकार्योभुंजीतवाग्यतोगुर्वनुज्ञया। अपोशनक्रियापूर्वंसत्कृत्यान्नमकुत्सयन् ३१ ॥

मक्ष०—अग्निकार्य कियाहुआ ब्रह्मचारी वाणीको रोकेहुये गुरुकीअनुज्ञासे अपोशन क्रियापूर्वक अन्नका सत्कारकरके उसकीनिन्दा नहींकरताहुआ भोजनकरै ३१ ॥

भभि०—पूर्वोक्तविधिसे भिक्षालाकर उसेगुरुको दिखलाकर और आज्ञापानेपर अग्निकार्य्य करचुकाहो ऐसा ब्रह्मचारी अन्नकी अपोशनक्रिया अर्थात् (अमृतोपस्तरणमसि) इत्यादि वेदऋचासे अन्नको सत्कार पूजादेकर उसकी निंदाको न करताहुआ भोजन करै ३१ ॥

भधि०—गुरुको दिखलाना-कदाचित् गुरुकहींगयाहोतो गुरुकीस्त्री या पुत्रआदिजो घरमें मुख्यहो उसेदिखलाकर और आज्ञालेकरभोजनकरै ३१ ॥

ब्रह्मचर्येस्थितोनैकमन्नमद्यादनापदि। ब्राह्मणःकाममश्नीयाच्छ्राद्धेव्रतमपीडयन् ३२ ॥

मक्ष०—ब्रह्मचर्यमें स्थितब्रह्मचारीविना आपत्कालके एकअन्नको न भोजनकरै-ब्राह्मणचाहै श्राद्धमें व्रतकोपीडा नहींदेताहुआ भोजनकरै ३२ ॥

भभि०—अर्थात् किसीएकअन्न इकल्लेकाभोजन न करै जैसे केवल चाँवलरांधखाये उनकेसाथको दालऔरघी मीठाकुछनहींहै—या चर्बण चाबलिया इसकायह अभिप्राय है कि इसप्रकारसे ब्रह्मचर्यकी साधनामें भंगहोजाताहै क्योंकि वैद्यकशास्त्रकेमतसे यह विरुद्धभोजन कहलाताहै अर्थात् इसदशामें रोगउत्पन्नहोजाताहै फिरउसमें ब्रह्मचर्य नहींबनसकता परन्तु जोकोई विपत्तिकाल आनिपडैतो उसमें लाचारी है एकअन्नसे भी निर्वाहकरले-और जो ब्रह्मचारी ब्राह्मणहो इसकारणसे उसेकोई श्राद्धमें जिमावै इसप्रतिज्ञासे कि मैं केवल मिठाईही या दूधही या सहतही अपनेपितरोंकी तृप्तिहेतु जिमानाचाहताहूं और वहब्राह्मण ब्रह्मचारी अपनीप्रसन्नतासे एकहीअन्नजीमि आवैतो कुछचितानहीं परन्तु अपनेव्रतको पीडानहींदेवै अर्थात् कोईऐसा अन्ननहो जो ब्रह्मचारीको खानाउचित नहींहै-यहां अन्नशब्दकाअर्थ घृत,गुड, मांस आदि जोकुछ खानेकी वस्तुहोतीहै उनसबका बाचकहै ३२ ॥

मधुमांसांजनोच्छिष्टशुक्तस्त्रीप्राणिहिंसनम्। भास्करालोकनाश्लीलपरिवादादिवर्जयेत् ३३ ॥

भक्ष०—मधुमांस, अंजन, उच्छिष्ट, शुक्त, स्त्री, प्राणिहिंसा, भास्करालोकन, अश्लीलपरिवाद आदि औरभी यहसब वर्जितकरै ३३ ॥

अभि०—मधुकहियेमदिरा और सहतभी-मांस-अंजन अर्थात् कज्जलआदिसे आँखों और तैल सुगन्धआदिसे गात्रकालेप-उच्छिष्ट कहिये जूठागुरुके सिवाय-शुक्तकहिये निठुरवचनऔर माड़आदिअन्नकेमैलकारसभी-स्त्रीकाभोग-प्राणिहिंसाकिंतुकिसीजीव कामारना-भास्करालोकन अर्थात्सूर्यकोउदयहोते और अस्तहोतेहुयेदेखना-अश्लीलकहिये असत्यबोलना परिवादकहिये परायेगुण अवगुणकाव्याख्यान और आदि शब्दसेयहबातेंभी लेनीकिजो इसमेंनहींकही अन्य स्मृतियों में हास्यगंधमाल्य आदि वर्जित हैं इनसबका परित्याग रक्खे यह ब्रह्मचर्यके नियमहैं ३३ ॥

सगुरुर्यःक्रियाःकृत्वावेदमस्मैप्रयच्छति । उपनीयददद्वेदमाचार्यःसउदाहृतः ३४ ॥

भक्ष०—जोगर्भाधानसे आदिलेकर जनेऊतांईकी सबक्रियायेंकरके इसब्रह्मचारीको वेदपढ़ाताहै सोगुरु है और जो केवल जनेऊमात्र कराकरवेदपढ़ाता है सो आचार्य कहलाताहै ३४ ॥

एकदेशमुपाध्यायऋत्विग्यज्ञकृदुच्यते । एतेमान्यायथापूर्वमेभ्योमातागरीयसी ३५ ॥

भक्ष०—वेदकाएकदेशकहिये एकविभागजोपढ़ाता है सोउपाध्यायकहाता है- जो यज्ञादिकर्मकराताहै वहऋत्विककहलाताहै यहचारोंजो३४।३५ के श्लोकमें कहेगये सोयथापूर्व मान्यहोते हैं अर्थात् चौथे से तीसराअधिक-तीसरे से दूसराअधिक-दूसरेसे पहलासबसेबड़ाहै- और माताइनचारोंसेही अधिकपूज्यहोतीहै ३५ ॥

अबनीचेब्रह्मचर्य्यधनाराखनेकीअवधिकहतेहैं ॥

प्रतिवेदंब्रह्मचर्यंद्वादशाब्दानिपंचवा । ग्रहणान्तिकमित्येकेकेशान्तश्चैवषोडशे ३६ ॥

भक्ष०—वेदप्रतिबारह या पांचवर्षं ब्रह्मचर्यराखे-एकयहकहतेहैं कि ग्रहणकरसकने के अन्ततांईराखे-औरकेशान्तसोलहवेंवर्षमेंकरे ३६ ॥

अभि०—वेदप्रति अर्थात् एक २ वेदकेपढ़नेमेंबारह २ वर्ष अथवा जोइतनीसामर्थ्य नहो तो पांच २ वर्ष ब्रह्मचर्यसाधे- अर्थात् जो एकहीवेदपढ़े तो बारहअथवा पांच-औरजोदोवेदपढ़ेतो २४ अथवा १०जोतीनोंवेदपढेतो ३६ अथवा १५ वर्षब्रह्मचर्य साधे-और कोई मुनीश्वर यह कहतेहैं कि बारह और पांचका नियम नहींहै ग्रहणान्तिक अर्थात् जबतक वेदकाग्रहण करसके तभीतक ब्रह्मचर्य राखे-और केशांतकर्म जिसकानाम गोदानकर्म भी कहतेहैं-गोदान कहनेका यहअर्थहै कि गो संज्ञावालोंकी भीहै.तिनकादान किंतु कटवाना सोई केशांतका अर्थहै कि केशजोबालहैं तिनका अंतहोना-सो इसकर्मको गर्भसे लेकर सोलहवें वर्षमें करेयह अवधिब्राह्मण ब्रह्मचारीकीहै क्योंकि आठवेंवर्ष में जनेऊभया उससेदूनी वर्षोंमें केशांतहुआ यह केशांत

कर्म ब्रह्मचर्यके बीचहीमें संभवितहै क्योंकि उसकी अवधिबहुत कहचुके इसकी थोडीहै-ऐसेही क्षत्री और वैश्य ब्रह्मचारीकी अवधि अपने २ उपनयन से दूनीजानो-सोई मनुजीने स्पष्टकरके कहदियाहै कि(केशांतःषोडशेवर्षेब्राह्मणस्यविधीयते। राजन्यबंधोर्द्वाविंशेवैश्यस्यद्व्याधिकेततः) अर्थात् ब्राह्मणका केशांत सोलहवेंवर्षमें करिये है राजन्यबंधु का बाईसवेंमें वैश्यका चौबीसवेंमें ३६ ॥

आषोडशाद्दाद्वाविंशाच्चतुर्विंशाच्चवत्सरात्। ब्रह्मक्षत्रविशांकालऔपनायनिक.परः ३७॥

अक्ष०—ब्राह्मण,क्षत्रिय,वैश्य इन्होंके उपनयन सम्बन्धीकालकी परमअवधिसोलह बाईस चौबीस वर्षोंसे पहले रहै ३७॥

अभि०—अर्थात् आठ और ग्यारह और बारहकी अवधिजो उपनयनकी कहचुके हैं वह परमउत्तम है परन्तु जब किसीकारणसे उस अवधि पर न होसका तो केशांत कीकहीहुई अवधिके भीतरभीतर मध्यमकाल और भीहै तिसमेंहोना चाहिये अर्थात् इससे आगे नहीं ३७॥

अतऊर्द्ध्वंपततेतेसर्वधर्मबहिष्कृताः। सावित्रीपतिताव्रात्याव्रात्यस्तोमादृतेक्रतो. ३८॥

अक्ष०—इससे उपरांत येतीनों व्रात्यस्तोमक्रतुके बिना पतित होजाते हैं सब धर्म्मों से बाहर गिनेजातेहैं सावित्रीसेभी पतित और व्रात्यकहलातेहैं ३८॥

अभि०—किंतु ऊपरकहाहुआ उपनयनका मध्यमकालभी जबउल्लंघजाताहै तब ये तीनों द्विजाती पतितहोतेहैं और सर्वधर्मोंसे बाहर अर्थात्किसीधर्म्म संबंधीकर्मके अधिकारी नही रहते और सावित्रीसेपतित अर्थात् गायत्रीकी मंत्रदीक्षा देनेयोग्य नहीं रहते और व्रात्यकहिये संस्कारहीन गिनेजाते हैं किन्तु केशांतकी अवधि पीछे उपनयनकरने परभी असंस्कृतदोष लगताहै-परन्तु व्रात्यस्तोमक्रतुके बिना-अर्थात् लाचारीअवस्थामें जो केशांत अवधिकेपीछेही उपनयनकरनापड़े तौव्रात्यस्तोमनामयज्ञ करके फिरउपनयन करैतो धर्मकर्मोंके अधिकारी बनेरहतेहैं ३८॥

अबनीचेद्विजाती शब्दका अर्थ कहतेहैं ॥

मातुर्यदग्रेजायंतेद्वितीयंमौंजिबंधनात्। ब्राह्मणक्षत्रियविशस्तस्मादेतेद्विजास्स्मृता. ३९॥

अक्ष०—जिसकारण ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य येतीनों पहले तो मातासेजन्मलेतेहैं फिर दूसरा जन्म उनका मौंजीबंधनकर्म से कहाता है इसलिये ये तीनों द्विज अर्थात् द्विजन्मा कहलातेहैं क्योंकि इनका जन्म दोबार भया ३९॥

यज्ञानांतपसांचैवशुभानांचैवकर्मणाम्। वेदएवद्विजातीनांनिश्श्रेयसकर.परः ४०॥

अक्ष०—द्विजातियोंको यज्ञोंका औरतपोंका और शुभकर्मों काभी परम कल्याणकरनेवालावेदही है ४०॥

अभि०—श्रौतकहिये वेदोक्त और स्मार्त्त कहिये धर्मशास्त्रोक्त ये दो प्रकारके यज्ञ

होतेहैं तिनका और तपजो चांद्रायणआदिशरीरसे कियेजातेहैं और शुभकर्मजो उपनयनआदि संस्कार होतेहैं इन सबका परम कल्याणकारी द्विजातियोंकेलिये निस्संदेह वेदहै- वेदके उपलक्षणसे धर्मशास्त्रभी समुझना क्योंकि धर्मशास्त्रकी मूलवेदहै और श्रुतिस्मृतिका स्वाभाविक जोड़ा मनुसंहितामें कहाहै इसहिंतुसे इस ४० के श्लोक में श्रौत और स्मार्त्त दोनोंभांतिके यज्ञोंका बहुवचनहै इसलिये द्विजातियोंको श्रुति और स्मृतिकहिये धर्मशास्त्र ये दोनों अवश्यपढ़ने चाहिये क्योंकि पूर्वोक्त सब यज्ञादिक इन्हींदोनोंसे जानेजातेहैं ४० ॥

सोईनीचे उसकापाठकरनेका माहात्म्य और फल आठ श्लोकोंसे कहते हैं ॥

मधुनापयसाचैवसदेवांस्तर्पयेद्द्विजः। पितॄन्मधुघृताभ्यांचऋचोऽधीतेचयोऽन्वहम् ४१ ॥

भक्ष०–जो द्विजाती ब्रह्मचारी या गृहस्थी होकर प्रतिदिन ऋग्वेदोंका पाठकरै तो वह देवताओंको सहत और दूधसे तृप्तकरै-और पितरोंको भी सहत और घृतसेतृप्त करै-अर्थात् केवल पाठमात्रके करनेसेही यह फल मिले जो सहतदूध-या सहत घृत से संतृप्तकरनेवालेको मिलता है ४१ ॥

यजूंषिशक्तितोऽधीतेयोऽन्वहंसघृतामृतैः। प्रीणातिदेवानाज्येनमधुनाचपितॄंस्तथा ४२ ॥

भक्ष०–जो कोई यजुर्वेदोंका पाठ शक्तिके अनुरूप प्रतिदिन करताहै वहघृत और अमृतोंसे किंतु अतिस्वादुवाली वस्तुओंसे देवताओंको-और तैसेही पितरोंको भी सहत और अतिस्वादुवस्तुओं से प्रसन्नकरै ४२ ॥

सतुसोमघृतैर्देवांस्तर्पयेद्योऽन्वहंपठेत्। सामानितृप्तिंकुर्याच्चपितॄणांमधुसर्पिषा ४३ ॥

भक्ष०–जो कोई सामवेदोंका दिनप्रति पाठकरै सोभी अमृत और घृतोंसे देवताओंको संतर्पितकरै- और पितरोंकी भी तृप्ति सहत और घृतसे करै ४३ ॥

मभि०–ऊपरलेतीन श्लोकोंमें जो वेदका बहुवचन अर्थात् ऋग्वेदों यजुर्वेदों सामवेदों ऐसा लिखाहै उसका यह अभिप्राय है कि वेद एकहै परंतु रोजरोज समस्तका पाठ होसकना असंभवहै इसलिये उसके अंगभेदोंका बहुवचन कहाहै ४३ ॥

मेदसातर्पयेद्देवानथर्वाङ्गिरसःपठन्। पितॄंश्चमधुसर्पिभ्यामन्वहंशक्तितोद्विजः ४४ ॥

भक्ष०–द्विजाती दिनप्रति अपनी शक्तिके समान अथर्वांगिरसका पाठकरता हुआ देवताओंको मेदासे और पितरोंको सहत घीसे संतर्पितकरताहै ४४ ॥

मभि०–अपनी शक्तिके अनुसार यह ऊपरले चारों श्लोकमें समुझना अर्थात् जितना पाठ मनुष्य से होसके अपने छुटकारे के अवकाश में और मेदा जो मनुष्य या अन्यबड़े जीवों के मांस और हड्डी इनदोनों के विचारे में घृतके तुल्य तद्रूप एक प्रकारकी धातुहोती है और शरीरकी सातधातुओंमेंसे चौथी धातु कहाती है जिसको वसा भी कहते हैं-और अभक्ष्यकी शङ्का नहीं करनी क्योंकि प्रथम तो समर्थकोदोष

नहीं यहवाक्य मनुष्यपरभी संभवितहै फिर देवतातो अग्निमुखहैं-अन्यथा(जीवो जीवस्यभोजनमिति) श्रीमद्भागवतेपि (अहस्ताश्चसहस्तानामित्याद्यपितत्रैव) अर्थात् जो मांसग्राह्यहै तो वसाभीग्राह्यहै और जहां मांसत्याज्य है तहाँ वसाकाभी त्यागहै (किञ्च वारुण्यादिभिरिंद्रादिदेवाभोगिनःप्रसिद्धाः) ४४ ॥

वाकोवाक्यंपुराणंचनाराशंसीश्चगाथिकाः। इतिहासांस्तथाविद्याःशक्त्याधीतेहियोऽन्वहम्॥४५॥
मांसक्षीरौदनमधुतर्पणंसदिवौकसाम्। करोतितृप्तिंकुर्याच्चपितॄणांमधुसर्पिषा ४६ ॥

भक्ष०—वाकोवाक्य १ पुराण २ नाराशंसी ३ गाथिक४ इतिहास ५ तैसेही विद्याओं को जो कोईप्रतिदिन शक्तिअनुसारपढ़ताहै ४५ वहमनुष्यमानो-मांस,दूध,भात, सहत इनसे देवताओंकीतृप्तिकरताहै-और पितरोंकीभीतृप्ति सहतघीसेकरै है ४६ ॥

अभि०—वाकोवाक्यनामकहिये स्मृतिआदि धर्मशास्त्र १ और पुराण जिनमेंपुराने वृत्तांत होतेहैं २ नाराशंसीसे रुद्रदैवतमंत्र-और गाथिक शब्दसे इंद्रगाथा यज्ञगाथा आदि टीकाकारोंने कल्पितकियेहैं परन्तु रुद्रदैवत्य और इंद्रगाथाआदि ये सबवेदकेही अंशांशहैं और वेदोंकोपहलेही कहचुके तो दूसरीबारकहना असंभवितहै क्योंकि वहपाठकरनेका प्रकारक्रमसे नीचेकोउतरताचलाआताहै इसलिये याज्ञवल्क्यमुनिका कथनसंसारपक्षमें घटता निश्चितहोताहै-इसकारण से नाराशंसी शब्दका अर्थनर सम्बन्धी आशंसाकहिये स्तुति अर्थात् जिनग्रंथोंमें राजाआदिसत्पुरुषोंके आचरण वृत्तांतलिखे होतेहैं उनकापाठ किंतुविचारना क्योंकि वेभी ईश्वरकीविभूति गीतामें कहेहैं उनके आचरणवृत्तांतोंके विचारनेसेमनुष्यकी बुद्धिशुद्धहोजाती है और वैसेही आचरणकरनेका उत्साहबढ़ानेमें निपुण होजाताहै ३ चौथेगाथिकशब्दसे गानविद्या का अभ्यास क्योंकि यहगांधर्वीविद्याभी ईश्वरकी विभूतिभागवतमें निश्चितहै ४ इतिहासमहाभारत आदि प्रसिद्धहैं ५ तैसेही विद्याशब्द से चौदह विद्यायेंजो जलविद्या आदि प्रसिद्धहैं ६-इनसारीचीजोंमेंसे जिसकिसी वस्तुको अपनीशक्तिके समान जो कोई प्रतिदिनपढ़ता और विचारताहै४५ वहछिआलीस४६के श्लोकमें कहेहुयेफल का भागीबनताहै ४६ ॥

तेतृप्तास्तर्पयंत्येनंसर्वकामफलैःशुभैः। यंयंक्रतुमधीतेऽसौतस्यतस्याप्नुयात्फलम् ४७ ॥

भक्ष०—वेपूर्वोक्त देवता और पितरभी संतर्पितहुयेभये इसपाठकर्त्ताको सारे शुभ कामोंसे तृप्तकरतेहैं-जिस२ यज्ञका पाठयहकरताहै उसी उसकाफलपाताहै-अर्थात्वेद मेंसे जिसयज्ञकी विधिकापाठ करै तो उसीयज्ञके करनेभरेका पूराफल पावै ४७ ॥

अभि०—सर्व शुभकामोंसे तृप्तकरनेका यह अभिप्रायहै कि जिन २ शुभकामों की विधिका विचारवेदमेंसे अथवा पूर्वोक्त किसीशास्त्रमेंसे नित्यकरतारहेगा तो अवश्यही नित्यकेआराधन प्रभावसेकोईशुभकाम उससे बनिआवैगा-शुभकाम अर्थात्अपने

यासंसारकेकल्याणकाकरनेवाला अच्छाकाम जिस्सेमनुष्यकी सुकीर्त्तिबढ़तीहै-सोईपि-छले अद्धामें प्रत्यक्षकहदियाहै कि जिस २ क्रतुकापाठ किंतु आराधना करेगा उसी का फलपावेगा-यहां क्रतुशब्दका अर्थकेवलयज्ञहीनहींहैकिंतु क्रतुकामनाको मनकेसं कल्पको और काम या कार्यकोभीकहतेहैं तौयहांक्रतुकेअर्थसे वहसभीकामअपेक्षितहैं जोवेदके सिवाय और सबशास्त्रया विद्याओंके ग्रंथोंमें उनकामोंके प्रकारलिखे होते हैं इसीलिये याज्ञवल्क्यजीने वेदकोआदिलेकर संसारके सभीशास्त्र और सभीविद्याओं का बिचार करनेमें उत्साह देकर पीछेसे यह कहाहै कि जिस २ क्रतुका आराधनकरे-गा उसीउसका फलपावेगा-सोई इसबातको जो कोई समुझाचाहोवह ४१ से लेकर ४८ केश्लोकोंताई आठश्लोकोंको देखलो ४७॥

त्रिर्वित्तपूर्णपृथिवीदानस्यफलमश्नुते। तपसोयत्परस्येहनित्यंस्वाध्यायवान्द्विजः ४८॥

भक्ष०—नित्यस्वाध्यायवान् द्विजातीधनसे भरीहुई पृथिवीको तीनबार दानकरनेका फल और परमतपस्याकरनेकाभी फल इसीसंसारमें भोगताहै ४८॥

अभि०—किंतुदान वा तपकरनेबिनाही उतनाफल पाताहै यहनित्यस्वाध्यायकरने का उत्साहबढानेकी प्रोत्साहताहै-यहांस्वाध्यायका अर्थकेवल वेदहीका नहीहै अर्थात् स्वकहिये अपनाअध्याय किंतु अपनापाठजो द्विजातीकी तीनोंजातोंका पढ़नाअपनी अपनीजाति वा कर्म या पेशाकेअनुरूप उचितहो-अर्थात् जोपूर्वोक्तवेद आदिपाठोंके करनेमें समर्थनहोतो केवलअपनीजाति या कर्मजीविका संबंधीपाठको अवश्यकरके नित्यकरताहैतो वहभी दानतपके तुल्यफल भागीहोताहै ४८॥

अधि०—विदितहोवेकि १४ केश्लोकसे लेकरयहांताई यहसबप्रकरण ब्रह्मचारीके धर्मोंमध्येकहाहै और ब्रह्मचारीका उपलक्षण केवलविद्यार्थीमें घटताहै क्योंकि यहब्रह्म चर्यकेवल विद्याग्रहणकरनेताई होताहै फिरपीछे विवाहकरके गृहस्थीहोना कहाहैइस कारणसे यहपूर्वोक्त लक्षणतोसामान्य ब्रह्मचारीके जानो-और दूसराब्रह्मचर्य वहकह-लाताहै कि जोकोई विवाहकरके गृहस्थीनहींबने अर्थात् इसीब्रह्मचर्यको निरंतर अ-पनीजीवन अवधि ताईं बनारक्खे सोवह नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहलाताहैउसकी मर्यादें नीचेके श्लोकमें कहतेहैं ४८॥

नैष्ठिकोब्रह्मचारीतुवसेदाचार्यसन्निधौ। तदभावेऽस्यतनयेपत्न्यांवैश्वानरेपिवा ४९॥

भक्ष०—नैष्ठिक ब्रह्मचारीतो आचार्यकेसमीप वासकरे उसके न होनेमें उसकेपुत्रके समीप या पत्नीके समीप अथवा अग्निके समीप ४९॥

अभि०—किंतु पूर्वोक्तरीतोंब्रह्मचर्यको साधताहुआ विद्यापढ़ेपीछे जो विवाहकर-ना नहींचाहे नैष्ठिकहोनाचाहे तोवहअपने आचार्यहीकेनिकट वासकरताहै आचार्य

के अभावमें उसकेपुत्रके निकट औरपुत्रकेभी अभावमें गुरुपत्नीकेनिकट औरगुरुपत्नी केभी न होनेमें अग्निका सेवनकरै ४९ ॥

अनेनविधिनादेहंसाधयन्विजितेंद्रियः । ब्रह्मलोकमवाप्नोतिनचेहजायतेपुनः ५० ॥

भक्ष०—इसकहीहुई विधिसे वह नैष्ठिक ब्रह्मचारी इंद्रियोंकोजीतेहुये और देहको साधताहुआ जोआचार्यआदिके समीप बसकर जीवनअवधिके कालकोवितातोहै सो वह ब्रह्मलोकको पावताहै और फेर कदाचित्भी यहांजन्म नहींपाताहै ५० ॥

व्यक्तिः०—अब इसकलियुगसंबंधीसमयमें ब्रह्मचर्यकीमर्यादा भस्माग्निवत् होगई है किन्तुजैसेराखमें अग्निदबीरहतीहै इसप्रकार केवलग्रंथोंमें दबीपड़ीहै अर्थात्दोनों प्रकारोंमेसे एकप्रकारकाभी ब्रह्मचर्य अब कोईनहीं करसक्ता केवलनाममात्र शेषहै परंतु पूर्वोक्त ब्रह्मचर्यका अनुकल्पमात्र केवल एकदोघटिकामेंही जनेऊ के दिवस करलेतेहैं कि जिसकी अवधि १२ और २४ और ३६ अथवा ५ और १० और १५ वर्षोंकीकहीहै-किंतु जो यथार्थदृष्टिसे विचारकरके देखोतो हमारीबुद्धिसे यही निश्चितहोताहै कि ३६ के श्लोक में जिनएकप्रकारके ऋषियोंने ब्रह्मचर्यकी अवधि को विद्याकेग्रहणांतिकसमयतक निश्चितकिया है वे लोगबड़े दूरदर्शीथे (इति ब्रह्मचारिप्रकरणम्) अब आगेविवाहका प्रकरण वर्णनकरते हैं ॥ वहविवाह दशवां संस्कार कहलाता है ॥

गुरवेतुवरंदत्त्वास्नायीततदनुज्ञया । वेदव्रतानिवापारंनीत्वाह्युभयमेववा ५१ ॥

भक्ष०—वेदको या व्रतोंको वा दोनोंको पारपाकर पुनि गुरुको वरदेकर उसकी आज्ञासेस्नानभी करै ५१ ॥

भभि०—जोकोई ४९ । ५० इनदोऊलोकोंकी मर्यादाअनुसार(नैष्ठिक)होनानहींचाहे किंतुब्रह्मचर्यका विसर्जन करिके विवाहकरनेकी इच्छाकरैतो पूर्वोक्त रीतोसे वेदको पढ़ कर या ब्रह्मचारीके नियमोंकोही पारउतरकर या दोनोंमें सिद्धार्थहोकर अपने गुरुको वरकहिये निजइच्छाके अनुसार कुछधनदेकर और उसकी आज्ञालेकर स्नान अर्थात् ब्रह्मचर्यके विसर्ज्जनका जो स्नान कहलाताहै उसकोविधि सहितकरै ५१ ॥

अधि०—वेदको या नियमोंको या दोनोंको यह कहनेसे प्रकट होताहै कि जिस्से नियम नहीं साधेजायँ वह केवल वेदहीको पढ़े या जिसकी बुद्धि और समुझ मंदहोने से वेदपढ़नेमें सिद्धार्थ न होसक्तीहो वह केवल नियमोंकाही साधनकरै अथवा उच्चप्रारब्धीहो वह दोनों बातमें सिद्धार्थता पैदाकिये पीछे गुरुके परिश्रम और साफल्य सम्बन्धी दक्षिणादे और स्नानकीआज्ञामांगे-और जिसे दक्षिणा देनेकी सामर्थ्यनहीं हो वह विना दियेभी उसकी आज्ञालेकर स्नानकरै और पीछे जबकभी अपने को शक्तिहो तब उद्धार करदे-और वेद शब्दसे केवल वेदहीका पढ़ना सम्भवित नहीं है

अर्थात् वेदके संज्ञोपलक्षणमात्र से सारी विद्याओंका पढ़ना संभवित है किंतु संसार की कोईसी विद्यापढ़े वह वेदही कहलाताहै क्योंकि वेदसंज्ञा ज्ञानमात्रकी होती है किंतु जिसकिसी विद्यासे कुछ जानाजाय वही वेदहै ५१ ॥

अविप्लुतब्रह्मचर्योलक्षण्यांस्त्रियमुद्वहेत् । अनन्यपूर्विकांकांतामसपिंडांयवीयसीम् ५२॥

अक्ष०–अविप्लुत ब्रह्मचारी लक्षणी स्त्रीको विवाहै अनन्य पूर्विकाको कांताको असपिंडाको यवीयसीको ५२ ॥

अभि०–ब्रह्मचर्यका मुख्यअर्थांश केवल वीर्यकी रक्षामात्रमेंघटताहै इसलिये अविप्लुत कहिये अस्खलित ब्रह्मचर्य अर्थात् जिसने अपनेवीर्यका विध्वंसनहोने दियाहो ऐसाब्रह्मचारी स्नानकेपश्चात्ऐसीस्त्रीकोविवाहै जो लक्षणवालीहो तहाँलक्षणभी दोप्रकार केहोतेहैं किंतु एकतो बाहरले दूसरेभीतरले तिनमेंबाहरलेजो मनुसंहितामें कहेहैं कि स्त्रीकेरोमाकेश दाँतआदिसूक्ष्महों किंतुमोटेवालमोटेलोम वड़ेदाँतनहों-और भीतरले लक्षणोंकी परीक्षा यद्यपि आश्वलायनजीनेकही है परंतु उसका लिखना अव समयके अनुरूपकुछ आवश्यक नहींहै क्योंकि वे मर्यादें अवनष्टाग्निवत् होगईहैं-पुनि अनन्यपूर्विकाहो अर्थात् सगाई आदि दानकरनेसे या उपभोगसे किसीदूसरे पुरुषके परिग्रह वाली नहोचुकीहो॥ और कांताकहिये कमनीयाहो जो विवाहनेवालेके मन औरनेत्रोंको कामनाके अनुसार आनंद देनेवाली ऐसीसुंदरहो क्योंकि आपस्तम्ब ऋषिनेभी निज शास्त्र में कहाहै कि जिस विवाहिता स्त्रीमें पतिकामन और नेत्र विंधरहतेहैंउसमें ऋद्धि सिद्धिभी भरीरहती हैं-असपिंडा कहिये अपनी सपिंडा न हो सपिंडा और असपिंडाका विस्तारार्थनीचे अधिकोक्तिमें देखो-यवीयसी कहिये-छोटीसी अर्थात्अपनेसे अवस्था और डील डोलमें भी थोडीहो-और स्त्री हो अर्थात् नपुंसकी नहीं क्योंकि नपुंसक पुरुष जैसेहोताहै तैसेही विरली स्त्री भी नपुंसकी होतीहै सो नहो इसलिये पहलेसेही किसीयुक्तिसे भेद लेलेवे ५२ ॥

अधि०–यहाँपर सपिंडताका स्वरूप वर्णनकरतेहैं कि क्या वस्तुहै और कैसे जानी जाती इसलिये कि इसका आगे भी बहुधा काम आवेगा-तहाँ पिंडकहतेहैं गात्र अर्थात् देहको और पिंड शब्दसे पहले जो (स) लगिरहाहै सो वह सकार एकताको प्रतीतकरताहै अर्थात् सपिंडकहिये एकहीसा शरीर जिनकाहो उन्हें सपिंड या सापिंड्यकहतेहैं (दृष्टांत) जैसे पुत्रकी सापिंडता पिताके साथ क्योंकि पुत्र भी पिताकेही देहमेंसे निकलाहै इस्से इनदोनोंका देह एकहीसा जानो कुछ अन्तर नहीं-ऐसेहीपिताके शरीरकी सपिंडता कहिये एकता उसके पितासे मिलरही है तो इस हेतुसे पोता की सपिंडता दादेसेभी निश्चित हुई ऐसेही परदादासे भी इसीप्रकार सहस्रों पीढ़ी ताईं ऊपर और नीचेकोभी सपिंडता हुआ करती है-परन्तु विवाहादि व्यवहारोंके

वर्त्तावामें केवल सातही पीढ़ी ताईं मानीजाती है और सातपीढ़ीके उपरान्त उसी कुलके मनुष्य केवल गोत्री कहलाते हैं क्योंकि सपिंडता तो निवृत्त होगई परन्तु गोत्रवही बनारहैगा- ऐसेही उस पुत्रकी सपिंडता मातासेभी होती है क्योंकि माताकेभी उदरमेंसे जन्माहै और माताकी सपिंडता उसके नानासे होतीहै क्योंकि वहभी अपने पिताके शरीरमेंसे निकलीहै तो इस हेतुसे धेवताकी सपिंडता नानासेभी निश्चितहुई इसीप्रकार परनाना आदिसेभी ऊपर और नीचेकोभी माता पक्षकी सपिंडता कहलाती है परन्तु विवाहादि व्यवहारोंके वर्त्तावामें केवल पांचही शाखतक मानीजातीहै पाँचके पीछेवेभी नानाके गोत्री या माता कुलके गोत्रीकहलाते हैं सोयह पाँचपीढ़ी माताको, आदि लेकर गिनीजाती हैं जैसे माता १ नाना२ परनाना३ इत्यादि औरभी जानो-ऐसेही संतानभेदकी सपिंडताभी होतीहै अर्थात् अपनेपिताकेभाइयोंसे और पिताकीबहनोंसेभीसपिंडता कहीजातीहै क्योंकि जिसदादाके शरीरमेंसे अपना पिता निकलाउसीके देहमेंसेचचा और फूआभी पैदाहुईहैं इसहेतुसे जैसे अपने आत्माकीसपिंडतापिता केसाथमानीगईथी तैसेही चचा और फूआसेभी अपनेआत्माकी सपिंडता निश्चित हुई-इसीप्रकार माताके कुलमेंभी संतानभेदसेमामा और मौसीसे भी अपने आत्माकी सापिंडता माताकेही तुल्यनिश्चितहुई ॥ अभीतक सपिंडताकाप्रयोजनसिद्धनहींभया क्योंकि ऊपरजो वर्णनकियाउसमें केवल शरीरोंके संबंधमात्र जानेगयेउन्हीं संबंधोमेंसे मुख्यसपिंडता उसेसमुझो कि जिनमनुष्योंकेजन्मकाआरंभ एकसाथहुआहोऔर एक साथकहनेका यह अभिप्राय नहींहै कि एकघड़ी या एकदिन या एकमास या एकवर्ष में जन्महुआहो-अर्थात् यह सिद्धांतहै कि तुल्य पीढ़ीके मनुष्योंसे जन्म जिनकाहुआ हो वे सापिंड्य ठीकहैं फिर चाहे उनकी अवस्थामें दश बीसवर्षोंकी छुटाई बडाई भी हो परंतु वे तुल्य सापिंड्यकहातेहैं (दृष्टांत) जैसे एकपुरुषकी दश संतानेंहुईं वे दशों भाई बहनें परस्पर तुल्यसापिंड्यहैं फिर उनदशोंके जुदीजुदी संतानें पैदाहुईं तो जैसे एकपिताकी संतानोंमें सपिंडता हुईथी तैसेहीउनचचेरे और ममेरे या फुफेरेभाईबहनों में परस्पर सापिंडता सगेकेहीतुल्यमानीजायगी-फिर उनसंतानोंकी संतानें जो होवेंगी उनमें यद्यपि दो पीढ़ीका अंतर पड़गया परंतु सापिंडता सगोंकेही तुल्य परस्परकही जायगी-इसी हिसाबसे नाना और दादाकी संतानोंमें परस्पर तुल्यताहै-मामा और फूआकी संतानोमें परस्पर भाई बहनके नातेसेतुल्यताहै-मौसी और चचाकी संतानों में भाई बहनके नाते से तुल्यताहै-फिर उन संतानों की संतानें जो होंगी उनकी भी परस्पर तुल्यताहै इसीको तुल्य सापिंडताकहतेहैं इससपिंडतामें विवाहका संबंधहोना अनुचितहै-इसीलिये ऊपर श्लोक और उसके अर्थ में कहाथा कि असपिंडाहो- और इसीहेतुसे पतिके साथ पत्नीकी भी सपिंडताहोतीहै क्योंकि उन दोनोंका भी

जन्म एकसाथ आरम्भ होताहै अर्थात् कन्याका पिता और बरका पिता यह दोनों संबंधी तुल्य पुरुपकहाते हैं यद्यपि वे भिन्न भिन्न कुलों के दोनों पुरुप हैं और चाहैं उनदोनोंकी अवस्थामें छुटाई बड़ाई भी दश वीसवर्षकीहो परंतु वे तुल्यअवस्था के गिनेजाते हैं-इसीहेतुसे भाइयोंकी भार्याओंसे भी देवर और जेठकी सपिंडता गिनी जाती है क्योंकि वेभी तुल्यपीढ़ीके मनुष्योंसे पैदाहुईहैं-इसीहेतुसे भावज और ननँद की भी सपिंडता गिनीजाती है क्योंकि उनके भी जन्मकीतुल्यता एकसी पाईजातीहै- ऐसेही जहां२ जिसके जन्मकी तुल्यतापाई जावे उसके साथ उसकी सपिंडता गिनी- जायगी सो यहसपिंडता सातपीढ़ीकेअंतरताईं पिताकेवंशमें और पाँचपीढ़ीके अंतर ताईं माताके वंशमें जहांतक पाईजाय तहाँ विवाहके संबंध का निषेधहै-क्योंकि यह मनुष्यका शरीर (गर्भोपनिपत्) के प्रमाणसे (पाट्कौशिक) कहाताहै अर्थात् छःप्रकार की मींग इसके भीतर होती हैं किन्तु तीन तो पितासे और तीनमातासे अर्थात् हा- ड़१ और नसोंकेबंधान २ और मज्जा ३ ये तीनवस्तु पिताकेवीर्यसे-त्वचा १ मांस २ रुधिर ३ यह तीन माता के रक्तसे बनती हैं तब शरीर उत्पन्न होताहै-इसी कारणसे पिता और माता दोनोंके वंशभरमें सारेमनुष्योंके शरीर संबंध मिले रहते हैं (सन्देह) बड़े आश्चर्यकी बात है कि इसरीतिसे तो सारे संसारमें एक जाति मात्रके मनुष्यों का शरीर संबंध मिलाहुआ होसक्ताहै फिर विवाह किसघरमेंकरें (उत्तर) इसीलिये उसकी अवधि सात और पाँच पीढ़ीकी नियतकरदीगईहै ५२॥

अरोगिणींभ्रातृमतीमसमानार्पगोत्रजाम्। पंचमात्सप्तमादूर्ध्वंमातृतःपितृतस्तथा ५३॥

भक्ष०-अरोगिणीको भ्रातावालीको और पांचसातसे पीछेभी असमानार्षगोत्रजा कोमातासे तथा पितासेआदि लेकर ५३॥

अभि०-अरोगिणी अर्थात् उसकेशरीरमें कोई ऐसारोग नहो जिसकी असाध्यता से वैद्यसेभी उपाय न होसकै किन्तु साध्यरोगकाहोना कुछ अवगुणमें गिनतीनहीं है भाईवालीभीहो क्योंकि न जानिये पीछे उसका अपनी पुत्रीका पहलाफल गोदलेनेके लिये माँगनेलगे तो धर्मके अनुसार उसको नाहींनहींकरनीपड़ैगी और दूसरामुख्य सिद्धांतयहीहै कि जोउसके भाईहोगातोवंशकी स्थितिबनीरहेगी और वंशकेबनेरहने से अपने को बनेबिगड़े समयपर प्रत्येक भाँतिकी सहायता बनीरहेगी-तैसेही वरकी माताको आदिलेकर नानाकी पाँचपीढ़ियोंके उपरांत और पितासेलेकर सातकेउप- रांतभी अर्थात् सपिंडताके निवृत्त होजानेपर भी असमानार्पगोत्रजाहो किन्तु जहां स्त्री के पिता कुलका(आर्प)और गोत्र ये दोनोंवरके समतुल्यनहों ऐसेघरमें पैदाहुईहो तिसे विवाहै ५३॥

अधि०-संदेहभला जब (आर्प)कहिये ऋषिप्रवर और गोत्र जिस्से वंशकी प्रसिद्धि

जानीजातीहै इनदोनोंकाभीनिषेधकरदिया तबसपिंडता जो पूर्वश्लोकमें कहीथी उसके कहनेका क्या प्रयोजनथा(समाधान)शास्त्रकेसंमतसे सपिंडतातो शूद्रजातिको भी बचानी चाहियेइसलिये उसको साधारण भावसे पहले ५२के श्लोक में कहकर पीछे इस ५३ केश्लोकमें त्रैवर्णिक जातोंका विशेष दिखलाया कि उन द्विजातियोंको प्रवर और गोत्रभी बचानाचाहिये-यद्यपि क्षत्रिय औरवैश्यके गोत्र और प्रवरोंकाअभावकहीं हो तहां उनके पुरोहितके गोत्र और प्रवरमानेजातेहैं यह आश्वलायन ऋषिकासम्मत है- और जहां कहीं अज्ञातभाव के धोखे से ऐसा होजाय तहां उसका प्रायश्चित्त भी यह कहाहै कि(मातुलस्य सुतामूढ्वा मातृगोत्रांतथैवच ॥ समानप्रवरांचैव कृत्वाचांद्रायणंचरेत्)अर्थात् धोखेसे मामाकी बेटीको विवाहिलेवै या माताके गोत्रभरकी कन्या विवाहिलेवै तो चांद्रायणका प्रायश्चित्त करै तबअदोषहोवै और अरोगिणीके उपलक्षणसे कन्याके शरीर भरमें कोई साभी अंग भंगनहो किंतु लूली लुंजी अंधी कानी आदि न हो और कोई अंग अधिकभी नहो जैसे षडंगुली आदिऔरभी जानो-हाँ-जो वरके देहमें कुछ अंग भंगहो या कुछ अधिकांग हो तो कन्याकी भी अंगभंगता या अंगाधिक्य अंगीकारकरनाचाहिये अर्थात् परस्परदोनोंका एकसाजोड़ायुग्ममिलाना धर्ममर्यादाके अनुसार संसूचितहै सो इसकाविशेषभाव आगे ५५के श्लोकमेंभीकहेंगे कि जिस्से पीछे कोईसा उत्पात न उठनेपावे क्योंकि उत्पातों के उठनेसे धर्मकी हानि होतीहै और धर्मकीहानिसे मनुष्योंके कल्याणोंकाविनाशहोजाताहै कल्याणोंकेविनाश में कुलका नाश होजाताहै इससे इसपर विचार दृष्टि बनीराखनी श्रेयस्करी है ५३ ॥

दशपुरुषविख्याताच्छ्रोत्रियाणांमहाकुलात्। स्फीतादपिनसंचारिरोगदोषसमन्वितात् ५४ ॥

मिक्ष० –दशपुरुषोंसे विख्यात श्रोत्रियोंके महाकुलसे कन्यालेनी चाहिये- परन्तु संचारीरोग और दोषोंसे समन्वित ऐसे स्फीत कुलसेभी न लेवै ५४ ॥

अभि०– दशपुरुषोंसे विख्यात अर्थात् जिस कन्याके पिताकी पांचपीढ़ी पिछली प्रसिद्धहों और कन्याकी माताकीभी पांचपीढ़ी नाना के वंशमें नामीहों-और कन्याके पिताका वंश श्रोत्रिय अर्थात् वेद आदि विद्याओं से पांडित्य वालाहो-और महाकुल का यह अर्थ है कि पुत्र पौत्र आदि कुटुंब तथा पशु दास दासी धन ग्राम आदि समृद्धिसे सम्पन्नहो तिसकुलकी कन्या ग्रहणकरै-परन्तु ऐसे सम्पन्न कुल में भी जो कदाचित् कुष्ठ आदि या मृगी आदि रोग जो एक दोके होनेसे घरभरके मनुष्योंके होजाते हैं तिनकी बहुताइत हो-या दोष जो पिता के वीर्य्य और माताके रक्त द्वारा संतानोंके भी होजाते हैं तिनकी बहुताइतहो अथवा वे दोष जो क्रियाहीनत्व और निःपुरुषत्व आदि मनुजीने कहे हैं उस कुलमें बहुधाकरके हों तो उस कुलकी कन्या

नहीं लेवे क्योंकि कन्याके द्वारा होकर इस कुलमें भी फैल जावेंगे और मनुके कहेहुये दोषोंके होनेसे लोकापवाद और असौख्यकी भीति है ५४॥

अभि०-कन्याके कुलका विशेषण जो श्रोत्रिय शब्दहै तिसकाभाव केवल यही नहीं है कि वेदादि विद्यासे सम्पन्नहो उसी कुलकी कन्या ग्रहण करीजाय क्योंकि जो यही भावहोवे तौ अश्रोत्रिय कुलकी कन्या विना विवाही बैठीरहैं उनको कोई अंगीकार नहीं करै- अर्थात् वह श्रोत्रिय शब्द एक साधारण विशेषण है सो इसलिये कहा है कि जो वर श्रोत्रिय कुलका पुत्रहो और आपभी श्रोत्रियहो तौ उसको कन्याभी श्रोत्रिय कुलकी ढूँढ़नी चाहिये सोई आगे ५५ के श्लोकमें कहैंगे और इसी हेतुसे कन्याकाभी पढ़ी लिखी होना संभवितहै क्योंकि धर्म्मशास्त्रने कन्या और वर दोनोंकी एकसी तुल्यता सर्वथा निश्चित करी है और ऊर्द्धोक्त श्रोत्रिय शब्द जो कन्या कुलका विशेषणहै तिसके साधारण भावसे यह तात्पर्य्य है कि कन्याकाकुल मूर्ख न हो किंतु विद्यावान्हो और विद्याकाकुछ नियमनहीं है कि कौनसीविद्या अर्थात् किसीप्रकारकी विद्याकरके यहकुल श्रुताध्ययनसंपन्नहो और (किसीप्रकारका) यहसिद्धांतहै कि उसके कुलमें जिसविद्याका अधिकार या परिपाटी या प्रचार उसकेपेशाके अनुरूप या कुलके अनुसार उचितहो तिसविद्यासे संपन्नहोतो उसको श्रोत्रिय कुलकहना और समुझना चाहिये-हाँ-इतनीवात अवश्य पाईजाती है कि जवकन्या और वरकी सर्वथा समता और तुल्यता निश्चित होचुकीतो कन्याकेभी कुलमें वहीविद्या होनी चाहिये कि जिस विद्याका अधिकार वरकेघरमेंहो यहवात अतिउत्तमहै इनसव वातोंको अगलेश्लोक में नीचेदेखकर निश्चय करलो ५४॥

एतैरेवगुणैर्युक्तःसवर्णःश्रोत्रियोवरः। यत्नात्परीक्षितःपुंस्त्वेयुवाधीमान्जनप्रियः ५५॥

भक्ष०-इतनेही गुणोंसेयुक्त सवर्ण और श्रोत्रियवरहो-यत्नसे पुंसत्वमें परीक्षाकिया हुआ युवा धीमान् जनप्रियहो ५५॥

अभि०-इतनेही गुण जो ऊपर कन्याकेलिये कहेगये उनसे युक्तहो और जो दोष कन्याके निमित्तमें गिनायेगये तिनसे रहितहो और सवर्ण कहिये तुल्य वर्णका वरहो अर्थात् जिसवर्णकी कन्याहो उसीवर्णका वरहो और श्रोत्रिय कहिये पढागुनाहो सो वह ऐसावरभी-पुंसत्वनपुंसत्वके मध्ये युक्तिपूर्वक परीक्षाकरलियाजावे पुनि युवा अवस्थावालाहो किंतु अतिबालक या अतिवृद्धनहो और बुद्धिमान्कहिये लोकव्यवहार और शास्त्र व्यवहारमें निपुणहो-फिर जनप्रियहो अर्थात् चातुर्य्य वा मन्दमुसकानि सहित मधुरवाणीकी वोलचाल नम्रता आदिसे मनुष्योंकी दृष्टिमें प्रियहो ऐसे वरको कन्यादान करै ५५॥

अभि०-ऊपरकहाहुआसवर्णशब्द जो वरकाविशेषणहै उस्से केवल ब्राह्मण क्षत्रिय

आदि जातिमात्रकीहीतुल्यतानहींसमुझनी किंतु सभीबातोंकी तुल्यताग्रहणकरनी अर्थात् जो कन्यागोरीहो तौवरभीगोरा या कन्याश्यामवर्णहो तौवरभी श्यामवर्णहो-या कन्याकी जन्मकुंडलीमें राजयोगआदि कोईउत्तमयोगहो तौवरभी उत्तमयोगवालाढूँढ़ा चाहिये अथवा कन्याकेजन्ममेंकोईग्रहदूषितहो तौवरमेंभीकोईदोषढूँढ़ाचाहिये-या-कन्याकेकुलमेंकोईदोपहो तौवरभी कुलदूषितकाढूँढ़ाचाहिये-या-कन्याकेशरीरमें कोईदोष हो तौवरकेदेहमें भी कोईदोषढूँढ़ाचाहिये-जोकन्याधनवान्कीबेटीहो तौवरकाभीधनवान्घरदेखाचाहिये इत्यादि नानाप्रकारकीबातें जो२कन्यामेंपाईजातीहों सोसभीबातेंवरमेंभी केवल एक(सवर्ण)शब्दकेविशेषणसे ग्रहणकरनीचाहिये तबसर्वथासौख्य और सौभाग्यकी वृद्धिहोतीहै अन्यथा समतासेविपरीत ऊँचनीच लक्षणहोनेमेंदुःख और दुर्भागताका निवासहोजाताहै इसी सवर्णशब्दके आशयसे जोकन्याबड़ेनगरमें जन्मी और पालीगईहो तौवरभी बड़ेनगरमेंढूँढ़ाचाहिये अर्थात् शहरकीकन्याको छोटेग्रामोंमें नहींबिवाहै-परंतु जोकन्याग्रामकीरहनेवालीहो तौवरकानियमनहींहै किंतु चाहे वरग्रामीणहो या नागरहो इसमेंदोनोंशुभहैं परंतु शहरकीकन्या ग्रामीणवरकोनहीदेवै-देखो धर्मशास्त्रने कोईबातसंसारकीऐसीनहींछोड़ी जिसकानियम और मर्याद न बाँधीहो परंतु विवाहसंबंधकेमध्ये किसीभीलक्षणसे यहनहींपायाजाताहै कि कन्यादानअपनेसे अधिकोच्चकुलमेंकरना सर्वथा समताकहतेचलेआतेहैं क्योंकि सुख और सुकीर्त्ति समतामेंहीमिलतीहै सोईनीतिशास्त्रमेंभीकहाहै कि वैर और प्रीति और विवाद और व्यवहार और विवाहसंबंध इतनीबातें अपनेबराबरवालेकेसाथकरै तौ उसमेंकोईतरहकीहानि या उत्पातनउठे-इसकालमें किसी२जातिवालेलोग अपनाइसीमें बड़प्पन गिनाकरतेहैं कि कन्यादानअधिकोच्चकुलमेंकरै सो यहरीति अपने कान्यकुब्ज समूह में बहुधा पाईजाती है और इसीहेतुसे इससमूहको अधिक धन देनापड़ताहै-यद्यपि कन्याके निमित्त अधिक धनकादेना शास्त्रकासम्मत है और अतिउत्तमहै परंतु उस अवस्था में कि जो अपनी श्रद्धा और उत्साहसेदेवै पुनि दिये पीछे भी वह धन वहां जायकर कन्या और वरकेहीभोगमें लगै तब सुकृतहोता है-परंतु जहां दियेहुये धनको वरका पिताअपनाहक निश्चय करके सबअपनी बगलमें दाबताहै और निज लोभ या उच्चताके अभिमानसे वधूके शरीरमेंसेभी आभूषण उतारलेताहै तहांदेनेवाला तो इसहेतुसे नरकभागी होताहै कि क्योंउसने जानिबूझकर ऐसेअधम कुलमें कन्या दानकरीजो वर और वधूको लक्ष्मीनारायणकी मूर्तिनहीं समझते अर्थात् जिसवधू और वरकापूजा रूपसे सत्कार करना लिखाहै धर्म्मशास्त्रमें तिसका आभूषण उतारने आदिसे अपकार करते हैं और वे अपकार करनेवाले भी नरकको जाते हैं- तथाच-(स्त्री धनानि तु ये मोहादुपजीवंति बान्धवाः । नारीयानानिवस्त्रंवातेपापायांत्य

धोगतिम्) अर्थात् जे कोई वांधव मोहसे स्त्रियोंके धनोंको छीनकर भोगते हैं या स्त्रियोंके वस्त्र और सवारी आदि अपने खर्चमें लाते हैं वे पापीलोग नीचगतिको जाते हैं-इसी एक श्लोकके प्रमाण और दृढ़ताके मध्ये औरभी पचास श्लोक स्मृतियोंके विद्यमानहैं परन्तु यहांपर लिखनेसे विस्तार होजाता इससे वे यथाक्रमसे जहांतहां लिखे जावेंगे- और विवाहमें जो कुछ वस्तु या रोकधन या सवारी आदि दियाजाता है वह यथार्थमें कन्याके निमित्तका होताहै क्योंकि कन्याके सौख्य और भोगोंके लिये दिया जाताहै परन्तु वरभी उसधनका मालिक इसहेतुसे कहाताहै कि वह उसकन्या का मालिकहै तो उस धनकाभी मालिकहै-और वरका पिता केवल उतनेही धनका अधिकारी है कि जो उसे उसकी पूज्यताकी रीतिसे दियाजावे-परन्तु वह पिता वैवाहिक सारे धनका मालिक अपनेको इसतर्कणासे निश्चित करताहै कि मैंने पुत्रका पालन और विवाह किया इसमें मेराधन लगा-सो यह उसका वृथा अनुमानहै क्योंकि पुत्रके साथ जोकुछ पिता करताहै सो केवल विवाहका धनहरने सेही नहीं उद्धार होसक्ताहै अर्थात् विवाहका धनतो एक तुच्छवस्तुमें गिनती है- और पुत्रतो अपनी जीवन अवधि भरमेंभी पिताका बदला नहीं देसकैगा बल्कि पिताके मरेपीछेभी जो कुछकरे सो सब थोड़ाहै- और पिता जो पुत्रकी पालना आदि करताहै सो कुछ उसके ऊपर अहसानमें गिनती नहीं करसक्ता क्योंकि जो संसारमें रहकर अपना वंश वृक्ष और सुकीर्ति चाहैगा तो सब कुछ करना पड़ेगा इससे वैवाहिक धनके अधिकारी कन्या और वरही होतेहैं-बल्कि पिताको तो उस धनके सिवाय और कुछ अपने पाससे उन दोनोंको सत्कारकी रीतिसे देना चाहिये सोई मनुऋषिका वाक्यहै सोदेखो पांच श्लोकोंमें-यथा(शोचंति जामयो यत्र विनश्यत्याशुतत्कुलम् । नशोचंतितुयत्रैता वर्द्धते तद्धि सर्वदा १ जामयो यानि गेहानि शपंत्यप्रतिपूजिताः । तानि कृत्याहतानीव विनश्यंति समंततः २ तस्मादेताःसदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः । भूतिकामैर्नरैर्नित्यंसत्कारेषूत्सवेषुच ३ पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा । पूज्याभूषयितव्याश्चबहुकल्याणमीप्सुभिः ४ यत्रनार्य्यस्तुपूज्यंते रमंतेतत्रदेवताः । यत्रैतास्तुनपूज्यंते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः५)इनपांच श्लोकोंका यह अर्थहै कि जिसघरमें वे स्त्रियां जो (जामी) अर्थात् नवोढ़ा बहू बेटी भगिनी पत्नी आदि किसी कारणसे परितापों करके शोकित रहा करती हैं वह कुलशीघ्र नाश होजाताहै- और जहां वे (जामी) स्त्रियां शोक या शोच नहीं पाती हैं वह घर सदैव फला फूला होकर बढ़ताहै १ जिन घरोंको वे (जामी)स्त्रियां अपना सत्कार न होने और अपकारके पानेसे शाप दिया करती हैं वे घर सब ओरसे ऐसे नाश होजाते हैं कि जानो महाभयंकरी पिशाचरूपिणी कृत्याने विनाशे हों- कृत्या उसे कहते हैं कि जो तीक्ष्णमंत्र विधानों सहित वीरोंके स-

हारेसेघात फेंकीजाती है २ तिसी कारणसे यह (जामी) संज्ञा वाली स्त्रियां ऐश्वर्यके चाहने वाले मनुष्योंको नित्यके सत्कारोंमें और विवाह आदि उत्सवोंमें अच्छे भोजन वस्त्र आभूषणोंसे सदाही सत्कार पूजा करिबे योग्यहैं- सदाही इस हेतुसे कहाहै कि भूत भविष्यत् वर्त्तमान तीनों कालमें स्त्रियोंकी पूज्यता प्रसिद्ध है ३ अपना बहु कल्याण चाहनेवाले पिता चचा भाई पति देवर इनसबों करकेही स्त्रियां पूज्यहैं आभूषणोंसे भूषित कराइबे योग्यहैं ४ क्योंकि जहां स्त्रियोंका पूजा सत्कार होताहै तहां देवतावासकरतेहैं और जहाँ ये नहीं पूजीजातीहैं तहाँ सारेहीकाम निष्फलहोजातेहैं- यहाँ पूजा शब्द सत्कार और प्रतिष्ठाका वाचक है किंतु कुछ षोड़शोपचारसे अपेक्षा नहींहै ५ इस वार्त्ताके भावको आगे ८२के श्लोकमें योगीन्द्र याज्ञवल्क्य भी कहेंगे- और व्यवहाराध्यायमें (स्त्रीधन) का निर्णय विशेषकरके कहेंगे तहाँ सर्वथा निश्चित है कि जो वैवाहिक धनहै सो वर और वधूकाही होताहै-परंतु इस योग्यताके आग्रह से किसी वरको यह अधिकार नहींहै कि वह अपने पिताके हस्तगत वैवाहिक धनको मांगे और झगड़ाकरै क्योंकि वह शिक्षा केवल उस पिताकेही लिये दृढ़तारहै कि वह अपने पुत्रको समर्थ और सुमार्गी समुझै तो उसधनको और कुछ अपने धनमेंसेभी सत्कारकी रीतिपूर्व्वक अपने हाथसे लेकर पुत्र और वधू दोनोंको सौंपदे-अथवा उन्हें बालक या उड़ाऊ समुझै तो उस धनको अपने द्वारा वर और वधूके सौख्यमें लगावै और जो आप धन पात्रहो तो कुछ अपने धनमेंसे भी किसीप्रकारसे उनके सौख्यम लगावै यह वर वधूके सत्कारकी मर्यादहै-अथवा जो आप असमर्थहो तो उस वैवाहिक धनको निस्संदेह शिवनिर्माल्य समुझकर अपने स्वार्थ में न लावे-और जो दैवयोगसे उसके आगे भी कोई कन्या विवाहने योग्यबैठीहो और वह इसहेतुसे उसधन को व्ययकरनाचाहै तो भी उसमेंसे आधा अपने पुत्रके संबंधसे लेकर उस कन्याके विवाह में लगावे क्योंकि उस पुत्रको भी अपनी भगिनी के कार्य्य में जैसा पैदाकरके लगानायोग्यथा तैसा इसमेंसे भी देनायोग्यहै-परंतु आधा जो विशेषतर वधूकेनिमित्त में गिनाजाता है उसपर दुर्नीति नहीं करै-और जो कदाचित् वह उस आधेपर भी दुर्दृष्टि करै तो उसवधू अथवा वधूकी बाल्यतासे उसके पिता, माता आदिको अधिकारहै कि वे उसमें हाथ नहीं लगानेदें-ऐसे ऐसे सिद्धांतोंसे सर्वथा यही निश्चितहै कि कोई कन्याका पिता अपनी बेटी और जामातृको निज इच्छापूर्वक चाहो लाख रुपयेका धनदेदेवे कुछ इस बातका निषेध नहींहै परंतु ऐसे ढंगसे न देवे जो दिये पीछे वहधन उसकी कन्या और जामातृके सौख्यमें न लगसके-अर्थात् जो कुलके क्रय विक्रयके प्रकारसे दिया लियाजाताहै वह सर्व्वथा अनुचित है क्योंकि (प्रथम) तो धर्म्मशास्त्र से विरुद्ध इसहेतुसे निश्चितहोताहै कि शास्त्रमें इसबातकी आज्ञाकहीं

भी नहीं पाई जाती है कि कुलका क्रय विक्रय कियाजावे (दूसरे) इस क्रय विक्रयके अनुसार देनेसे वह धनदाताकी कन्याके अधिकारसे दूरहोजाताहै इसीहेतुसे वहुतेरे लोभी और निर्मर्यादलोग अपनीपुत्रवधू के आभूषणको भी उसकेशरीर से छल्ला छल्ला तकउतार लेते हैं पश्चात् कन्यापिताअपनी पुत्रीकीदया अथवा लोकलाजके लिये फिरपहनाकर भेजताहै उसकोभी विवाहसे आधागौनेकाहक वताकरलेलेते हैं तव कन्यापिता फिर तीसरी वार भी देता है परंतु ऐसे सामर्थ्यवान् और धनाढ्य पिताथोड़ेहोतेहैं जो वारम्वार फटेकोसींतेहैं-इससेकन्याकेपिताकोपहलेसेही इसवातका विचार और प्रवंध और प्रतिज्ञादृढ़ करलेनीउचितहै कि जो कुछमैंदेताहूं सो सवमेरी कन्याके निमित्तका समुझाजाय (तीसरे) इसी क्रय विक्रयके वंधनसे यहवड़ा लाञ्छनहै कि धनकेअभावमें वहुधाकन्यायें अधिक अवस्थाकी होजातीहैं उनके संवंधका ठिकाना नहींलगता और इसवातसे जो कुछ दोषउत्पन्न होतेहैं सो संसारमें सवको विदितहैं और शास्त्रमेंभी आगेवढ़कर ६३ के श्लोकमें देखो क्या लिखाहै-यद्यपि ऊपर लिखे हुये गुणदोष कुछसभीमनुष्यों में नहींहोते परंतु जिसवातकी वाहुल्यता होती है वही गिनतीमें आयाकरतीहै-और यहवात कुछ किसीकी निंदास्तुतिके लिये नहीं लिखी गईहै अर्थात् केवलसार्वलोकी कल्याण वा हितकीदृष्टिसे संदर्शितकरीहै-और जो निंदा समुझीजाय तो लिखनेवाला सवसेपहले उनलोगोंमें गिनतीहै और वेही गुण दोष इसमेंभी आद्योपांत भरेपरेहैं फिर ऐसाकौनहै जोअपनी निंदा अपनेहाथसे लिखैगा परंतु कारण इसमें इतनाहै कि भले मनुष्योंकी यह परिपाटीसनातनसे चलीआई है कि उनको जवकभी किसीस्थलपर किसीहेतुसे सद्धर्म अर्थात् हितयलोक सुखदायक वार्त्ताका निर्णयकरना पड़े या उसनिर्णयमें साक्षीभूत होनापड़े तहां अपने और पराये का पक्षपात छोड़कर अपने शत्रुके भी गुण प्रकाशित करे किंतु शत्रुता तो वैरके स्थानपर होगी और यहअवसर उसकेगुण कहनेकाहै इसमें अपनी धर्मनीतिसे उस के गुणोंका लोप न करनाचाहिये-ऐसेही अपने अथवा अपनेगुरुओंकेभी दोषकहने का अवसरहो तहां निस्संदेह दोपकहने उचितहैं इसमें स्पष्टवक्ता दोपभागी नहींहोसक्ताहै-तथाच (शत्रोरपिगुणावाच्या दोषावाच्यागुरोरपि। सद्भिःसद्धर्मकथने विनात्म परपक्षयोः)इसीपचपनके श्लोकमें यह जो कहाहै कि यत्नपूर्वक पुंसत्व नपुंसत्वके मध्ये परीक्षाकरे तिसका यहभाव है कि प्रत्यक्षप्रकारोंसे परीक्षाकरना तो सर्वथा अनुचित है परंतु जहांकहीं इसवातकी आवश्यकता आनिपड़े तहांकेलिये नारदजी का कहा हुआ यहउपाय है कि-जिसमनुष्यकावीजजलकेऊपर तैरनेलगै डूवैनहीं तिसकोपुंस जानो और जिसकामूत्र (ह्लादि) हो अर्थात् मूत्रकीधारसे धरतीमें विशेष गडहलाहोजाय तिसकोपुंसजानो और जिसके मूत्रमें फेनावहुतउठै उसकोपुंसजानो-और जिस

पुरुषमें यहकहेहुये लक्षणउलटेहों तिसको नपुंसकजानो-तथाच(यस्याप्सुप्लवते वीजं, ह्रादि मूत्रंचफेनिलम्। पुमान्स्याल्लक्षणैरेतैर्विपरीतैस्तुषंढकः ५५॥

यदुच्यतेद्विजातीनांशूद्राद्दारोपसंग्रहः। नैतन्ममम तंयस्मात्तत्रात्माजायतेस्वयम् ५६॥

अक्ष०— जो कहिये है द्विजातियोंको शूद्रसे दाराका उपसंग्रह नहींहै यह मतमेरा जिस्से उसमें आत्मा आपही उत्पन्नहोवैहै ५६॥

अभि०—द्विजातियोंके लिये जो मनुस्मृति शास्त्रमें शूद्रकुलसेभी स्त्रीका संग्रहणकरना कहतेहैं सो यह मेरा संमतनहींहै क्योंकि उस शूद्रास्त्रीके उदरमें यह द्विजातियोंका आत्मावीर्यरूपहोकर आपही जन्मलेताहै सो यहमेरी समुझसे अनुचितहै ५६॥

अधि०—इससे पहलेजो ५२। ५३। ५४। ५५। इनचार श्लोकोंमेंविवाहकीमुख्य रीति कहचुके हैं सोवह मुख्यविवाहभी तीनप्रयोजनों से कियाजाता है अर्थात् एक तो केवल स्त्रीके भोगमात्रकी वांछासे अर्थात् जिसकेपुत्र तो विद्यमानहै और भार्या नष्ट होगई ऐसामनुष्य जो विवाहकरना चाहे तो भोगमात्रकी वांछा १ दूसरा कोई प्रकारका धर्मसाधन करनेकी आकांक्षासे कि जो धर्मस्त्रीविना नहीं होसक्ताहो २ तीसरापुत्र पैदाकरने की अपेक्षासे ३ तहां जो पुत्रके प्रयोजनसे कियाजाताहै सोभी दो प्रकारका होताहै एक तो (नित्य) जो गृहस्थीमात्रको संतानकी अपेक्षा सबहीको अवश्यहुआ करतीहै दूसरा(काम्य)वहकिजो ठेठकर पुत्रहीकेअर्थसे विवाह करनाचाहै— तिसमें (नैमित्तिक)संतानकी अपेक्षामें तो विशेषकर सवर्णासेही विवाहकरना मुख्यहै और यद्यपिसभी प्रयोजनोंमें सवर्णामुख्य है परन्तु जब सवर्णाकालाभ नहीं होसक्ता हो तो (काम्य) संतानवाला और भोगमात्रकी वांछावाला असवर्णा से भी विवाहकरे सोयहमुख्य विवाहका (अनुकल्प)कहलाताहै उसअनुकल्पके मध्ये मनुऋषिने ब्राह्मण के लिये चारोंवर्णकी कन्या लेनीकहीं। और क्षत्रियकेलिये ब्राह्मणी छोड़कर तीनवर्ण कीकहीं वैश्यकेलिये ब्राह्मण क्षत्रियको छोड़कर दोवर्णकीकहीं और शूद्रकेलिये केवल शूद्रकीही कन्यालिखी अर्थात् अपनेसे उत्तमवर्ण की नहीं इसलिये याज्ञवल्क्यजीने ऊपर निषेधकिया है ब्राह्मणआदि तीनवर्णोंको अपनेसेहीन वर्णोंमेंभी (अनुकल्प) विवाहमें शूद्रकीकन्यासे विवाह न करनाचाहिये परन्तु शेषवर्णोंकी कन्याकेलिये याज्ञवल्क्य भी नीचेके श्लोकमें आज्ञादेते हैं सो इसहेतुसे आज्ञादेते हैं कि किसीप्रकार से सृष्टिकी वढ़वारीमें न्यूनतानहींहोनेपावे परन्तु वहआज्ञा ऐसीनहीं है कि जैसे वर्त्तमान समयके वहुधा उत्तम वर्ण चांडाली पर्यंत भीविना विवाहेही घेरलेते हैं और उनको कोईप्रकार का दंडनहीं दियाजाता है ५६॥

तिस्रोवर्णानुपूर्व्येणद्वेतथैकायथाक्रमम्। ब्राह्मणक्षत्रियविशांभार्य्यास्वाशूद्रजन्मनः ५७॥

अक्ष०—यथाक्रम से पहले पहले से लेकर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, जातों को तीन

दो एक वर्णों की भार्य्या और शूद्रजन्मा को अपने वर्णकी भार्य्या उचित है ५७ ॥

अभि०—ब्राह्मणको तीनवर्णकी भार्य्या इसक्रमसे कहीहैं कि ब्राह्मणीके अभावमें क्षत्रियकन्या और क्षत्रियाके न मिलनेमें वैश्यकन्या-ऐसेही क्षत्रियको सवर्णाके अभाव में वैश्यकन्या-और वैश्यको केवल सवर्णा ५७ ॥

अपि०—अनुमानसे प्रतीतहोता है कि मनुजीने जो द्विजातियों के लिये शूद्रकन्या से भी विवाह करना लिखाथा तौ उस समयमें शूद्र भी कुछ उज्ज्वल गिनेजाते होंगे किन्तु अबकीसी मलीनता उनमें न होगी पर पीछे पीछे याज्ञवल्क्यजी के समय में मलीनता का प्रवेश उनमें अधिक होगया इससे उन्होंने निषेध करदिया और जो कुछ हो सो हो-परन्तु अब उन दोनों ऋषियों की कही हुई यह मर्य्यादें जो ऊपर ५६ । ५७ के श्लोको में कही हैं सो सब (नष्टाग्निसंज्ञक) होगईं इससे इनका प्रचार उठगया ५७ ॥

अब नीचे आठप्रकारके विवाहों के लक्षण और उनके फलभी भिन्न२ कहते हैं ॥

ब्राह्मोविवाहआहूयदीयतेशक्त्यलंकृता । तज्जःपुनात्युभयतःपुरुषानेकविंशतिम् ५८ ॥

प्रक्ष०— वह(ब्राह्मविवाह)कहलाताहै जिसमें वरकोबुलाय कर अपनीशक्तिकेअनुसारकन्या को अलंकृत करके दानकरते हैं-उसविवाहसे पैदाहुईपुत्र संतान दोनोंओर से इक्कीसपुरुषों को पुनीत करताहै-अर्थात् पिताआदि दशपहले और पुत्रआदि दश पिछले इक्कीसवां आप ५८ ॥

अपि०— यह (ब्राह्मविवाह) सबसेउत्तमहै किंतु आठ विवाहोंमें यही मुख्यहै और वर्त्तमान समयमें सर्वत्रतीनों वर्णके मनुष्योंमें यहीरीति प्रधानहै और आचरण करी जाती है-परन्तु याज्ञवल्क्यजी यही कहकर चुपकेहोगये कि शक्तिके अनुसार कन्याको अलंकृत करके दानकरे अर्थात् कन्यापिता कीशक्तिकोही प्रधानरक्खा किजैसी उसकी शक्ति और सामर्थ्यहो तैसावस्त्र आभूषण आदिदेवै-परन्तुयह इतना शब्द अपनेमुख सेनहीं काढ़सके कि चाहे उसकेपासहो या न हो परसमधीके बड़प्पनके अनुसार पहले करारकरके पीछेबहुत कुछदेवे तब उसविवाहको (ब्राह्मविवाह)कहें ५८ ॥

यज्ञस्थऋत्विजेदैवआदायार्षस्तुगोद्वयम् । चतुर्दशप्रथमजः पुनात्युत्तरजश्चषट् ५९ ॥

प्रक्ष०—यज्ञमेंस्थित ऋत्विज को कन्यादेना दैव-और दोबैललेकर (ब्राह्म) पहलेसे जन्मा चौदह पिछलेसे जन्माछःको पवित्रकरता है ५९ ॥

अभि०—यज्ञकरातेहुये आचार्यको यथाशक्तिसे अलंकृतकरी कन्याका दानकरदेना यह (दैवविवाह) कहाताहै-और वरसे दोबैललेकर कन्यादानकरना यह (आर्षविवाह) कहलाताहै-इनमेंदैव विवाहकी पत्नीसे पैदाहुआ पुत्र पहली पिछली १४पीढ़ीको और (आर्षविवाह) की भार्य्यासे जन्माहुआ पुत्र ६ पीढ़ियोंको पवित्रकरता है ५९ ॥

अभि०—(देवविवाह)का यह अर्थहै कि देवताओंकीरीति अनुसार (आर्षविवाह) का यहअर्थहै कि ऋपियोंकीरीति अनुसार-तहां ऋपियोंकी रीतिमें जो दोवैल वरसेलेने कहे सोउस अवस्थामें कि जवकन्या पिताकेपासकुछनहो सो वहवैलोंका लेनाकुछ यह नहींहै कि सदेह वैलहीउससे लियेजावें अर्थात् शास्त्रवक्ता का यह सिद्धांतहै किकुछ थोडासाद्रव्य उसमेलेकर कन्याकेवस्त्र आभूपण आदिका प्रवंध उसीद्रव्यसे करके कन्यादान करदेवै सोउसद्रव्यके लेनेका नियमनिश्चय करनेकेलिये वैलकहेहैं कि जितने मूल्यसे दोवैल आसक्तेहों उतना उससेलेवे-इसमेंभी यह तर्कणाहै किदोवैल २०) रुपयेसेभी आजातेहैं और बिरलेवैल दोसो २००)रुपयेके भी होतेहैं फिर इसकाक्या नियमहोसक्ताहै-तहां परमसिद्धांतयहीहै कि जैसे मूल्यके वैल खरीदसकने की सामर्थ्य वरमेंहो उसीकेअनुसार उससेले और उसमेंसे एक कपर्दिकाभी अपने स्वार्थमें नहींलगावे क्योंकि जो अपने स्वार्थमें लगावेगा तौकन्याके विक्रयकरनेका दोपभागी होजावैगा-और यह मर्य्याद केवल इसीनिर्वाहके लियेकहीहै कि कोई प्रकारसे किसी निर्धनकी कन्याकुमारी नहींरहने पावे-और यहरीति कोईनिर्द्धन करै तो इसमें उसकी निंदानहीं है किंतुप्रशंसामें गिनतीहै उनलोगोंकी अपेक्षासे कि जो निर्द्धनतासे कन्या घरमें वैठी राखते हैं-अन्यथा साक्षात्कार वैलोंका जोडालेना यह सर्व्वथा अनुचित और असंभव है ५९ ॥

इत्युक्त्वाचरतांधर्म्मंसहयादीयतेऽर्थिने। सकाय पावयेत्तज्ज पट्पड्वंश्यान्सहात्मना ६० ॥

मक्ष०—साथ मिलकर दोनों धर्म्मका आचरण करो यह कहकर जो अर्थीको कन्या दीजिये है सो (कायविवाह) है उससे जन्मा पुत्र आप सहित छेछेवंशियों को पवित्र करताहै ६० ॥

अभि०—जवकोई अर्थी किसी कन्यापितासे अपने आपकन्या मांगताहै उससे यह प्रतिज्ञा ठहराली जातीहै कि यहकन्या और तुमदोनों मिलकर परस्पर प्रीतिपूर्वक धर्म्म के अनुसार आचरण करना अर्थात् कोईसी लोकविरुद्ध या शास्त्रसे विपरीत अनीतिनहीं प्रकटहो-सोइसको (काय) विवाह अर्थात् (प्राजापत्य) विवाह कहते हैं इस विवाहकीभार्याका पुत्रअपनी आत्माको आदिलेकर छे पीढ़ी पहली और छे पिछलीके पुरुपोंके पापधोदेताहै ६० ॥

आसुरोद्रविणादानाद्गांधर्वःसमयान्मिथ.। राक्षसोयुद्धहरणात्पैशाच कन्यकाछलात् ६१ ॥

मक्ष०—द्रविणलेनेसे(आसुर)परस्पर संमतिसे(गांधर्व)युद्धमें हरनेसे(राक्षस)कन्याछल से पैशाच ६१ ॥

अभि०—कन्याकापिता द्रव्यलेकर विवाहकरदेवै सो(आसुर)विवाहकहाताहै क्योंकि द्रव्यलेकर कन्यादेना या द्रव्यदेकर भार्यालेनी यहदोनों लक्षण असुरोंके प्रसिद्धहैं—

कन्या और वर परस्पर अपने अनुरागसे विवाह ठहरालेवैं सो(गांधर्व)विवाहकहाताहै क्योंकि यहरीतिगंधर्वोंकी प्रसिद्धहै-युद्धकरके कन्याछीनलावै और उस्से विवाहकरले सोयह(राक्षसी)विवाह कहाताहै-सोवतीहुई या किसीभाँति भूलीभटकी कन्याको छल करलेजावै और विवाहकरै सो(पैशाच)विवाहहोताहै क्योंकि यहदुर्नीति पिशाचोंकी प्रसिद्धहै ६१ ॥

अवसवर्णा और परवर्णा कन्याओंके विवाहमें विशेपलक्षण कहतेहैं ॥

पाणिर्ग्राह्यःसवर्णासुगृह्णीयात्क्षत्रियाशरम् । वैश्याप्रतोदमादद्याद्वेदनेत्वग्रजन्मनः ६२ ॥

भक्ष०—सवर्णाओंमें पाणिग्रहणउचितहै-क्षत्रियाशरथाँभै-वैश्याप्रतोदलेवे-यहरीति अग्रजन्माके विवाहमें ६२ ॥

भभि०—सवर्णा अर्थात् जिसजातिकावरहो उसीजातिकी कन्याहो तौसवर्णास्त्री कहलातीहै सो अपनीअपनी जातिकी सवर्णा कन्याओंकेविवाहोंमें पाणिग्रहण करना किंतु कन्याका हाथवरको थाँभना उचितहै जैसीकुछरीति संसारमें प्रवर्तितहै-परंतु जहाँपराये वर्णकी कन्यासे विवाहस्वीकार हुआहो जैसा ५७के श्लोकमें कहचुकेहैं तहाँउस विवाहमें कन्याका हाथपकड़ने का अधिकार वरकोनहीं है-अर्थात् हाथपकड़ने के पलटे कुछविशेपताहै सोकहतेहैं कि क्षत्रिय कन्याजब अपनेसेअग्रजन्मा जो ब्राह्मणहै तिससे विवाहकरे तो हाथथँभावनेके स्थानमें उस ब्राह्मणकेहाथसे थाँभीहुई छड़ी, लाठी,वेत आदिको दूसरी ओरसेपकड़लेवै-ऐसेही वैश्यकीकन्या अपनेसेवड़ाक्षत्रिय या ब्राह्मणतासे विवाहकरे तौ उस वरके हाथका थँभाहुआ प्रतोद पैना चावुक सो थाँभलेवै ६२ ॥

भभि०—याज्ञवल्क्यजीने ५७ के श्लोकमें द्विजातियोंको शूद्रासे विवाहका निपेध कियाथा इसलिये उसके विवाहका विशेप लक्षण भी इस श्लोकमें नहींकहा-परंतु मनुजीने उसका भी विशेप लक्षण कहाहै कि शूद्र कन्या अपनेसे उत्कृष्ट जो वैश्य और क्षत्रिय और ब्राह्मण इनतीनों द्विजातियोंमें किसीकेसाथ विवाहकरै तौ पाणिग्रहणके स्थानपर वरके काँधेका पटका दुपट्टा आदि जो कुछ वस्त्र तिसका एक अंग अर्थात् खूँट किनारा थाँभले-तथाच (वसनस्यदशाग्राह्याशूद्रयोत्कृष्टवेदने) यद्यपि इसवातसे कुछ प्रयोजन अब नहीं है परंतु ज्ञानमात्रके लिये लिखीगईहै ६२ ॥

अब यहवात कहतेहैं कि कन्याको दानकरनेका अधिकार किस किसकोहै ॥

पितापितामहोभ्रातासकुल्योजननीतथा । कन्याप्रदःपूर्वनाशेप्रकृतिस्थःपरःपरः ६३ ॥

भक्ष०—पिता, दादा, भ्राता, सकुल्यकहिये कुलका कोई प्रधान तैसेही माता-कन्या देनेका अधिकारी पहले पहले के नाशमें पिछला पिछलाहै जो प्रकृतिस्थहो ६३ ॥

भभि०—प्रकृतिस्थ अर्थात् अपनी शुद्धि बुद्धिमें सावधानहो किंतु सिड़ी या विक्षिप्त और अशक्त न हो ऐसा पिता कन्याके देनेका अधिकारी है-जो पिता नाशहोजावै या

जीवताहो पर विक्षिप्त आदि दोषोंसे विवाहकरसकनेमें असमर्थहो तौ कन्याके दादा को अधिकारहै-जो दादा भी नहो या वैसाहो तौ कन्याका भाई अधिकारीहै-जो भाई भी नहो या वैसाहोतौ उसकुलमें जोकोईप्रधान गिनाजाताहो या अप्रधानभीसामर्थ्य वालाहो तौ यहभार उसकेऊपर निश्चितहै-जव ऐसाकोईभीनहोतौ मातापरइसवात का भारहै ६३ ॥

अधि०—अशक्त या असमर्थ कहनेका केवल यहीसिद्धांत नहींहै कि वे अपनेशरीर सेहीअसमर्थहों अर्थात् जो धनसेहीनहै वहभी प्रकृतिस्थोंमें गिनतीनहींहै किंतु जो उसका उत्तरोत्तर अधिकारीकोईभी धनवान्हो वहीप्रकृतिस्थ कहलावेगा-और ऊपर केकहेहुये जो पांचअधिकारी हैं उनका कुछ यह भी नियमनहींहै कि वे कन्यापिता के साझेमेंरहतेहों या न रहतेहों-अर्थात् चाहेवेपांचकेपांचोअपनाखाने कमानेकाव्यवहार जुदारखतेहों या चाहे उनकेघरकी धनसम्पत्तिभी विभागता में आचुकीहों जो पहले सवकी एकथीं-परन्तु इसकन्यादान के अधिकारभार में ऐसे समुझे जायँगे कि जानो सवके सव एकहैं ६३ ॥

अप्रयच्छन्समाप्नोतिभ्रूणहत्यामृतावृतौ । गम्यंत्वभावेदातॄणांकन्याकुर्यात्स्वयंवरम् ६४ ॥

अक्ष०—वह न देताहुआ ऋतुऋतुमें भ्रूणहत्याको प्राप्तहोताहै-दातओंके अभाव में कन्याआपही गम्यवरको करे ६४ ॥

अभि०—कन्यादानमें जिससमय जिसका अधिकारहै सो कन्याका विवाह न करै तौ एक २ ऋतुकाल मासिकधर्म होनेसेएक २ गर्भहत्याकाभागी सदा होतारहताहै-जिस कन्याका विवाहकरनेवाला कोईभीअधिकारी नहींरहाहो वहकन्या आपही किसी गम्यवरको वरै-गम्यकहनेका यह आशयहै कि जो वरउसके गमनयोग्यहो अर्थात्जैसे वरकोउसके अधिकारी उसेदेसक्तेथे वैसाही वरकन्या अपनेआपढूंढे सो उसवर के लक्षण पहले ५५ के श्लोकमें कहचुकेहैं ६४ ॥

अधि०—अपने आप ढूंढनेका यह सिद्धांत नहींहै कि वहकन्याअपने मनसे किसी वरकोविचार लेवे या कहींग्रामांतर में ढूंढती फिरै-किंतु अपने नष्टभूत अधिकारियों के शुभचिंतक इष्टमित्रोंसे कहकर उसवस्तीके पंचों और नरेशोंमें यहवात प्रवेशित करवाकर अपनेयोग्यवर ढूंढवावै-औरइसीआशयसे उनपंचोंवा नरेशोंकोभी यहसंसूचितहै कि इसप्रकारकी कोईकन्या उनकी वस्तीमें विनाविवाही नहीं रहनेपावै अर्थात् केवल यहीनियम नहीहै कि जवकन्याउनके पास निजप्रार्थनाका प्रवेश करवावै तभी उसके लिये वरढूंढाजाय-किंतु-उनको प्रजारक्षाके नियमोंअनुसार सदाही यह योग्यहै कि वे इसप्रकारकी अनाथकन्याओं के विवाहोंमें प्रवंधकरतेरहैं-और प्रवंधका करनाकेवल यहीनहींहै कि उसके लिये वरढुंढवाकर चुपके होरहैं अर्थात् प्रार्थना या विनाप्रार्थना

वाली ऐसी अनाथकन्याओंके पास जो धन नहींहोवे तो उसविवाहकेयोग्य कुछ धनभी उसस्थान औरसमय और शक्तिऔरयोग्यताके अनुसारसंचित करदेवें(अथवा)जहां किसी हेतुसे धनकाउपस्थित होना दुर्लभ समुझाजाय तब निस्संदेह आर्षविवाह की रीतिसे उपकार करवादेवें और इस उपकारमें उनको वैसाही उद्योगकरना सूचित है कि जैसे गृहस्थी अपनीसंतानोंके मंगलमेंउत्साह रखताहे(भेद२) इसकहेहुये आशय से यह योग्यतापाईजातीहै कि इसप्रकारका धनसंचयभी थोड़ा बहुतप्रत्येक वस्तीके अधिष्ठाताके उपायसे संग्रहपाकर किसीधनपात्रके आश्रयभूत रहकरसदैव वृद्धिपाया करै जिस्से तत्काल किसीनवीन उपकारमें बहुधोपाय न करना परे-इसीआशयसे उन पंचों वा नरेशोंकी योग्यताभी सब औरसे आकर्षित होकर देशकेराजापर आरूढ़होतीहै क्योंकि जिस किसीआपत्ति में फँसेहुये दीनदुखियाका रक्षाकरनेवाला कोई भी नहीं होताहै उसकारक्षक राजा हुआ करताहै जिस्से राजाप्रजाका स्वामीहै-तथाच(नकोपिरक्षितायस्यदीनस्यापद्गतस्यच । तस्यैवनृपतिःपातायतोभूपःप्रजाप्रभुः) (भेद ३)ऊपरके भेदमेंकहेहुये धनसंचयका होना कुछवड़ीसीकाठिन्यता नहीं है क्योंकिप्रथम तो अनेकरीतिंइसकी लोकमेंप्रसिद्धहैं कि जिनसेबहुतेरे संसारीकामोंके लिये उपकारी धनकासंचय कियाजाता है फिर,एकपुण्यार्थी धनकासंचयहोना क्याबड़ीबातहै कदाचित् उनरीतोंसे असंभवता समुझीजातीहो सबसेसुगम यहरीतिहै कि जो चातुर्वर्ण्य मनुष्योंके विवाहोंमें वरकेहाथसे कुछधनसंकल्प यथाशक्ति कियाजाताहै वहधनकन्या के ग्रामबासीविप्रोंको वर्त्तायाजाताहै उसधनके दानकरनेका परमसिद्धांत तो यही है कि वर और कन्या इनदोनों के जन्मभरकी कुशलक्षेमके हेतुसे पुण्यकियाजाता है कि इसपुण्यके प्रभावसे यहदोनों फूलतेफलते रहैं परन्तु बहुधालोग उस्से अपनानाम भी समुझते हैं सोभीसत्यहै किंतुयथार्थता उसकीपुण्य औरप्रतिष्ठादोनोंपर पहुंचती है-और जब अवश्याभाव करकेदियाजाताहै तो एकऐसीरीतिसे देना कि जिस्से वह पुण्य और प्रतिष्ठारूपी वृक्ष उनकासदा सर्वदा हराफरा दृष्टि में आयाकरे तो क्या अच्छीबात है किंतु वहीधन एकत्र उस वस्ती में संचितहोता रहे और साहूकारों की रीति से उसका व्याजभी बढ़ता रहै और हरसाल उक्तमार्गसे संग्रह भी होतारहै तो इसप्रकारसे अनेकों लक्षरुपया प्रत्येकवस्ती में संचितहोजाय औरआवश्यकता पर काम आयाकरै (भेद ४)और कदाचित् विप्रकुल अपने मनमेंइस बातकादुःख मानताहो कि वहधन हमाराहक सो क्योंकर एकत्र संचित कियाजाय तहां प्रथमतो उनको इस अभिमानसे प्रसन्नता धारणकरनी चाहिये कि हमारा कुललोक रक्षाकाहेतु निश्चित कियागयाहै अर्थात् वहधन एकत्र संचितहोनेपर भी ब्राह्मधन कहलावैगा और उसमेंसे किसी उपकारमें लगाना भी उनकी आज्ञा विना नहीं हो सकैगा

अर्थात् जबवही विप्रकुल अपनेहस्ताक्षरकरदेवैगा कि इतनाद्रव्यब्राह्मधनमेंसे अमुक उपकारमें दियाजावे तबकोई हाथ लगासकैगा-और यहकैसी वडीबातहै कि उसी विप्रकुल मेंसे जबकिसी एकपर कन्यादान आदिकोई भी विपत्तिआनि पड़ैगी तब उसमेंसे सबकी संमति और आज्ञासे उसकाबेड़ा पारकियाजायगा किन्तु कुछयही नियमनहीं है कि केवल अनाथ कन्याओंकेही उपकारमें लगे-और जब विप्रकुलमें ऐसा सुखदायी प्रबंध और लोगदेखेंगे तौ वेभी उनकीदेखा देखी लोकलाज के लिये ऐसे नानाभांति के प्रबंधबांधेंगे जिससे कोईमनुष्य किसीभांति दुःखीनहीं रहनेपावै तौ सर्वथा इसबातके मुखिया विप्रही गिनेजायँगे-और विप्रकुलको जो बड़प्पन या आचार्यकी पदवीमिली थी तौ इन्हींबातोंसे कि वेपहले आप शुभकामों का आचरण करते और औरोंसे करवातेथे- शोचनेकी बातहै किजब किसीने पांचरुपये के पैसेबर केहाथसे सङ्कल्प कराये और एक२ या दो२आने कुछमनुष्योंके हाथआये तौदोदिन के पान तमाखूखानेसे क्याफल सिद्धिहुई अथवा कहीं कालांतरमें किसी अमीरने कदाचित् विप्रोंके हज़ारघरकीबस्तीमें हजारका संकलपकिया और घरपीछे १)आगया तौभी क्या बडी बातहुई(भेद ५)कदाचित् देनेवाला यहसंकोचमाने कि मैं विप्रोंकोदे-त्ता तौ पुण्य और प्रतिष्ठाथी एकत्र संचितकरनेमेंक्याहै सो यहसंकोच उसकाव्वथा है क्योंकि पुण्यकी ओरसे तौ उसकी यह विशेषताहै कि वहांतौ दो २ पैसे कुछआदमी चाटिके फिर ज्योंकेत्यों और इसमें जोधनकी वृद्धिहोयगी सोभी लौटकर उन्हींकेपरम कल्याणोंमें लगैगी और सदैवकाम आवेगी और यहबात सबकोई जानताहै कि दाताकापुण्य उसदानमें अधिक होताहै कि जिस्से किसीको अधिक आराम निकले फिर इस्सेअधिक आराम और क्याहोगी कि एकबारकादेना सदा सर्वदा कामआया करे और प्रतिष्ठाकी ओरसे यह बड़प्पनहै कि वहां तौ अपनीशक्तिकेअनुसार जितने विप्रोंके हाथपरधरा उतनोंने कुछवाह वाहकरी और जिनकेहाथ कुछनआया उन्होंने आगे औरपीछेभी निंदाकरी और यहाँ जिसकिसी धनाढ्य साहूकारके खजानेमें वह रुपयाजमाहुआ और विप्रकुलके जोप्रधान और प्रतिष्ठितसब मिलकरके जमाकराने गये उनके सन्मुख उसकानाम लिखकर जमाकिये गये और प्रमाणके लिये उसकी दूकान या कोठीआगे दो पंक्तिका प्रसिद्धपत्र चिपटायागया कि अमुकमासमें अमुक मनुष्यके पाँच या पचास रुपये (ब्राह्मधन) में चढ़े तौ इस्सेअधिक प्रतिष्ठा क्याहोगी (भेद ६)इसप्रकारके धर्मसंबन्धी प्रयोजनोंका प्रबन्ध वहलोग करसक्तेहैं कि जोसंप्रति सभाओंका प्रकाश नानानामसे करतेहैं-और जो वह इनबातोंमें उद्योग न करसक्तेहों तौ इस्सेआगे और क्या शतघ्नीका बाँधना उनके जिस्से कियाजायगा किन्तुधर्मशब्द के विशेषणवाली वस्तुतौ धर्मसंबन्धी कामोंमें सहायताकरनेसेही यथानाम तथागुण

होसक्तीहै अन्यथा धर्मकोई ऐसीवस्तुनहींहै कि जिसकी मूर्तिके ध्यान या नामके आराधनमात्रसे कुछकाम चलसक्ताहो किन्तुधर्मशब्दसे द्वितयलोकी मर्यादोंका भाव पाया जाताहै उसमेंभी पहले यहलोक और पीछे परलोकहै,जो इसलोकका प्रबन्ध अच्छा करसकैगा तो परलोकभी सुगम होजायगा परन्तु किसी प्रबलकी दीहुई तीन बातोंके विना न करसकनेमेंभी उनका क्यादोषहै सो उनतीन बातोंमें एक तो जो कुछ शुभचिंतकताके प्रकारसे सभावाले कहें उसको और लोग प्रमाणकरें दूसरी जो उस वार्ताका उत्पादनकरे वह किसी प्रकारका दण्डपासके तीसरी निर्लोभता जिसमें कुछ अपनास्वार्थ नहींदेखें-इनबातोंका अधिकार जैसे सभासदोंके लिये उचितहै तैसेही प्रत्येक जातिकी बिरादरीमें जो मुखियाहों उनकोभी उचितहै कि जो मनुष्य उनकी बिरादरीका बिवाह योग्यकन्याके बिवाहमें अधिक उपेक्षाकरै वह उनकेद्वारा ज्ञातिदंड का भागीहो और जो वेही उसको दंडदेनेसे उपेक्षाकरें तौभी उसग्रामकी सभाद्वारा शिक्षापानेके योग्य निश्चित कियेजायँ(भेद७)इसी ६४ केश्लोकमें बिवाहकी उपेक्षासे भ्रूणहत्याका पाप निश्चितहुआ और उसीआशयसे उपेक्षावाला दंड्य निश्चितहोचुका-फिर जब बिवाहकी उपेक्षा इतनीबड़ी समुझीगई तो द्विरागमनकी उपेक्षाको इससे भी सहस्रगुण समुझनी चाहिये क्योंकि बिवाहके नहोनेमें अबिवाहित या अबिवाहिताको एकप्रकारके संतोषकी धारणा बुद्धिबनी रहतीहै और बिवाहके होजानेपर दोनों को एकप्रकारका उत्साह उत्पन्न होजाताहै फिर जबऐसी दशापर द्विरागमनके बंधनसे उचित अवस्थाके उपरांतभी पाँच२ सात२ वर्षोंका वियोग करदेना तो यहअपराध सर्वथा उनके अधिकारियोंकाही प्रत्यक्षहै कि जो इसआग्रहसे उपेक्षा करतेहैं कि जब बिवाहसे आधाखर्च हाथआवै तब यहबातहोया इसआग्रहसे कि अब समवर्षका प्रारम्भहोगया जब फेर विषमआवै तब दोवर्षके अंतरसेहो-तहां आधेखर्चका आग्रह तो सर्वथा निरर्थकहै क्योंकि जब निर्धनतासे बिवाहकीही उपेक्षा अनुचितहै तो द्विरागमनमें धनकी क्या अपेक्षाहै प्रथम तो वर्षोंतक बिवाहके उद्योगमें चिंतारही जबदैवयोगसे उसबातका ठिकानालगा तब करेकरायेपर फेरकुआँमें डालदिया कि अबफेर आधाखर्च मिलै तो यहबिवाह बिवाहोंकी गिनतीमेंआवै नही तो ढोलोंसे खालगई फिर क्या इससे फलसिद्धिहुई कि आपतो दोनोंपक्षी भ्रूणहत्या के भागीहोना और जिन दोनोंके सौख्यकेलिये धनलगायाथा वे दोनों आपको संतापित होतेरहे और गुरुओंके सन्मुख यद्यपि कुछ कहतेनहीं परन्तुवेभी उनको अपराधी निश्चित करतेहैं यहबात उस भ्रूणहत्यामे भी अधिकहुई-और कालकी अवधिका जो आग्रह यद्यपि ज्योतिषविद्यामें नियतहै सो वह कुछ अधिकप्रमाणके योग्यनहींहै क्योंकि धर्मशास्त्रने बिवाह संबन्धी कोईसी छोटीमोटीभी बातकीआज्ञा और नियमको कहनेसे नहींछोड़ा

फिर इतनी बड़ीबात जो विवाहसे आधीगिनी जाती और घंटाघोषसी प्रसिद्धहै उस की किंचित् समस्याभी नकरता जो प्रमाण योग्यहोती-और जोयहबातकहो कि ज्योतिषभी एकप्रकारका शास्त्र है क्या उसकीबात प्रमाण योग्यनहीं होसक्ती है तिसका यह सिद्धांतहै कि ज्योतिषमें चोरोंकेलिये चोरीकरनेकेभी मुहूर्त्तलिखेहैं अपघातियोंके लिये किसीके घातकरनेकेभी मुहूर्त्तलिखेहैं तो क्या उसमुहूर्त्तके लिखेहोनेसे चोरीकरनेकी प्रमाणता या वधकरनेकी प्रमाणता धर्मशास्त्रमेंभी मानलीजायगी अर्थात् ज्योतिषमें यहबातहै किचाहै कोईअच्छा अथवा खोटेसेखोटा कामभीकरनेचले और मुहूर्त्तबूझै या कोई ऐसानवीन कामकरनेचले जिसकामुहूर्त्त लिखाहुआनहींहै उसकाभी मुहूर्त्त ज्योतिषीको शुभाशुभनक्षत्रोंकेअनुसार कहदेनापरैगा तो क्या वहबात धर्मसंबंधी समझीजायगी-और भलाजो लोकाचारसे प्रमाणभीकरो तो किसकेलिये वहद्विरागमनका कालपरिमाणहै कि जिनके अतिबाल्यअवस्थामें विवाहहोजातेहैं उनको वर्षोंतक पिताकेघर निवासकरनाहोताहै जब गमनाकियाजाताहै तब विषमवर्ष लीजातीहैं-परंतु जिनके पूर्णअवस्थामें विवाहहोतेहैं उनकेलिये यहपरिमाण अनुचित और असंभवहै और भलाजो उनकेलियेभी कोईलीकपीटनाचाहै तो उनविषमवर्षोंका अनुकल्प विषममासमं सूचितहै उसन्यायसे कि जैसे यज्ञोपवीतमें(ब्रह्मचर्य्य)का अनुकल्प एकघटिका दोघटिकामात्रमें होजाताहै-कदाचित् यहकहो कि हमारीवुद्धितो ज्योतिषकेऊपर आरूढ़है जबकोई ज्योतिषका विधिनिषेधपायाजाय तभी अनुकल्पमें बुद्धि जमै और मनको संतोषआवै-तहाँ-पित्र्येगृहेचेत्कुचपुष्पसंभवस्तदानदोषःप्रतिशुक्रसंभवः-यह ज्योतिषकावाक्य जोसारेलोकमें घंटाघोषवत्प्रसिद्धहै तिसका यह भावार्थहै कि जो कन्या पिताकेघरमें कुच और पुष्पवतीहोनेलगे तो गौनेमें जो सन्मुख शुक्रका बड़ादोषगिनाजाताहै,सो उसकन्याकेलिये वहदोषनहींहै अर्थात् ऐसीकन्याकागौना शुक्रकेसन्मुखभी निःसंदेहकरो-अबकहो कि जोशुक्र केवल कोईमहीनोंका माहिमानहोताहै किंतु कुछमहीनोंपीछे वह सन्मुखसे हटजाताहै तिसपीछे गौनाहोसक्ताथा परंतु उतनेमहीनोंकेलियेभी ऐसीकन्याका निवासापिताकेघरमें उचितनसमझा गया इसलिये ज्योतिषनेभी यह कहदिया कि निःसंदेह शुक्रकेसन्मुखभेजदो कुछदोष नहींहै-फिर भला धनकेआग्रहसे अथवा विषमवर्षोंकेआग्रहसे तीनवर्ष या पाँच या सात या नौवर्षताईं ऐसीकन्याकाराखना ऐसाहै या नहीं कि जैसे कोईकिसीपक्षीकोपर वशपीजरामेंबंदकरै-अब ध्यानधरनाचाहिये कि गौनेकेबिचारमध्ये सम और विषम का भेद यह एक साधारणभावसे लोकाचारकी रीतिहै कुछ धर्मशास्त्र विहित नहींहै और यद्यपि लोकाचारकेहेतुसे पीछे२ ज्योतिषमेंग्रथितहुई और प्रमाणपाईगई तथापि जिनयुग्मवर्षोंका दोषमानतेहैं तिनकेआगे सन्मख शुक्रकादोष बड़ाप्रबलहै तिसका

कुछअनुकल्पभीनहींरक्खा किंतु समूलउसका परिहारकरदियागया. उस परिहारकी अपेक्षासे यद्यपि समवर्षोंकाभी परिहारहीउचितहै कुछ अनुकल्पकीआवश्यकतानहीं रही परंतु लोकाचारकीदृष्टिसे युग्मवर्षोंकेबीच विषममासोंका अनुकल्पहोना यह सर्वोपरिउत्तमहै-इन सबकारणोंके सिद्धांतसे द्विरागमनकी उपेक्षावाला उससे दशगुण दंडनीयहै कि जोकुछदंड विवाहकीउपेक्षामें उचितहोताहो ६४ ॥

सकृत्प्रदीयतेकन्याहरंस्तांचोरदंडभाक्। दत्तामपिहरेत्पूर्वाच्छ्रेयांश्चेद्वरआव्रजेत् ६५॥

भक्ष०-एकबारकन्या दीजियेहै उसको हरनेवालाचोर दंडकाभागीहै-दीहुईको भी हरलेवे जो पहलेसे श्रेय वरआवै ६५ ॥

अभि०-शास्त्रका यह नियमहै कि कन्याएकहीवार दानकरीजातीहै उसे जो कोई पिता देकर फिरहरै वह चोरकेसमान दंडदेनेयोग्यहै-परंतु जो पहलेवरकी अपेक्षा विद्या कुटुंब आदि विशेषताओंसेयुक्त ऐसा कोईवर हाथआजावै तो उस दीहुईको भी नदेवै किंतु उस दूसरेको विवाहिदेवै तो वह दंडकेयोग्यनहींहै-परंतु यहबात उसी अवस्थामें होसक्तीहै कि जब पहलेवरमें कोईसा पातकयोग या प्रबलरोग या कुछ दुराचरण उसकाप्रकटहो अन्यथा श्रेष्ठवरके मिलनेसेही नहीं होसक्तीहै क्योंकि जब यहीबात निश्चितहुई तो एकसेएकअधिक श्रेष्ठवर प्रतिदिन हाथआसक्तेहैं-सो यहदेनाभी सप्तपदीके सातवेंपदसे पहले२ नियतहै अर्थात् जब सातवांपदपूराहोजाय तब उसवरकेदोष प्रकटहोनेपरभी दूसरेको नहीं देसक्ताहै ६५ ॥

अनाख्यायददद्दोषंदंड्यउत्तमसाहसम्। अदुष्टांतुत्यजन्दंड्योदूषयंस्तुमृषाशतम् ६६ ॥

भक्ष०-दोषको न कहकरदे तहांउत्तम साहसदंड-अदुष्टाको छोड़ताहुआभी दंड्य है-मृषा दूषण देताहुआ एकसौसे ६६ ॥

अभि०-जोकोई नेत्रोंसे दिखाईदेनेयोग्य कन्याके किसीदोषको कहेबिना कन्यादान करताहै वहपिता उत्तम साहसनामका दंडदेने योग्यहै-और जोकोई अदोषा कन्याको लेकर पीछेत्यागनेलगै वह वरभी उत्तम साहसकी संख्यावाला दंडदेने योग्य होताहै या जोकोई विवाहसे पहलेही अदोषा कन्याको महारोगादि कुदोषोंका झूँठा दूषण लगाताहै वहवर एकसौ १०० पणका दंडदेने योग्यहै ६६ ॥

भाषि०-उत्तम साहसदण्डका परिमाण एकहज़ार १००० पणका मनुजीने कहाहै और याज्ञवल्क्य योगीश्वरने १०८० पणका कहाहै और पणका परिमाण जोसमुझा चाहोतो इसआचाराध्यायके अंतमें ३६४ केश्लोकमें देखना परन्तु यहबातभीस्मरण बनीराखो कि यहपणको और उत्तमसाहसको आदिलेकर परिमाणोंका जाननाकेवल ज्ञानमात्रकेलिये उचितहै अन्यथा इनसे संप्रति कुछकाम नहीं चलसक्ता क्योंकि ये प्राचीन व्यवहारोंके प्रकार कहेहुयेहैं औरतुलापरिमाण या मुद्रापरिमाणअपनी आव-

श्यकता पर वर्त्तमान राज्यसेअपेक्षा रखताहै और यद्यपि उसके हिसाबकी परिगणना करिके वर्त्तमान समयके मुद्रातथा तुलामानसे तुल्यताभी करली जासक्तीहै परन्तु इस्से कोईसीफल सिद्धिनहींहै जोइतनाबड़ा तुपकंडनकरो क्योंकि जो दंडइसश्लोकमेंकहे हैं वेभी राजद्वारके आधीन हैं और यद्यपि कदाचित् कोई स्थल ऐसाभी आनिपड़े कि राजद्वारसेभिन्न किसीप्रकारके मनुष्योंके आधीन यहवात्तीहो तहांभी वे मनुष्य उसी मुद्रा अथवा तुलामानसे दंडकरैंगे किजो उनके वर्त्तावमें आरहाहो-हाँ केवल इतनी वातहै कि जवशास्त्रके अनुसार दृष्टिकरेंगे तव इतनाध्यान करलेवेंगे कि शास्त्रमें इस विषयपर इतने पण लिखेहैं हमैंभी उसके अनुसार चलना चाहिये जिस्से इसदंडके विचारमें हमसे कुछ अन्याय न होजावे-परन्तु उस अनुसारतामेंभी कुछ यही नियम नहींहै कि जोकुछ लिखाहो वही दंडसर्वत्रहोसक्ताहो अर्थात् दण्डके विचारमें पहलेतो विचारकरने वालेका वलावल फिर अपराधका वलावल फिर अपराधीका वलावल फिर देशकाल शक्तिव्यवहार व्यवहारकाहेतु इनसवके वलावलका निर्णयकरलिये पीछेजोकुछ सवकी संमति या एकहीप्रधानकी बुद्धिमें समावे सो कियाजाता है ६६ ॥

अक्षताचक्षताचैवपुनर्भूःसंस्कृतापुनः । स्वैरिणीयापतिंहित्वासवर्णंकामतःश्रयेत् ६७ ॥

भक्ष०—अक्षता और क्षताभी पुनः संस्कारकरीहुई पुनर्भू-और स्वैरिणीजोपतिको छोड़कर कामसे सवर्ण के आश्रयहो ६७ ॥

भभि—दोप्रकारकी(पुनर्भू)होतीहैं एकतो क्षतादूसरी अक्षता तिनमें क्षतातो वहकिजो विवाहपहले किसीपुरुषके संसर्गसे दूपितहो और अक्षतावह किजो पुरुषदूपित नहो परंतु संस्कार दूपितहो किंतु पहलेभी किसीके साथसगाई आदिकुछसंस्कार होचुका हो जैसा ६५के श्लोकमें पिछले अद्धाकाभावहै कि सातवें पदसे पहले २ औरको देदेवे यह दोनोंप्रकारकी कन्या जवकिसीके साथ विवाहीजाती हैं तव(पुनर्भू)कहलातीहैं यह (पुनर्भू) भीजो पतिको छोड़कर कुमारअवस्था में कामके हेतुसे सवर्ण अर्थात् जाति-मात्रके मनुष्यका आश्रयले रहे वह स्वैरिणी कहलातीहै ६७ ॥

अपुत्रांगुर्वनुज्ञातोदेवरःपुत्रकाम्यया । सपिंडोवासगोत्रोवाघृताभ्यक्तऋतावियात् ६८ ॥

भक्ष०—अपुत्राको पुत्रकी कामनासे गुरुओंसे अनुज्ञापायाहुआ देवर या सपिंडया सगोत्रघृतकालेप किये हुये ऋतुकालमें गमनकरे ६८ ॥

भभि०—अपुत्राका यहनियम नहींहै कि विधवा या सधवा किंतु साधारण वाक्यमें विधवा और क्लीवादिभार्या इसकाभावहै ऐसीअपुत्राकेपुत्र उत्पादन करनेकी कामना से गुरुकहिये पितामाता पुरोहित आदिकी सुसंमतिपूर्वक आज्ञामिलनेपर देवरअपने सारेशरीरमें घृतका लेपकरिके केवल ऋतुकालमें गमनकरे-स्वकीय देवरके अभावमें

सपिण्डदेवरहो सपिण्डदेवरके अभावमें सगोत्रदेवरहो-सपिण्ड और सगोत्रका लक्षण ५२ केश्लोककी अधिकोक्तिमें निश्चितहै ६८ ॥

अधि०—इसश्लोकमें कहीहुईवार्त्ता(संदिग्धधर्म) मेंगिनतीहै क्योंकि याज्ञवल्क्यजीके वचनका स्पष्टअर्थतो यहीहै जो ऊपरलिखागया-और यद्यपिसमयका प्रतिपालकरने केलिये इसश्लोकका-अनुकर्षभी कियागयाहै कि (यस्याम्रियेतकन्याया वाचासत्येकृतेपतिः। तामनेनविधानेननिजोविंदेतदेवरः) अर्थात् जिसकन्याकेविवाहकी वाचासत्य होचुकीहो कि यहअमुकवरको विवाही जायगी सो वाचासत्यहोना सगाईको कहतेहैं किसीदेशमें उसीको वररक्षाकहतेहैं कहीं रुकावानिकहतेहैं इसदशाकेउपरांत वहपति मरजाय जिसको सगाई दीगईथी तोउसीका छोटाभ्राता उसकन्याको उसीविधिसे विवाहलेवे जो विधि उसकेलिये विवाहमें होनी उचितथी-इसआशयके अनुकर्षसे उस ऊपरली वार्त्ताको भी वाग्दत्ता कन्याका विषय निश्चय किया है परन्तु यह अनुकर्ष ऐसा है कि जैसा जल तैल विंदुन्याय क्योंकि वह विषय और है यह और है उसमें क्षेत्रजसन्तान का विषयकहा है इसमें विवाहका विषयकहा है दूसरे यह बात कि वाग्दत्ता कन्याके संतान उत्पादन करना यह असंभव है और वाग्दत्ता का विवाह जोछोटेभाई से कहा तो इसकाकुछ आश्चर्य नहीं है क्योंकि वाग्दत्ता उस मरेहुये की पत्नी नहीं कहसक्ती है भला वाचासत्य होना यहतोबहुत छोटीबात इससे कुछ विवाह नहीं कहलासक्ताहै परन्तु ६५ केश्लोकमें उत्तरार्द्धमें सप्तपदीके छठे पद ताईभी वहकन्या किसी अन्यवरको देदेनीकही है जो पहलेकी अपेक्षा दूसरा श्रेष्ठ आजावे-इससे यह अनुकर्ष तो उसमें कोईप्रकारसे घटतानहीं है क्योंकि जो वाग्दत्ता कन्या देवरको विवाहीजातीहै वहउस देवरकीही भार्य्या औरउससे जो संतानहोतीहै सोभी उसी देवर की संतानकहातीहै मरेहुयेकी क्षेत्रजनहीं कहात्ती और वह देवर उसका देवर नहीं कहासक्ता क्योंकि उसमरेहुयेका भार्य्यात्व उसकन्यामें केवलनाममात्र उत्पन्नहुआ था कुछउसकी भार्य्यानहीं होगईथी (भेद२) यद्यपि ऊपरका लेख सबसत्य है और शास्त्रकीविधि वहीहै जो याज्ञवल्क्यजीने कही परन्तु सिद्धांतउसका इतनाहै किवह विधिलोक विरुद्धप्रत्यक्षहै इससे उसकाप्रचारनहींहै तथापि वहलोक विरुद्धता सार्वलोकी और सार्वदेशी नहींहै किंतुअद्यापि किसीकिसी देश विभागमें उत्कृष्टजातों और बहुधा शूद्रजातों में प्रचारभी पायाजाता है परजहांनिंद्य है तहां अनुचित है ६८ ॥

आगर्भसंभवाद्गच्छेत्पतितस्त्वन्यथाभवेत्। अनेनविधिनाजातःक्षेत्रजोस्यभवेत्सुतः ६९ ॥

मक्ष०—गर्भके संभवताई से पीछे या अन्यथा गमनकरे तो पतितहोवे-इसविधिसे भयासुत इसका क्षेत्रज होवे ६९ ॥

अभि०—ऊपरले असंठके श्लोकमें कहीहुई विधिसे जोपुत्रउत्पन्न होवे सो उसपति काक्षेत्रजपुत्र कहावै जिसकीवह भार्य्या है-परन्तु वहगमन करनेवाला देवरजो गर्भ होजाने पीछेभी गमनकरे या अन्यथा कहिये गुरुओंकी आज्ञाविना या शरीरमें घृत कालेप कियेविना या ऋतुकाल विनातो वह पतित कहिये पातकीहोवे ६९ ॥

अधि०— घृतकालेप इसलिये है कि परस्पर देहका सौख्यनहीं व्यापै किंतुकेवल गर्भके प्रयोजन की आवश्यकता है ६९ ॥

हृताधिकारांमलिनांपिंडमात्रोपजीविनीम्। परिभूतामधःशय्यांवासयेद्व्यभिचारिणीम् ७० ॥

मक्ष०—व्यभिचारिणी को अधिकारसे हीनमलीन पिंडमात्र भोजनवती परिभूता नीचे शयनवाली करिके बासकरावे ७० ॥

अभि०—जोस्त्री व्यभिचार करनेलगे उसको इसप्रकार से घरमें वासदेवे अधिकार से हीन अर्थात् जो घरकी मालकियन का अधिकार पालनपोषण देनालेना आदि स्त्रियोंके आधीन होताहै सोउसके आधीन न रक्खै-और मलीनाकहिये वस्त्रआभूषण आदिशृंगार सेभीहीन करदेवे-और पिंडमात्र कहियेशरीर और प्राणोंके वनेरहने योग्य साधारणभोजनदेवै-परिभूता कहिये धिक्कारआदिसे असत्कारकरीहुईधरतीमेंशयन करावै-इसप्रकारकीदशा सहितघर में राखै किंतुघरसे वाहरनहीं निकालदेवै७० ॥

अधि०—यहदशा इसलिये है किजिससे व्यभिचारसे वैराग्यहोजाय परन्तु इससे अधिककोईसी पीड़ाअथवा शरीर दंडनहीं देवै क्योंकि स्त्रियोंकेलिये वडेसेवड़े अपराधपरभी चाहै किसी अवसरमें घरसेवाहर विसर्जनभी करदेनापड़े परंतु देहदण्ड या प्राणदण्ड यह किसी अवस्थामें-नहीं उचितहै-तथाहि (महताचापराधेनदंडःस्त्रीणांविसर्जनम्) सोइसकाविशेष आशयआगे ७२ के श्लोकमें कहेंगे ७०॥

सोमःशौचंददावासां गंधर्वश्चशुभांगिरम्। पावकःसर्वमेध्यत्वंमेध्यावैयोपितोह्यतः७१ ॥

मक्ष०—इन्होंको सोमतो शौचदेताभया और गंधर्वशुभवाणी-अग्निसर्वमेध्यत्वदेता है इससे स्त्रियाँ मेध्य हैं ७१ ॥

आभि०—स्त्रियोंको विवाहसे पहले कुमार अवस्थामें चंद्रमा गंधर्व अग्नि येतीनोंभोगतेहैं तहाँचंद्रमातो शौचदेताहै इसीहेतुसे स्त्रियोंकेलिये अधिक शौचविधि पुरुषों के समान नहीं कहीहै-और गंधर्व इनकोभोगकरके मधुरवचनों का वोलनादेते हैं-अग्नि इनको सर्वमेध्यत्व कहिये पवित्रतादेताहै अर्थात् जिसवस्तुको ये छूवें वह इनके छूनेसे पवित्रहो इसकारणसे स्त्रियाँ सदाही पवित्र हैं ७१ ॥

व्यभिचाराहतौशुद्धिर्गर्भेत्यागोविधीयते। गर्भभर्तृवधादौचतथामहतिपातके ७२ ॥

मक्ष०—व्यभिचारसेऋतुमेंशुद्धि-गर्भमेंत्यागकहियेहै-गर्भ और भर्त्ताके वध आदि में भी-तैसेही महापातकमें ७२ ॥

अभि०–व्यभिचारकी संभावनाहोनेसे मासिक रजोदर्शनमें स्त्रियाँ शुद्धहोजाती हैं परंतु व्यभिचारसे गर्भहोजाने में उनकात्यागकरदेना उचितहै और गर्भका वध कहिये गर्भपातन और अपने भर्त्ताका मारडालनाआदि अपराधों में भी त्याग-तैसेही महापातक ब्रह्महत्या आदि करनेवालीका भी त्याग कहते हैं ७२॥

अधि०–भर्त्ताकामारडालना आदि-इस(आदि)शब्दसे शिष्यआदि का गमनभी लेना सोई व्यासजीने कहाहै कि(चतस्रस्तुपरित्याज्याःशिष्यगागुरुगाचया।पतिघ्नीचविशेषेणजुंगितोपगताचया)अर्थात् चारस्त्रियाँये भी त्यागकरने योग्य हैं एकतौ शिष्य कहिये नौकर चाकर आदि से गमनकरनेवाली दूसरी गुरुकहिये अपने बड़ोंसे गमन करनेवाली तीसरी विशेषकर पतिकावधकरनेवाली जिसका चर्चाऊपर आयाथा चौथी जुंगितोपगता अर्थात् जुंगितकहिये प्रतिलोम जातैं जो चमारआदि प्रसिद्धहैं तिनसे गमन करनेवाली ७२ ॥

अबयहबातकहते हैं कि पुरुषको दूसराविवाह किस२ दशापरकरना चाहिये ॥

सुरापीव्याधिताधूर्त्तावन्ध्यार्थघ्न्यप्रियंवदा। स्त्रीप्रसूश्चाधिवेत्तव्यापुरुषद्वेषिणीतथा ७३ ॥

भक्ष०–सुरापीनेवाली १ व्याधिमती २ धूर्ता ३ वंध्या ४ अर्थनाशिनी ५ अप्रियवचा ६ तथा स्त्री पैदाकरनेवालीभी ७ पुरुषविरोधिनी ८ अधिवेत्तव्य हैं ७३ ॥

अभि०–ये आठस्त्रियाँ अधिवेदनयोग्य हैं अर्थात् ऐसी स्त्रियाँ जिसके घरमें हों वह पुरुष दूसराविवाह निःसंदेहकरै इसदूसरे विवाहकोही(अधिवेदन)कहतेहैं-आठों के स्पष्टलक्षण एकतौ जो मदिरापान करतीहो १ व्याधिता जो बड़ेप्रबलरोगोंसे ग्रसीहो २ धूर्ताजो छलकरतीहो ३ बांझ ४ अर्थघ्नी जोधन या बड़ेप्रयोजनों का नाशकरदेतीहो ५ अप्रियंवदा जो कटुकवचन शस्त्रकेसमान कहतीहो ६ वारंवारकन्या पैदा करतीहो ७ पतिसे वैरकरतीहो ८।७३ ॥

अभि०–इनलक्षणोंके कहनेसे यह सिद्धांतहै कि इनकहेहुये अवगुणों के अभावमें पुरुषको दूसरा विवाहकरने का अधिकारनहीं है-और यद्यपि अवगुणोंके होनेपर उसको अधिकारतौ यहाँतकहै कि जो इनमेंसे एकभी अवगुणहोतो द्वितीय भार्याका संग्रहकरसक्ताहै परंतु इसमें इतनी विचार दृष्टि अधिकहै किजो वहएक अवगुणउस पुरुषकी सत्पात्रताके अनुसार असह्यहों तो उसस्त्रीकी संमति बिनाभी अधिकारीहै अन्यथा जो वही अवगुण उसपुरुषमेंभीहो या उसकीप्रकृति और कुपात्रताके अनुसारसह्यहो तो उसस्त्रीकी संमतिविनाकरनेका अधिकारी नहीं है-इसके सिवाय कोईकोई अवगुण उनआठमेंसे ऐसाभीहै कि जिसकेहोनेपर सदाही उसअवगुणवतीकी प्रसन्नता या संमति लेलेनी उचितहै क्योंकि वह अवगुण सदैवही ईश्वरके आधीनहै उसमें कुछस्त्रीका अपराधनहींहै जैसा बहुत कन्याओंकाहोना इसमें जोस्त्री अपनी प्रसन्नतासे

अभिलाषा पूर्वकसंमति देदेवे कि तुम दूसरा(अधिवेदन)करो तबकरनासुफलहै-अन्यथा जहाँकई अवगुण एकत्रहोजायँ तहाँकुछ प्रसन्नता या संमतिका नियम नहींहै-परंतु किसी अवगुणरूप कारणके विनाही जब कोई पुरुष(अधिवेदन)करना चाहे तिसका निषेध और करनेवालेका दंडभी आगे ७६ केश्लोकमें कहेंगे ७३ ॥

अधिविन्नातुभर्त्तव्यामहदेनोऽन्यथाभवेत्। यत्रानुकूल्यंदंपत्योस्त्रिवर्गस्तत्रवर्द्धते ७४ ॥

अक्ष०-अधिविन्नाभी भरने योग्यहै अन्यथा महान् एनस्होवे-जहाँ दोनोंदंपत्यमें अनुकूलताहै तहाँ तीनोंवर्ग वढ़ेहैं ७४ ॥

अभि०-(अधिविन्ना) पहलीभार्या कहातीहै कि जिसकेऊपर दूसरीसौत आईहोसो वह(अधिविन्ना)उसदूसरीके आवनेसे कुछ निरादर योग्य नहींहै किंच जैसे पहले उसका पालनपोषण होताथा तैसेही अबभी दानमान सत्कारोंसहित करनाउचितहै अन्यथा जो पहलेके समान नहीं करेतौ बड़ापापहोवे और उसीपापसे उसकुटुंबीकी सर्वथाहानि होतीहै-क्योंकि त्रिवर्ग जोधर्म १ अर्थ २ काम सौख्य और कामना ३ इनतीनोंका जो(वर्ग)कहिये समूह सोवह ऐसात्रिवर्ग नामका ऐश्वर्य उसीघरमेंहोताहै और बढ़ता है कि जिसघरमें स्त्रीपुरुष दोनोंमेंपरस्पर अनुकूलता अर्थात् प्रीतिभाव और आज्ञाकारित्व दोनोंका दोनोंओरसे होताहै ७४ ॥

अधि०-इस वार्त्ताकेमध्ये मनुजीनेभी अपने शास्त्रमें बड़ेउत्साहसे कहाहै सो उनके कहे तीनश्लोक हमलिखतेहैं-यथा(संतुष्टोभार्ययाभर्त्ताभर्त्रा भार्यातथैवच। यस्मिन्नेवकुलेनित्यंकल्याणंतत्रवैध्रुवम् ॥ यदिहिस्त्रीनरोचेत पुमांसंनप्रमोदयेत्। अप्रमोदात्पुनः पुंसः प्रजननं न प्रवर्त्तते॥स्त्रियांतुरोच मानायां सर्वंतद्रोचतेकुलम्। तस्यान्त्वरोचमानायां सर्वमेव नरोचते)इनतीनोंका साधारण भावसे यहअर्थहै कि जिसकुलमें निरंतर भर्त्ता तौ निजभार्यासे संतुष्ट और भार्या अपनेभर्त्तासे संतुष्ट रहाकरतीहो तहाँ निश्चयकर कल्याणका निवासबनारहताहै-जोस्त्री वस्त्रआभूषण आदिसे अच्छीभाँति शोभितनहीं होतीहै वहस्वामीको प्रहर्षनहीं देसक्तीहै पुनि उसीअप्रमोदके हेतुसे पुरुषकी संतति नहींहोती और न बढ़तीहै-स्त्रीके आभूषण आदिसे शोभावती कांतिका प्रकाश घरमें होनेसे वह साराहीकुलप्रकाशित होताहै-पुनिउसी के चमत्कृत नहींहोने और निज भर्त्ताकी उपेक्षामें वहसाराही कुलमलीन होजाताहै-यह मुनीश्वरोंका सिद्धांत ऐसाठीक और यथार्थ मिलताहै जो सारे संसारपर भिन्न २ दृष्टिकरनेसे तद्रूपप्रतीत होजाताहै कि जहाँ वहबातहैतहाँ वहीफलहै और जहाँ वहदशाहै तहाँ वही तद्रूपहै ७४ ॥

मृतेजीवतिवापत्यौयानान्यमुपगच्छति। सेहकीर्तिमवाप्नोतिमोदतेचोमयासह ७५ ॥

अक्ष०-जोनारी पतिकेमरेपीछे और जीवतेहुयेभी अन्यपुरुषके समीप नहींजातीहै सो इसलोकमें सुकीर्त्तिको पावती और परलोकमें उमानाम भगवतीके साथक्रीड़ा

करतीहै-अथवा इसीलोकमें सुकीर्त्तिको पायकर उमानाम जो कीर्त्तिकहिये प्रशंसा और कांतिकहिये शोभा और शांतिकहिये क्षेमइन सबकेसाथ आनन्द करती है ७५॥

आज्ञासंपादिनींदक्षांवीरसूंप्रियवादिनीम्। त्यजन्दाप्यस्तृतीयांशमद्रव्योभरणंस्त्रियाः ७६॥

भक्ष०—आज्ञासाधिनी १ दक्षा २ वीरसू ३ प्रियवादिनी ४ ऐसीस्त्रीको त्यागताहुआ तिहाईदेने योग्यहै निर्धनभीस्त्रीका भरणमात्र ७६॥

आभि०—आज्ञाको तत्काल साधन करनेवाली १ दक्षाकहिये अतिचतुरा जो बुद्धिके विचार सहित कामकरे २ वीरसूपुत्रवाली ३ मधुरबोलनेवाली ४ इनचारों लक्षणवालीको छोड़कर जोकोई द्वितीयभार्याका संग्रह करलेवे तौ उसके सारेधनमेंसे तिहाई दण्डराजा उसकीभार्याको दिलावे और जो वह निर्धनहोवे तौभी उसभार्याके पालन मात्रका अन्नवस्त्र दिलवायाजाय ७६॥ अबस्त्रियोंके धर्म्मकहते हैं॥

स्त्रीभिर्भर्तृवचःकार्यमेषधर्मःपरःस्त्रियाः। आशुद्धेःसंप्रतीक्ष्योहिमहापातकदूषितः ७७॥

भक्ष०—स्त्रियोंकोभर्त्ताका कहाकरना यह परमधर्म स्त्रीका है जो भर्त्ता महापातक से दूषितहो तौ शुद्धिहुये पीछेसेप्रतीक्षा करिवेयोग्यहै-अर्थात् जैसीआधीनी उसकीपहले राखतीथी तैसीही प्रायश्चित्त आदिहोजाने अथवा अवधि बीतजाने पीछेभीकरे७७॥

अबशास्त्र विधिसे बिवाहकरनेका फलकहते हैं॥

लोकानन्त्यंदिवःप्राप्तिःपुत्रपौत्रप्रपौत्रकैः। यस्मात्तस्मात्स्त्रियःसेव्याःकर्तव्याश्चसुरक्षिताः ७८॥

भक्ष०—जिस्से लोकानन्त्य और दिवःप्राप्ति पुत्रपौत्र प्रपौत्रों करके है तिसहेतुसे स्त्रियांसेव्यहैं और सुरक्षित कर्तव्यहैं ७८॥

अभि०—जबस्त्रियोंमें यहबड़ाहेतु निश्चित हुआ कि उनकेहोनेसे दोवस्तुओं का लाभहोताहै एकतौ लोकमें (आनंत्य) अर्थात् पुत्र पोता परपोता आदिसे बंशकी स्थिति दूसरा (दिवःप्राप्ति) अर्थात् अग्निहोत्र आदि गार्हस्थ्य कर्मधर्मोंके प्रभावसे स्वर्गका मिलना तौ इसी कारणसेस्त्रियोंका विवाहद्वारा संग्रह और भोगभी संतानकी अपेक्षा से करनाउचितहै और धर्मकीअपेक्षासे उनकीरखवालीभी अच्छीरीतिसेकर्तव्यहै ७८॥

भधि०—रखवाली का अधिकार यद्यपि यथायोग्य सबकोहोताहै परन्तु उसकी मुख्यता जो विशेषकर तीनमनुष्योंके ऊपर आरूढ़है तिनकाकाल नियम कहते हैं कि-(पितारक्षतिकौमारेभर्त्तारक्षतियौवने। पुत्रस्तुस्थविरेभावेनस्त्रीस्वातंत्र्यमर्हति) अर्थात् कुमारअवस्थामें पितारक्षाकरताहै यौवन अवस्थामें पतिरक्षाकरताहै और वृद्धापनमें पुत्रोंको रक्षाका अधिकारहै क्योंकि स्त्री किसीभी अवस्थामें स्वतंत्रहोनेयोग्य नहीं है सोई इसमर्यादको आगे ८५ के श्लोकमें कहेंगे(प्रश्न)इसीश्लोकमें यहबातभी कहीगई कि स्त्रियोंका संग्रह और भोगभी अमुकामुक हेतुसे करना उचितहै फिर इसबातसे क्या सिद्धांत निकला क्योंकि यहबातसबकोईजानताहै कि स्त्रियोंकेसंग्रह और भोगसे

यहफलहोताहै फिर वृथातुपकंडन से क्याहाथआया (उत्तर) ठीकहै इसवार्त्तामें अपने अपनेफल और लाभको मूर्खसे मूर्खभी पहिचानताहै-परन्तु इसअपार संसारमें एक यहबातबड़ी अद्भुतहै कि संगतिकाप्रभावहुये विना नहींरहता और यद्यपिमजेहुये पक्के मनुष्यपरवह अपना असर बहुधानहीं करसक्तीहै तथापिउसकी यहतीव्रताहै कि एक प्रकारकेगेरुविगाड़ा निहंगलोगोंकी संगतिसेसहस्रोंघर ऊजड़होजातेहैं क्योंकिअपने अपनेपरिकर और समूहकी वढ़वारीसवकोई चाहताहै इसलिये वहलोग अतिशयभाव से गृहस्थीलोगोंके थोड़ीअवस्था के मनुष्योंको प्रपंच वार्त्ताकी प्रेरणापूर्वक बहकाकर अपनेमें मिलालेतेहैं किंतु अपना चेलावनाकर ऐसे दूरदेशोंमेंलेजातेहैं कि जहांउन के पिताआदि पक्षीलोग पताभी नहींलगासक्ते हैं कि वह कहांगया दश २ पंद्रह २ वर्षोंतक रोतेहुये ढूंढ़ते फिरतेहैं जहां कहीं भूंठाभी पतासुनते हैं मोहके हेतुसे दशमं-ज़िलपरभी दौड़ेजातेहैं जववहांसे किसीअन्यदेशकी खवरपातेहैं वहांभगेजातेहैं और माथापीट २ कर बूझते फिरतेहैं तौभी पतानहींलगता अथवा किसीका दोचार या दशपांच वर्षमें सच्चापताभी मिलगया और वह दुःखीपिता उसकेपासतक पहुंचभी गया तो उसने उसे देखतेही सूखाउत्तरदिया कि जाओ यहांतुम्हाराकुछकामनहीं जि-तनावह समुझाताहै सारीवातें उसकीकाटदेताहै कि किसका पिता किसकीमाता किस कीस्त्री हमें तो इनसेकामहै औरयद्यपि बहकालेजाने वालाऊपरकी दिखावट के लिये उस्से प्रपंचरूपसे कहता है कि जाओ परन्तु उसने वर्षोंसे पहले सिखाकर पक्काकर दिया और उसकोचित्तकी वृत्ति अपनेमें फांसरक्खीहै इस्से यह वनावटकी आज्ञाभी उसदुखियाकी कामनाको पूरीनहींकरसक्ती-वहुतेरे ऐसेभीहैं कि मरेमें गिनतीहोचुके परन्तु वहुत वर्षोंपीछे किसीमंडलीके साथ या एकलेही देहकीचेष्टाको कुरूप किये और तोंवालेकर भीखमांगतेहुये उसीजन्मभूमिपर आटिके उनमें वहुतेरे तो ऐसे हैं कि वहचाहतेहैं कि अबघरकेलोग हमको अपनेमेंमिलालें परन्तु वहघरवाले उसको भ्रष्टजानिकर पासनहीं खड़ाहोनेदेते-और वहुतेरोंको घरवालेभी यहबात चाहते और कहतेहैं कि यह अपनी दुखियास्त्रीके समीप बसे तो अच्छीवातहै परन्तु वहउलटा और भूलेहुये दुःखको यादिकरा और मुँहफेरि चलेजाते हैं इसप्रकार से सहस्रों प्र-तिष्ठितलोगोंकी वहूवेटीअपना साराजन्म रोरोकर दुःखमें वितातीहैं कि जिनको वे विवाहिकर या गौनाहोनेसे पीछे तत्कालही छोड़कर चलेगये-वहुतेरे ऐसे भी होते हैं कि उसी अपने नगरके किसी भगमा वस्त्रवालेके फंदेमें फँसगये.और घरको छोड़कर उनके पास रहने लगे और दिनरातगांजे या चरसकी चिलमें उनकी भरनेलगे और घरकेलोग जिन्होंने वड़ेदुःखोंसे पैदाकिया पाला व्याहशादीमें धनलगाया वे अपने घरका कुतार और उसकी वाल वनिताका दुःख देख२कर सन्तापित होतेहैं और वे

धूर्त उनके पुत्रसे उन्हीं के देखते हुये चेलापने से सेवाटहलें करवाते हैं-बहुतेरेऐसे हैं कि अपने घरके घरही में रहते और घरमें करीकराई रोटी विनकमाईकी खाते हैं और घरके लोगोंके कहने से घरकाकाम एकपत्ताभी उठाकर इधरसे उधर नहींधरते परन्तु बाबाजीकीचाकरीमें आठोंपहर तत्परबने रहते और बहुधाउनकी भँग बूटी और चिलमोंमेंभी शामिल होजाते बल्कि जोहाथ लगजाताहै तोकुछ घरसे भी उठाकर बाबाजीकी भेटकरि आतेहैं और यद्यपि चाहैं किसीसमय आनिकर घर हीमें पड़रहतेहैं परन्तु बाबाजीकी दीहुई शिक्षाके अनुसार अपनी विवाहितासे कभी दुखसुखकीबातभी नहींबूझते-और यद्यपि बाबाजी आपचाहैं सो कुकर्मकरि आतेहों परन्तु नौसीखतरको यहीशिक्षा देतेहैं कि स्त्रीका प्रसंग मतकरना नहीतो सिद्दिहाथ नहींआवेगी-बहुतेरे इसप्रकारसे शिक्षादेतेहैं कि तेरेएकसंतान होचुकी अबयहस्त्रीतेरी माता तुल्यहोचुकी-ऐसी२ कुशिक्षाओंसे गृहस्थीका कच्चाबालक घरकेलोगोंके हाथसे जातारहताहै तभीउसकाघर ऊजडसा होजाताहै-और बाबाजी बहुधाथोड़ी अवस्था के मनुष्यको इसलिये बहकातेहैं कि प्रथमतो थोड़ीअवस्थाका मनुष्य सेवाटहलेंअच्छीतरह करसक्ताहै दूसरे जैसे कच्चीमट्टीको कुम्हारचाहै तैसा तोड़मोड़सक्ताहै तैसेही कच्चे बालकको जो कुछ समुझाया सिखलायाजाय सोसब उसकी समुझमें शीघ्रबैठ जाताहै इससे वहउनके ढबमेंशीघ्र आजाताहै-फिर क्योंरेप्रश्नकर्ता क्यातूनहींजानता है कि जबगृहस्थीके कच्चेबालकोंको छोटीसी अवस्थामें हितपूर्वक समुझाकर यहबात सिखलाई जायगीतो पीछेवे क्योंकर किसीधूर्त्तके फंदेमें फँसजायँगे-या-क्योंकर अपनी पत्नीआदि घरकेलोगोंसे निर्मोही होजायँगे-क्योंकि जबधूर्तोंकी सिखाईहुई बातउनके कच्चेपनमें ऐसीपक्की जमजातीहै तोक्या उसकच्चेहृदयमें अपने पितामाताकी सिखाई हुई धर्मकीशिक्षा उनके हृदयमेंनही जमजायगी-फिर क्योंकर तूकहताहै कि इस ७८ केश्लोकमें कहीहुई(मर्याद) केवलगृथातुपकंडनहै-परन्तु कारणइसमें इतनाहै किकच्चा बालक पहले जिसके फंदेमें फँसजाताहै उसीकी शिक्षाउसके हृदयमेंजमजातीहै इस लिये गृहस्थीको यह उचितहै कि अपनेलड़कोंको किसी गेरू बिगाड़ाकी संगति में न जानेदे क्योंकि ये केवलगेरूही बिगाड़ानहीं होते किन्तुगृहस्थी के घर बिगाड़ाभी होतेहैं-हां-इतनीबात आवश्यकहै कि जो कुछ अपनी शक्ति अथवाश्रद्धामें बनिआवे सो अपना हाथ उठाकर ईश्वरहेतुसे उनकोदेघाले पर इससेऊपर उनकीकोईसी शिक्षाको अपनेभी कानमेंनलावे-क्योंकि उनकीकोईसी भी शिक्षाऐसे नहींहै कि जिसमें किसीको अपने आधीनकरलेनेका सिद्धांतनहींपायाजाय अर्थात् यद्यपि वे अपनेमुख से बहुधाकिसीको यह नहीं कहते कि तू हमारा चेलाहोजाय परन्तु नानाप्रकारकी बातोंकाजाल ऐसाफैलाते और दिखलाते और सुनातेहैं कि जिसको देखसुनकर एकबार

कैसाहीचतुर और विद्वान्हो उसकाभी मन फिरजाताहै कि ये बाबाजीपूरेसिद्ध दिखाईदेतेहैं कदाचित् ऐसाबानक बनिआवे कि इनसिद्धजीकी संगतिमें सदैव आयाजाया करों या इनकोहीअपने स्थान परठहरालूं तौ नजानिये इनसेकोईसी सिद्धि मुझेमिल जाय जिससे मैं त्रिलोक विजयी होजाऊं या मेरी अमुक कामना पूरी होजाय-इसप्रकार जब उनकी संगतिकरनेलगताहै तब क्रम२से महीनों अथवा वर्षौंताईं उसको वहीपट्टीदियेजातेहैं जिससे सबको छोड़कर यह मेरेही आधीनहोजाय और मुखसे कहनेकी यहबातहै कि बहुतेरे मुखसेभी कहतेहैं कि तू चेलाहोजाय तौ तेरेकोपरमसिद्धि मिलैगी या जो मुखसे नहीं कहते वे अपनेचेलाओंसे या खुशामदीसाधकलोगोंसे कहलवातेहैं अर्थात् उसजालमेंसेकोईही बड़भागी ऐसाहोताहै कि जो संगतिकरनेपर भी फँसनेसे बचजाय नहीं तौ जो दरिद्रीहैं वेधनकेलिये सिद्धिचाहकर फँसतेहैं कोई शत्रुकी विजयमांगतेहैं जो धनवान्हैं वे धनकी वृद्धियाकोई केवल संतानकोई मंत्रकी सिद्धि या सोनेचांदीकी रसायनकाबनाना आदि नानाप्रकारके लालच जो अपनेमें वे बताते या दिखलाते तिनकेहेतुसे उनके जालमें फँसे बिना नहींबचसक्ते-इससे गृहस्थीको यह योग्यहै कि अपनीसंतानोंको उनकीसंगतिसे बचावें और छोटीसीअवस्थामें धर्म शास्त्रकी शिक्षाको सिखलाकरपहलेही पक्काकरदेवें जिससे पीछे उनको कोई सा दुःखदायीरंगन लगनेपावे ७८॥

षोडशर्तुर्निशा स्त्रीणांतस्मिन्युग्मासुसंविशेत् । ब्रह्मचार्येवपर्वाण्याद्याश्चतस्रश्चवर्जयेत् ७९ ॥

भक्ष०—स्त्रियों का ऋतुकाल सोलहरात्रोंकातिसमें युग्माओंमें सम्यक् प्रवेशकरे तौ ब्रह्मचारीहो किंच पर्व और चार पहली भी बचावे ७९॥

अभि०—स्त्रियोंके गर्भधारणकरने योग्य जो ऋतुकालहै सो रजोदर्शनकेदिनसे १६ रात्रिपर्यंत होताहै इसकहेहुये कालमें युग्माकहिये समरात्रोंमें पुत्रकी कामनासेस्त्री प्रसंगकरे-रात्रिकहनेसे दिनका निषेधनिश्चितहुआ और यद्यपि सोलहदिनकी अवधि ताईं जितनी समरात्रें आनिपरें उनसबोंमें गमनकरनायहांतक उचितहैकि जो उन्हीं समरात्रोंके दिना श्राद्धआदि कोईयज्ञभी आनिपड़े जिसमें ब्रह्मचर्यसे रहनाउचितहो तथापि गमनकरनेसे ब्रह्मचर्य खण्डित नहींहोता परन्तुपर्व अर्थात् पूर्णमासी अमावास्या कृष्णाष्टमी कृष्णचतुर्दशी इनमेंसे कोई पर्व जो उनयुग्मारात्रोंमें आनि पड़े तौ बचावे और पहलीचाररात्रैंभी अवश्यभावसेबचावे तौ वहब्रह्मचारीही कहाताहै७९॥

अधि०—इसअधिकोक्तिमें विशेषकर मनुजीकी कहीहुई मर्यादेश्लोकों सहित लिखतेहैं कि पहलीचाररात्रोंमें संगम किसहेतुसेवर्जितहै-तथाच (नोपगच्छेत्प्रमत्तोपिस्त्रियमार्तवदर्शने।समानशयनेचैवनशयीततयासह १-रजसाभिप्लुतांनारींनरस्यह्युपगच्छतः प्रज्ञातेजोबलंचक्षुरायुश्चैवप्रहीयते २-तांविवर्जयतस्तस्यरजसासमभिप्लुताम् । प्रज्ञाते

जोवलंचक्षुरायुश्चैवप्रवर्धते) ३ इनतीनोंकायह अर्थहै कि-मनुष्य चाहैतैसाकामकी पीड़ासे व्याकुल होकर प्रमत्तभी हो तथापि रजोदर्शनके दिनसेजो चाररातेंनिषिद्ध कहलातीहैं तिनमें स्त्रीसंगमकोनजावे और उसकेसमीपमें निजशय्याभीनहींविछावे-अर्थात् छूने और संभाषण आदिसेभी वचे १-क्योंकि उसरजस्वलानारी के समीपजानेसे ही उसकी अग्निसे पुरुषकी इतनीहानि होतीहैं एकतौ वुद्धिभ्रष्टहोतीहै-शरीरकातेज और उत्साहमाराजायहै-बलपराक्रमनष्टहोजाताहै-नेत्रोंकीदृष्टिमंद होजातीहै-क्रम २ से आयुभी क्षीण होतीजातीहै २-उसरजस्वलाको वचावतेहुये पुरुषकी प्रज्ञातेज बल दृष्टि आयुये सब दिनोंदिनवढ़ते हैं ३-इसालिये यह नियम उचितहैकि-ऋतुकालाभिगामीस्यात्स्वदारनिरतःसदा। पर्ववर्जंव्रजेच्चैनांतद्व्रतोरतिकाम्यया ४-अर्थात् संतानपैदा करनेकेमनोरथवाला पुरुष ऋतुकालके भीतर २ संगमकरै और सदाअपनी दारामेंही रतिरक्खे किन्तु परदारगामीनहो-अथवा जिसको संतानकी अपेक्षा नहींहै परन्तुवह अपनी दाराकीप्रीतिको उल्लंघननहींकरसक्ताहो तो ऐसापुरुषकेवल भोगमात्रकीअपेक्षा से १६ दिनकेपीछेभी सुखसंगमकरे परन्तु यहनियम इसमेंभी है कि पर्वोंको वचावै४-ऋतुःस्वाभाविकःस्त्रीणांरात्रयःषोडशस्मृताः। चतुर्भिरतरैःसार्द्धमहोभिःसद्विगर्हितैः ५ तासामाद्याश्चतस्रस्तुनिंदितैकादशीचया। त्रयोदशीचशेषास्तुप्रशस्तादशरात्रयः ६ अर्थात् स्त्रियोंकोस्वाभाविकऋतुकालकी जो सोलहरात्रैंकहीहैं सोउनचारदिवसोंकरके सहितहैं कि जो सत्पुरुषोंकरके विशेषनिंदितहैं५-तिनसोलहमेंसे पहली चाररात्रैं और ग्यारहवीं तथा तेरहवीं रातिभी निंदितहै शेषदशरातें शुद्धहैं६-युग्मासुपुत्राजायन्तेस्त्रियोऽयुग्मासुरात्रिषु। तस्माद्युग्मासुपुत्रार्थीसंविशेदार्त्तवेस्त्रियम् ७-पुमान्पुंसोऽधिकेशुक्रे स्त्रीभवत्यधिकेस्त्रियाः। समेऽपुमान्पुंस्त्रियोवाक्षीणेऽल्पेचाविपर्ययः-८-अर्थात्उन अच्छी दशरातोंमें भी यहभेदहै कि समरातोंके संगममें पुत्रहोतेहैं विषमरातोंमें कन्याहोतीहैं तिसहेतुसे पुत्रकीकामनावाला ऋतुकालकेभीतर युग्मरातोंमें स्त्रीसंगमकरै और कन्याकी कामनावाला अयुग्मरातोंमें परन्तु यहव्यवस्थास्त्रीपुरुष दोनोंकावीर्यतुल्य होनेमें होसक्तीहै ७-अन्यथाजोवीर्यतुल्य नहोहो तो विषमरातों के संगमसेभी पुत्रहोसक्ताहै उनअवस्थामें कि जवसंगमकेसमय पतिकावीजअधिकहो और जो पुत्रनहो तो पुरुष के आकारवाली कन्या-ऐसेही समरातोंकेसंगमसेभी कन्याकीउत्पत्तिहोसक्तीहै कि जव संगमके समय स्त्रीका शोणित अधिकहो पतिकावीर्यथोड़ाहो और जो कन्या नहींहो तो स्त्रीकेआकारवाला पुत्रहो-परन्तु जहांदोनोंकाही वीर्यथोड़ाहोकर तुल्यहोताहै तहां नपुंसक पैदाहोताहै-अथवाजहां दोनोंके वीजमें अधिकताहो और समविषम रातोंका फुरफेर होजाय तहां कन्यापुत्र दोनोंपैदाहोते हैं-और जहांदोनोंकाही वीर्य क्षीण या अतिशयअल्परहजाताहै तहांगर्भकीसंभावनानहींरहतीहै ८-आगेजो परमेश्वरकरता

हैं सोहोताहै क्योंकि उसकीइच्छाका अभ्यंतरपाया जाना यह असंभवहै इसलिये कि परमेश्वरमें तीन शक्तिवड़ीविलक्षण होतीहैं अर्थात् वह प्रभुनहोनेवाली वातको करसक्ताहै १ और होनेवालीको तत्काल मेटसक्ताहै २ और अन्यथाहोनेवालीको किसी औरही प्रकारसे करसक्ताहै ३-तथाहि(कर्तुंअकर्तुंअन्यथाकर्तुंयःशक्यःसईश्वरः)अर्थात् करनेको न करनेको अन्यथा करदेनेकोसमर्थहो सोईश्वरहै-परन्तु तौभी मनुष्यकोउसकी इच्छाके भरोसे वैठारहना और उपायका न करना यहदुःखदायक हुआकरताहै-इसलिये जो कोई पुत्रकी कामनारखनेवालेहों और उन विषम रातोंमेंभी संगमकरना चाहैं तो धातोंके वढ़ानेवाले उत्तम औषधों वा आहारोंसे अपने बीजको वढावें और धातोंकेसुखानेवाली वस्तु रूक्ष अथवा थोडेभोजन आदिउपायोंसे स्त्रीकेवीर्यकोघटाकर संगमकरें तो भी पुत्रहोसक्ताहै सोइसकाभाव अवदेखोनीचे अस्सीकेश्लोकमें ७९ ॥

एवंगच्छन्स्त्रियंक्षामांमघांमूलंचवर्जयेत्। सुस्थइन्दौसकृत्पुत्रंलक्षण्यंजनयेत्पुमान् ८० ॥

अक्ष०—इसप्रकार सुस्थचंद्रमामें क्षामास्त्रीको गमनकरतेहुये मघामूलको भी वर्जितकरे तो एकही वारमें लक्षण्यपुत्रको पुमान् जन्मावे ८० ॥

भभि०—ऊपर७९ के श्लोकमें कहेहुये प्रकारसे रजकेसूखजानेपै क्षामास्त्रीका संगम करे क्षामाकहिये हीनवीर्यवाली सो वह क्षामता, उसकी रजस्वलाके चारोंदिनतक यथोचित नियमोंसे होतीहै जो कदाचित् नियमोंसे भी न हो तो जैसा अभी ऊपर अधिकोक्तिकेअंतमें कहचुकेहैं उनप्रकारोंसे क्षामताकरनीचाहिये पुत्रकीकामनासे और मघामूल दोनक्षत्रजो निषिद्धहैं इन्हें वचावे और वह संगम ऐसीलग्नमेंकरै कि जिसमें चंद्रमाग्यारहवे या त्रिकोण आदि शुभस्थानों में पड़ाहो आगे शुभयोग और पुंनक्षत्रहों ऐसी विधि सहित एकही रात्रिके संगमसे अच्छेलक्षणवाला वलवान् पुत्र पैदा होवे-परंतु ऐसापुत्र उसी पुरुषके होसक्ताहै कि जिसने वालापनसे तरुणाई पर्य्यंत अपने वीर्यका विध्वंस किसीहेतुसे न होने दियाहो ८० ॥

अधि०—पुत्रसेआगे संसारमें कोई वस्तुउत्तम नहींहै जिसकारणसे वड़ेप्रतापी और वलवान् शूरवीर भी कि जो संसारमें सवसे अपनी जयजीति चाहाकरतेहैं वेभी केवलपुत्रसे पराजय चाहाकरते हैं अर्थात् सभीलोग यह अभिलाष कियाकरते हैं कि मेरा वेटा मुझसे भी सहस्रगुण ऊँचाहो-तथाच (नचपुत्रात्परंलोकेकिंचिदास्तियतःपुमान्। सर्वेभ्योजयमान्विच्छेत्पुत्रादेकात्पराजयः) ८० ॥

यथाकामीभवेद्वापिस्त्रीणांवरमनुस्मरन्। स्वदारनिरतश्चैवस्त्रियोरक्ष्यायतस्मृताः ८१ ॥

अक्ष०—या स्त्रियोंके वरको यादिकरताहुआ यथाकामीभीहो किंच स्वदार निरतहो जिस्से स्त्रियां रक्षा योग्यकही हैं ८१ ॥

अभि०—स्त्रियोंके वरका यादिकरना यहकिजो किसीसमय इन्द्रने वरदान कियाथा

किजो पुरुष तुम्हारी काम अभिलापाको उलँघेगा सोपातकी होवेगा-इसलियेजो पुरुष इसबरके प्रतिपालके हेतुसे यथाकामी होनाचाहे अर्थात् निजभार्याकी अभिलापका विध्वंसनकरनाचाहे-या-आपही ऋतुकालके पीछेभी संगमकी कामना रखनेवाला होतो वह ऋतुके १६ दिवसके पीछेभी अपनी इच्छाके अनुरूप सुख संगमकरै परंतु यह प्रतिज्ञाहै कि अपनी दारामेंही प्रीतिरखकर परदारासे बचतारहे क्योंकि जिसलिये ७८ के श्लोकमें स्त्रियोंकी रक्षाकरनी कहचुकेहैं-सो वह रक्षारखवाली इसीरीतिसे होसक्तीहै कि पुरुष आप यथाकामी होकर परदारा गमनको बचावे ८१ ॥

भधि०—स्त्रियोंकी विशेप रक्षाकी अपेक्षासेमनु ऋपिभी कहतेहैं कि-निंद्यास्वष्टासुचान्यासुस्त्रियोरात्रिषुवर्जयन् । ब्रह्मचार्येवभवतियत्रतत्राश्रमेवसन् - अर्थात्-ऋतुकालकीपहलीचार और पँचें चार इनआठ निंदित रातोंमें और इनके सिवाय ग्यारहवीं तेरहवींमें भी याजो कोई औरभी निंदितहोतीहों तिनमें स्त्री संगमको बचातेहुये पुरुपचाहै तहाँ वसताहुआ भी स्त्रीसंगम करनेसे ब्रह्मचारीही बनारहताहै-और चाहै तहाँ वसताहुआ इसकहनेसे यह निश्चितहुआ किजो मनुष्य अपने ब्रह्मचर्यकी रक्षा बनीरखनाचाहै वह चाहेतहाँ विदेशमें जानेपरभी भार्या अपनेसाथ लेजावेतो उसका ब्रह्मचर्य रहसक्ताहै और स्त्री रक्षाभी यथोचित गिनतीमें आसक्तीहै-और यद्यपि यह(सहगामित्व)कुछदश पाँचदिनकी साधारण यात्राके लिये परिनियमित नहींहै परंतु इसनियमका होना दोनोंकेहीलिये फलदायकहै इसीहेतुसे श्रीमहाराणी सीताजी और द्रौपदीआदि सत्कुलकी स्त्रियोंने महानिर्जनवनमें भी जानेपर अपने २ पतियोंका पीछानहींछोड़ा था-और पहले ऋपीश्वरलोग तो सदैवही अपनी भार्याको कोशमात्र कीयात्रामें भी साथलेजाते थे क्योंकि वह तपोवरिष्ट ऋपिलोग बालहत्यासे बहुत डराकरतेथे सोई यहश्लोक कहाहै कि-सुस्नातायाश्चभार्यायाःसन्निधिंयोधिगच्छति।पुरुपोबालहत्यायाः पापंप्राप्नोत्यसंशयम्-अर्थात्-जोकोई पुरुप मासिकऋतुसे स्नानकरी हुई भार्य्याके समीप नहींजाता है वह निस्संदेह बालहत्याके पापको पहुंचताहै ८१ ॥

भर्तृभ्रातृपितृज्ञातिश्वश्रूश्वशुरदेवरैः । बंधुभिश्चस्त्रियःपूज्याभूपणाच्छादनाशनैः ८२ ॥

भक्ष ०—भर्त्ता भ्राता पिताजाति के लोग सासु ससुर देवर बंधुजन इनसबोंकरके स्त्रियां आभूपण वस्त्र भोजन पुष्प सुगंधिआदि से सत्कारके योग्य हैं ८२ ॥ इसका विशेषभाव ५५ के श्लोककी अधिकोक्तिमेंकह चुकेहैं ॥

संयतोपस्करादक्षाहृष्टाव्ययपराङ्मुखी । कुर्यात्श्वसुरयोःपादवंधनंभर्तृतत्परा ८३ ॥

भक्ष०—भभि०—संयतोपस्करा अर्थात् घरकीसूप चालनीआदि सामग्रीसब जहांकी तहां ठौरठीकराखनेवाली-दक्षाकहिये अतिचतुराघरके कामोंमें-हृष्टाकहिये प्रसन्नमुखी-व्ययपराङ्मुखी अर्थात् खर्चसेमुँह फेरेहुये रहनेवाली किंतुसबकामकरै परन्तुखर्चकी

वार्त्तामें घरकेवड़ोंके आधीनरहे इसप्रकार अपनी मर्यादोंको बाँधेहुये भर्त्तामें तत्पर बनी रहकर सासु और ससुरकी पादवंदना करतीरहे ८३॥

क्रीडांशरीरसंस्कारंसमाजोत्सवदर्शनम्। हास्यंपरगृहेयानंत्यजेत्प्रोषितभर्तृका ८४॥

अक्ष०— क्रीड़ाको शरीरके संस्कारोंको समाज और उत्सवके देखनेको, हासविलासको पराये घरजाने को प्रोषितभर्तृका छोड़दे ८४॥

अभि०—दैवयोगसे जिसकिसी स्त्रीकापति विदेशमें निवासकरै वह इतनीबातों को न करै एकतौक्रीड़ा चौपड़ शतरंजगेंद आदि-शरीरके संस्कार उवटनाशिरगूँधनाआदि-समाजमेला आदिका देखना-उत्सव किसीके विवाहआदि में तमाशा का देखना-हँसी पराये घरकाजाना ८४॥

रक्षेत्कन्यांपिताविन्नांपतिःपुत्रास्तुवार्धके। अभावेज्ञातयस्तेषांनस्वातंत्र्यंक्वचित्स्त्रियाः ८५॥

अक्ष०— कन्याके बिवाहसे पहलेपिता रखवालीकरे-पीछेविन्ना जो विवाहिताहै तिस की रक्षाभर्त्ताकरै भर्त्ताके अभाव और वृद्धापनमें पुत्ररखवालीकरें-इनतीनोंके नहोनेमें इन्हींतीनोंके जातीलोग रक्षाकरें-स्त्रीको स्वतंत्रता कभीनहींहै ८५॥

पितृमातृसुतभ्रातृश्वश्रूश्वशुरमातुलैः। हीनानस्याद्विनाभर्त्रागर्हणीयाऽन्यथाभवेत् ८६॥

अक्ष०—पिता माता पुत्र भ्राता सासुससुर मामा इन्होंकरके रहितनहोवे विनाभर्त्ता के अन्यथा निंदाहोतीहै-अर्थात् जिसका भर्त्ता नहींहो वह भर्त्तासेहीनस्त्री पिता आदि से रहित अर्थात् जुदीनहोवे किंतु उनकेवशमें वनीरहे क्योंकिइससे विपरीततामेंनिंदित हुआ करतीहै ८६॥

पतिप्रियहितेयुक्तास्वाचाराविजितेंद्रिया। सेहकीर्त्तिमवाप्नोतिप्रेत्यचानुत्तमांगतिम् ८७॥

अक्ष०—पतिके प्रियकार्यमें और हितकार्यमें लगीहुई श्रेष्ठ आचरणवाली विशेष कर इन्द्रियोंको जीतकर वशमें रखनेवाली सोवहस्त्रीइससंसारमें सुकीर्त्तिको और परलोकमें अतिउत्तम गतिको पावतीहै ८७॥ अवनीचेके श्लोकमें ऐसेपुरुषका धर्म्म कहतेहैं कि जिसके कईभार्याहों॥

सत्यामन्यांसवर्णायांधर्मकार्यंनकारयेत्। सवर्णासुविधौधर्म्येज्येष्ठयानविनेतरा ८८॥

अक्ष०—सवर्णास्त्रीकेहोतेहुये असवर्णासे धर्मसंबंधी कामनहींकरावे जिसके सवर्णा ही कईस्त्रियांहोंतो ज्येष्ठाकोछोड़कर औरोंको धर्मकार्यमें नहींलगावे॥ ८८॥ अब उसका धर्मकहतेहैं कि जिसकीभार्या शांतहोगईहो॥

दाहयित्वाग्निहोत्रेणस्त्रियंवृत्तवतींपतिः। आहरेद्विधिवद्दारानग्नींश्चैवाविलंबयन् ८९॥

अक्ष०—वृत्तवती स्त्रीको अग्निहोत्रसे दाहकरके पतिविलंब न करताहुआ विधिवत्दाराओं और अग्नीनूकोभी आहरणकरे ८९॥

अभि०—पहले कईश्लोकोंमें वर्णन करीहुई शुभआचरणवाली स्त्री मरीहुईको उस-

का पति अग्निहोत्र नामश्रौत अग्निसे जो श्रुतिवेदमंत्रोंसे सदाघरमें स्थापित रहा करतीहै उसीको गार्हपत्य अग्निभी कहतेहैं तिससे दाहकरै-अथवा जिसकेघरमें इस वेदोक्त अग्निहोत्रकी स्थापना नहींहो तो वहस्मार्त्त अग्निसे दाहकरै स्मार्त्तअग्निके लक्षण समुझाचाहोतो आगेबढ़कर ९७ केश्लोकमें देखोउस अग्निसे या इससेदाह कियेपीछे शीघ्रही वर्षमात्रके अंतरसे वहपति फिर विवाहकी विधिसे स्त्रीका आहरण किंतु आकर्षणकरै-आहरण या आकर्षण कहनेका यह अभिप्रायहै कि इसद्वितीय स्त्री संग्रहको परिश्रम और उपाय पूर्वकभी करै क्योंकि द्विजातीमात्रकोइस्से उपेक्षाकरनी अनुचितहै परन्तु उसके लिये कि जिसके उस मृताभार्य्याके सिवाय द्वितीया नहींहो और संतान भी नहींहो या संतानके होनेपर भी जिसकी मनोवृत्ति विषयवासना से विकृतहोसक्तीहो या जिसको यज्ञादि कर्मकरनेकी कामना शेषहो सोतत्काल आहरण करै और अग्नीनूका भी आहरणकरै अर्थात् अग्निकी स्थापना गृहस्थीमें भार्या के विना असंभवहै क्योंकि जिसअग्निको साक्षीभूत करके विवाहकियाजाता है वहीअग्निगृहस्थीके घरमें स्थापित करीजातीहै और निरंतर उसकी रक्षाकरीजातीहै उसीसे प्रतिदिन के अग्निहोत्र हवनपाकयज्ञ वैश्वदेव आदिसब होतेहैं फिर वही अग्निउस विवाहिताके मरनेपर उसकेदाहके साथ विसर्जन होजातीहै-अब ऐसाघरपृथ्वीपर कदाचित् कहींढूंढ़नेसे मिलसक्ताहो ८९ ॥ इतिविवाहप्रकरणम् ॥

द्विजातीलोगों केगर्भाधानसेलेकर विवाहताईं दशोंकर्मोंका विधान पूराहोचुका परंतु दशवांकर्म जो विवाहथा तिसमें कईप्रकारकी भार्याकहीथीं उनसे जोसंतानें उत्पन्नहोवेंगी तिनका जातिभेद अबनीचेकहते हैं कि किसभार्याकीसंतान कौनजातिमें गिनीजाती है ॥

सवर्णेभ्य सवर्णासुजायंतेहिसजातयः। अनिंद्येषुविवाहेषुपुत्राःसंतानवर्द्धनाः ९०॥

प्रक्ष०-सवर्णपुरुषोंसे सवर्णाभार्याओंमें सजातीपैदाहोते हैं किंच अनिंद्यविवाहों में वंशकेवढ़ानेवाले पुत्रहोते हैं ९०॥

भाभि०-चारोंवर्णोंके भिन्न२ पुरुष और अपने२वर्णकी विवाहिताभार्याओं में जो संतानेंपैदाकरतेहैं वेसंतानें उनकीसजातीहोती हैं अर्थात् जो जाति मातापितादोनों कीहो उसीजातिके वे पुत्रकहाते हैं-परंतु इतनाविशेष इसमें और है कि सवर्णा विवाहिताभी आठप्रकारके विवाहोंकेअनकूल आठप्रकारकीहोती हैं इसीलिये कहतेहैं कि उनमें पहले चारविवाहजो अनिंद्यहैं जिनका चर्चा ५८।५९ के श्लोकोंमें आचुकाहै उन विवाहोंकी सवर्णाभार्याओंमें संतानकेवढ़ानेवालेपुत्र अर्थात् वंशकोउज्ज्वलतासे प्रसिद्धकरनेवाले होतेहैं-और पिछले चारप्रकारकेविवाह जो निंदाकेयोग्यहैं जिनका चर्चा ६०।६१ के श्लोकोंमेंआयाहै उनविवाहोंकी सवर्णाभार्याओंकीभीसंतानें वंशको

मलीनकरनेवाली होती हैं ९० ॥ यह तो ठीकर वर्णोंकी उत्पत्ति कहीगई-अवनीचे-अनुलोमजातोंकी उत्पत्तिकहते हैं ॥

विप्रान्मूर्द्धावसिक्तोहिक्षत्रियायांविशःस्त्रियां। अंबष्ट शूद्र्यांनिषादोजातःपारसवोपिवा ९१ ॥

अक्ष०–ब्राह्मणसे क्षत्राणीमें (मूर्द्धावसिक्त) होताहै-वैश्यानी में (अंबष्ट) शूद्रिनी में उत्पन्न भयो (निषाद) या (पारसव) कहाताहै ९१ ॥

अभि०–ब्राह्मणसेविवाहिता क्षत्रियकन्याकेउदरमें जोपुत्रहोताहै वह मूर्धावसिक्त क्षत्रीजाति कहाताहै-ब्राह्मणसे बिवाहिता वैश्यकन्याके उदरमें जो संतानहोती है वह (अंबष्टवैश्य)जातिकहलातीहै-ब्राह्मणसेविवाहिता शूद्रकन्याकेउदरमें जो संतानहोतीहै वह (निषादनामशूद्र) जातिहोती है-देशकेविकल्पसे अथवा कालके विकल्पसे उसीको (पारसवनाम) शूद्र भी कहते हैं ९१ ॥

भावि०–यद्यपि क्षेत्रजसंतानकीउत्पत्ति जिसकीविधि ६८।६९ के दोउश्लोकोंमें कही थी उसकाजातिभावभी माताकीजातिकेसमान निश्चितहै इसमें यहतर्कवादहै किजब यहाँपर कहीहुई बिवाहितास्त्रियोंकीसंतानें माताकेसमानजातिवाली निश्चितहोनेपर भी मूर्धावसिक्तआदि कलंकरूप विशेषणवाली कहलाईं तो उसक्षेत्रजसंतानमें भी कोईसाकलंक विशेषणहोनाचाहियेथा-तहाँयहहेतुहै कि वहबात निंद्यबिवाहोंमेंगिनती नहींहोसक्तीहै क्योंकि वह बिवाहकाप्रसंगहीनहीं है अर्थात् वह केवल शास्त्रसंमतसे नियोग बिधिपूर्वकशिष्टसमाचारकहाहै फिरउसमेंकलंक या कितुलगानेका क्याअवसरहै-और उसकीमाताकेसमान जातिकहना यहभी एकबुद्धिभ्रमहै क्योंकि माताके समान जातिकहना उसअवस्थामें होसक्ताहै कि जहाँ माताअन्यजाति पिताअन्य जातिकाहो- उसकागर्भाधान स्वयांत्पुरुषके अथवा जीवत्पुरुषके कनिष्ठभ्राता या सपिंडभ्राता या सगोत्रभ्रातासे कहाहै सो ये तीनों उसीस्वर्यात् या जीवत्पुरुषकी जातिसे दूसरीजातिनहीं हैं क्योंकि जो भाईकीजाति सो उसकीजातिहै उसकीवह भार्याथी इनकीभाभीहै फिर उसकीसंतानमें माताकीजातिकहना परमअसंभवहै क्योंकि वहसंतानक्षेत्रज उसीपुरुषकाकहाताहै और उसीका दायभाग भी पाताहै कि जिस मरेहुये या जीवत्पुरुषकी भार्यामेंगर्भाधानहुआ इसहेतुसे जिसका वहक्षेत्रजकहलाया और जिसकादायभागभीपाया उसीकेसमतुल्य उसकीजातिभी प्रत्यक्षभावसेनिश्चित है फिर उसकीजातिमेंकलंक अथवा कितुलगसकनेका क्याअवसरहै-कदाचित् उसको (गोलक)या(कुण्ड) कहनाचाहो सो यहबातबडीदूरहै क्योंकि (गोलक)संतान वहीकहलाती है कि मुख्यपिताकेमरेपीछे जारपुरुषकेवीर्यसेपैदाहो-ऐसेही(कुण्ड) वहीकहलातीहै जो मुख्यपिताकेजीवतेहुये जारपुरुषके वीर्यसेपैदाहो और फिर जारपुरुषकी जातिकाभी नियम सर्वत्रनहींहोसक्ताहै कि वहकौनजातिथा याहै इसहेतसे (गोलक) और (कुण्ड)

इनदोनोंकाजन्म जारपुरुष और व्यभिचारिणीस्त्रीसे होताहै यह निषेधका प्रसंगहै और वह विधिकाप्रसंगहै इसका उसवातसे किंचित्भी संसर्गनहीं है-यद्यपि वहक्षेत्रजसंतानकीमर्यादा सर्वदेशव्यापिनी या सर्वलोकव्यापिनी या सर्वजातिव्यापिनी या सर्वकालव्यापिनी नहींदेखपड़तीहै और यद्यपि इसशास्त्रमें केवल देवरोंकेनियोगसे क्षेत्रज संतानका जन्मकहाहै परंतु अन्यशास्त्रोंकेसंमतसे देवरोंके अभावमें पुरोहित आचार्य ऋषि ब्रह्मचारी आदिसेभी बीजलेनाकहाहै जैसे धृतराष्ट्र पांडु विदुर ये तीनों भाई वेदव्यासजीके नियोगसे चित्रांगद और विचित्रवीर्य राजाकेक्षेत्रजसंतान और क्षत्रीजाति बड़ेप्रतापीप्रसिद्धहैं-अद्यापिवर्त्तमानमें किसी २ देशविभागके त्रैवर्णिकमें यहाँतक प्रवृत्तिदेखीसुनीजातीहै कि भानजेकाभी बीजलियाजाता है और उनकी वे संतानें मुख्यपितामाताकी जातिमें उसीसमान गिनतीमें रहतीहैं कि जानो अपने मुख्यपिताकेवीर्यसे जन्मपायाहो और कोईप्रकारकाकलंक या किंतु लोकदृष्टिसेभी उनमें नहींलगता क्योंकि वेलोग इसवार्त्तामें केवलशास्त्रविधिपर आरूढ़हैं ९१ ॥

वैश्याशूद्र्योस्तुराजन्यान्माहिष्योग्रौसुतौस्मृतौ । वैश्यात्तुकरणःशूद्र्यांविन्नास्वेषविधिःस्मृतः ९२ ॥

भक्ष०—वैश्यानी शूद्रिनी दोनोंमें राजन्यजातिसे माहिष्य उग्रदोनोंसुतकहेहैं-वैश्य पुरुषसे शूद्रिनीमें करण होताहै यह विधिविवाहिताओंमें कहीहै ९२ ॥

भाभि०—विवाहिता वैश्यकन्याके उदरमें क्षत्रीपतिसे माहिष्यनाम जातिका वैश्य पुत्रहोताहै-विवाहिता शूद्रकन्याके उदरमें क्षत्रीपतिसे उग्रनामजातिका शूद्रपुत्रहोता है-विवाहिता शूद्रकन्याके उदरमें वैश्यपतिसे करणनामजातिका शूद्रपुत्रहोताहै-यह विधि जो ९०।९१।९२ इन तीनश्लोकोंमें कहीगई सो सब विवाहितास्त्रियोंकी कहीहै अविवाहिताका कुछनियम नहींहै ९२ यहाँतक तीनश्लोकोंमें वर्ण और अनुलोम जातोंकीव्यवस्था कहचुके-अबनीचे प्रतिलोमजातोंका वृत्तांतकहतेहैं-अनुलोम तौ उसेकहतेहैं कि जो उत्तमजातिकावीर्य हीनजातिकेक्षेत्रमेंपड़े सो ऊपरकहचुके-और प्रतिलोम उसकोकहतेहैं कि जो हीनवर्णकाबीज उत्तमजातिकेक्षेत्रमें बोयाजाय सो यह प्रतिलोमकहिये उलटाजन्म जैसा नीचेकहते हैं ॥

ब्राह्मण्यांक्षत्रियात्सूतोवैश्याद्वैदेहिकस्तथा । शूद्राज्जातस्तुचांडालःसर्वधर्मबहिष्कृतः ९३ ॥

भक्ष०—ब्राह्मणीमें क्षत्रीसे सूत और वैश्यसे वैदेहिक तथा शूद्रसेउत्पन्नभया चांडाल जो सर्वधर्मोंसे बाहरकियाहै ९३ ॥

भाभि०—यह प्रतिलोमजातिकाजन्म विवाहितामेंनहींहै क्योंकि जहाँ ५७के श्लोक में विवाहोंकाअनुक्रम कहाथा तहाँ प्रतिलोमविवाह नहीं कहेहैं-इस्से यह निश्चित हुआ कि विनाविवाहिता घेरीहुई व्यभिचारिणीब्राह्मणीमें क्षत्रीजातिकेपुरुषसे जो पुत्रहो वह(सूतजाति)कहलावै-याऐसीब्राह्मणीमेंवैश्यजातिसे पुत्रहो वह (वैदेहिक)जा-

ति कहलावै-या ऐसीब्राह्मणीमें शूद्रसेजोपुत्रहो वह(चांडाल) मेंगिनाजाताहै और सब धर्मकर्मोंसे पतितहोताहै अर्थात् वह शूद्रकीभीजातिमें गिनतीनहीं है ६३॥

क्षत्रियामागधंवैश्याच्छूद्रात्क्षत्तारमेवच। शूद्रादायोगवंवैश्याजनयामासवैसुतम् ९४

एकार्थः–क्षत्राणीस्त्री वैश्यपुरुषसे (मागधनाम)जातिकापुत्र-औरशूद्रसे (क्षत्तारनाम) जातिकापुत्र-और शूद्रसे वैश्यानीस्त्री (आयोगव)नामजातिकापुत्र पैदाकरतीभई-यहदो श्लोकोंमेंकहेहुये सूतवैदेहिक चांडाल मागधक्षत्ता (आयोगव) छःजातें प्रतिलोमजहोती हैं इनकी जीविकावृत्ती पूर्वसमयके अनुसार विशेषकर औशनस्नाम शास्त्र और मनुशास्त्रमेंभी शिल्पकर्म्मों के द्वारा कहीहैं सोई उनजातोंके मनुष्य अबतकभी उन्हीं कामोंको अपनी२ जातिके अनुसार करते चलेआते हैं ६४॥ अब संकीर्ण संकरसे जात्यंतर कहतेहैं अर्थात् फिर उनजातोंसे जो जातें वढ़ींतिनका व्योरायद्यपि विस्तार होनेसे अपार सागरहै परन्तु संक्षेप करके थोड़ासा निदर्शन मात्र नीचे कहते हैं॥

माहिष्येणकरण्यांतुरथकारःप्रजायते। असत्संतस्तुविज्ञेयाःप्रतिलोमानुलोमजाः ९५॥

भक्ष०–माहिष्य जातिके पुरुषसे करणी जातिकी स्त्रीमें (रथकार) पैदा होताहै-अ-सत् और सत्भी समुझने चाहिये जो प्रतिलोम और अनुलोमसे पैदाहुये ९५॥

भभि०–(दृष्टांत) जैसे क्षत्रीने वैश्यानीमें माहिष्य जातिका पुत्र पैदा कियाथा और वैश्यने शूद्रिनीमें करणीजातिकी कन्या पैदा करी तिस करणी स्त्रीमें उस माहिष्य पु-रुषने जो संतान पैदाकरी उसकी (रथकार) नाम जातिहुई इसकाभी यज्ञोपवीत आदि सब संस्कार करना चाहिये क्योंकि (शंख) जी कहते हैं कि क्षत्री और वैश्यके अनुलो-म वंशसे जो रथकार पैदा होताहै तिसको पूजा दान उपनयन आदि संस्कार क्रिया और शालोत्तरी आदि घोड़ा की विद्यारथका हांकना और स्थानोंकी रचना आदि राज मिस्त्रियोंकी विद्यापढ़ना और इन्हीं कामोंसे जीविका करनेका अधिकारहै-इसी दृष्टांतके अनुसार ब्राह्मण क्षत्रीसे उत्पन्न भया जो (मूर्द्धावसिक्त) और क्षत्री वैश्यसे उ-त्पन्नभया जो(माहिष्य)इनके अनुलोम संकरसे जो जात्यन्तरपैदाहोवे उसकोभी द्विजा-तित्व लक्षणसे सब संस्कारोंका अधिकार समुझना चाहिये इसीप्रकार जो नानानाम की जातें होतीं हैं तिनके विशेषभेद और नाम अन्य स्मृतियों में पायेजाते हैंइनसबों में जो२ अनुलोम जातों और अनुलोम मार्गोंसे पैदाहुई हों उनको अच्छी समुझनी चाहिये और जो२प्रतिलोम कहिये उलटीजातों और उलटेमार्गोंसे पैदाहुई हों उन्हें उनसे हीनसमुझनी चाहिये ९५॥ यह तो जातोंकी हीनता कहीगई अब इन्हीं जातों की उत्कर्षा कहते हैं कि कौन२सी जाति किस२ प्रकारसे और कितने२ कालके अंतर से फिर अपने मुख्य वर्णमें शुद्धहोकर मिलजाती है॥

जात्युत्कर्षोयुगेज्ञेयःपंचमेसप्तमेपिवा। व्यत्ययेकर्मणांसाम्यंपूर्ववच्चाधरोत्तरम् ९६॥

भक्ष०—जातिका उत्कर्ष युगपांचवें या सातवें जानिये-कर्मोंके व्यत्ययमें भी समता और पूर्ववत् (अधरों) वा (उत्तरों) का न्यूनाधिक भाव जानिये ६६॥

भाभि०—जातें जो मूर्द्धावसिक्त आदि चारोंवर्णोंसे उत्पन्न भईथीं तिनका उत्कर्ष कहिये उत्तमता अर्थात् ब्राह्मणआदि वर्णोंकेसमान होजाना सो पांचवें या सातवें युगमें कहिये जन्ममें और (वाप) शब्दके विकल्पसे छठाजन्मभी गिनतीमें लेना सो इसकी व्यवस्था इसप्रकारसे लगाई जाती है कि जैसे पूर्वोक्त श्लोकोंके अनुसार ब्राह्मणके वीजसे शूद्राके गर्भमें निषादी जातिकी कन्या पैदाहुई थी सो वह कन्या ब्राह्मण कोही विवाही गई और उस्से फिर कन्याभई तौ यह दूसरा जन्म हुआ या इसीको दूसरा युगकहो सो यह दूसरी कन्याभी किसी ब्राह्मणको विवाही गई फिर उस्से जो तीसरे जन्मकी कन्याहुई सोभी किसी ब्राह्मणको विवाही अर्थात् इसीप्रकार निरन्तर जोकन्या होतीगई सो ब्राह्मण कोही विवाहीगई तौ छठेजन्मकी कन्या जो संतान पैदाकरेगी सो वह सातवें जन्मकी संतान ठीकर ब्राह्मणवर्णकी पदवीको पहुँचेगी अर्थात् ब्राह्मणवर्णकी गिनतीमें आकर ब्राह्मणोंमें मिलजावेगी परन्तु जो वीचमें कुछ अन्तर पड़कर किसी और जातिको विवाही जाय या और जातिसे पैदाहो तौ यह उत्कर्ष नहीं हो सक्ताहै-ऐसेही ब्राह्मणके वीजसे वैश्यानीके गर्भमें अंबष्ठाजाति कन्या हुईथी वह भी इसीक्रमसे पांचवेंजन्मकी कन्या छठेजन्म की संतानको ब्राह्मण वर्ण पैदाकरेगी-ऐसेही ब्राह्मणके वीजसे क्षत्राणीके गर्भमें मूर्द्धावसिक्ताजाति कन्याहुई थी वहभीइसीक्रमसे चौथेजन्मकी कन्या पांचवेंजन्मकीसंतानको ब्राह्मणवर्ण पैदाकरेगी-ऐसेही क्षत्रियके वीजसेशूद्रा के गर्भमें उग्राजाति कन्याहुईथी वहभी इसीक्रम से क्षत्रियको विवाहीजाकर छठेजन्मकी संतानको ठीकर क्षत्रियवर्ण पैदाकरेगी-ऐसेही क्षत्रियके वीजसे वैश्यानी के गर्भमें माहिष्या जातिकन्या हुईथी वहभी इसीक्रम से क्षत्रियको विवाही जाकर पांचवेंजन्मकी संतानकोठीकरक्षत्रियवर्णपैदाकरेगी-ऐसेही वैश्यके वीजसे शूद्राकेगर्भ में करणीजाति कन्याहुईथी वहभी इसीक्रमसे वैश्यको विवाहीजाकर पांचवेंजन्मकी संतानको ठीकर वैश्यवर्ण पैदाकरेगी-ऐसेही और भी सर्वत्र अपनी वुद्धिसे विचारकर समझलेना-यहांतक आधेश्लोकका अर्थ पूराहुआ अब पिछले अर्द्धाका अर्थ कहतेहैं कि-कर्मोंके व्यत्ययमें अर्थात् जीविका वृत्तिकेकर्मों में उलटा पुलटा होजानेपर भी पांचवें याछठे या सातवें जन्ममें जातिकी समताहोजातीहै किंतु जिसहीनवर्ण के कर्मसे जीविकावृत्ति करताहै उसीजातिका होजाताहै जैसेब्राह्मण अपने कामोंसे निर्वाह न करसकने में क्षत्रियका कर्म करनेलगै उससेभी निर्वाह न होनेमेंवैश्यकी वृत्ति करै उससेभी निर्वाह न होनेमें शूद्रकीवृत्तिकरै-ऐसेही क्षत्रिय अपने कर्मसे निर्वाहनहो सकनेमें वैश्यकीवृत्ति करै उससेभी निर्वाहनहोने में शूद्रकीवृत्ति

करै-ऐसेही वैश्यभी अपनेकामसे निर्वाह न होनेमें शूद्रकीवृत्तिकरै-यहअनुकल्प जीविका वृत्तिका यद्यपिशास्त्रोक्तहै और इसीकोकर्मों का व्यत्यय कहतेहैं परन्तु यह भी उचितहै कि जब अपनाआपत्काल कटिजावै तबउस नीचवृत्तिको छोड़कर अपनी मुख्यवृत्ति फिर करनेलगै-और जोआपत्काल कटिजानेपर भीउसनीचवृत्तिको नहीं छोड़ै और उसवृत्तिके करतेहुये जिसपुत्रको पैदाकरै वहपुत्रभी उसीवृत्तिको करनेलगै फिर उसपुत्रका पुत्रभी उसीवृत्तिकोकरै तो इसीकर्मसेइसव्यवस्थामें जो ब्राह्मणने शूद्र वृत्तिकरी होतो सातवेंजन्मका संतान ठीकर शूद्रपैदा होताहै-जोब्राह्मणने वैश्यवृत्ति करीहो तो छठीसंतान वैश्य पैदाहोताहै-जो ब्राह्मणनेक्षत्रियकी वृत्तिकरीहो तौपांचवीं संतान क्षत्रिय पैदाहोताहै-जो क्षत्रियने शूद्रकीवृत्तिकरीहो तौछठीसंतान शूद्रपैदाहोताहै-जो क्षत्रियने वैश्यकी वृत्तिकरी होतौ पांचवीं संतान वैश्य पैदाहोताहै-जो वैश्य ने शूद्रवृत्तिकरी हो तो पांचवींसंतान शूद्रपैदाहोता है-यहांतक तीनपाद अर्थात् पौन श्लोककाअर्थहोचुका अब चौथेचरणका अर्थकहतेहैंकि(पूर्ववच्चाधरोत्तरम्)अधरवाले और उत्तरवालेइन्होंका नीचहोना या ऊंचहोना पूर्वोक्त श्लोकके उत्तरार्द्धके अनुसार जानो(जैसे) मूर्द्धावसिक्ताजातिकी कन्या में क्षत्रिय वैश्यशूद्रोंकी पैदाकरीहुई संतानें औरअंबष्टा जातिकी कन्यामें वैश्यशूद्रों की पैदाकरी हुई संतानें और निषादीकन्यामें शूद्रसे पैदाहुई संतानें येसब (अधर) कहातेहैं इनको प्रतिलोमज भी कहतेहैं-(तैसेही) मूर्द्धावसिक्ताकन्या अंबष्टाकन्या निषादीकन्या इन तीनोंमें ब्राह्मणकी पैदा करीहुई संतानें और माहिष्या कन्याउग्रा कन्याइनमें ब्राह्मणकी पैदाकरीयाक्षत्रियकी पैदाकरी संतानें और करणीकन्या में ब्राह्मणकी पैदाकरी या क्षत्रियकी यावैश्यकी पैदाकरी संतानेंये सब(उत्तर)कहातेहैं इनकोअनुलोमजभी कहते हैं ऐसेही और भी अपनीबुद्धिसे समझलेना इनमेंजो अधरजातिके गिनायेवहनीचे हैंजो(उत्तर)जाति केगिनाये वहऊंचेहैं जैसेपहले ९५ के श्लोकके पिछलेअद्धामें प्रतिलोम और अनुलोमोंसे परस्पर पैदाहुये नीचेऊंचे कहेथे ९६ ॥ इतिवर्णजातिविवेक प्रकरणम् ॥

यहांतक मनुष्यको जन्मसंस्कार विद्यासंग्रह विवाह और संतान यहसब करके पूरा गृहस्थी बनादिया और उसकीजातिभी निश्चित करदीगई-अबउस गृहस्थीको दिनों दिन जोकुछ कामधंधा जिसरीतिसे करनाचाहिये कि जिससेउसका कल्याणहो और कोईसी हानिनहीं होनेपावै सोमर्य्याद अबनीचे कहतेहैं ॥

कर्मस्मार्तंविवाहाग्नौकुर्वीतप्रत्यहंगृही। दायकालाहृतेवापिश्रौतंवैतानिकाग्निषु ९७॥

पक्ष०—गृहस्थी अनुदिन स्मार्त्तकर्मोंको विवाहकी अग्निमें या दायकाल परहरी हुईमेंकरै-श्रौतकर्म को वैतानिक अग्नियोंमें ९७॥

अभि०—स्मृतियोंके कहेहुये वैश्वदेव विधिआदिकर्म स्मार्त कहलातेहैं तिनको और

लौकिक जो अन्नपाक आदिकर्म प्रतिदिन कियेजातेहैं तिनकोभी गृहस्थी जो घरका धनीहो सो विवाहकी अग्निमेंकरे अर्थात् जिसअग्निके हवनकर्मको प्रत्यक्ष करके विवाह कियाजाताहै वही अग्नि उसकेघरमें सदैव रक्षापूर्वक रक्खीजाती है तिसमेंकरे किन्तु और कहींसे अग्निलाकर न करे अथवा किसीहेतु से वह अग्निनहीं हो तो उसअग्निमें करे जोघरका हिस्साबांट होनेकेसमय अपनेबांटमें पाईहो अथवाजिसके घरमें ऐसीअग्निभीनहो तोवैश्यकेघरसे या किसीसत्कुल धनपात्रकेघरसेया भाड़मेंसे ल्यायकर अग्निसंस्कारकी विधिसे संस्कारकरके उसमें उन कर्मोंकोकरेजो ऊपरकहे-और श्रौतकर्म्म जो वेदोक्तरीतों से अग्निहोत्र आदि कर्म्म होते हैं तिनको(वैतानिक) नाम आहवनीय आदि अग्नि जो वेदकी विधिसे स्थापन होती हैंतिनमें करे ९७॥

शरीरचिंतांनिर्वर्त्यकृतशौचविधिर्द्विजः। प्रातःसंध्यामुपासीतदं तधावनपूर्वकम् ९८॥

एकार्थः—द्विजाती गृहस्थी शंकालघु शंकाआदि शरीरकी चिंतासे निपटकर यथोक्त शौचविधि कियाहुआ दन्तधावन पूर्व्वक स्नान आदि करिके प्रातःकालकी सन्ध्या उपासनाकरै ९८॥

अधि०—दंतधावनमंत्रश्च(आयुर्बलंयशोवर्चःप्रजाःपशुवसूनिच। ब्रह्मप्रज्ञांचमेधांचत्वंनोदेहिवनस्पते) इति यद्यपि शास्त्रांतरमें कहींकहीं ब्रह्मचारीकेलिये दंतधावनका निषेधपाया जाताहै और उसीके अनुसार श्रीमत्परमहंस परिव्राजक विज्ञानेश्वरभट्टारक मिताक्षराकार भी यहांपर प्रमाणदेते हैं कि गृहस्थीको दंतधावन सहित संध्या आदिकर्म करनेकी आज्ञादेने के लिये यहांपर दुसराकर संध्याकाचर्चा कियागया है क्योंकि संध्याकी चर्चा यद्यपि ब्रह्मचारीके प्रकरणमें आचुकीथी परन्तु वहांपरदंतधावनका चर्चानहीं आयाथा इसहेतुसे कि ब्रह्मचारीको दंतधावन करनानिषेध है तथापि इसप्रमाणके देनेपरभी कोईसाहेतु नहींलिखतेहैं कि क्यों उसको दंतधावनका निषेधहै फिर विनाहेतुकी वार्ताकाप्रमाण क्योंकर मानाजाय-और जो योंकहो कि यहभी एकधर्मकालक्षणहै तोजिसमें शौचिताकी विशेषता पाईजाय ऐसेधर्म लक्षणका विना हेतुकेभी प्रमाण होसक्ताहै और जहांप्रत्यक्ष भावसे मलीनता पाईजाती है तिसको विनाहेतुके प्रमाणकैसे करसकें-इससे प्रत्यक्षभाव में दंतधावन का करनाही ब्रह्मचारीकेलियेभी धर्मका लक्षण प्रतीत होताहै और नकरना अधर्मका लक्षणहै और जो यहकहो कि जो करना धर्मकेलक्षणमें गिनतीहोता तो क्या याज्ञवल्क्यजी आज्ञानहीं लिखसक्तेथे-हम कहतेहैं किजो उन्होंने आज्ञा नहींलिखी तो निषेधभीतो नहींलिखा है कि वहदंत धावनको नकरे और दूसरे यहबात कि जैसे इसबातका चर्चा उन्होंने यहाँपर नहीं लिखा तैसेही औरभी अनेकबातें तुच्छ समुझकर नही लिखींहैं क्योंकि जब ब्रह्मचारीकेलिये प्रातःकालकी शौचविधिकरनालिखा तो उसकेसाथमें दंतधावन

आपही समझलियागया फिर उसको भिन्नलिखनेकी क्या आवश्यकता थी शौचकहने मेंउसकेउपयोगी सभीकाम आगये-और जिनऋषियोंने दंतधावनका निषेधलिखा है उनके लिखनेकाहेतु और अभिप्राय केवलइतना तो साधारणभावसे पायाजाताहै कि विद्या संग्रहकरनेवाला ब्रह्मचारी नृत्य गीत सुगंधि उबटना अंजन आदिकामोंमें यहाँ तक उपेक्षाकरदेवे कि वहअच्छीतरह दंतधावनभी नकरै अर्थात् जोदातौनि अनायास हाथलगजावे तो करलेवे नहींतो आवश्यकतापूर्वक ढूँढ़तानहींफिरे क्योंकि उसकेढूँढ़ने और करनेमें विलंब लगेगा उसविलंबसे गुरुकी सेवा और विद्योपार्जनमें हानिपड़ेगी इसहेतुसे विद्यासंग्रहमें उत्साह और उत्कर्षादिखलानेकेलिये और नृत्यगीत उबटना अंजन तैल आदि संस्कारोंसे मन हटानेकेलिये निषेध लिखाहै कि इनकामोंको यहां तकछोड़देवे कि दातौनिका करना जो बड़ा आवश्यक और शौचधर्मकी गिनतीमें है तिसकोभी नकरै तौ दोषभागी नहीं होसक्ता परन्तु तौभीदातौनिका करना यह ऐसा कामनहींहै कि जिसकेकरनेसे ब्रह्मचारीका ब्रह्मचर्य जातारहे या वहपापभागीहोजाय इसीलिये याज्ञवल्क्यजी ने इसकी विधि या निषेध दोमेंसे एकभी नहींलिखा क्योंकि विधितो शौचकर्मकी आज्ञाकेसाथ आपही पाईगई(दृष्टांत) जैसे किसीने कहाकि रोटी करो तहांयहभाव नहींहै कि केवल रूखीरोटी करलो किंतुरोटी कहनेसे दालभाततर-कारी आदि उसके उपयोगी सभी पदार्थ समुझे गये-और निषेधको इसलिये नहीं लिखा कि वहानिषेध निर्विकल्प आज्ञापूर्वक नहींहै किंतु उसमें केवल साधारण हेतुहै जो ऊपर नृत्यगीत आदिके निदर्शनमें लिखागया फिर ऐसे वृथा तुषकंडनकी क्या आवश्यकताहै जो निष्प्रयोजन बातकोलिखें और ग्रंथकाविस्तार बढ़ावें इससेउसकी इच्छारही कि जैसा अवसरदेखे उसके अनुसारकरे या न करे ९८ ॥

हुत्वाग्नीन्सूर्यदैवत्यान्जपेन्मंत्रान्समाहितः। वेदार्थानधिगच्छेच्चशास्त्राणिविविधानिच ९९ ॥

प्रक्ष०—अग्नीन्को होमिकर सूर्यदेवत्य मंत्रोंकोजपे पुनि समाहितहुआ वेदकेअर्थों को अधिगतहोवे और विविध भाँतिके शास्त्रोंकोभी ६६ ॥

अभि०—अग्नीन्को पहले होमिकर यह असंभवहै इसलिये सूर्यदेवत्य मंत्रोंको यह ८६केश्लोकमेंजो प्रातःकालकी सन्ध्या दन्तधावन पूर्वककहीथी तिसकेसाथ जुड़ा अ-र्थात्प्रातःसन्ध्याको उपासनकरै और सूर्यदेवत्य मंत्रोंको जो संध्याकीविधिमें होते हैं तिन्हें जपै-तिसपीछे आहवनीय आदि अग्नि जो जिसके घरमें कोईसी स्थापितहो तिसकोया औपासन अग्निको होमिकर स्वस्थचित्तहुये पीछे वेदके अर्थकहिये पदार्थ जो निरुक्तकल्प व्याकरणादि प्रसिद्ध हैं तिन्हें श्रवण मनन निदिध्यासन प्रकारों से समुझे और अनेकभांतिके संसारीशास्त्रोंकोभी सुनै और विचारे अथवापढ़े यहप्रातः काल का धंधाकहा ६६ ॥ अब कुछेक दिनचढेका धंधाकहते हैं ॥

उपेयादीश्वरंचैवयोगक्षेमार्थसिद्धये। स्नात्वादेवान्पितॄंश्चैवतर्पयेदर्चयेत्तथा १०० ॥

एका०—(योग) कहिये मुकद्दमा आदिकोईसा अपनाउपाय(क्षेम)कहिये रक्षासंबन्धी काम जो अपने धनजन आदिसे अपेक्षितहो-(अर्थ), कहिये धनका लाभकरना ऐसे २ कामोंकी सिद्धिकेलिये ईश्वर जो कोई नगरकाराजा या प्रधान साहूकार आदि समर्थ तिसकेपासभी जावै-वहांसे आकर फिर स्नानकरिकैदेवताओं और पितरोंकोभी तर्पण और पूजनकरै १०० ॥

वेदाथर्वपुराणानिसेतिहासानिशक्तितः। जपयज्ञप्रसिद्धयर्थंविद्यांचाध्यात्मिकींजपेत्.१०१॥

एका०—वेदत्रयी अथर्व पुराण इतिहास और अध्यात्मिकी नाम वेदांतविद्या इन सबोंको या किसी किसीको बहुत अथवा थोड़ा२ अपनी सामर्थ्यके अनुमानसे जप यज्ञ आदिकामोंकी सिद्धिकेलिये जपै १०१ ॥

बलिकर्मस्वधाहोमस्वाध्यायातिथिसत्क्रिया। भूतपित्रमरब्रह्ममनुष्याणांमहामखाः १०२॥

प्रक्ष०—बलिकर्म १ स्वधाकर्म २ होमकर्म ३ स्वाध्यायकर्म ४ अतिथिसत्कार ५ यहपाँचोक्रमसे-भूतयज्ञ १ पितृयज्ञ २ देवयज्ञ ३ ब्रह्मयज्ञ ४ मनुष्ययज्ञ ५ महायज्ञ कहाते हैं १०२ ॥

भभि०—यहपाँचो महायज्ञ गृहस्थीको रोजरोज करने उचितहोतेहैं और श्लोकमें जो क्रमलिखाहै सोतो केवल संख्यामात्र जानलेनेके लियेहै और इनके करनेका क्रम जैसाविधिके ग्रंथोमें होताहै वहठीकहै इनमेंसबसे पहले ब्रह्मयज्ञ उसेकहतेहैं कि(ब्रह्म) जो परमात्मा तिसके नामसे वेदपाठ गीतापाठ उसके नामोंका जप वेदांतपाठ या उसकेनामसे कुछदेना सो सब ब्रह्मयज्ञमें गिनाजाताहै १-देवतर्पण या देवपूजन वैश्व देव होमआदि जो कुछ देवताओंके नामसे कियाजाय वह देवयज्ञ कहाताहै २-तर्पण या श्राद्ध भोजन दानआदि जो कुछ पितरोंकेनामसे कियाजाय या पितृ संहिता का पाठही कियाजाय वह पितृयज्ञ कहाताहै ३-भूतयज्ञ जो भूतप्रेत प्राणियोंके नामसे सिद्धान्नका बलिदान कियाजाता है ४-नृयज्ञ जो पूर्वोक्तयज्ञोंके पीछे आयेहुये अतिथि अभ्यागतोंको जिमायाजाय या शक्तिके अनुसार कुछ देदियाजाय ऋषितर्पणभी इसी नृयज्ञमें गिनती है ५ ॥

भधि०—इनको पंचमहायज्ञ कहते हैं यह यज्ञ यद्यपि नित्य कियेजातेहैं परंतुकिसी कामनासे नहींहोसक्ते हैं किंतुगृहस्थीको पाँचपाप जो अवश्यभावसे बिनाकियेभी रोज रोजलगतेहै तिनकीशांति और शरीरअथवा कुटुम्बकी निर्मलताके निमित्तमेंकियेजाते हैं-पाँचपाप एकतो ओखली मोगरी कुल्हाड़ी खड्गआदि कूटनेके कामोंसे जो जीव जंतुमरतेहैं १-दूसरेचक्की सिलबट्टा आदि पीसनेकेकामोंसे जो जीवनाश होतेहैं २-तीसरेचूल्हा अँगीठीआदि अग्निकेकामोंसे ३-चौथेजलकेकामोंसे ४-पाँचवें बुहारी

और लीपापोती आदिसे ५-इसीलिये संन्यासीलोग सवधंधे छोड़देतेहैं कि किसीधंधेमें जीवनहींमारेजायँ-ऊर्ध्वोक्त पंचयज्ञोंके करनेवालेलोग वर्त्तमानमेंभी वहुधा सहस्र में पाँच पायेजाते हैं और ऐसेतो वहुताइतसेहोंगे कि जो एकही या दोतीन यज्ञोंको थोड़ा या वहुत अपनी शक्तिके अनुसार करते हैं-हिंदूलोगों में अत्यंत दयाभाव होनेका यहीहेतु है-जिसदिन कलियुग अपना कालका प्रभाव फैलावेगा और यह नैत्तिक पंचकर्म इनसे किसीहेतुसे जातेरहेंगे तव इनमेंभी कठोरता अन्यजीवोंकी हिंसातो कुछ गिनतीमें भी नहीं आसक्ती किन्तु नर हिंसामें भी प्रवृत्तिहोजाना कुछ आश्चर्य नहीं है और अद्यापिसवलोग एकसे नहींहैं किन्तु जिनमें इनकामोंका संसर्ग नहींहै उनकी प्रकृति और कठोरता को देखाचाहिये परंतु जो सृष्टिकर्त्ता को यह अनर्थ करना अंगीकार नहींहै तो इनसे इनकर्मोंका छूटना भी वड़ादुर्लभहै आगे उसकी ईश्वरता वही जाने कि वह किसवातमें राजीहै या किसवातमें नाराज १०२॥

देवेभ्यश्चहुतादन्नाच्छेपाद्भूतवलिंहरेत्। अन्नंभूमौश्वचांडालवायसेभ्यश्चनिक्षिपेत् १०३॥

मक्ष०—देवताओं के अर्थहोमे हुये अन्नसे शेषमेंसे भूतवलि हरे-अन्नको भूमिमें श्वानचांडालकाकों के लियेभी छोडे १०३॥

मभि०—ऊपरके श्लोकमें कहेहुये यज्ञोंका थोड़ासा प्रकार भी सूक्ष्मभावसे कहते हैं कि गृहस्थी अपनी रसोईमें सिद्धहुये अन्नको व्रह्मयज्ञ किये पीछे इन्द्रादि-देवताओं केनामसे अपनी गृह्योक्त विधि सहित अग्निमेंहोमै फिर उस्से वचेहुये अन्नमें से भूतवलि भी करै इसपीछे अपनी शक्तिके अनुसार कुछ अन्नलेकर कुत्ता चांडाल कौआ आदिजीवों के लिये भी धरतीमें धीरेसे रखदेवे १०३॥

मधि०—आदिशब्दसे कीड़े और पापरोगी कुष्ठी आदि पतित इनके लियेभी रख देवे-सोई मनुजीने कहाहै कि-(शुनांचपतितानांचश्वपचांपापरोगिणाम् । वायसानांकृमीणांचशनकैर्निक्षिपेद्भुवि) अर्थात्-कुत्ताओं पतितों चांडालों पापरोगियोंकाकों कीडाओंके लिये भी धीरेसे धरतीमें छोडदेवे-यह सवेरेसोंझ दोनों समय कर्त्तव्यहै १०३॥

अन्नंपितृमनुष्येभ्योदेयमप्यन्वहंजलम्। स्वाध्यायंचान्वहंकुर्यान्नपचेदन्नमात्मने १०४॥

ऐ०—पितरों वा मनुष्यों को भी अन्न और जलभी अनुदिन दातव्य है स्वाध्याय भी अनुदिनकरै केवल अपनेलिये अन्नको नहीं पकावे-अर्थात् देवता आदिके नामसे पकावे-अन्नके अभावमें कंदमूल फलादि कुछदेवे यहभी नहींहो तो जलही देवे-और स्वाध्याय कहिये अपना पाठनिरंतर करना इसलिये कहाहै कि भूलेनहीं १०४॥

वालस्ववासिनीवृद्धगर्भिण्यातुरकन्यकाः। सम्भोज्यातिथिभृत्यांश्चदंपत्यो शेषभोजनम् १०५॥

ऐ०—वालक और स्ववासिनी कहिये विवाहिताकन्या जो पिता के घरमेंहो बूढा गर्भिणी-आतुर जिस्से भूख न थँभतीहो (कन्याअविवाहिता) अतिथि जो पहिले

किसी तिथिमें अपने यहां न आयाहो ऐसा कोई जातिहो-भृत्य नौकर चाकर आदि इनसबोंको तृप्तिपूर्व्वक जिमायकर पीछे घरका धनी स्त्री पुरुष दोनों जने बचेहुये अन्नको भोजन करें १०५ ॥

भाषि०-अतिथिका निराश फिरजाना यह गृहस्थीको बड़ाअपराधहै-तथाच (अतिथिर्यस्यभग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्त्तते। सतस्मैदुष्कृतंदत्वा पुण्यमादायगच्छति) अर्थात् अतिथि जिसकेघरसे आशातोड़कर लौटजाताहै तिसको वह अपनासंचित पापदेकर और उसके संचितपुण्यकोलेकर जाताहै-इसमें कुछसन्देहनहीं इसीसिद्धांत के आशयसे यह भी निश्चितहै कि जो अतिथिका सत्कारकरताहै वह गृहस्थी उस अतिथिको अपने संचित पाप देकर उसके संचित पुण्यको हरलेताहै-इसीसे अच्छे सज्जन गृहस्थीलोगोंके घरमें बिछावना चटाई आदि १ धरती बैठनेको २ जल सत्कारकेलिये ३ सूनृता कहिये सत्य मधुरभाषिणी यथार्थ वाणी मनहरनेकेलिये ४ जो कुछभी और न हो तो यहचारवस्तु तो सदैवही बनीरहती हैं जिनसे आयेगयेकासत्कारहो जिससे उनका पुण्य लेकर पाप बांटदियाजावे-तथाहमनुः (तृणानिभूमिरुदकं वाक्चतुर्थीचसूनृता। एतान्यपिसतांगेहे नोच्छिद्यन्तेकदाचन १०५॥

आपोशनेनोपरिष्टादधस्तादश्नतातथा। अनग्नममृतंचैवकार्यमन्नंद्विजन्मना १०६ ॥

मिता०-भोजनकरतेहुये द्विजातीको पहले (आपोशन) नाम कर्म्मकी भोजनविधि से अन्नकोऊपर और नीचेसेभी अनग्न और अमृतकल्प भी करलेनाचाहिये १०६॥

सत्कृत्यभिक्षवेभिक्षादातव्यासुव्रतायच। भोजयेच्चागतान्कालेसखिसंबंधिबांधवान् १०७ ॥

मिता०-भिक्षुको भिक्षा दातव्यहै और सुव्रतकेलिये सत्कारसे-समयपर आये हुये सखा सम्बन्धी बान्धवोंको भी भोजनकरावे १०७ ॥

भाषि०-साधारण भिक्षुको साधारण भिक्षादेवै और सुव्रत कहिये ब्रह्मचारी या यती तिसको सत्कार सहित देवै अर्थात् स्वस्ति शब्द उच्चारण करवाकर जल दान सहित उत्तम भोजनदेवै-ऊर्ध्वोक्त साधारणभिक्षाका परिमाण एक ग्रासमात्रका कहा है और ग्रासका परिमाण मयूरके अण्डामात्रका कहाहै सो यह मन्दभिक्षाहै-और ४ ग्रासमात्रके परिमाणको एक (पुष्कल) कहतेहैं इतना जो कुछ अन्न दियाजावे सो मध्यमभिक्षाहै-चारपुष्कल अर्थात् सोलहग्रासका एक (हन्त) कहलाताहै इतना जो कुछ दियाजावे यहपूरा आहार और उत्तमभिक्षा कहलातीहै-जोइससेत्रिगुणादियाजावेतिसकी (भग्र) संज्ञा कहते हैं यहभी किसी अतिआहारीका आहारहै-यह शातातप स्मृतिका प्रमाणहै यहांतक आधेश्लोकका अर्थ होचुका-भोजनके समयपर आयेहुये सखा कहिये अपने प्रेमीमित्रसम्बन्धी जिनसे अपने लड़का या लड़कीका सम्बन्ध हो- बान्धव शब्दसे अपने सम्बन्धियों के सम्बन्धी जहांतक नाते रिश्ते में कोई हों

उनको भी जिमावे-भोजनके समयपर आयेहुये कहनेका यह अभिप्रायहै कि इनकहे हुये मनुष्योंमेंसे कोई मनुष्य जो अपने उसी नगर या उसीमुहल्ले या उसी मकानके घेरामें रहनेवाला है कि जहां अपना निवासहै और वह साधारणभावसे मिलनेको या किसी कामकेहेतुसे अपने भोजनके समय सन्मुख आजावे तौ उसकोभी भोजनकरावे यहभी एकसत्कार और प्यारकीमर्यादा है इस्सेअपना और विराना जानाजाता है-अन्यथा विदेशी नातेदारका आनातौ विनाभोजनके समयपरहोगा तौभी उसकेलिये रसोई फिर बनवाईजायगी उसकेलिये भोजनका समयकहना यह असंभवहै १०७॥

महोक्षंवामहाजंवा श्रोत्रियायोपकल्पयेत्। सत्क्रियान्वासनंस्वादुभोजनंसूनृतंवचः १०८॥

अक्ष०—महोक्ष या महाजको श्रोत्रियकेलिये उपकल्पितकरै-सत्क्रियाकरै स्वादुभोजनदेवै सूनृत वचनकहै १०८॥

अभि०—बड़ेबैलको (महोक्ष) कहतेहैं बड़ेबकराको (महाज) कहतेहैं सो यहदोवस्तु एक उपलक्षणमात्र कहाहै किंतुवा२शब्दोंके विकल्पसे और पशुभी समुझलेने, अर्थात् जोकोईसा उत्तमपशु अपनेघर पालरक्खाहो उसकोअपने घरआयेहुये श्रोत्रियकहिये वेदपारग ब्राह्मणकेनामसे उपकल्पितकरै इसकाभाव नीचे अधिकोक्तिमें देखो सो यह बातकबकरै कि पहले उसआयेहुये श्रोत्रिय अथवा श्रोत्रियके उपलक्षणसे और कोई अपनामान्यभी समुझना ऐसाजोकोई बहुतदिनोंपीछे अपनेघरआवे तिसकापहलेतौ सत्कार किंतु कुशलक्षेमका बूझना बातचीतसे खातिर्दारी करना बैठनेकोऊँचा आसनदेना हाथ पैर धुलाना कुल्ला और स्नानकरवाना आदि यहसब सत्कार करै-फिर अन्वासनका यहअर्थहै कि जबतक वहनबैठै तबतक आपभी खड़ारहै जब उसको आसनपर बैठारलेवे तबपीछे आपभी उस्सेनीचाबैठे-फिर स्वादुकहिये मीठे और अपेक्षित प्रियभोजन करवावै-तिसपीछे सूनृतवचन अर्थात् हमआपके आगमनसेधन्य और बड़भागीहुये जो आपने इसघरको अपनेचरणोंसे पवित्रकिया और भी देश काल कार्यकारणके अनुरूप जैसाउचितहो सोकहै-यहसब कियेपीछे बीचमेंही अथवा चलतेसमय पूर्वोक्तपशु उपकल्पितकरै १०८॥

अधि०—उपकल्पितकरना केवल देदेनेकाही अर्थनहींहै किंतु यातौ पहिलेसेही उसकेनामसे कोई पशु संकल्पिरक्खाहो कि वहआवैंगे तौ उनकीभेंट कियाजायगा तौभेंटहीकरदेवे अथवा पहलेसेनहीं परउसीसमय यहविचारमेंआया कि इनकीभेंटकुछकरना उचितहै तौ कोईसापशु जो अच्छासमुझाया जैसा देनाचाहा उनकेसाथकिया-इसके सिवाय जिसको देनेकीसामर्थ्य तौ नहींहै क्योंकि उसके एकही या दोपशुहैं उन्हींसेघर कापालन होताहै तौ लोकाचारकी सुघड़भलाईके लिये उनपशुओंके पासउनकोलेजा करखड़ाकरै और यहकहै कि यहसब संपत्तिआपहीकीहै इसमेंसे जो कुछ आपकीइच्छा

मेंआवैसेलेजाइये इतनाकहनेपर वहउसकीशुश्रूषाअंगीकारकरआशीर्वाददेकर और उसमेंसे कुछनलेकर चले जायँगे-परंतु इसमें इतनी दृढ़ता औरभीहै कि वह श्रोत्रिय जोलालचीहोगा और संसारके शिष्टाचारको नसमुझकर उस कहनेसे किसीवस्तुपर लोभदृष्टि करनेलगे तौ फिर देदेनाभी उचित-यह पशुदानकी मर्याद यद्यपि अद्यापि कहीं२ देश और कालकी अपेक्षासे पाईजाती है परंतु प्रवर्तित समयसे विपरीतहै-पहले समयमें इसकी प्राधान्यता इसहेतुसे लिखीगईथी कि उससमयमें बहुधा तृण की बहुताइतसे पशुधन को उत्तम गिनाकरते थे और उसधनसे प्रजाका अच्छा पालनहोताथा इसीसे उसधनका अधिकार हुआ करताथा उससमयमें एकगऊ या भैंस का देना लेना ऐसाथा कि मानो लेनेवाले ने एक ग्राम पाया हो सिद्धांत इसका केवल इतनाहैकि जो अपनेपास कुछ और वस्तु रत्नवस्त्रादिक या रोकदेनेकोनहो तौ कोईसा पशुही अर्पणकरदेवे जो इसकोभी नदेसक्ताहो तौ यह कहकर हाथजोडदेवे कि यह सबसंपत्ति तुम्हारीहै-यद्यपि उपकल्पितकरनेका अर्थ कुछ और भीहै और वह बड़ी दूरपहुँचताहै परंतु वृथातुषकंडनसे क्या हाथआताहै १०८ ॥

प्रतिसंवत्सरन्त्वर्घ्याः स्नातकाचार्यपार्थिवाः। प्रियोविवाह्यश्चतथायज्ञंप्रत्यृत्विजः पुनः १०९॥

प्रक्ष०-संवत्सरपीछे अर्घदेवे योग्यहैं स्नातक आचार्य पार्थिवप्रिय विवाह्यऋत्विक् तैसेही ऋत्विजलोग यज्ञोंमेंभी १०९॥

अभि०-हरसाल यहसबलोग मधुपर्क भोजन आदिसे सत्कारकरिबे योग्यहैं-एक तौ स्नातक जोतीनप्रकारके होतेहैं विद्यास्नातक १ व्रतस्नातक २ विद्याव्रतस्नातक ३ जैसा ब्रह्मचारी प्रकरणमें कह चुके है-आचार्य जैसा ३४ श्लोकमें कहचुके हैं-पार्थिव राजा जिसके लक्षण आगे आचाराध्यायके अंतमे कहेंगे-प्रिय जोकोई अपना प्रेमी हो-विवाह्य जामाता आदि जोकोई अपने घर या कुलमात्रमें विवाहेहो-ऋत्विक्जिसके लक्षण मनुसंहितामें कहेहैं और वहवेद विधिकी रीतिसे १६ प्रकारकेऋत्विजहैं-और इनके सिवाय आश्वलायन ऋषिके प्रमाणसे चचा मामा श्वशुरादि जो कोई अपने संबंधीहो तिनको भी-परन्तु ऋत्विज वर्षकेभीतरभी कि जबकभी यज्ञके हेतुसे आवें सत्कार करिबे योग्यहै १०९॥

अभि०-ऊपरके लोगोंको हरसाल जो कहा तिसका यहअभिप्रायहै कि जो वेलोग आपही किसीहेतुसे आतेजाते बनेरहे और बीच२उनका सत्कारहोतारहे तौ इसबात की कुछ आवश्यकता नहींहै परन्तु जिनका आनाजाना न होसक्ताहो उनकोतौ अवश्यही सालभरपीछे एकबार किसी बहानासे बुलाकर सत्कारकरदियाकरो क्योंकि जो ऐसा नहींकरोगे तौ कईवर्षों के व्यतीत होजानेपर स्नेहमें रूक्षता पडजायगी उस रूक्षताके प्रभावसे वहलोगभी ऐसेहो जायँगेकि जानोकोई गैरहो फिर जबकभी तुमको

उनकी सहायता अथवा मेलमिलाप किसीहेतुसे चाहना पड़ेगा तब कदाचित् भी वह तुम्हारे साथी नहीं होसकैंगे याजोहोभी सकैंगे तो तुमको बडासापरिश्रम और दामों काभी व्यय करनापडैगा तो भी वह मेलमिलाप ऐसा समुभाजायगा कि जैसे किसी विपत्तिसेगैरों की खुशामद् करीजातीहै इसलिये इस शिष्टाचारसे कदाचित् भी मुहँ मतफेरो-और ऐसेही वे लोग जवतुमको किसीहेतु अथवा संवत्सरके अंतरसे यादि करैं तव उनके पासजानेसेभी मुहँमतफेरो इसमेचाहे कुछ तुम्हारीहानि भी होती हो परस्नेहको मत सूखने दो १०९ ॥

अध्वनीनोऽतिथिर्ज्ञेयः श्रोत्रियोवेदपारगः । मान्यावेतौगृहस्थस्यब्रह्मलोकमभीप्सतः ११० ॥

ऐ०—अध्वनीन जो बटोहीहै वह अतिथि जाननाचाहिये चाहे कोईहो-जोवेदपारग है वह श्रोत्रिय कहनाचाहिये-यहदोनों उस गृहस्थीमात्रके मान्य होतेहैं जो ब्रह्मलोक की इच्छा करनेवाला है-अर्थात् जो गृहस्थीनरककी इच्छाकरता हो वह चाहो इनको मानो या मतमानो-और श्रोत्रिय अथवा वेदपारग पर्यायपह केवलकिसीयोग्यविद्या-मात्रकोनिदर्शनहै-औरब्रह्मलोक अथवा नरकयहदोनोंभीइसीदेहसेसंभवितहैं ११०॥

परपाकरुचिर्नस्यादनिंद्यामंत्रणादृते । वाक्पाणिपादचापल्यंवर्जयेच्चातिभोजनम् १११ ॥

ऐ०—अनिंद्य के आमंत्रण विना पराये पाकमें रुचिनकरै-किन्तु निन्दित मनुष्यके नौतामें भी जीभ नहीं ललचावे और अनिंद्यके निमंत्रणसे मुखभीनहीफेरै-और वा-णीकी चपलता जो अनृत भाषण या सभामेंकहने योग्यबात नहीं-हाथोंकी चपलता मटकाना या तालीपटकाना आदि-पावोंकी चपलता उछलना या निरर्थक दौडकर चलना आदि इनवातोंको छोड़ देवे और अतिभोजन भी नहींकरै क्योंकि अतिभो-जनसे प्रथम तो शरीरमें शिथलता अधिक होजातीहै उससे वह कोईकाम उत्साहसे नहीं करसक्ता और कामोंके न करनेमें सर्वथा हानिहै और देहकोदाव पीडादेकर काम करनेसे वात पित्त कफ सम्बन्धी अनेकरोग होजाते हैं इससे सूक्ष्म भोजनकरै-इसके वाय गौतमस्मृतिके प्रमाणसे नेत्रमुख लिंगेन्द्रिय आदिके विकारोंकोभी न करै १११॥

अतिथिंश्रोत्रियंतृप्तमासीमांतमनुव्रजेत् । अहःशेषंसमासीतशिष्टैरिष्टैश्चवन्धुभिः ११२ ॥

ऐ०—पूर्वोक्त अतिथि और श्रोत्रियके भोजन से तृप्तहुये पीछे चलतेसमय अपने ग्रामकी सीमा ताईं पीछे२ साथ जाकर पहुँचाइआवे तिस पीछे कुछ दिन शेषरहेपर शिष्टों और इष्टों और वंधुजनों सहित बैठकर शास्त्र चर्चा या लोक चर्चा करै-शिष्ट उनको कहतेहैं जो अच्छे आचारवाले इतिहास पुराणादिके जाननेवालेहो-इष्ट अपने प्रियमित्रादिक जो धर्मज्ञहो-वंधु अपनेनाते गोतेके सम्बन्धी आदि जो कोई अनुकूल वार्त्ताके वक्ताहों ११२ ॥

उपास्यपश्चिमांसंध्यांहुत्वाग्नींस्तानुपास्यच । भृत्यैः परिवृतोभुक्त्वानातितृप्त्याथसंविशेत् ११३ ॥

ऐ०–पिछली सांझकी संध्याको उपासना करिके और साँझकी अग्नीन्को भी होमिकर और उपासना करिकैं पुनि १०५ इलोकमें कहेहुये सव भृत्यवर्ग सहित साधारण तृप्तिसे भोजनकरिकैं और चकारके ध्वन्यर्थसे घरके लाभखर्चकी चिन्तासे निपटारा करिकै तवसोवै ११३॥

भाषि०–६८ के इलोकमें प्रातःसंध्याकी विधि कहकर यहांताईं १५ इलोकोंसेसारे दिनभरका धंधावतलाया और इसइलोकमें सायंकालके संध्याआदि कामोंकीविधि कहकर सोनेकी आज्ञादेचुके अवआगे-दूसरेदिनके प्रभात ताईंका क्रमबतलाकर पीछे गृहस्थी की और साधारण मर्यादोंको कहेंगे ११३॥

ब्राह्मेमुहूर्त्तेचोत्थायचिंतयेदात्मनोहितम्। धर्मार्थकामान्स्वेकालेयथाशक्तिनहापयेत् ११४॥

मक्ष०–ब्राह्ममुहूर्त्त में उठकर अपने हितका चिंतमन करै धर्म अर्थकाम इन्होंको अपने २ नियतकालपर यथाशक्तिके अनुसार त्यागैनहीं ११४॥

अभि०–चारघड़ीकेतड़के ब्राह्ममुहूर्त्त कहलाताहै उसमें पहलीराति कासोयाहुआ उठकर अपनाहित जो कुछकाम पहलेप्रारम्भ कररक्खाहो या आगेकोकरनाहो तिनको उसीसमय खाटपर वैठाहुआ पहले शोचविचारलेवे कि उसमें यों करनाउचितहै और उसीसमय वेदशास्त्र सम्वन्धी संशयरूप गाँठोंकोखोललेवे क्योंकि उससमय चित्तसावधान होताहै फिरधर्मअर्थ कामसम्वन्धी नित्यकेधंधोंको जैसा जिससमय करनाकहचुकेहैं अपनीशक्तिके अनुरूप करनेसे चूकैनहीं ११४॥

विद्याकर्मवयोबंधुवित्तैर्मान्यायथाक्रमम्। एते प्रभूतैःशूद्रोपिवार्धकेमानमर्हति ११५॥

मक्ष०–विद्या १ कर्म २ अवस्था ३ वांधव ४ वित्त ५ इनसे संपन्नलोग यथाक्रमसे मान्यहैं इनवढ़ीहुई चीजोंसेयुक्त शूद्रभी वृद्धावस्थामें मानके योग्यहै ११५॥

अभि०–विद्या यहसामान्य वचनहै कोईविद्याहो जिस्से कुछअपना या परायाभला होसक्ताहै ऐसापुरुष सवकामान्यहै १ कर्मयहभी सामान्य वचनहै इसलिये श्रौतस्मार्त कर्मोंको आदिलेकर नानाकर्म और इसीउपलक्षणसे पुरुषार्थपूर्वकपेशा सम्वन्धीकाम भी कि जिनसेमनुष्यकी उत्तम प्रसिद्धिहोतीहो इनमें यन्त्रादि निर्माताभी आसक्तेहैं (दृष्टांत) जैसे एकघड़ीसाजहै २ अवस्थामें जो जिस्सेअधिकहो वहभी उसकामान्यहै ३ वांधवजनों की सम्पन्नता जिसकेघनीहो वह साधारणोंका मान्यहै ४ वित्तकहियेग्राम यानस्थानरत्नादि धनसंपत्तें जिसकेघनीहों वह औरोंका मान्यहै ५-यहपाँचों यथाक्रमसे मान्यहोतेहैं इनपाँचों या इनमेंसे किसी२ अतिवढ़ेहुये पदार्थसे सम्पन्नशूद्रभी वृद्धापनमे मानके योग्यहै ११५॥

भाषि०–वृद्धापन केवल उसीका कहना यहवात इसहेतुसे असंभव देखपड़तीहै कि वृद्धापनसे पहले २ इन पदार्थोंका वड़प्पन उसका निष्फल गया इसलिये इस अर्थ

को इस रीतिसे लगाना चाहिये कि उक्तपदार्थोंसे संपन्न शूद्रभी औरोंके वृद्धापनमें माननीयहै किंतु जो और लोग वड़ोंकी गिनतीमेंहों वे भी उसका सत्कारकरें-और गौतमजीकी स्मृतिमें जो यह कहाहै कि अस्सी ८० वर्षकी अवस्थावाला शूद्र भी श्रेष्ठहै सो यह वचन केवल उन शूद्रोंके लिये कहाहै कि जो पूर्वोक्त पदार्थोंसे संपन्न नहींहों-और ऊपर अभिप्रायार्थमें जो पाँचोंका यथाक्रम लिखाहै उसका भावार्थ यद्यपि यहीहै कि पहला २ श्रेष्ठहै परंतु यह निर्विशेष नहींहोसक्ता किंतु किसी अवसरकी अपेक्षा पिछला २ भी पहले २ से श्रेष्ठहोसक्ताहै यह वार्त्ता जो व्यवस्थापूर्वक लिखी जावे तो विस्तारहै इसलिये सिद्धांतसे इन पाँचोंकी मान्यतामें परस्परका व्यवहार ठीक निश्चितहोताहै ११५ ॥

वृद्धभारिनृपस्नातस्त्रीरोगिवरचक्रिणाम्। पंथादेयोनृपस्तेषांमान्यःस्नातश्चभूपतेः ११६ ॥

ऐ०—बूढ़ा-भारी जो बोझलिये आताहो-राजा-स्नातक जो विद्या और वेदोक्त व्रत इन दोनों में संसिद्धहो-स्त्री-रोगी-वर जो विवाहकरने जाताहो-चक्री जो गाड़ी लिये आताहो इनको पंथादेना उचितहै किंतु इनको आतेदेख आप मार्गछोड़दे-और राजा उनका भी मान्यहै किंतु राजाका पंथबोझ और गाड़ीवाले सभीको छोड़नाचाहिये—परंतु स्नातक राजाका भी मान्यहै-जिसराहमें यह बूढ़े आदि परस्पर इकट्ठेहोजावें तहाँ ऊपरले ११५ के श्लोकमें कहीहुई बातोंका भी विवेककरलेना चाहिये यह शिष्टाचारकी मर्यादाहै-इनके सिवाय बालक मत्त उन्मत्त पतित आदिका भी ध्यानराखना उचितहै ११६ ॥ अबनीचे वर्णोंके प्रधान कर्मोंका वर्णनकरतेहैं ॥

इज्याध्ययनदानानिवैश्यस्यक्षत्रियस्यच। प्रतिग्रहोधिकोविप्रेयाजनाध्यापनेतथा ११७ ॥

अक्ष०—इज्या १ अध्ययन २ दान ३ वैश्यके क्षत्रियके भी ब्राह्मणमें प्रतिग्रह४ अधिक तथा याजन अध्यापन भी ११७ ॥

अभि०—इज्या कहिये पंचयज्ञ आदि यज्ञोंका करना १ अध्ययन पढ़ना २ दान करना ३ यह तीनों काम ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन सबके साधारण हैं परंतु ब्राह्मण में यह तीन कर्म अधिकहैं-प्रतिग्रह दानका लेना १ याजन यज्ञोंका कराना २ अध्यापन पढ़ाना ३ इसीसे ब्राह्मण षट्कर्मा कहातेहैं ११७ ॥

अधि०—इन छः कामोंमेंसे पहले तीन काम तो धर्मकी साधना संबंधीहैं और पिछले तीन जीविकाके हेतुमेंहैं-सोई मनुनेकहाहै कि(षण्णांतु कर्मणामस्य त्रीणि कर्माणि जीविका। याजनाध्यापनेचैवविशुद्धाच्चप्रतिग्रहात्) परंतु इसमें प्रतिग्रहभी शुद्धजातिसे लेना कहाहै पतितसे नहीं-और आपत्काल या ब्राह्मणके अभावमें विद्या पढ़ना और जातिसे भी ब्राह्मणको कहाहै-ब्राह्मणकी प्रेरणासे क्षत्रिय और वैश्यको पढ़ाना भी उचितहै ११७ ॥

प्रधानंक्षत्रियेकर्मप्रजानांपरिपालनम्। कुसीदकृषिवाणिज्यपाशुपाल्यंविशःस्मृतम्॥११८॥

ऐ०—प्रजाका पालनकरना यह कर्म क्षत्रियका प्रधान है यही, उसका, धर्म संबंधी कामहै यही जीविकाका भी हेतुहै-और वैश्यके जीविका संबंधी प्रधान काम कुसीद कहिये व्याज वट्टा करना खेती वाणिज्य पशुपालना ११८॥

शूद्रस्यद्विजशुश्रूषातयाऽजीवन्वणिग्भवेत्। शिल्पैर्वाविविधैर्जीवेद्द्विजातीहितमाचरन्॥११९॥

ऐ०—शूद्रका प्रधान काम द्विजातियोंकी सेवा नौकरी आदि, उससे निर्वाह नहीं होतेहुये वणिक् कर्म करे अथवा नाना भाँतिके शिल्प कर्मोंसे द्विजातियोंका हित करताहुआ जीवै जैसे राजगीरी आदि ११९॥

भधि०—याज्ञ वल्क्यजी ने एकनिदर्शन मात्र कहदियाहै परंतु देवल ऋषिने अपने शास्त्रमें शूद्रके कामोंकी कुछ गणना भी करीहै-तथाच(शूद्रधर्मोद्विजाति शुश्रूषा पाप वर्जनं कलत्रादि पोषणं कर्षण पशुपालन भारोद्वहना पणव्यवहार चित्र कर्म नृत्यगीत वेणुवीणा मुरज मृदंग वादनादीनि) अर्थात् द्विजातीकी सेवाके सिवाय पापसे वचना भार्या आदि कुटुंब का पोषण-कर्षण कहिये हल चर्ष और गाड़ी आदिका जोतना-पशुओंका पालना-भारका उठाना ढोना आदि-आपण दूकानदारी-व्यवहार लेन देन-चित्रकर्म शिल्पकाम किन्तु लोहा लकड़ी ईंट वस्त्र आदिका वनाना-नृत्य नाचना-गीत गाना-और वाँसुली वीणा मुरज मृदंग आदि सब बाजाओंका बजाना आदि औरभी ऐसे २ काम यहशूद्रजातिके कर्महैं ११९॥

भार्यारतिःशुचिर्भृत्यभर्ताश्राद्धक्रियापरः। नमस्कारेणमंत्रेणपंचयज्ञान्नहापयेत्॥१२०॥

ऐ०—ऊपरलीवातों के होनेपरभी शूद्रकोऐसाहोना उचितहै कि केवल अपनी भार्यामें रति करै-मनसे शुद्धहो-अपने भृत्यवर्गका पालनकरै-श्राद्धकरै-क्रियासे भी शुद्धरहै-केवल नमःइसमंत्रसे पंचयज्ञोंके करनेसेभी न चूकै-नमःजिसके नामके अंत में लगालियाजाताहै तिसका यही मंत्रहोजाताहै जैसे गणेशायनमः सूर्यायनमः-परन्तु वैश्वदेवकर्मको शूद्रकरै तो इसीलौकिक अग्निमें करै किंतु वैवाहिकमें नहीं यह विवेक है १२०॥ यहचारों वर्णकेजुदे २ धर्मकहे अवनीचे साधारणधर्म कहतेहैं कि जिनका करना या न करना सबजातोंको एकसाहीहोताहै॥

अहिंसासत्यमस्तेयंशौचमिंद्रियनिग्रहः। दानंदमोदयाक्षांतिःसर्वेषांधर्मसाधनम्॥१२१॥

ऐ०—अहिंसा किंतु किसीको पीड़ा नहीदेना-सत्य अर्थात् ठीकबोलना और जिस्से किसीको पीड़ा नहींपहुंचै-अस्तेय किंतु विनादीहुई वस्तु चोरीआदि के ढँगोंसे नहींलेना-शौच शरीरकी और चित्तकीभी शुद्धता-इंद्रियनिग्रहः ५ ज्ञानइन्द्रिय ५ कर्म इंद्रियइनका जो २ विषय या कामनियतहै वहीकरना उस्से अधिक या विपरीत नहींदान कितुदीनको कुछ देना जिस्से उसका दुःख दूरहो-दम अर्थात् मनवुद्धि

चित्तअहंकार इनचारोंको अपनेबश में बनाराखना-दया किंतु दुखीकीरक्षा में तत्पर-ता-कोई अपना अपकारकरै उसकोभीसहलेना और चित्तमेंविकार नहींलाना सोयह (क्षांति)है इन धर्मोंकी साधना सबकेलिये तुल्यहै १२१॥

वयोबुद्ध्यर्थवाग्वेष श्रुताभिजनकर्मणाम्। आचरेत्सदृशींवृत्तिमजिह्मामशठांतथा १२२॥

भ्रक्ष०—वयस् १ बुद्धि २ अर्थ ३ वाक् ४ वेष ५ श्रुत ६ अभिजन ७ कर्म ८-इन्हीं के सदृशअजिह्मातथा अशठा वृत्तिको आचरण करै १२२॥

भाभि०—इनकेसदृश वृत्तिका आचरणकरना यहबात कि अपनेगुणोंकी सत्ता और हैसियतके अनुरूप कोई कामकरै याचाहै या कोईबातकहै किंतु अपनी सत्ता और है-सियतसे बढकर या गिरकरभी कुछकाम न करै और मुखसेभी न कहै-अर्थात् वयस् जो अवस्थाहै सोतीनप्रकारकी होतीहै तिसमें दृष्टांत जैसे बूढ़ाअपनेयोग्य पहरैया खावै और गुरुतावालीबात कहे किंतुबालक या तरुणोंकीसी भांति छछोरपनसेनहीं ऐसेहीबालक अपने मुँहके अनुरूपबोलै या करै किंतु बूढ़ों या युवानोंकीसी भांतिनहीं १ बुद्धि जिसमें जैसीहो उसीके अनुसार बोलैयाकरै २ अर्थशब्दके दो अर्थहैंएक तो धनसंपत्ति जिसकेपास जैसीहो उसके अनुरूपकाम अथवाबातकरै दूसरे अर्थ प्रयो-जनको कहते हैं किंतु जहां जैसा प्रयोजनदेखै उसके अनुसारकरै अथवा कहै ३ वाक् वाणी और वार्ताकथनको कहते हैं किंतु जहांजैसीबातों का कथन या चर्चा होरहाहो उसीकेअनुसार बोलै या न बोलै ४ वेषकहिये लिबासबाना किंतु जिसकिसीने किसी हेतुसे जहांजैसाबाना धारणकियाहो या जिसकाजैसा स्वाभाविकचलाआताहो उसकी भी लाजपालन करनीचाहिये मसलप्रसिद्धहै कि जैसाकाछ काछिये तैसानाचनाचिये (दृष्टांत) जैसे एकनापितहै किसीहेतुसे कोतवालहुआ उसको वहक्षत्रिय वेषलेनेसे डा-कुओंका पीछाकरनापड़ा ऐसेस्थलपरचाहो मृत्युभीहोजावै परउसबानेकीलाजनिबाह-ना यहीएक धर्महै उत्तरोक्त स्वाभाविक का (दृष्टांत) जैसे किसी (निर्दनवर) केसाथकोई नापित ऐसीचमकीली पोशाक पहनकरजावे जो उसबरकी पोशाकको लजातीहोतो यह कहाजायगा किउसनेअपने स्वाभाविकबाना और पेशासेभी तथाउस अवसरके प्रयो-जनसेभीबिपरीतकिया और इसीहेतुसे वहदंडनीय निश्चितकियाजायगा-ऐसेहीकिसी राजकुमार या राजा आदि किसीप्रतापीका खवासी जो उसकासहगामी होकरमलीन कपड़े पहनैतो वहभीदंडनीयहै या घसियारा जो मुंशियाना वेषबनायेहुये घासबेचै तो वहभीदंडनीयहै इत्यादि ५ श्रुतअर्थात् पुरुषार्थकेदेनेवाले शास्त्रोंकापढ़ना या सुनना पाइकर जहांतक होसक्ताहो उसकीलाजपालनकरै ६ अभिजन कहियेवंश किंतु जिस कुलमें जैसेआचारसे सुकीर्तिहोसक्तीहो उस्सेऊँच नीचनहीं ७ कर्मकहिये आजीवन पेशा संबंधी काम जिसने जैसा धारण कियाहो उसकी मर्यादोंके अनुसार आचारकरै

(दृष्टांत)जैसेकोई ब्राह्मण अथवा साधुहै वह वनियांकी दूकानकिये वैठाहै जवसरकारी आवश्यकतासे सव दूकानोंसे (रसद) मांगीजायउसकोभी उस पेशाके अनुसार देनेसे इनकारकरना अनुचितहै ऐसे ऐसेनानाप्रकारके(दृष्टांत)एकएकपेशेमें संभवितहैंतिनको अपनी बुद्धिसेजानों ८-इनकेहेतुये आचारोंमें यहउत्कर्षहै कि उक्तरीतिसे करनेपरभी अजिह्मा १ और अशठा २ वृत्तिवनीरखे अर्थात् उन आचारोंमें कुटिलताकहिये अकड़पन और १ मत्सरतानाम चुगलीचाई २ का प्रवेशनहोनेदेवे-यह धर्मभी सवलोगों के साधारणहैं १२२॥

यहांतक जो २ कर्म धर्म वर्णनकिये गये सो सवस्मार्त्त कहलातेहैं अर्थात् स्मृतियों कीरीतिसेहैं-अव नीचे कुछेकश्रौत कर्मोंको कहतेहैं कि जिनके करनेकेप्रकार श्रुति जो वेदहैं तिनसे जानेजाते हैं पहले समय के ऋषिलोग वहुधा उन्हींकर्मों का आचार कियाकरतेथे॥

त्रैवार्षिकाधिकान्नोयःसहिसोमंपिवेद्द्विजः। प्राक्सौमिकीःक्रियाःकुर्याद्यस्यान्नंवार्षिकंभवेत् १२३॥

भ०-जो त्रैवार्षिक या अधिक अन्नवाला द्विजातीहो सोई सोमपीवे-जिसके वार्षिक अन्नहो वे वहप्राक्सौमिकी क्रियाओंकोकरे १२३॥

मि०-जिसकेघरमें तीनवर्षके उठावेयोग्य अन्नहोवे या इससेभी अधिक वहीद्विजाती सोमपीवे अर्थात् सोमयज्ञको वहीकरे किंतु इससे थोड़ेअन्नवालानहीं क्योंकि उस यज्ञमें अन्नरसके अधिकारसे अधिक अन्नकी अपेक्षाहै इसीहेतुसे जोकोई थोड़ेअन्न वाला सोमपान करताहै वह करनेपरभी उसके फलको नहींपाताहै यहदोषभी ग्रंथांतरोंमेंकहाहै परन्तु यहदोषभी काम्य सोमयज्ञकेलिये निश्चितहै कि जोकिसीकामना से कियाजावे और नैत्तिक अवश्यभावसे कर्त्तव्यहो उसकेलिये कुछनियम नहींहै किंतु जहाँजैसा संभवहो-जिसके घरमें एकवर्षके जीवनयोग्य अन्नहोवेवहद्विजाती प्राक्सौमिकी क्रियाओंकोकरे अर्थात् सोमसे पहले जिन क्रियाओंका करना उचितहै तिन्हीं कोकरे सोवेक्रियाये यहहैं-अग्निहोत्रकर्म वेदोक्तदर्शकर्म वेदोक्त जो अमावसकेदिन होताहै-पूर्णमासकर्मवेदोक्त जोपूनोपरहोता है पशुकर्म्म वेदोक्तजोपाण्मासिक अयन कालपर होताहै-चातुर्मास्य कर्मवेदोक्त जो देवशयनमें होताहै-इस वातसे यहभी निश्चितहुआकि सोमकरनेका अधिकारउसीकोहै कि जोपहलेइनकर्मोंकोकरलेवे१२३॥

प्रतिसंवत्सरंसोमःपशुःप्रत्ययनंतथा। कर्त्तव्याग्रयणेष्टिश्चचातुर्मास्यानिचैवहि १२४॥

ऐ०-सोमयज्ञ वर्पवर्पपीछे संवत्सरके पलटनेपर-पशुयाग छे महीनापीछे अयनके वदलनेपर उत्तरायण दक्षिणायनमें सदैव-तथैव आग्रयणेष्टि जिसे आग्रयण कर्मभी कहतेहैं सोभी अयनके वदलनेपर-चातुर्मासिक कर्मभी हरसाल देवशयनमें होतेहैं-इनचातुर्मास्य कर्मोंमें प्रतिमास एकएक चारपर्वें वड़ीप्रतिष्ठितहैं उनमें जोयज्ञ

होतेथे तिनकेनाम-वैश्वदेवः १ वरुणप्रघासः २ शाकमेधः ३ शुनासीरीवः ४। १२४॥

एषामसंभवेकुर्यादिष्टिंवैश्वानरींद्विजः। हीनकल्पंनकुर्वीतसतिद्रव्येफलप्रदम् १२५॥

ऐ०-इनपूर्वोक्त सोमयाग आदि (नित्य)यज्ञोंकी असंभवतामें द्विजाती (वैश्वानरी इष्टि)कोही करदेवे-यहउनके नहो सकनेकाहीन अनुकल्प कहाहै-परन्तु धनके होनेमें इस (हीनकल्प) को नकरे क्योंकि धनके होतेहुये हीनकल्प फलका देनेवाला नहींहै-और फलप्रदनाम काम्ययागजो कामना सहित कियाजावे उसकोतौ कदाचित्भीधन केहोतेहुये हीनकल्पसे नहींकरे १२५॥

अधि०-ऊपरकी पंक्तिमें (नित्ययज्ञों) का चर्चा आयाहै अथवा जहाँ कहीं औरभी (नित्य)या नैत्तिकशब्द आयाहो उसकायहभावनहीं है कि वहकामरोजरोज कियाजावे अर्थात् नित्यया नैत्तिक उसेकहतेहैं कि जिसमें कुछकामनाकी अपेक्षातौ नहींहै परंतु करना उसका अवश्यभावसे कहाहै और चाहे वह रोजके करनेवाला कामहो जैसे संध्यावंदन अथवा पाक्षिक या प्रतिमास करनाकहाहो जैसे दर्शपौर्णमासकर्म अथवा पाण्मासिक जैसे अयनपीछे-अथवा वार्षिक जो संवत्सरपीछे परन्तु यहनियम जहाँ होकि यहकाम हमेश उसीनियत अवधिपर कियाजायसो(नित्य)है-और (काम्य)केवल वहीहै किजो किसीकामनासे जबचाहे तब कियाजाय १२५॥

चांडालोजायतेयज्ञकरणाच्छूद्रभिक्षितात्। यज्ञार्थलब्धमवदद्भासःकाकोपिवाभवेत् १२६॥

ऐ०-शूद्रसे भिक्षा किये हुये धनसे यज्ञकरने से चांडाल जातिमें जन्मपाता है-यज्ञकेनामसे पायेहुये धनको नहींलगानेसे भासनामपक्षी जिसे शकुंतभी कहतेहैं सो जन्मांतरमें होताहै अथवा काकभी १२६॥

अधि०-भास अथवा काकयोनिमें रहनेकाप्रमाण मनुजीने सौवर्षोंका कहाहै-यथा (यज्ञार्थमर्थंभिक्षित्वायः सर्वन्नप्रयच्छति। सयातिभासतांविप्रः काकतांवाशतं समाः) अर्थात् जो ब्राह्मण यज्ञकेनामसे धनकी भिक्षालायकर सबरा नहींलगाता वह सौवर्षताईं भास यद्वा काकयोनिको जाताहै १२६॥

अब तपोविशिष्ट भिक्षुक आदिगृहस्थी विप्रोंके गुणकर्म कहते हैं॥

कुशूलकुंभीधान्योवात्र्याहिकोश्वस्तनोपिवा। जीवेद्वापिशिलोंछेनश्रेयानेषांपरःपरः १२७॥

कुशूलधान्य १ कुंभीधान्य २ वा-त्र्याहिकधान्य ३ वा अश्वस्तनधान्य ४ चाहेशिलोंछहीसे जीवे इनमें पिछला २ श्रेष्ठहै १२७॥

भाभ०-(कुशूल) बुखारी जिसमें अन्न धराजाता है इतने अन्नवाला गृहस्थी (कुशूलधान्य) कहाताहै १(कुंभी) यद्यपि ऊँटनी और हाथी काभीनामहै परन्तु यहांपर (कुंभी)डिहरिया डिहरामटेला जो मिट्टीके बनाकर नाज धराजाताहै इतने अन्नवाला गृहस्थी (कुंभीधान्य) कहलाता है २ या (त्र्याहिकधान्य) जिसकेघरमें तीनदिनका

नाजहो ३ या (अश्वस्तनधान्य) जिसकेघरमें केवल एकदिनका हो ४ यहचारोंचाहे शिलोंछवृत्ति जिसे लौकिकमें शिल्ला चुगनाकहतेहैं उससेही जीवें परन्तु इनमें पहले २ से पिछला २ अधिकश्रेष्ठहै-इसहेतुसे कि जो संतोषसे तपस्यामें तत्परबनारहे और संचयकी तृष्णासे किसीसे द्रोहनहीं बांधे १२७॥

अधि०— यद्यपि एक और तीनदिनके लक्षणसे टीकाकारोंने (कुंभी) कोछःदिन और (कुशूल) को बारहदिनके अन्नवाला निश्चितकियाहै परयह योजनाअसंभवहै क्योंकि बुखारीमें कईमासके उठावेका नाज आसक्ताहै फिर १२ दिनका नियमकैसे कहें-डिहरामेंभी एकमहीनेसे अधिकउठावे कानाज आसक्ताहै फिर ६ दिनकानियम कैसेकहें- इसकेसिवाय उसके कुटुंबकी गुरुता लघुतापर दृष्टिकरने सेभी १२ या ६ दिनका नियम असंभव है इसकेसिवाय मूलश्लोक में १२ या ६ दिनका चिह्नभी नहीं पायाजाता-इसके सिवाय वह नियम अंगीकार करलेने परभी यह असंभवता है कि जबआज १२या ६ दिनका मौजूद हैतोकलहको ११ या ५ दिनकारहजायगा परसोंको १० या ४ दिनका रहजायगा फिर इसनियम कोकैसे मानसकें-इसकेसिवाय १२ या ६ या ३ या १ दिनों के अन्नसंचय का उपाय शिलोंछवृत्ति निर्णय सहित बतलाते हैं सोभी यह असंगत इसहेतुसे होता है कि वह शिलोंछवृत्तिका संचयभी केवल षाण्मासिक श्रावणी अषाढ़ी अर्थात् रबी और खरीफकी फसलोंपर दोबार होसक्ता है फिर उनपरिनियमित दिवसों के उपरांत वे बारहमास कैसे काटेंगे इस्से प्रत्यक्ष प्रतीत होताहै कि यह टीकाकार की खींचा खाँची तुपकंडनहै-निर्लेपवक्ता याज्ञवल्क्यजी ने साधारण भावसे एक निदर्शनमात्रजो इसीश्लोक में कहा है तिसका यह सिद्धांतहै कि जिस चौथे पदवाले को एक दिन का अन्नकहाहै तिसके घरमें चाहे दोचार दिन कामी अन्नहो तौ भी वही बातहै-तीन दिनवाले केघरमें चाहे दश पाँच दिनकाहो तौ भी वही बातहै-कुंभी धान्यवाले के डिहरामें चाहेचार पाँचमनभीहो तौ भी वही बातहै परछःदिनका कहना निपट असंगतहै-कुशूल धान्यवाले की बुखारीमें चाहे बीस पच्चीसमन भी हो,तौ भी वही बातहै पर बारहदिन का कहना निपट असंगत है-और शिलोंछसे कहने का यह सिद्धांतहै कि यह चारों प्रकारके संचयवाले किसी ऐसीवृत्तिसे जीविकाकरें जिस्से किसीसे द्रोहनही करनापड़े सो उस किसीप्रकार का निदर्शनमात्र एक शिलोंछवृत्तिकहदीहै कि चाहेशिलोंछसेही जीवै पर किसीसे द्रोह नहींकरे परंतुयह नियमनहींहै कि केवल शिलोंछके सिवाय और कुछनकरे-सोईमनुसंहितामें कहाहै कि(अद्रोहेणैवभूतानामल्पद्रोहेणवापुनः। यावृत्तिस्तांसमास्थायविप्रो जीवेदनापदि॥कुशूलधान्यकोवास्यात्कुंभीधान्यकएववा) अर्थात्-आपत्काल के बिना प्राणियोंके अद्रोहसे अथवा अद्रोहकी असंभवता में थोड़े द्रोहसे जो कोईसी वृत्ति

होसक्तीहो उसमें आश्रित होकर ब्राह्मण अपना कालक्षेपकरै-यद्यपि ऐसी सौम्यवृत्तिसे विशेष धनका संचयहोना कठिनहै-इसीलिये तीसरे अद्धामें कहते हैं कि चाहे केवल कुखारी मात्र नाजवाला होकेरहे या इतना भी उसवृत्तिसे न होसक्ताहो तौ चाहे केवल डिहरामात्र नाजवाला होकेरहै-परंतु कुछ इसबात का निषेधनहींहै कि अद्रोहके द्वारा भी इस्से अधिक धनका संचय नहींकरै क्योंकि पहले १२३ के श्लोकमें त्रैवार्षिकसे भी अधिक अन्नवालेको उत्तमता कहचुकेहैं(भेद२) और जो कि इसी १२७के श्लोक में थोड़े२ अन्नवाला बहुत २ वालेसे श्रेष्ठ कहागयाहै तिसका यह हेतु है कि गृहस्थी ब्राह्मणोंमें भी दो भेदहोते हैं सोई देवलऋषिने यह कहाहैं कि(द्विविधो गृहस्थोया यावरः १ शालीनश्च २ तयोर्यायावरः प्रवरः याजनाध्यापन प्रतिग्रह रिक्थसंचय वर्जनात् १ षट्कर्माधिष्ठितः प्रेष्यचतुष्पदगृहग्राम धनधान्ययुक्तोलोकानुवर्तीशालीनः २) अर्थात् दोप्रकार का गृहस्थी ब्राह्मण जिसमें एकतौ(यायावर) नामसो वह दूसरे से उत्तमहै क्योंकि वह यज्ञकराने आदिकी जीविका भी नहीं करता पढ़ानेकी जीविका भी नहीं करता प्रतिग्रह जो दानहै सोभी नहींलेता धनका संचय भी नहीं करताहै क्योंकि इनकामोंमें औरोंसे द्रोहकरनापड़ताहै इसलिये इन्होंने अपने निर्वाहके वेही चारप्रकार साधारणभात्र से रक्खे हैं कि जिनका चर्चा इसी १२७ के श्लोक मूल या उसके अर्थमें कहाहै और थोड़े२ अन्नवाला इसलिये उत्तम समुझागयाहै कि जहाँतक थोडा संचय और थोड़ी तृष्णा करेगा तहाँतक द्रोहभी थोड़ा करना पड़ेगा-दूसरेप्रकार का गृहस्थी ब्राह्मण,जो (शालीन) नाम कहलाताहै वह यद्यपि उनसे मंद कोई प्रकारसेभी नहीं होसक्ता, परंतु उसे केवल इसलिये सामान्य कहा गयाहै कि उसको जीविका की तृष्णा से बहुधा द्रोहकरने पड़तेहैं क्योंकि वे षट्कर्म प्रधान जैसे अस्मदादि हमतुम सभी जो लोकानुवर्ती किन्तु गृह ग्राम धनधान्य यान पशु सेवक आदिसे संपन्न होते हैं सोई इन शालीन संज्ञक गृहस्थोंके कर्म धर्मोंको ११७ के श्लोकसे कहचुके हैं-परंतु इनमें भी चारभेद होते हैं तहाँ एकतो इनछःकामों से जीविका करते हैं-याजन यज्ञादिकों का कराना १ अध्यापन पढाना २ प्रतिग्रह दानलेना ३ कृषी खेतीकरना ४ वाणिज्य व्यापार करना ५ पशुओंसे जीविका ६ इनकामोंमें से चाहेकोई सा एक दो कामकरै चाहे सबके सब कामोंको करै परवह एक प्रकारकी गिनतीमें है १-दूसरे इन्हीं कामोंमें से तीन काम किन्तु याजन १ अध्यापन २ प्रतिग्रह ३ से-तीसरे याजन १ अध्यापन २ इनदोसे ३-चौथे इनमें से पाँचकामों को निंद्य समुझकर केवलपढानेकीही जीविका करते हैं ४-सोई मनुजीने स्पष्टकहाहै कि (षट्कर्मैकोभवत्येषांत्रिभिरन्यः प्रवर्तते। द्वाभ्यामेकश्चतुर्थश्च ब्रह्मसत्रेणजीवति)१२७॥ इतिगृहस्थधर्मप्रकरणम्॥

इसप्रकार गृहस्थीके स्मार्त और श्रौतकर्मोंको कहकर अब स्नानसे लेकर जो २

विधि और निषेध और मानस संकल्परूप व्रत स्नातकके लिये आवश्यक होते हैं सो कहते हैं ॥

नस्वाध्यायविरोध्यर्थमीहेतनयतस्ततः। नविरुद्धप्रसंगेनसंतोषीचभवेत्सदा १२८ ॥

ऐ०—स्वाध्याय के विरोधी धनकी वांछानहीं करै और जहाँ तहाँसे भी नहीं अर्थात् किसी एक प्रतिष्ठित मार्गसे और निज श्रमो पार्जित विद्याके आश्रयसे धनकी वांछा करै-विरुद्ध प्रसंगसे भी धनकी वांछा नहींकरै किन्तु जैसे ब्राह्मण को अयाज्य का यजन कराना आदि या सबोंको किसीसे घूँसलेना आदि या नृत्यगीतादि जो विरुद्ध प्रत्यक्ष हैं और सदा संतोषी भी हो किन्तु लाभके न होनेमें भी धीरज बनाराखै १२८ ॥

राजांतेवासियाज्येभ्यःसीदन्निच्छेद्धनंक्षुधा। दंभिहैतुकपाखण्डिवकवृत्तींश्चवर्जयेत् १२९ ॥

ऐ०—क्षुधासे पीड़ितहुआ स्नातक राजासे या शिष्योंसे या याज्यजो यजनकराने योग्यहों तिनसेही धनलेनेकी इच्छाकरै-और दंभीहैतुक पाखंडी वकवृत्ती इनसेयहां तकबचै कि जो वनिपरै तौमुखसे भी न बोले १२९ ॥

भधि०—इसवातकोमनुजीने विशेषतासे कहाहै कि (पाखंडिनोविकर्मस्थान्वैडालव्रतिकान्शठान्। हैतुकान्वकवृत्तींश्चवाङ्मात्रेणापिनार्चयेत्) अर्थात् पाखंडियों १ विकर्मस्थों २ वैडालव्रतिकों ३ शठों ४ हैतुकों ५ वकवृत्तियों ६ को वाणीमात्रसे भी सत्कारनहीं करै-शास्त्रोक्तसे सिवायनया आश्रम कल्पना करनेवाला पाखंडी १-जिस कामका निषेधहै तिसका सेवनकरनेवाला विकर्मस्थहै २-वैडालव्रतीमें इतने अवगुण होतेहैं धर्मध्वजी सदालोभी छाद्मिकछलिया लोकदांभिक हिंसावान् सबसेमिलाप और सभीसे अभिमान यहवैडालव्रती है किंतु बिलावके से लक्षणवाला ३ सर्वत्र अकड़पन राखनेवाला शठहै ४ कुतर्कसे सर्वत्र संशय आरोपित करनेवाला हैतुक है ५ बगुलाभगत सोवकवृत्ती है ६-दंभी अथवालोकदांभिक उसे कहते हैं जो लोक रिझावे के लिये कर्मोंका अनुष्ठान करै-धर्मध्वजी जोजीविका के लालचसे नखजटा आदि धारणकरै-इनसबोंसे मुखसेभी न बोलै यह कहनेका यह सिद्धांत है कि आप ऐसा न होजाय १२९ ॥

शुक्लांबरधरोनीचकेशश्मश्रुनखःशुचिः। नभार्यादर्शनेऽश्नीयान्नैकवासानसंस्थितः १३० ॥

ऐ०—स्नातक पुरुष शुक्लांबरधारी हो अर्थात्सुपेद उज्ज्वलवस्त्र पहिरै-और नीच केशश्मश्रुनखहोवे अर्थात्शिरऔर डाढ़ीकेवालोंको मुड़ाये हुयेनखोंकोकाटेहुये निर्मल बनारहै-और शुचि कहिये मनसे तथा शरीरसेभी शुद्धबनारहै-भार्या के दर्शन किंतु संगम समय या उसकेपास बैठाहुआ कुछभोजन नहींकरै-और एकवस्त्रसेभी भोजन नकरै-और संस्थितहुआभी भोजन नहींकरै-अर्थात् लिखनेपढ़नेआदि किसी धंधेके लिये नियत बैठकमें बैठाहुआ नहींखाने लगे किंतु भोजनकेलिये चौकाआदि नियत-

स्थानों में जाकरखावै-और एकवस्त्रसे कहनेका यह सिद्धांत नहींहै कि वहुतसे कपड़े पहनेहुयेखावे अर्थात् केवल एकधोतीसेही नहीं वैठजावे किंतु दूसरावस्त्रकांधेपर अँगोछाभी रखलेवे जिस्से वामेहाथसे मक्खीआदिभी उड़ासकै या कदाचित् दूसराहाथ भी जूठाहोजावे तो उसमें पोंछकर शुद्धकरसके १३० ॥

भाषि०-यहां १२८ के श्लोकसे जो प्रसंग चलाहै यद्यपि विवाह और गृहस्थीके धर्मपीछे कहागयाहै परन्तु यहप्रसंग स्नातकपुरुषकाहै और स्नातक उसे कहते हैं कि जो विद्या और ब्रह्मचारीके नियमोंका पारपाकर शास्त्रोक्त विधिसे स्नानकियेपीछे गृहस्थमें आयाहो फिर चाहे उसका विवाहभी हुआहो या न हुआहो कुछ इसवातका नियमनहींहै परन्तु संज्ञा उसकीस्नातकहोचुकी इसलिये उसकोवह वातेंभीअव करनी उचितहैं कि जिनका निषेध ब्रह्मचारीके लिये कियागयाथा-सोई गौतमजीने कहाहै कि(स्नातको नित्यंशुचिः सुगंधिःस्नानशीलः) अर्थातस्नातक पुरुष नित्यंप्रति नखवाल आदिसे शुद्धवनारहै किंतु नख या वालोंको रखावैनहीं और चंदनानुलेपनधूप स्रक्अतर फुलेल तैलपुष्पमालाआदि सुगंधवस्तुओंसे सुगंधारहै और स्नानशील होवे अर्थात उवटनाआदि प्रकारोंसेभी स्नानकरनेमें प्रवृत्तिराखे-सो यहवातें सवघर में कुछऐश्वर्यहोनेपर संभवितहैं अर्थात् यहवातें कुछ ऐसी नही हैं कि जिनकेनकरने से वहमनुष्य अधर्मीगिनाजाय किंतु जिसकोप्रभुने अपनेअनुग्रहसे कुछऐश्वर्य दिया हो वहइसरीतिसेरहै और जो कोई असमर्थहो वहअपनी शक्तिकेअनुसारचले क्योंकि जो शक्तिसे अधिकया शक्तिसेगिरकर कोईसाकामकरैगा या कोईसी चाल चलैगा तो वहमनुष्य १२२ श्लोकमें कहीहुई मर्यादासे प्रतिकूल गिनाजायगा-इसी लिये यह स्मृतिभी कहीहै कि (नजीर्णमलवद्वासाभवेच्चविभवेसति) अर्थात्-धनसंपत्तिहोने परभी फटे और मैलेवस्त्रोंको न धारण करे-किंच-धनसंपत्तिके न होने में जीर्णयामलीनवस्त्रों का पहिरना कुछ अधर्मनहीं है-ऊपरऐक्यार्थमें भार्याकेसमीप भोजनकरनेका जो निषेधकिया तिसका यहकारणहै कि उसकेसमीप भोजनकरनेसे जो संतानें पैदाहोती हैं सो तेजोवलवीर्य पराक्रमआदिसे हीनहुआ करतीहैं-सोईश्रुतिभी प्रमाणहै कि (जाया या अंतेनाश्नी यादवीर्यवद पत्यंभवति) इसकेसिवाय लोकदृष्टिसेभी एक ऐसागूढ़ हेतु है कि वह इस्से भी विलक्षण है-अर्थात् जो कोई पुरुष ऐसाढँगडालेगा उसके लिये यह वड़ीहानि है कि जो भार्या उसके नेत्रों के संकेतमात्रसे आज्ञामानिकर सवकामों का यथावत् साधनकरती है वहभी उसकी यह प्रकृतिदेखकर ऐसी शिरपर चढ़जायगी किआगेको उसे तुच्छसमुझकर कोईसी आज्ञाभी यथावत्नहीं साधन करसकेगी १३० ॥

नसंशयंप्रपद्येतनाकस्मादप्रियवदेत् । नाहितंनानृतंचैवनस्तेनःस्यान्नवार्द्धुषी १३१ ॥

अक्ष०—अकस्मात् संशयको न पहुँचे अप्रियनहींबोले अहितभीनही अनृतभीनहीं स्तेननहींहोवे वार्द्धुपीनहीं १३१ ॥

भभि०—अकस्मात् कहिये विनाकारण किसी संशयरूपकाममें जो प्राणोंको विपत्ति देनेवालाहो नहींकूदे (दृष्टांत) जैसे व्याघ्रकेसन्मुख या चोरवटमारोंके सन्मुख या प्रदीप्त अग्निकेसन्मुख या अगाधजलमें इत्यादि और भीजानो-अकस्मात् विनाहेतु कोई अप्रियवचन जो किसीको बुरालगे अपनेमुखसे नहींकाढ़े-अहितवार्त्ता जो किसीके या अपनेही कल्याणमें हानिकरसक्तीहो अकस्मात् मुखसेनहींकाढ़े और न ऐसाकोई कामकरै-अनृत जो असत्यहो या जिस्से कुछउत्पात पैदाहोनेकी शंकाहो अकस्मात् मुखसेनहींकाढ़े और न ऐसाकोई कामकरै-स्तेनकहिये चोरनहींहोवे किंतु विनादिये किसीकी कुछवस्तुनहींलेवै-वार्द्धुपीउसेकहतेहैं जोनिषिद्धवृद्धिसे जीविकाकरै सो वार्द्धुपी की वृत्तिनहींकरै (दृष्टांत) जैसे कसाईआदि किसी जीवघातीको धनदेकर व्याजखाना मुर्देकाकफन खरीदकरबेचना आदि और भी अपनीबुद्धिसे जानलो १३१ ॥

दाक्षायणीब्रह्मसूत्रीवेणुमासकमंडलु. । कुर्यात्प्रदक्षिणंदेवमृद्गोविप्रवनस्पतीन् १३२ ॥

ऐ०—दाक्षायणी अर्थात् दाक्षायण जो सुवर्णहै तिसका धारणकरनेवाला-ब्रह्मसूत्री अर्थात् यज्ञोपवीत धारणकरनेवाला-वेणुमान् बाँसको लियेहुये-कमण्डलु जो लोटाहै तिसको लियेहुये कहींजाताहुआ इतनी चीजोंको प्रदक्षिणा करकेजावे एकतो देवता मृत्तिका गो विप्र वनस्पतीनको १३२ ॥

भभि०— सुवर्णका धारणकरना सुवर्णआदि पंचरत्नी या नवरत्नी माला आदि आभूषणों का उपलक्षण है परन्तु अनुकर्ष केवल इतनाहै कि जो और कुछ न होसकै तो सुवर्ण अवश्यभावसे शरीर में राखै क्योंकि यहवस्तु वडेपवित्र रत्नो में गिनती है जिसके शरीर में किसीप्रकारसे मालाकुंडल मुद्रिकाआदि कोई चिह्न सुवर्णकाहोता है वह किसीप्रकारसे अपवित्र नहींहोसक्ता अर्थात् जोभीड़ भटका में किसी मलीन कोभी छूजावे तो अशुद्धनही होसक्ता दूसरेबुद्धि का प्रकाश बनारहता है तीसरेदरिद्रकीबाधाउसको नहींसतासक्तीहै चौथेकिसी संकटदशामेंभी वहकाम देसक्ताहै पांचवें शरीरकी शोभा और प्रतिष्ठा भी है-और ब्रह्मसूत्रका यह सिद्धांत नहींहै कि पहिरेहुये कहींजावे क्योंकि पहिरना तो सदैवही उचितहै फिर उसको क्या कहैगे किंतु तात्पर्य इसका इतनाहैकि जो कहींजावे तो पहिरेहुये के सिवाय कोई यज्ञोपवीत अपने पास बँधारक्खे न जानिये किसदशामें टूटजाने या अशुद्धहोजानेसे उसके बदलनेकी जरूरत आनिपडे या अपने किसी हितूको देनेकी आवश्यकता आनिपड़े तो फिर तत्काल कहाँ मिलसक्ताहै-बाँस कहनेका यह भावहै कि कहींजावे तो लाठी लकडीलिये विना खाली हाथ नहींचलाजावे न जानियेकोई दुर्जन या कूकुर व्याघ्रादिमिलजावे तो इस्से

बड़ाभरोसाहै-लोटा कहनेका यह प्रयोजनहै कि जो कहींजावे तो लोटाको अवश्यही लेजावे न जानिये कहीं दिशा शौचकी जरूरतहो या जलपानकी आवश्यकताहो अर्थात् लोटा बिनाधर्म और प्राणोंकी भी हानिमें संशयहोताहै-इस प्रकार जातेहुये मार्ग में जहाँ कहीं देवता या देवताका स्थान दृष्टिआवे उसको दाहिने देकर निकले-मृत्तिका कहनेका यह सिद्धांतहै कि जो कोई पृथ्वी खेड़ा आदि प्रकारोंसे ऊंचीहो उसको या किसी उत्तम मृद्विकार वस्तुको अर्थात् स्वर्णादि नाना धातु भेद और गेरिकमनःशिला आदि नानाभाँतिके उपधातु भेद जो पृथ्वी धातुमें गिनतेहैं तिनकी राशि देखकर श्रद्धासहित हाथजोड़े और दाहिने देकर निकले क्योंकि ये वस्तु भी परमऋद्धि सिद्धिरूपहोतीहैं-तथैव गऊ और ब्राह्मण कहीं दृष्टिआवे उसको भी दाहिने देकर निकले-वनस्पतीका यह सिद्धांतहै कि जो जो वृक्ष वृक्षोंमें बड़े उत्तम या पवित्रगिने जातेहैं जैसे आम्र, केला, पीपल आदि इनको भी दाहिने देकर निकले (भेद २) अबके समयके विरले अश्रद्धक लोग अपनी चतुराईसे यह भी कहनेलगतेहैं कि इन बातोंसे क्या होताहै किंतु यहबातें सिर्फ फ़जूलगोई या निरर्थक आचारमें गिनती हैं परंतु जो विचारदृष्टिसे सूक्ष्म ध्यानलगाकर देखो तो यही निश्चितहोताहै कि उनको परमेश्वरने केवल उदरभरने मात्रकी चतुराईदी होगी क्योंकि उस जगत्कर्त्ताको सबतरहकी सृष्टिरचना करनी अंगीकारथी फिर जो ऐसे लोग नहींबनाता तो उसकी ईश्वरतामें न्यूनतापड़जाती-उनसे यह भी बूझा चाहिये कि जो सबकी बुद्धि ऐसीही होजावे तो सृष्टिकी बड़ाई और छुटाई कैसेजानीजाय और किसलिये कोई किसीके बड़प्पन या प्रतापकी गुरुताकोमाने और जो यही ढंग चलजावे तो क्रम२ से सारा संसार ऐसी चतुराईकी गरमीसे पिघलकर पानीहोजावे फिर कोई किसीकी बड़ाई या छुटाई को न माने-विद्या देनेवालेको किसलिये गुरु या उस्तादकी पदवीमें समुझते हैं जैसे और तैसा वह भी एक मनुष्यहै बल्कि दामलेकर विद्यादेनेवाला और नौकरोंकी गिनती में आजावे-पिता किसलिये ईश्वरके समान समुझाजाता है जैसे और तैसा वह भी एक मनुष्यहै-राजा किसलिये ईश्वरका अंश मानाजाताहै जो पंचतत्व औरोंमें सो उसमें हैं-कदाचित्कहो कि राजाका भय बड़ा प्रबलहोताहै इससे उसका बड़प्पन लाचार मानाजाताहै तहाँ यह भी ध्यानकरनाचाहिये कि भय वस्तु केवल समक्षभावमें होतीहै कि जो उसके सन्मुख कहेंगे कि तू ईश्वरका अंश नहीं है तो यह दंडदेवेगा परंतु परोक्षभावमें या हृदय कोष्ठमें कि जहाँ इसभयकी संभावना नहीं है तहाँ किसलिये उसको साक्षात् ईश्वरका अंश समुझतेहैं-कदाचित्कहो कि हृदयका अभ्यंतर किसको मालूमहोसक्ताहै कि तुम उसको ईश्वर तुल्यमानतेहो या नहीं तहाँ सीधासा एक प्रत्यक्ष प्रमाणहै कि जब कोई राजा या राजाधिराज बादशाह किसी

राजापर चढ़ाई और विजयकरिके उसको पकड़लेताहै उस समय उसका मारडालना भी उसको सुगमहै क्योंकि उस्से किसीतरहकाभय उसको नहींहै वलिक उसे जीवता वनाराखनेमें खटकाभीहै परंतु वह विजयकर्त्ता वादशाह उसको इसीहेतुसे वध नहीं करताहै कि राजा ईश्वरका अंशहोताहै और इसीसे वहअवध्य भी होताहै-अव कहो कि उस्से क्या उसको भयकी संभावनाथी जो वधनहीं किया केवल नजरवंदरखकर सर्वथा सत्कारपूर्वक उसके सव खर्चों और सेवक वा सवारी आदि आरामोंका प्रवंध करदिया इस्से ठीक२ निश्चितहुआ कि उस विजयकर्त्ता के हृदयमें भी विश्वासहै कि यह राजा साक्षात् ईश्वरका अंशहै इसका अपकारकरना मेरेलिये अधर्महै और जो यह विश्वास उसके हृदयकेभीतर नहींहोता तो तत्काल उसे अपना शत्रु और वाधक समुझकर मरवाडालता-और यह प्रत्यक्षहै कि जो कोई अन्यायी राजा ऐसा अन्याय कर वैठताहै वह प्रथम तो सारे संसारमें अन्यायी प्रसिद्धहोकर दुर्नामता पाताहै दूसरे इसी अधर्मके प्रभावसे वह शीघ्र नष्टहोजाताहै-इस सारे कथनका सिद्धांत केवल इतनाहै कि ईश्वरने जिसकी जितनी गुरुता या लघुता अपनी ईश्वरतासे निर्माणकरी है सो यथावत् सवको कहनी और माननी भी चाहिये जिस्से उसकी ईश्वरताकी विलक्षणता प्रकटहोतीरहै-अव जो तुम यह कुतर्ककरनाचाहो कि मनुष्यादि सृष्टिकी वात भिन्नहै पर माटी२ सव एकसी और वृक्ष२ सव एकसे इनमें उत्तमता या मध्यमता वृथाहैतो इसकुतर्ककाउत्तरसिवाय इसकुतर्कके और कुछध्यानमेंनहीं आसक्ता कि इस वुद्धिकेआगे स्त्री२भी सवएकसी होंगी फिर भार्या और भगिन्यादिकाभीभेद वृथाहै क्योंकिवेहीपंचतत्त्व और वेही दश इंद्रियाँ और वेही सातधातु सवकेशरीरमें होती हैं-सुनो भगवद्गीताका विभूति अध्याय या उस प्रकारके अन्य शास्त्रोंकेस्थलभी तुमने देखेहोंगे या सुनेहोंगे-जड़ और चैतन्यपर भी कुछ आरूढता नहींहै यद्यपि जगत्कर्त्ता अपनी चिच्छक्तिरूपसे सर्वव्यापी प्रत्यक्षहै इसमें कुछ संदेह नहीं तथापि जिसजीवमें या जिसवस्तुमें या जिसदेशमें या जिसकालमें उसकी चिच्छक्तिरूप सत्ताका आधिक्य विशेषहै वहविशेष माननीयहै अर्थात् जिसजाति या जिसभेदमें जो२वस्तुकुछ उत्तमहै सो२ सव ईश्वरकी विभूतिहै तो इस व्यवस्थासे उसकी विभूतिका सत्कारकरना यह भी एक उसीका सत्कारहै और यही सत्कार उसकी भक्तिभावमें गिनतीहै सोई देखो इसका प्रमाण मर्यादापरिपाटी के प्रारंभमें सवसे पहले श्लोक और उसकी अधिकोक्तिमें क्या कहचुकेहैं (भेद३) कदाचित् अवतक भी तुम्हारी वुद्धि नहीं जमतीहो तो अव तुम अपनीही वुद्धिके अनुसार समुझो और ईश्वरकी ईश्वरता को दूरकरो केवल संसारपर दृष्टिडालकर ऐसे स्थानों में जाकर तमाशा देखो कि जहांकहीं जंगीफौजोंकी क़वाअद होरही हो उसमें नानाप्रकारके संकेत ऐसेभी होते

हैं कि जो वोलीके साथही तत्काल वंदूकको वामे हाथके सहारासे छातीमें चिपटीहुई वामे कांधेके ऊपरतक खड़ी करलेना या दोनोंहाथोंका मिलाना या पैरोंकापेतरावदलना आदि अनेक बातें ऐसीहोती हैं जिनकाकाम युद्धके समय कुछभी नहीं पड़ता क्योंकि युद्धके समयकी क़वाअ़द जुदी सिखाई जाती है औरपीछे सिखलाई जाती है और यह एकप्रकारकी साधारण क़वाअ़द जो सबसे पहले अभ्यास कराई जाती है सोऐसीहै कि जैसेगानविद्यामें पहले स र ग म आदि स्वरोंका अभ्यासकराना या वाद्य विद्यामें पहले जुदे२ वाजेकी अपनी तालका मिलाना जैसे सितारमें डिड़डा आदि शब्दोंसे अभ्यास कराना या लिखने पढ़नेमेंपहले वर्णमात्रके हिज्जे करवाना आदि शोचो पूर्वोक्त चतुराईके आगे ये सारी बातें वृथाहैं परन्तु सिद्धांतमें एकभी वृथा नहीं है इन सबके प्रयोजन कहना तो वड़ा विस्तारहै परसीधी सीधी रांहसे समुझलो कि उन साधारण संकेतों से सीखनेवालेको उस ढंगमार्गमें जमाना ऐसाहै कि जैसे नवीन बछेड़ेको जब सवारीमें जोड़ना चाहेंगे तब सबसे पहले उसे काठके घसीटामें जोड़कर सड़कमें निकालेंगे फिरपीछे रेतके मार्गमेंभी जब उसमें अभ्यास होजायगा तब खड़खड़ामें जोड़कर दश पांचरोज फेरेंगे जब उसमें पक्काहोजायगा तब इक्का या बग्घी आदिमें लगावेंगे तो क्रम२से अभ्यास होजानेसे ठीक२ काम देसकैगा जोएक सूत पहले बग्घीमें जोड़देते तो चौंककर बग्घीकोभी तोड़देता और घोड़ाकी आदति भी विगड़ जाती-ऐसेही साधारण क़वाअ़दके संकेतोंको सुनतेही तत्काल उसने उस आकृतिको वनाकर दिखला दिया तो यह निश्चय होगया कि अव आगेको जोकुछ विशेप वार्त्ता सिखलावेंगे तो उसआज्ञाको भी मानेगा और उस आकृतिको वनासकैगा और जो इसमें सीधा न होसका तो जानागया कि आगेको वड़े संकेतोंमें क्या करसकैगा-ऐसेही ये धर्म शास्त्रकी साधारण क़वाअ़द के संकेतहैं जो क्रम२से इन माटी और वृक्षादिकों की गुरुता लघुतामें श्रद्धा पूर्वक यथा योग्य दृष्टिजमिजायगी तो आगेको माता पिता गुरु तथा राजा आदि गुरुओंके वड़प्पन और पदवीको उन से भी लक्षगुणी कोटिगुणी समुझैगा और जो उनमें श्रद्धानहीं वांधेगा तो यहजानो कि पहला प्रारम्भ विगड़ा हुआ सर्वत्र शिष्टाचारको चंचलकर देवेगा-इस्से धर्मशास्त्रका लिखाहुआ एक अक्षरभी वृथा नहीं केवल समुझनेवालेकी समुझका अन्तरहै (भेद४) कुछ यही नियम नहीं है कि जो पांच वस्तुइस १३२के श्लोकमें कही हैं उन्हीं को दाहिने देकर निकले किंतु जो२ वस्तु उत्तम गिनीजाती हों उन सबकाही सत्कार करै क्योंकि यह पांचका कहदेना एक निदर्शनमात्रहै वल्किमनुजीने आठवस्तु कहीहैं यथा (मृदंगांदेवतांविप्रंघृतंमधुचतुःपथम्।प्रदक्षिणानिकुर्वीतप्रज्ञातांश्चवनस्पतीन्) अर्थात्-मृत्तिका१ गऊ२ देवता३ विप्र४ घृत५ मधु-सहत आदि उत्तम मिठाई६ चौ-

राहा७ प्रसिद्धवनस्पती८ इन सबोंको दाहिनेदेकर निकले-सो,यह आठका कहनाभी निदर्शन मात्रहै किंतु ऐसीर और भी जो कोई वस्तु उत्तमहों वे सभी इनमें गिनती हैं- और इसके सिवाय कुछ यही नियम नही है कि इनकोचाहे तिसदशामेंभी दाहिने दियेविना अधर्मी कहला सक्ताहै किंतु सिद्धांत केवल इतनाहै कि इस मर्यादमें अभ्यास और तत्परता वनीराखे अश्रद्धा नहींकरे,जब किसी ऐसी सावधानीकी दशामें कहीं जाताहो कि इनको दाहिने करनेमें अवकाश मिलसक्ताहो तब अवश्य भावसे लोकरीतिको पूरीकरनी चाहिये-या-जब किसी ऐसी दशामें कहीं जाताहो कि इनको दाहिने करनेका अवकाश नही मिलसक्ता और किसी अपेक्षित कार्यमें विलम्ब या उत्पात होनेकी शंकाहै तो उस अवस्थामें दाहिने और वामेका कुछ विवेक नहीं-किंतु निःसंदेह वामे देकर चलाजावे और मनकी भावना मात्रसे हाथजोड़कर ऐसाध्यान करता चलाजावे कि जानो हम इनको दाहिनेदिये जाते हैं तो दोष नहीं- परन्तु शिष्टाचारमें उपेक्षा या निरादर आरोपित करना यह अधर्मका हेतुहै १३२ ॥

नतुमेहेन्नदीछायावर्त्मगोष्ठाम्बुभस्मसु। नप्रत्यग्न्यर्कगोसोमसंध्याम्बुस्त्रीद्विजन्मनः १३३॥

ऐ० —नदी छाया मार्ग गोशाला जल भस्म इन्होंमें मूते नहीं और हगैनही-अग्नि सूर्य गऊ चन्द्रमा संध्या जल स्त्री द्विजाती इनके सन्मुख अर्थात् इनको देखताहुआ हगै मूतै नहीं १३३ ॥

अधि० —शंखजीने कुछ और वस्तुभी गिनाई हैं-यथा- गोबर-जुता और बोयाहुआ खेत-चिता या किसी वस्तुकी ढेरी-श्मशान-खलिहान स्थान-जलका किनारा इनमेंभी नहींहगै मूतै-यह सिद्धांत नहींहै कि इन कहीहुई चीजोंके सिवाय और किसी वस्तुमें हगने या मूतनेका निषेध नहीं है-अर्थात् इसकहेहुये निदर्शन मात्रसे वे सभीवस्तु और सभी स्थान इनमें गिनतीहैं कि जो शास्त्रसे या लोक दृष्टिसे विरुद्ध पाये जातेहों या जिसमें मलकरनेसे किसीको प्रत्यक्ष या अज्ञात भावसे भी कोई तरहकी हानि अथवा पीड़ा पहुँच सकती हो-और यद्यपि विस्तारके भयसे इन सबका हेतु लिखनेकी उपेक्षाहै परंतु एक २ निषेधमें अनेक २ हेतुभी ऐसे प्रत्यक्ष हैं जिनसे अपनेको दोष और परायेको पीड़ाकी संभावनाहै(जैसे)नदीमें जलका बिगड़जाना उस्से रोगोंकी उत्पत्तिहोनी-छायामें जो कोई आनकर-विश्राम लेवेंगे उनको क्लेशहोना-मार्गमें सबको ग्लानिहोनी इत्यादि सबके हेतु प्रत्यक्ष हैं-और अपने को उसदोषके सिवाय तत्काल या कुछ विलंबसे भी दंड मिलनेकी शंकाहै-और जो दंडसे बचजावे तो ऐसे गूढ़पापों से कुष्ठादि और श्वासादि असाध्य राजरोगों के होजानेकी भीतिहै किन्तु पाप अपना बदला लिये विना पीछा नही छोड़ता १३३ ॥

नेक्षेतार्कंननग्नांस्त्रींनचसंसृष्टमैथुनाम्। नचमूत्रंपुरीषंवानाशुचीराहुतारकाः १३४ ॥

ऐ०—सूर्यको-नग्नास्त्रीको-संसृष्ट मैथुनास्त्रीको भी नहीं निहारै-मूत्र और पुरीपको भी नहीं देखे-आप अशुचि हुआ राहु और ताराओंको भी नहीं निहारै १३४॥

अधि०—सूर्यको न देखे यह असंगतहै क्योंकि सूर्यके दर्शन पुनीत हैं परंतु इसका प्रयोजन मनुजी के वाक्यसे सिद्धहोसकता है-यथा-(नेक्षेतोद्यंतमादित्यंनास्तंयांतं कदाचन नोपसृष्टंनवारिस्थंनमध्यंनभसोगतम्) अर्थात्-उदयहोतेहुये आदित्यको नदेखे किन्तु जब पूराबिंब उदयहोचुके तबदर्शनकरै-अस्तहोतेहुये कोभी कभी नहींदेखे किन्तु जबतक पूराबिंबबनारहै तबतक देखनेंका दोपनहीं-राहुसे ग्रसेहुये सूर्यको नदेखै-जल में सूर्यकेप्रतिबिम्बको नदेखै-मध्याह्न कालमें आकाशके मध्य पहुँचेहुये सूर्यको नदेखै-यद्यपि सन्ध्यावन्दनकी उपासनासमय अवश्यभावसे ऐसे अर्द्धोदय या अर्द्धास्त बिम्बका देखनाहोता है पर उसका निपेधनहीं है क्योंकि वह विधिकाप्रसंग है-यहबात जुदी है इसमें साधरणभावसे दृष्टिजमा-करदेखने का निपेधहै इस्से प्रथम तौ सूर्यदेवका अपकार है दूसरे नेत्रोंकी दृष्टि मारीजातीहै-नग्नास्त्रीका निषेध मैथुनकालकेसिवाय निजभार्याका भी निश्चितहै-संसृष्ट मैथुना स्त्रीका यहअर्थहै कि किसीसे मैथुनमेंतत्परहुईकोनदेखै दूसराअर्थ यहभीहै कि मैथुनसेनिपटेंपीछे तत्काल अनग्नाकोभी नहींनिहारै क्योंकि इस्से उसको अधिकलज्जा प्राप्तहोतीहै और इसीसे वह शापभीदेतीहै और (च) शब्दकेअभिप्रायसे वे बातेंभी-लेनीचाहिये कि जो इसमें नहीकहीं-पर मनुजीनेकहीहैं-यथा-(नाश्नीयाद्भार्ययासार्द्धं नैनामीक्षेत्चाश्नतीम्।क्षुवतींजृंभमाणांचनचासीनांयथासुखम्।नांजयंतींस्वकेनेत्रेनचाभ्यक्तामनावृताम्। नपश्येत्प्रसवंतींचश्रेयस्कामोद्विजोत्तमः) अर्थात्-जोकोई द्विजाती मात्रमें उत्तमगिनाजाताहो और वह सर्वथा अपनेकल्याणोंकी कामनारखताहो वह इतनीबातें नहींकरै-किन्तु-भार्याकेसाथ भोजननहीं-भोजनकरतीहुई भार्याको नदेखै-छींकतीहुईको नदेखै-जंभाईलेतीहुईको भी नहीं-स्वतंत्र अपनीइच्छाकेअनुसार बैठी हुईकोभी नहीं-अपने नेत्रोंमें अंजन करतीहुई को भी नहीं-उबटनाकरीहुई या करवाती हुईकोभी नहीं-वस्त्रोंविना नहातीधोतीको भी नहीं-गर्भकाप्रसवकरतीहुईकोभी नहीं-यद्यपि इन कहीहुई सारी बातोंके हेतु अनेकहैं और सबके भिन्न २ भी हैं परन्तु साधारण भावसे यह हेतुहै कि यहांपर जिनबातों का निषेध किया है तिनके करनेवाले पुरुषकातेजो बल बुद्धि पराक्रम यश पुण्य सुकीर्त्ति आयु प्रताप ये सब शीघ्र नष्ट होजाते हैं १३४॥

अयंमेवज्रइत्येवंसर्वंमंत्रमुदीरयेत्। वर्षत्यप्रावृतोगच्छेत्स्वपेत्प्रत्यक्शिरानच १३५॥

भक्ष०—यह मेरावज्र इसप्रकार जोमंत्रहै ताहि साराउच्चारणकरै वर्षतेमें उघाड़ा जावै- पश्चिमको शिरकियेहुये सोवै भी नहीं १३५॥

भमि०—वर्षाहोतेसमय कहींजानापड़े तो वेखटके नंगा चलाजाय किंच-अयंमैवज्रः पाप्मानमपहंतु-यह जो वेदकामंत्रहै इसे संपूर्ण उच्चारण करलेवै तो कुछचिन्तानहीं उत्पन्नहोगी-और पछाँहको सिरहानाकरके सोवैभी नहीं १३५॥

भधि०—मंत्र जोवस्तुहै सो उसीकीरक्षाकरसक्ताहै जिसने मंत्रोंको किसीप्रकारसे सिद्धकरपायाहो सो ऐसेमनुष्य थोड़ेहोतेहैं-और यहप्रकरण यद्यपि स्नातकपुरुषके नामसे कहरहे हैं सो स्नातक अवश्य विद्यावान्होताहै-परन्तु स्नातक यह एक निदर्शनमात्रकहाहै अर्थात् यह सिद्धांतनहींहै कि इसप्रकरणकी कहीहुई मर्यादें स्नातक के सिवाय और कोईनहींमाने किन्तु द्विजातीमात्रके सबकेलिये कहीहैं-इसीहेतु से ऊपर जो वज्रमंत्रका उच्चारणकरनाकहाहै तिसका यह सिद्धांतहै कि बहुतेरे मनुष्य ऐसे कायरहोतेहैं कि वे वर्षाकेसमय निकलनेसे भयमानतेहैं कि जानै ऊपरसे बिजली गिरै या कोई और उत्पातहोजावे सो ऐसेमनुष्योंको हिम्मतिबँधानेकेलिये यह उपाय लिखाहै कि जिस्से उनकेकल्याणरूपीकामोंकी हानि नहींहोनेपावै क्योंकि हिम्मतहार जानेसे मनुष्यकाउत्साह माराजाताहै और उत्साहकेबिना फिरकोईकामनहीं चलसक्ता-अन्यथा जो दैवकरताहै सोईहोताहै बिनाउसकीइच्छा उत्पातनहीं होसक्ता और बचभीनहींसक्ताहै पर नेत्रोंकेआगे साँकिओटकरनेसे पहाड़कादीखना बंदहोजाता है (भद २) मन्वादि अन्यशास्त्रोंके अभिप्रायसे वर्षासमय दौड़केभी नहींचले नग्नहोकर नहींसोवै किसीशून्यस्थानमें एकला नहींसोवै १३५॥

ष्ठीवनासृक्शकृन्मूत्ररेतांस्यप्सुननिक्षिपेत् । पादौप्रतापयेन्नाग्नौनचैनमभिलंघयेत् १३६॥

ऐ०—ष्ठीवन, थूक, खखार, आदि-असृकरक्त-शकृत् विष्ठा-मूत्र-रेतस्वीर्य-इनको जलोंमें नहींफेंके-अग्निमें पैरोंको तपावैनहीं-इस अग्निको उलाँघैभी नहीं १३६॥

भधि०—इसमें शंखजीने कुछ और वस्तुभी निषेधकरीहैं-यथा-तुषकेशपुरीषभस्मास्थिश्लेष्मनखलोमान्यप्सुन निक्षिपेत् पादेनपाणिनावा जलंनाभिहन्यात्-अर्थात्—तुषभूसी आदि, केशबाल, पुरीष विष्ठा, भस्म राखकूड़ा, अस्थिहाड़, श्लेष्म खखार, नखमुह, लोमरोमा इनको जलोंमें नफेंके क्योंकि प्रथमतो जल देवरूपहै दूसरेलोक दृष्टिसे जलोंका बिगड़जाना उस्सेपीने या नहानेवालों को रोगोंकी उत्पत्ति होना यह अधर्महै तीसरे जोकोई ऐसाकरते देखैगा वहबुरा कहैगा और मारपीटभी होजावेगी और पैरसे या हाथसे जलकोपीटेनहीं इस्से अपनी या औरोंकी आँखोंमें जलका पड़ जाना और हाथपैरोंकी नसोंमें कफ वातका विकृत होजाना यहबड़ी शंकाहै-अग्निके मध्ये मनुजीने बहुत कुछ कहाहै-यथा-(नाग्निंमुखेनोपधमेन्नग्नांनेक्षेतचस्त्रियम् । नामेध्यंप्रक्षिपेदग्नौ नचपादौ प्रतापयेत् अधस्तान्नोपदध्याच्चनचैनम भिलंघयेत् नचैनंपादतः कुर्यान्नप्राणाव धिमा चरेत्)अर्थात् अग्निको मुँहसे नहीं फूँके क्योंकि चिटकारी

आँखमें पड़ेगी या नेत्रोंकी ज्योति मंद होजायगी-नंगीस्त्रीको नदेखे-अग्निमें अशुद्ध वस्तुनहींछोड़े क्योंकि प्रथमतो वह देवतारूपहै दूसरे उस्सेचिड़ाइँध छूटेगी तबकिसी को पीड़ापहुँचेगी यह भलाबुरा कहेगा-पैरोंको भी नहींतपावे क्योंकि नेत्रोंकी ज्योति मारीजायगी और त्रिदोष कुपित होनेकी शंका है-नीचे अग्निको कपड़ोंसे ढाँककर न बैठे क्योंकि इसभाँतिसे तापतेहुये बहुधा मनुष्य कपड़ों सहित जलजातेहैं और आगभी लगजातीहै-इसको कूदकर उल्लँघे नहीं क्योंकि जो ऐसाअभ्यास पड़जायगा तो एकदिन पूरा धोखा खायगा-इसको पैरकेनीचे भीनहींदबावे क्योंकि प्रत्यक्ष पीड़ा काहेतुहै तीव्रता उसकीआँखोंतक पहुँचतीहै औरखाल जलजावेगी तो लँगड़ेहुये फिरोगे तबसारेकाम बन्दहोजायँगे-इसको प्राणोंकीअवधितांई न आचरणकरै अर्थात् जोलोग पंचाग्नि आदि प्रकारोंसे अग्निसेवनकरनेवालेहैं वेभी ऐसाअतिशय सेवन नहींकरें जिस्से प्राणजातेरहें क्योंकि जो प्राणोंकीरक्षाबनीराखोगे तो अनेक धर्मकर्म और तपस्याओंका संचय करसकोगे और प्राणोंकी हानिकरदेना यह तपस्यानहींहै किंतु आत्महत्यामें गिनतीहै १३६॥

जलंपिबेन्नांजलिनानशयानंप्रबोधयेत् ।नाक्षैःक्रीडेन्नधर्मघ्नैर्व्याधितैर्वानसंविशेत् १३७॥

अक्ष०-अंजलीसे जलनहींपीवे-और सोवतेहुयेको जगावेनहीं-अक्षोंसे क्रीड़ानहींकरै-धर्मघ्नोंसेभीनहीं-व्याधितोंकेभी साथबैठेनहीं १३७॥

अभि०-जलको दोनोंहाथ बाँधकेनपीवे इसकहनेसे पीनेमात्रकी कोईवस्तुहो उसको हाथसेनहीं क्योंकि यह एकप्रकारका गमारू लक्षणहोताहै इस्सेकपड़े छींटछाँटजातेहैं और पीतेहुये जो श्वासलेलेवे तो आँतोंमें पानीघुसजानेकी शंकाबनीरहती है और प्रमाणसे अधिकभी पीजाताहै इससे उदरशूलभी होजानेकी शंकारहती है इसलिये किसीपात्रसेही पीवे-और सोवतेहुयेको अपनेसे अवस्था या विद्याआदि गुणोंसे श्रेष्ठ को तो अवश्यही नहीं जगावे परवहबात जुदीहै कि जो तत्काल कोई उपद्रव आनि खड़ाहो क्योंकि(आपत्कालेमर्यादानास्ति)अक्ष कहिये पाशे जो द्यूतक्रीड़ामें प्रसिद्ध होतेहैं तिनसे कभीसाधारण भावसेभी नहींखेले क्योंकि उसमेंसाधारणसेभी तत्काल सच्चाखेल खड़ाहोजाताहै पीछे जो कुछ दशाहोतीहैं सो सब युधिष्ठिर और राजानल के इतिहासोंसे प्रसिद्धहैं-धर्मघ्नोंसे न खेलै अर्थात्जो धर्मघ्नपुरुष होतेहैं तिनके साथ न खेलै और न बैठे और एकप्रकारके धर्मघ्नखेलभीहोते हैं जिनमें किसी जीवकी हिंसाहोतीहो जैसे कुत्तासे खरगोश आदिका तोड़वाना ऐसे अनेकखेल होतेहैं तिन खेलोंसे आपनहींखेलै और नेत्रोंसे देखेभीनहीं-और व्याधितपुरुष जो किसीप्रकारके ज्वर या विस्फोटक या कुष्ठआदिरोगोंसे संयुक्तहो उसकेसाथभी न खेलै और न बैठे क्योंकि संसर्गसे वहीरोग दूसरेकोभी होजाताहै १३७॥

विरुद्धंवर्जयेत्कर्मप्रेतधूमंनदीतरम्। केशभस्मतुषांगारकपालेषुचसंस्थितिम् १३८॥

भा०—विरुद्धकर्मको वर्जितराखे-प्रेतधूमको-नदी तरणेको भी-बाल-राख-भूसी-अँगार-कपाल-इनमें स्थिति वर्जित करे १३८॥

अभि०—विरुद्धकर्मभी दो प्रकारके होतेहैं एक तो आहार विहारआदि-दूसरे कुल ग्राम जनपद देशकाल आदिसे विरुद्ध तिनसबोंको बचावै-प्रेत धूमकहिये चिताका धुआंभीबचावे-नदीका तैरना भुजाओंके वलसे पारउतरनाभी न करे-जहांवाल पड़ेहों तहां ऊलजलूलीसे नहीं बैठजावे वालों के उपलक्षणसे नखदांत आदि जो शरीर से गिरेहुये द्वादश १२ मलप्रसिद्धहैं वे सभी समुझलेने-राख और भूसीपरभी नहीं बैठ जावे इसके उपलक्षणसे सभीकूड़ामात्र समुझलेना-अँगारकहनेका यह अभिप्राय है कि जहांअग्निकाफैलावाहो तहां जोबैठाचाहे तोपहिलेपृथ्वीपर दृष्टिकरदेखलेवे किंतु धोखाखाकर कहींअँगारी चिनगारीके ऊपरनहींबैठजावे या खड़ाहोजावे-कपालकहने का यह अभिप्राय है कि हांड़ आदि किसी मलीन वस्तुपर न बैठजावे या वहां होकर निकसै १३८॥

अधि०—दोप्रकारके विरुद्धकर्म जो कहेगयेतिनमें पहलेआहार विहारसेविरुद्ध कर्मों का (दृष्टांत) जैसे आहारभोजनकी वस्तु जो कोईसी जिसको सात्म्य नहींहैअर्थात् मुवाफ़िक नहींहै वहउसीको खावै तौ विरुद्धहै या जिसरोगवालेको जो वस्तुसात्म्यनहीं है वहउसीको खावै तौ विरुद्धहै या जो वस्तुसात्म्यभीहो उसकोअपनी खुराकसे अधिकखाजावै तौ भी विरुद्धहै या जिसवस्तुकेसाथ मिलाकर जिसवस्तुकाखाना उचित नहींहै वह उसीमेंमिलाकरखावै तौ विरुद्धहै जैसेदूध और मछली या घी और सहत या नमक और मीठा या खटाई और दूध अथवा जिसवस्तुके ऊपर जो वस्तुखानी उचित नहींहै उसीके ऊपर खाय तौ यह भी विरुद्धहै जैसे दूधकेऊपर दहीकाखाना या अफीमके ऊपर तेलकापक्वान्न और गुड़ आदिकाखाना इत्यादि असंख्य लक्षण जो वैद्यशास्त्रसे और निजपरीक्षासेभीजानजातेहैं सो तौ आहारविरुद्धहैं औरविहार विरुद्धका (दृष्टांत) जैसे हलनाचलना फिरना आदि शरीरकी चेष्टाओंको विहारकहते हैं सो जब कोई ऐसा विहार करै जिस्सेकिसीप्रकारका रोग या पीड़ा या भय पैदाहोने की शंकाहो तब उसको विरुद्ध विहारकहते हैं जैसे भरीदुपहरी में दमखींचकर एक सन्नाटेमें दशपांच कोशकाधावा करिके तत्काल किसीजलाशयमें स्नानकरलेना यह विरुद्धहै या उलटी कलावाजीखाना या उलटाहोकर पेड़मेंलटकना यह विरुद्धविहार है या किसीऐसे बोझका खींचना और उठाना जो अपनी शरीर सत्तासे अधिकहो सो यह विरुद्ध विहार है अथवा दोचारपहर लगातार ऐसे ऊंचे और तीव्रस्वरसे गाना या रोना या पढ़ना आदिकाकरना कि जिस्सेसारे शरीरका पराक्रमनिकालदेनापड़े

तो यह विरुद्ध विहार है या किसी ऐसे मार्गमें चलना जहां चलनेकानिषेधहै या किसी ऐसे स्थानमें जाघुसना जहां जानेका निषेधहै तो भी यहविरुद्ध विहारकर्महै इत्यादि और भी असंख्य लक्षणअपनी बुद्धिसे जानो १-दूसरे प्रकारकेविरुद्ध कर्मोंके (दृष्टांत) प्रथमतोकुलसे विरुद्ध किंतु जिसकुलमें जो बातनिंदित गिनीजातीहो तिसकाकरना उसकुलके आचारसे विरुद्धकहलाताहै (जैसे) कान्यकुब्ज या गुर्जर या दाक्षिणात्यकुलोंमे बाजारसे पक्वान्नलेकरखाना-तथा-गौड या अगरवाल आदिकुलोंमें आमिषादि का सेवनकरना इत्यादि असंख्य लक्षण और भीजानो और इसकुलके निदर्शनमात्र से कुलान्तर्वर्त्तीभिन्न २ बंशोंको भी जानो-ऐसेही जिसग्राम की बस्ती में जो काम निंदित गिना जाताहो चाहे केवलस्वार्थ या सर्वोपकारी दृष्टिसे भी कियाजावे वह उस बस्तीसे विरुद्ध है तहां केवलस्वार्थ का दृष्टांत जैसे मृगयार्थी कोई पुरुष उसबस्ती में जाकर वहांकी बागात या बसायतके पशुपक्षी आदिका आखेटकरै-सर्वोपकारी का दृष्टांत जैसे वर्षाकालमें सूखापड़नेसे जलवृष्टिकी अपेक्षामें ग्रामकीसीमा पै मदिरा आदिसे धारादेना या भैंसाआदि पशुओंका बलिदान करना-ऐसेही जनपदएक छोटे मोटे धरणीपालके वशवर्त्ती जिलाको और कसबाको भी कहते हैं जिस जनपदमें किसीकामका निषेधहो तिसकाकरना उससे विरुद्धहै जैसे किसी जनपदमें यहआनि चलीआती है कि उससीमाके भीतर या उसगढ़के आगेकोई छत्रीनहीं लगावे यानिशानोंसहित हाथीपर चढ़के नहींनिकलै या बंदूक नहींदागे या मुर्दाको लेकर कोलाहल करतानहीं जावे किंतु चुपचाप चलाजावे इनकामोंमें से कोईकामकरे तो वहविरुद्धहै-अथवा जिसजनपदमें चोर बटमारोंकी भीतिसे कोई मालदार या व्यापारी रातविरात चलनेका अधिकारी नहींहै और इसीहेतुसे वहांकी यहपरिपाटी है किवह धरणीपाल किसीएक नियतसमयपर सारे देशोंके आयेहुये बटोहियोंको अपनी सिपाहकी रक्षापूर्वक सीमासेबाहर निकालदेता है इसदशापर भी कोईपांथ अपनीउल जलूलीसे कुसमयपर चलनिकसै तोभी यहकाम उस जनपदसे विरुद्धहै इत्यादि नानाभांतिसे जानो-ऐसेहीदेश शब्द यद्यपि साधारणभावसे स्थानमात्र का बोधकहै परन्तु विशेषलक्षण में द्वीपांतर अथवा दिशाभेदसे कहनेमें आताहै जैसे पूर्वदेश पश्चिमदेश इत्यादि जिसदेशमें शीत और उष्णादि हेतुओंसे या वहांके आचारोंके अनुसारजोकाम अथवा जोआहार विहारकरना निषेधहो तिसकाकरना उसद्वीप या देशसेविरुद्धहै और जबयहीदेश शब्दसाधारण भावसे स्थानमात्रका बोधक समुझा जाय तब द्वीपांतर आदिकेसिवाय सारेदेशोंकी व्यवस्था इसीसे देसक्तेहैं जैसे श्रीजगन्नाथपुरी में जाकरजुदा चूल्हाफूँके इसआग्रहसे कि मैं किसीका छुआनहीं खाताहूं तो उसदेशसे विरुद्धहै या जिसदेशकी यह परिपाटीहै कि कूपके किनारेसे जबएकके

जलपात्र उठलेतेहैं तबदूसरा अपनेधरता है इसदशापर जो कोई पहले के उठलेने विना अपने मृत्पात्रोंको निजदेशी अथवाजाती चालिकेअनुसार धरदेवे तो उसदेशसे विरुद्धहै या जिसदेश में इसवातका विवेकनहीं है और कूपोंपरसबका एकसाथ जमघटहोताहै इस व्यवस्थापर कोई ऐसाविवेकी यह कहनेलगे कि तुमसब हटजाओ मुझेभरलेनेदो तौयहभी उसदेशसे विरुद्धहै इत्यादि असंख्यभेद और भी अपनी बुद्धिसे नानाभांतिकेजानो-देशसंबन्धी आहार विहारकी अपेक्षासे देशोंके तीनलक्षण वैद्यशास्त्रके मतसे गिनेजातेहैं यथा जांगल १ अनूप २ साधारण३-जांगल अर्थात् जंगलकादेशसोईयह कहाहै कि(अल्पोदकतृणोयस्तुप्रवातःप्रचुरातपःसज्ञेयोजांगलो देशोबहुधान्यादिसंयुतः) अर्थात् जोदेश थोडेजल वाला थोडेतृणवाला अत्यंत वायु वाला घनी घामवाला बहुतायतसे अन्नादिकोंसे संयुक्तहो सो जांगलजानो इसमें वात पित्तरोगोंकी प्रधानताहै १ अनूपदेशका लक्षणजलकी बहुतायत सेहै यथा(बहुम्बुर्बहुवृक्षश्चनानाशस्यफलान्वितःअनूपदेशोज्ञातव्योवातश्लेष्ममयार्त्तिमान्) अर्थात्घनेजलवाला घनेवृक्षोंवाला नानाभांतिकी खेती और फलादिकोंसे संपन्न और कफवातरोगोंकी पीड़ावाला यह अनूपदेशजानो २ साधारणदेश उसेकहते हैं जिसमें थोड़े२ दोनोंलक्षण मिलतेहों पूर्वोक्त किसीवस्तुकी बहुतायतभीनहीं और विशेष हीनताभीनहो और वात पित्त कफ यहतीनोभी बराबरहों किंतु इनमेंसे किसीकी पीड़ा की अधिकतानहींहो ३-इन तीनों भाँतिके देशोंमें जो२ आहार या विहार वैद्यशास्त्रके संमतसे सेवनकरने उचितहोतेहों तिनसेविपरीत सेवनकरना यहभी उनदेशोंसे विरुद्ध है ऐसेहीकालसे विरुद्धकहनेका यहभावहै कि जिसकालमें जो कामकरना निषेध है उसकोकरै तो कालसेविरुद्धहै (दृष्टांत) जैसे वर्त्तमानमें सतीहोनेका निषेध है जोकोई ऐसाकरे या देखतेहुये करनेदेवे तो इसकालसे विरुद्धहै-ऐसे२ विरुद्धकामोंको सर्वथा अपनी शक्तिकेअनुसार बचावे यहयाज्ञवल्क्यजीका सिद्धांतहै इसीसेयाज्ञवल्क्यजीने यद्यपि संसार या परलोककी कोईवातकहनेसे न छोड़ी परसतीकेहोने या नहोनेकाभी कुछ चर्चानहींकिया क्योंकि यद्यपि प्राचीनशास्त्रोंमें पहलेयुगोंकी अपेक्षासे सतीहोने की आज्ञाथी क्योंकि उनयुगोंमें सत्यधर्मकी विशेषताथी परपीछे२ कलियुगकेआनेमें अनेकऋषियोंने इसका अपवादकिया और स्मृतियोंमें अनेकभाँतिसे निषेधलिखा तबसे यह परिपाटीजातीरही तिसपीछे याज्ञवल्क्यजीने अपनेसमयमें इसपरिपाटीको न देखकर और कालसे विरुद्ध निश्चितकरके इसकाकुछभी चर्चानहींकिया इसीसे अब कदाचित् जोकोई ऐसाभूलकर करताहै याकरनेदेताहै वह पूरादंडपाताहै इसीसे वहसतीभी स्वर्गभागिनी नहींहोतीहै क्योंकि प्रथम तो समयसे विपरीत कामकरना एकयहीबड़ापापहै दूसरे जिसकेहेतुसे अनेकबांधवोंने पीछेदंडपाया और कारागारादि

नरकोंकोभोगा वह अनेकोंको दुःखदेनेवाली एक क्योंकर स्वर्गफल पावेगी-सोई याज्ञवल्क्यजीसे पहले ऋषियोंनेकहाहै कि(पुरुषाणामिवस्त्रीणामप्यात्महननंस्मृतम्। मृतानुगमनंनास्ति ब्राह्मण्या ब्रह्मशासनात्॥जीवन्ती तद्धितंकुर्यान्मरणादात्मघातिनी। या स्त्रीब्राह्मणजातीया मृतंपति मनुव्रजेत् ॥ सास्वर्गमात्मघातेन नात्मानंनपतिंनयेत्) अर्थात्-आत्महत्या करनेकाअपराध जैसा पुरुषोंको होताहै तैसाही स्त्रियोंकोभी-ब्रह्माजीकी आज्ञाकेअनुसार ब्राह्मणीको मरेहुये पतिकेपीछे मरजानानहीं है-इसलिये जीवती बनीरहकर उसमरेहुयेका हितकरतीरहै क्योंकि मरजानेसे आत्मघातिनी होती है-जोकोई ब्राह्मणजातिकी स्त्रीमरेहुये पतिकेपीछे मरजातीहै-सो वह आत्मघातके पापसे नतो अपनेआपेको और न उसपतिकोभी स्वर्गलेजातीहै-अबकहो कि जब इनअपराधोंकेसिवाय अपने बांधवोंकोभी दण्डादि नरकभुगवाये तब आपकैसे स्वर्गजासक्ती है-ब्राह्मणीके कहनेसे चारोंवर्णकीअपेक्षाहै क्योंकि जो काममुख्य एकब्राह्मणके लिये करना या न करनालिखाजाताहै वहतीनों अथवा चारोंवर्णोंपर संभवित होजाताहैदृष्टांत जैसे १२८ केश्लोकसे जो मर्यादेंकहते चले आते हैं वह यद्यपि (स्नातक) पुरुषके निमित्तसे कहरहेहैं परंतु इनमें थोड़ी बातें ऐसी हैं जो केवलस्नातकसेही अपेक्षा रखती हैंऔर सारी बातें सब गृहस्थीमात्रके लियेसंसूचितहैं किन्तु स्नातक एकनिदर्शनमात्र है-एक सतीके दृष्टांत मात्रसे और भी सहस्रों काम अपनी बुद्धिसे विचारलो जो काल से विरुद्ध हुआ करते हैं-आहार विहार की अपेक्षासे कालके भी तीनभेद शीत १ उष्म २ वर्षा ३ काल प्रसिद्धहैं इनमें भी वैद्यशास्त्रके संमतसे जोजो आहार या विहार करना अनुचितहों तिनका करना यहभीकाल विरुद्धहै १३८॥

नाचक्षीतधयंतींगांनाद्वारेणविशेत्कचित्। नराज्ञःप्रतिगृह्णीयाल्लुब्धस्योच्छास्त्रवर्तिनः १३९॥

ऐ०-धयंती गऊ अर्थात् बच्चेको दूध पियाती हुई या प्यारसे चाटतीहुई अथवा परस्पर दोतीन आदि गौयें प्यारसे किलोल क्रीड़ा करतीहुई सूँघतीहुई परस्पर थनोंको चाटतीहुई यह सब धयंती कहलाती हैं और वहभी धयंती कहलाती हैं जो गाय और बैल परस्पर मैथुनके उद्योगमें तत्परहों इनको किसी दूसरेको दिखलावे नहीं अर्थात् अपनी दृष्टिपरजाय तो दृष्टिको निवर्तन करलेवै और किसी ओरको भी नहीं दिखावे इसहेतुसे कि जानें कोई चंचल मनुष्य उन्हें देखकर छेड़े या हटादेवै-और कहीं भी अद्वारसे प्रवेश नहीं करे किन्तु चाहे किसीका घरहो या बागहो हाताहो ग्रामहो जो मार्गउसके प्रवेशके निमित्तसे नियत किया गयाहो उसीसे प्रवेश करै-कृपण लोभी और शास्त्रसे विरुद्ध वर्तावा करनेवाले राजाका प्रतिग्रह नहींलेवे १३९॥

अधि०-धयंती गौओंका न देखना यद्यपि पूज्यता पक्षसे सब संभवित्त और यथोचितहै पर जो कोई उनमें पशुबुद्धि रखताहो उसके लिये भी यहबात फलदायकहै सि-

द्दांत इसका यहहै कि,जब पशुओंमें भी यह बुद्धि आरोपित करी जायगी कि उनके आनंदमें उपद्रव नहीं करना तौ मनुष्यके लिये तो आपसे आप यह दया भाव प्रकट होजायगा कि किसीके आनंदमें विघ्नकरना अनुचितहै और जब साधारण आनंदमें विघ्नकरना अनुचित ठहरा तब आगेको हिंसा आदि कोईसा कठिनदुःख भी किसीको क्योंदेसकेंगे इस्से यह मर्याद भी मनुष्योंकी रक्षा विषयके प्रबंध पर आरूढ़है-और द्वारबिना प्रवेश करना यह प्रत्यक्ष अकल्याणहै कि जबऐसा करैगा तब अवश्यकहीं न कहीं प्रतिष्ठा भंगकरवावेगा और प्रतिग्रहके लेने या न लेने में जो दोषादोषहै सो नीचेके श्लोकमें प्रत्यक्षहै १३९ ॥

प्रतिग्रहेसूनिचक्रिध्वजिवेश्यानराधिपाः । दुष्टादशगुणंपूर्वात्पूर्वादेतेयथाक्रमम् १४० ॥

ऐ०-प्रतिग्रहों के लेनेमें सामान्य दशापर भी सूनी आदि पाँचों पहले २ सेपिछ्ला २ यथा क्रमसे दशगुणा दुष्टहोताहै इस्से इन पांचोंका प्रतिग्रह नहींलेवै-पांचों के नाम-सूनी अर्थात् जिसके घरमें सूना कहिये जीवहिंसा का स्थान या पेशाहो किन्तु क़साई इतिलोके प्रसिद्धिः १ चक्रीतेली २ ध्वजी मदिराबेचनेवाला ३ वेश्या ४ राजा जिसके अवगुणऊपर १३९ केश्लोकमें कहचुकेहैं अर्थात् सबहीनहीं ५-१४० ॥

अध्यायानामुपाकर्मश्रावण्यांश्रवणेनवा । हस्तेनौषधिभावेवापंचम्यांश्रावणस्यतु १४१ ॥

अबअध्ययनधर्मकहते हैं ॥

ऐ०-अध्यायोंका उपाकर्म अर्थात् अध्याय जो वेदहैं तिनकाउपाकर्म कहिये उपक्रम किंतु विधिसहित प्रारम्भकरना सो यहकर्म ओषधियोंके उत्पन्नहोनेपर श्रावणमासकी पौर्णमासीकोकरै अथवा उसीपौर्णमासीके समीप जिसदिन श्रवणनक्षत्रहो तिसदिन करै अथवा श्रावणशुक्लापंचमी जो हस्तनक्षत्रसे संयुक्तहो तौ उसदिनकरै और अपनी गृह्योक्तविधि अर्थात् गृह्यसूत्रादि शास्त्रनियमों अनुसारकरै १४१ ॥

अधि०-और जो श्रावणमासमें ओषधियां नहींउत्पन्नहोवें तौ भाद्रपदमहीनाके श्रवण नक्षत्रमेंकरै तिसकेपीछे साढ़े चारमहीना पर्यंत वेदोंकोपढ़ै-सोई मनुजीका यहकथन है कि (श्रावण्यांप्रौष्ठपद्यांवाप्युपाकृत्ययथाविधि । युक्तश्छंदांस्यधीयीतमासान्विप्रोऽर्द्ध पंचमान्) १४१ ॥

पौषमासस्यरोहिण्यामष्टकायामथापिवा । जलांतेछंदसांकुर्यादुत्सर्गंविधिवद्बहिः १४२ ॥

अक्ष०-पौषमासकी रोहिणीमें अथवा अष्टकामें जलकेनिकट बाहर विधिकेअनुसार छंदोंका उत्सर्गकरै १४२ ॥

अभि०-पौषमासमें रोहिणीनक्षत्रके दिवस या उसीमहीनामें (अष्टका)नामपर्व जो कृष्णाअष्टमीतिथि प्रसिद्धहै तिसदिन बाहर जलाशयनदी आदिके निकट जाकरवेदों का उत्सर्गकर्म जो उसविषयके ग्रन्थोंमेंलिखाहो तिसकेअनुसार विधिपूर्वककरै १४२ ॥

भधि०-अष्टका यद्यपि पौराणमतसे भी सप्तमी १ अष्टमी २ नवमी ३ ये तीन दिन प्रत्येकमहीनाके दोनोंपक्षमेंकहेहैं और इनतीनोंदिवसमें शास्त्रकापढ़ना औरव्रतबन्धकाहोनाभी निषेधकियाहै। और पितरोंकेउद्देशमें श्राद्धभेदसे पौष१ माघ २फाल्गुन ३ इनतीनोंमहीनाकी केवल कृष्णाअष्टमीही अष्टका कहलातीहैं इनतीनोंमें भिन्न२ श्राद्धोंकेप्रकारभी प्रसिद्धहैं-यथा(पूपाष्टका पौषमासे १ मांसाष्टका माघमासे २ शाकाष्टका फाल्गुनमासे ३) इनतीनोंमें इन्हीं तीनवस्तुसे पितरोंकी तृप्तिकरीजाती है-दो प्रकारकी अष्टकादशापर श्रीमत्परमहंस परिव्राजक विज्ञानेश्वर भट्टारकनेभी इसका निर्णय स्पष्टभावसे नहींकिया और इनआचारोंकी न्यूनतासेभी हेतु निश्चित नहीं होता परजिनस्थानोंमें इनआचारोंकी प्रवृत्ति संप्रतिहोगी वे इसबातके भेदूहोंगे क्योंकि शास्त्रकाप्रमाण लोकव्यवहारसे और लोकव्यवहारकी प्रमाणता शास्त्रकेवाक्योंसे परस्परदोनोंका सम्बन्ध निर्वचनीयहै-इस्सेप्रत्यक्ष विदितहोताहै कि श्रीमत्परमहंस परिव्राजक विज्ञानेश्वर भट्टारककेभी समय और स्थानमें इनआचारोंकी न्यूनताहोगी और मनुसंहिताकेकथनसे अष्टका या रोहिणीकाभी कुछनियमनहीं निश्चितरहा किंतु केवल पौषमासहीकहाहै और उसकेसाथमें माघमहीनाभी अधिक लेलियाहै पर उस माघमेंभी कुछअष्टका या रोहिणी अथवा कृष्णपक्षकाभी कुछनियम नहींपायाजाता-तथाच(पौषेतुछंदसांकुर्याद्वहिरुत्सर्जनंबुधः।माघशुक्लस्यवाप्राप्तेपूर्वाह्णेप्रथमेहनि) अर्थात्ज्ञानीपुरुष पौषमासमेंबाहर जाकरछंदोंका उत्सर्गकर्मकरे या माघमहीनाका शुक्लपक्ष प्राप्तहोनेपर पहलेदिवस दोपहरसे पूर्वकालमेंकरे यहमाघशुक्ला प्रतिपदा उसअवस्थामें संभवितहै कि जोश्रावणीका उपाकर्म भाद्रपदमें कियाहो॥ देखोजिसश्लोकमूलकी यह अधिकोक्तिहै उस्से और इसमनुसंहिताके प्रमाण भूतश्लोक अनंतरोक्तसे पृथ्वी और आकाशका अंतरहै क्योंकि पूसके सिवाय और कोई अंग इसका और उसका एकतानहीं पासक्ता फिर दोनोंकी समता किसबाजारसे खरीदीजाय इसीहेतुसे शास्त्रोंकी कठिनाई लोकमें प्रसिद्धहै और इसीहेतुसे यहबातभी प्रसिद्धहै कि ऐसे असंभव स्थलोंमें जोकोई ग्रंथिभेदनकरे वहशास्त्रज्ञ विज्ञकहलावे परन्तु यहग्रंथि यद्यपिअतिशयं तुच्छहै तथापि खुलसकना इसका परम दुस्तरहै कदाचित् कोईदुस्तर नहींसमझै तो जिसकी इच्छामेंआवे प्रमाण पूर्वक सुलझावे कुछ निषेधनहींहै-इसके सिवाय जिज्ञासुको यह उचित होताहै कि जहांतक बनिआवे संशय और संदेहोंकी निवृत्ति पर दृष्टिजमीरक्खे दृष्टिके सन्मुख सींकखड़ी करनेसे पहाड़भी ओट होजाताहै उसी सींकको दूर करदेनेसे तद्रूप पहाड़ दिखाई देने लगता है इसीलिये पहलेभी सातवें श्लोककी अधिकोक्तिमें यथावत् निर्णय दृष्टांतों सहित होचुकाहै कि जिस एककामकी कईरीतें ग्रंथांतरोंसे या देशांतरोंसे प्रतीत होतीहों तिनमें अपने आत्मा कहिये मन

बुद्धि चित्त अहंकाररूप चतुष्टय तिसमें जोबात समावे या अच्छी प्रतीतहोवे सोकरे या अपने आत्माको इतनी सामर्थ्य न हो तो अच्छे लोगोंका आचार जो प्रमाणीक सज्जन वर्तावा जहां जैसा करतेहों उसीको आपभी अंगीकारकरे-क्योंकि ग्रंथोंमें जो एकही कामके कईभेदहोजातेहैं तिनकाभी मुख्ययहीहेतुहै कि जो२ऋषि या आचार्य अपने २ समयमें निज २ स्थानोंकी अपेक्षा या अन्यस्थानोंकी अपेक्षा जैसा जहांका शुद्धआचार देखतेहैं तैसाशास्त्रोंमें लिखकर प्रमाण करदेतेहैं इस्से उनसबकी एकता होनी दुस्तर होजातीहै-अष्टकानामकी पर्वदोप्रकारकी लिखीगई उनमेंजोतीनमहीना के तीनअष्टका कहेगये वहतो श्राद्ध विषयमें श्रेष्ठहैं और दूसरे जो प्रत्येक महीनाके दोनोंपक्षमें होतेहैं वे पठनपाठनसे संबंध रखतेहैं क्योंकि उनमें शास्त्रका पढ़नानिषेध कियाहै इससे इस वेदोत्सर्गमें वेही मुख्यहैं और अभिप्रायार्थमें जो कृष्णा अष्टमी कही है सो इसलिये कि कृष्णाअष्टमी सदाही पर्वोंमें प्रसिद्धहै इससे शुक्लपक्षको छोड़कर मुख्यता उसपरली गई और यद्यपि पठन पाठन सम्बन्धी अष्टका प्रत्येक पक्ष में ७।८।९ यह तीनदिनमें होते हैं परन्तु केवल पौषका महीना शास्त्रोक्त होनेसे अष्टमीभी पौषहीकी अंगीकार करनी हुई इस अष्टमीके ग्रहण करनेसे दोनोंप्रकारके अष्टकामें मुख्यता बनीरही-इसके सिवाय रोहिणी नक्षत्र इस्सेभी अधिकश्रेष्ठहै क्योंकि वह मुख्यवचन पूर्वोक्तहै और अष्टका उसका विकल्पार्थ भावसे गौणपक्षहै और मनुजीका प्रमाण जो इसके साथमें लिखागया वह इसके आगे मध्यमहै क्योंकि याज्ञवल्क्य जीकी स्मृति उस्से पीछेहुई है और जो बात पीछेहोती है वह पहलीकी अपेक्षा श्रेष्ठ होती है क्योंकि पहले नियमोंके गुण दोष छांटकर पिछली संसिद्धि होती है परन्तु पिछलेकी उत्तमता परभी पहलेकी गौरवता नहीं मिटसक्ती किंतु उसकी गौरवता इसलिये अधिक बनी रहती है कि उसीकी प्रमाणतासे पिछलाभी प्रमाणमें आसक्ताहै जैसे पिता या पितामह प्रपितामह आदि पुत्रादिकोंके आगे बल पराक्रमसे हीन यद्यपि होजाते अर्थात् पुत्रादिकोंके समान उनसे कोईकाम नहीं चलसक्ता पर पुत्रादिक उन्हींके नाम या कुलग्रामसे प्रमाण पाते हैं (भेद२)(यथाशास्त्रंतुकृत्वैवमुत्सर्गं छंदसांबहिः। विरमेत्पक्षिणींरात्रिंयद्वाप्येकमहर्निशम्॥ अतऊर्ध्वंतुछंदांसिशुक्लेषुनियतः पठेत्। वेदांगानिचसर्वाणिकृष्णपक्षेषुसंपठेत)अर्थात् यह मनुजीका कथनहै कि जैसा इसविषयका कर्मठ शास्त्र होताहो उसकेअनुसार ऊपर कहीहुई रीतिसे इसभांति वेदों का उत्सर्गकिये पीछे पक्षिणी रात्रि मात्र या एकदिन रात्रिमात्र पठन पाठनको थांभ कर बाहर उसी तीर्थमें विश्राम करे जहां उत्सर्ग कियाहो इसके उपरान्त श्रावणमास ताईं जितने शुक्लपक्ष आते जावें उन सबोंमें वेदोंको नियत होकर पढ़े और जितने कृष्णपक्ष आते जावें उन सबोंमें वेदके समस्त अंगोंको अच्छी रीतिसे पढ़े-यह मर्यादे

जो १४१ और १४२ इन दो श्लोकोंमें अधिकोक्ति सहित कहीगई सो केवल वेद केही पढ़नेके लिये कही हैं किंतु और किसी विद्या अथवा शास्त्रके लिये यह बन्धन नहीं है तहां श्रावणीके उपाकर्मसे लेकर ४॥ साढ़ेचार महीने जो १४१में कहे हैं तिन में शुक्ल या कृष्णपक्षका कुछ भेद नहीं है और न यह भेदहै कि वेदको जुदापढ़े और उसके अंगोंको भिन्न दिवसोंमें पढ़े किंतु साधारण भावसे साढ़ेचार महीने ताईं वेदका पढ़ना कहाहै तिसपीछे इधरके शेष महीनाओंमें पक्ष भेद और पाठभेदभी कियाहै इसप्रकारसे पूरे १२ महीनोंका हिसाव समझा दिया-और पक्षिणीरात्रि उसे कहते हैं कि वीचमें एकरात्रि और पहला पिछला दोनों दिवस उसके साथमें गिनलिये जायँ-तथोक्तम्(आगामिवर्त्तमानाहर्युक्तायांनिशिपक्षिणी)और पहला दिवस वही कहलाता है जिसमें पूर्वोक्त उत्सर्ग कर्मकियाहो ऐसेहीओर कामोंमेंभी जहांकहीं पक्षिणीरात्रिका चर्चा हो यही लक्षण जानो यद्यपि वेदोंके अध्ययन करनेवाले वर्त्तमानमें भी वहुतेरे हैं पर इस रीतिसे पढ़नेवाले भाव कहीं मिलसक्तेहैं और यहभी है कि जो इसी रीति से संप्रति कोई वेदोंका संग्रह करना चाहे तो अचंभा नहीं कि इस वन्धनमें ढोलसे भी खालजाती रहे परन्तु इसमें कुछ संदेह नहीं कि इसबन्धनके नियमों सहित पढ़ने से उस वेदका यह प्रभाव होताथा कि जो २ मंत्र जिसविषयका प्रसिद्ध है अपने कार्य को तत्काल प्रकट करताथा जैसे तत्काल अग्नि या जलका आवाहनसे उत्पन्न हो जाना आदि १४२॥ अब वेदके अनध्याय कहते हैं॥

त्र्यहंप्रेतेष्वनध्यायःशिष्यर्त्विग्गुरुबंधुषु। उपाकर्मणिचोत्सर्गेस्वशाखाश्रोत्रियेतथा १४३॥

ऐ०—ऊपरके श्लोकोंमें कहीहुई रीतिसे वेदका अध्ययन करते या करातेहुये पुरुषों का शिष्य ऋत्विक् गुरु वन्धु इनमेंसे कोई मृतक होजावे तो तीनदिनका अनध्याय करे- और पूर्वोक्त उपाकर्म जो १४१ श्लोक अनुसार किया हो तोभी तीनदिवसका अनध्याय करे या पूर्वोक्त उत्सर्गकर्म जो १४२ श्लोक अनुसार किया हो तौभी तीन दिनतक पढ़ना वंद राखे-तैसेही वेदकी जो शाखा आप पढ़ता हो वही शाखा कोई दूसराभी पढ़ता हो और वह मरजावे तौभी तीनदिन पढ़ना वंदराखे १४३॥

अधि०—इस ऐक्यार्थमें उत्सर्ग कर्म परभी तीन दिनका अनध्याय कहाहै और १४२ श्लोककी अधिकोक्तिमें उत्सर्ग कर्मपर जो मनुजीके दोश्लोक दूसरे भेदमें लिखे हैं उनमें उत्सर्गके पीछे जो पक्षिणीरात्रि या एकही दिनरात्रि मात्रका विश्राम वा अनध्याय कहाहै यद्यपि इसमें उससे अन्तरभी है क्योंकि यहां तीनदिवस निषेध किये हैं परन्तु इन दोनों रीतोंमें विकल्पहै अर्थात् चाहे इसरीतिसे तीनदिवस मानो चाहे उस रीतिके अनुसार जैसा अपने मन बुद्धिमें समावे सोकरो कुछ विरोध नहीं है किंतु अपना अपना सम्मतहै १४३॥

सन्ध्यागर्जितनिर्घातभूकंपोल्कानिपातने । समाप्यवेदंद्युनिशमारण्यकमधीत्यच १४४ ॥

ऐ०—द्युनिश अर्थात् एक दिनरात भरका अनध्याय इतनी बातोंमें होताहै एक तो सन्ध्यासमय मेघके गर्जनमें १ निर्घात अर्थात् आकाशमें वज्रपात आदि उत्पात का शब्द होनेमें २ भूकम्पके होनेमें ३ उल्कातारा के गिरनेमें ४ वेदकी समाप्ति अर्थात् मन्त्र और ब्राह्मण जो वेदमें प्रसिद्धहैं तिनके पूरे होनेमें ५ आरण्यक अर्थात् काण्व शाखा और माध्यन्दिनीय शाखा संबन्धी ब्राह्मण विशेष जो वेदका अंगहै, तिसको पढ़करभी एकदिन रात्रिका अनध्याय६ और आरण्यक (अध्याय) कोभी कहते हैं ऊपर जो सन्ध्यामें गर्जना लिखा है वह संध्या प्रातःकाल और सायंकाल दोनों की संभवितहै १४४ ॥

पंचदश्यांचतुर्दश्यामष्टम्यांराहुसूतके । ऋतुसंधिषुभुक्त्वावाश्राद्धिकंप्रतिगृह्यच १४५ ॥

ऐ०—पंचदशी १५ अमावास्या और पूर्णिमाभी चतुर्दशी १४ अष्टमी ८ राहु सूतक अर्थात् सूर्य और चन्द्रमाके ग्रहणका दिवस और ऋतुकी संधि अर्थात् दो दो मास में जो ऋतुकाल पलटताहै तिसकी संधिके दोदिन होते हैं किंतु एक तो व्यतीत ऋतु के मासांतकी अमावास्या ३० और आगंतुक ऋतुके प्रारम्भकी प्रतिपदा १ तिनमें अमावास्या ऊपरभी कहचुके हैं शेष एक प्रतिपदाका निषेध यहां पायागया और श्राद्धका निमंत्रण भोजन करके या श्राद्धके नामका कुछप्रतिग्रह लेकर इन सभी बातों में एक एक दिन रात्रिका अनध्याय करना उचितहै एक एक दिनरात्रि यह पूर्वश्लोक मेंसे द्युनिश शब्दका अनुकर्ष हुआहै १४५ ॥

भवि०— राहुसूतकमध्ये स्मृत्यंतरमें तीन दिवस निषेधहैं तथाच (त्र्यहंनकीर्त्तयेद्ब्रह्मराज्ञोराहोश्चसूतके) अर्थात् राजाके सूतक होनेमें और राहुकेभी सूतकमें तीन दिन ताईं ब्रह्म जो वेदहै ताको कीर्त्तन नहीं करे और ऊपर एकही दिन रातका निषेध लिखाहै तहां यह कारणहै कि एक दिवस साधारण राहु सूतकमें लियाहै और तीन दिवसका निषेध ग्रस्तास्त और ग्रस्तोदय और सर्वग्रासमें लिया है और प्रतिपदा का अनध्याय केवल दोदो मास पीछेकी प्रतिपदामें शास्त्रके अनुसार पायागया और लोकमें बहुधा जो पाक्षिक प्रतिपदाका अनध्याय किया जाताहै इसका कोई निषेध चिह्न शास्त्रमें नहीं पायागया इस्से संभवितहै कि भेड़ा चालि पड़ गई होगी और श्राद्ध विषयके भोजन वा प्रतिग्रह मध्ये जो एक दिवसका निषेधहै सो एकोद्दिष्टश्राद्ध के सिवाय अन्य श्राद्धमें जानो क्योंकि एकोद्दिष्टके लिये यह स्मृत्यंतर वाक्यहै कि (प्रतिगृह्यद्विजोविद्वानेकोद्दिष्टस्यकेतनम् त्र्यहंनकीर्त्तयेद्ब्रह्मेति) अर्थात् विद्यावान् द्विजोत्तम एकोद्दिष्ट श्राद्धका केतन अर्थात् निमन्त्रण अथवा कुछ प्रतिग्रह लेकर तीन दिवस ब्रह्मका कीर्त्तन नहीं करे १४५ ॥

पशुमंडूकनकुलश्वाहिमार्जारमूषकैः। कृतेंतरेत्वहोरात्रंशक्रपातेतथोच्छ्रये १४६ ॥

ऐ०-पशु चतुष्पद्-मंडूकमेढुक-नकुल नेवला-श्वाकूकुर-अहि सर्प-मार्जार विलाव-मूषक-मूसा-इन जीवोंमेंसे कोई जीव पढ़ने पढ़ाने वालोके बीचमें निकलजावे तो एक दिन रात्रि ताईं अनध्याय होवे-तैसेही शक्रपात और उच्छ्रय मेंभी एक दिन रात्रिका अनध्याय-यहां शक्रपातके शब्दसे शक्रध्वजनाम उत्सव जो अनावृष्टिमें वर्षाके हेतुसे राजालोग इन्द्रध्वजा खड़ी करके किया करते हैं तिसके विसर्जनका दिवस और उच्छ्रयसे उसके खड़ी करनेका दिवस संभवितहै १४६ ॥

भधि०-अनध्यायोंकेनिमित्त जो बहुधा यहाँपर कईश्लोकोंमें कहे हैं तिनमें जहाँ२ एक दिनरात्रिकानिषेधहै तहाँ जिससमयसे कोईनिमित्त उत्पन्नहुआहो उस समयसे लेकर दूसरेदिवस उसीसमयताईं उसनिमित्तका दोषसम्भवितहै उस्से आगेनहीं-और गौतमजीने जो इसविषयमें तीनदिवस और कुछविशेषता कहीहैकि (श्वानकुलसर्पमंडूकमार्जाराणांत्र्यहमुपवासोविप्रवासश्च)अर्थात् कूकुर नेवला साँप मेढुक बिलाई इन्होंके बीचमें आजानेसे तीनदिनताईं अनध्याय और उपवासकहिये निराहार और विप्रवासकहिये वस्तीकेबाहर किसीतीर्थ देवस्थानमें निवासकरे सो यहविशेषता केवल उसकेलिये है कि जिसनेउसीदिन प्रथमारंभकियाहो उसमें निमित्तहोजावे १४६॥

अब आगे सैंतीस ३७ अनध्याय तात्कालिकहैं सो ४ चारश्लोकोंमें कहतेहैं ॥

श्वक्रोष्टुगर्दभोलूकसामबाणार्त्तनिःस्वने। अमेध्यशवशूद्रान्त्यश्मशानपतितांतिके १४७ ॥

ऐ०-श्वा कूकुर-क्रोष्टा शृगाल-गर्दभ गदहा-उलूक घुघुआ इनकाशब्द सुनाईदेनेमें और साम अर्थात् सामवेदकागान सुनिपड़नेमें-बाणशब्दसे यहाँ बाँसकातडतड़ाहट होनेमें-आर्त्तकहिये किसी दुःखीजीवका चिल्लाहटसुनिपड़नेमें उतनीदेरताईं पढ़ना बंदकरे-और अमेध्य अर्थात् कोई अशुचिवस्तु या शव कहिये मृतक या शूद्र जो अतिनीचहो या श्मशान चिताभूमि या पतित कहिये चांडाल इनके समीप होने में उतनीदेरताईं अनध्यायकरैजबतक इनकी समीपतारहे १४७ ॥

भधि०-गौतमजीने कुछ और भी कहे हैं यथा (वेणुवीणामृदंगगंत्र्यार्त्तशब्देष्वनध्यायः) अर्थात् वेणुबांस-वीणानाम का बाजा-मृदंग-गंत्रीगाड़ी-आर्त्तपीड़ावान् इनके शब्दोंमें तावत्काल अनध्यायहो १४७ ॥

देशेऽशुचावात्मनिचाविद्युत्स्तनितसंप्लवे। भुक्त्वार्द्रपाणिरंभोतरर्द्धरात्रेतिमारुते १४८ ॥

ए०-अशुद्धस्थानमें-अपनेशरीरकी अशुद्धतामें-विद्युत्संप्लवमें अर्थात् वारम्वार बिजलीके चमकनेमें-स्तनितसंप्लवमें अर्थात् वारम्वार मेघोंके गर्जनेमें-तावत्कालिक अनध्यायकरे और भोजनकरके जबतक जूठे हाथ रहें तबतक-और जबतक जलके

भीतर रहे तबतक-और अर्द्धरात्रिके समय जो महानिशीथ काल होता है तिसमें-और अतिभयानक झंझावायुके चलनेमें भी १४८ ॥

पांशुप्रवर्षेदिग्दाहेसंध्यानीहारभीतिपु। धावत:पूतिगंधेचशिष्टेचगृहमागते १४९ ॥

ऐ०-उत्पातरूप अंधकारकी धूलिवर्षाके समय-और दिग्दाहजो ज्वलती हुईसी दिशायें देख पड़तीहैं जितनीदेर ऐसा लक्षण रहे तबतक और दोनों संध्याओंके समय तक-और नीहारकहिये कुहर जो बादलीछँटकर धुआँसा छाय जाताहै जितनीदेर वह रहे तबतक-और भीति जो चोर उचक्का वा राजदूत आदिसे अचानक आनिपड़तीहैं जितनीदेर वहरहैं तबतक अनध्यायकरे और शीघ्रतासे दौड़ते हुये भी उतनी देरतक अनध्यायराखे जबतक दौड़े या अतिशीघ्रचलै-पूतिगंधमें भी अर्थात् जबतक कोई अशुचि दुर्गंधि कहीसे मद्यादिवस्तुओंकी वायुके संयोगसे आनेलगै तबतक भी-और शिष्ट अर्थात् श्रोत्रिय आदिकोईसत्पुरुप अपनेघर आवे या जहाँ अध्ययन का स्थानहो तहाँ आजावे तो जितनीदेर उसकी आज्ञा या सत्कारका पालनकरना हो उतनीदेरतक अध्ययनको विलम्बितराखे १४९ ॥

खरोष्ट्रयानहस्त्यश्वनौवृक्षेरिणरोहणे। सप्तत्रिंशदनध्यायानेतांस्तात्कालिकान्विदुः १५० ॥

ऐ०-खरगर्दभ औरखच्चर, उष्ट्रऊँट, यानरथगाड़ी आदि, हाथी, घोड़ा, नौका, वृक्ष, उरिणं अर्थात् ऊपर भूमि या मरु भूमि यद्वा शून्य स्थानकोभी कहतेहैं-इनमेंसे किसी पर आरोहण होते समय उतनीदेरतक अनध्यायकरे इतने सैंतीस ३७ अनध्याय तात्कालिककहेजातेहैं इसीहेतुसे कि यह केवल उतनेही कालतक होतेहैं-और इनके सिवाय और भी बहुतेरे मनुजीने सोतेहुये या पैर पसारेहुये इत्यादिलक्षण कहेहैं पर कुछ लिखनेकी आवश्यकतानहीं पाई जातीहै १५० ॥

इसप्रकार अनध्यायोंको कहा अब फेर उन्ही स्नातकव्रतोंको
कहते हैं जिनका चर्चा बड़ी दूरसे चला आताहै ॥

देवर्त्विक्स्नातकाचार्यराज्ञांछायांपरस्त्रियाः। नाक्रामेद्रक्तविण्मूत्रष्ठीवनोद्वर्त्तनादिच १५१ ॥

ऐ०-देवता ऋत्विक् स्नातक आचार्य राजा परस्त्री इन्हों की छायाको जानबूझ कर दबावे नहीं और उलाँघैभी नहीं और रक्त विष्ठा मूत्र ष्ठीवनकहिये खँखारथूक आदि यहां आदिशब्द से वमन कुल्ला इत्यादि जोड़लेना उद्वर्त्तन कहिये उबटनेका मैल तिसको आदिलेकर और भी अनेक भांतिके मैल स्नान धोवन आदि जोलोक में प्रसिद्धहैं इनकोभी पैरसे दावे या उलांघे नहीं १५१ ॥

अधि०-इस ऐक्यार्थके वीचमें जो जान बूझकर यह विशेषालिखा है सो मनुजीके कथन में से लियाहै इसको इस सारेही श्लोक में रक्तादिकोंसेभी सम्बन्धित करलेना अर्थात् इस श्लोकमें निषेधकरीहुई छाया या रक्तादिकोंके उलांघने वा दबानेका

दोष उस अवस्था में नहींहैं कि जो धोखेमें विना जाने ऐसा होजाय १५१ ॥

विप्राहिक्षत्रियात्मानोनावज्ञेयाःकदाचन। आमृत्योःश्रियमाकांक्षेन्नकंचिन्मर्मणिस्पृशेत् १५२॥

ऐ०—हि-अवश्य भावसे क्षत्रियात्मानोविप्राः अर्थात् जो ब्राह्मण क्षत्रियात्मा किंतु क्षत्रियोंके अधिकारी कामदार उनके आत्मा कहिये शरीरके समान प्रियहों यद्वा आत्माकहिये मन या बुद्धि जिसमें एकतावानूहों किन्तुमंत्रादि संमतिदेनेमें प्रमाणीक हों वे कभीभी अवज्ञाकिन्तु अपमान करिवेयोग्य नहींहैं-अथवा दूसरायह अर्थहैकि विप्रबहुश्रुत और अहिसर्प और क्षत्रिय-राजा औरक्षत्रियात्मा कहिये उनकेमंत्रीआदि ये सब कदाचनभी अपमान करिवेयोग्य नहीं हैं-आमृत्योःअपनी मृत्युकाल पर्यंत श्रियं आकांक्षेत् लक्ष्मीसंचय करनेकी आकांक्षाकरे परन्तुकिसीको भी मर्ममें स्पर्श नहींकरे अर्थात् किसीका हृदयऐसा नहींदुखावे जिससे वहलौटकर अपनेही विनाश करनेके उपायमें उद्यत होजावे १५२ ॥

दूरादुच्छिष्टविण्मूत्रपादांभांसिसमुत्सृजेत्। श्रुतिस्मृत्युदितंसम्यङ्नित्यमाचारमाचरेत् १५३ ॥

ऐ०—दूरात् निवासस्थानसे दूर भोजनकी जूठ और विष्ठा और मूत्र और पैरधोवनाजलइन्हें फेंकवादे-श्रुतिवेद-स्मृति धर्मशास्त्र इनदोनों में कहाहुआ आचारसम्यक् रीतिसे नित्यंप्रति आचरणकरे १५३ ॥

मधि०—ऊपर कहेहुये उच्छिष्ट विष्ठादिकेवल चारमलोंके निदर्शनमात्रसे, और भी सारेही मलोंकादूर फेंकवादेना उचितहै क्योंकि मलोंकी समीपतासे विकृतहुई वायु जो सड़ाँइंध आदि दुर्गंधिको कपालमें प्रवेशकरदेती है उससे वैद्यविद्याके सिद्धांतसे नानारोगों की उत्पत्ति होजाती और बुद्धिकीतीव्रता कुंठितहोजाती और बारम्बार उसपर दृष्टिपड़नेसे चक्षुभीस्थूल होजातेहैं और देवादिसत्सृष्टिके आराधन सिद्धांत सेकोई देव या सज्जन उसस्थानमें आतानहीं या दैवयोगसे आजाता है तो उस मलीनताके ध्यानसे शीघ्र चलाजाता और फिर झांकनेकी इच्छानहीं करताहै इसी लिये यहमर्यादा स्थान शुद्धिपर आरूढ़ है-तथाचाहंकश्चिद्विषये (सर्वकर्मपरित्यज्यकेवलंघटिकाद्वयम् स्वकीयंपरकीयंवानिजस्थानंसुशुद्धयेत्-नित्यमेतत्प्रकुर्वीतशरीरेणधनेनवा शुद्धस्थानेवसंतीहदेवर्षिपितृमानवाः) अर्थात् गृहस्थीकेआवश्यकसबकामोंकोछोडकर केवल दो घटिकामात्रके समयतक चाहे अपनाहो या बिरानाहो परजिस स्थानमें जिसका निज निवासहोवे उसस्थानको अच्छीभाँतिसे शुद्धकरवावे-इतनायह दो घटिकामात्रका आयास नित्यंप्रति चाहे शरीरसे या धनसेकरे परकरनेमें प्रकर्षता की आवश्यकतासे आलस्य वा उपेक्षा नहींराखे क्योंकि इससंसारमें जो स्थान शुद्ध और निर्मल देखपड़ता है उसमें देवता वा ऋषि वा पितर और सज्जन मनुष्यभी किसीहेतुसे आनिकर कुछदेरतक वास किंतु विश्रामलेतेहैं-ऊपर दोघटिका जो लिखी

हैं सो निरन्तर नित्यंप्रति करने में कही हैं सो यह थोड़ेसे थोडाकाल निर्मलता में इसीलिये नियत किया है कि जो कदाचित् किसीहेतुसे कोईदिनका अंतरभी पड़जावे तो फिर जिसदिन उसकामका अवसरमिले तिसदिन उनव्यतीत दिवसोंका लेखा जोड़कर उतना आयास कियाजावे अर्थात् जो एकहीदिनकाअंतर हुआहो तो तीसरे दिनके अवकाश अवसरमें चारघड़ीका आयासकियाजावे ऐसेही जो दोदिनका अंतर हुआहो तो चौथेदिनमें छःघटिका आयास कियाजावे इसीप्रकारचाहे दैवयोगसे एक पखवाड़े वा महीनेकाभी अंतर हुआहो तो उनसबका लेखा जोड़कर जितने प्रहर होतेहों उतने प्रहरों के आयासमें यहनियम नहीं है कि वहसब एकही दिनमें किया जावे किन्तु कर्त्ताकी इच्छा और अवकाशपर आरूढ़ है कि वह चाहे तितने दिनों पर फैलादेवेपर निरन्तर उसलेखे में न्यूनता नहीं होनेदे-शरीर से या धनसे जो लिखा है तहाँ जो निर्द्धनहो वह शरीरसे और धनवान्हो उसकेदास या वेतनिक जो कुछकरें सो धनसेहै-आलस्य या उपेक्षा जो लिखीहै सो आलस्यतो शरीरसेकरने वालेकी अपेक्षामें कहाहै और उपेक्षा धनवान्के पक्षमेंकहीहै इसलियेकि बहुधाधन-पात्रभी ऐसेमलीन प्रकृति होतेहैं जिनके दासादिकोंकी बहुताइतपर भी स्थान शुद्धि नहीं होसक्ती सो यह एकस्वामीकी उपेक्षा प्रबल हेतुहै किन्तु जिसघरका स्वामी इस बातमें अपेक्षा पूर्वक ध्यानरखकर दासोंपर प्रेरणाबनाये रखताहै उसघरमें मलीनता का निवास नहींहोसक्ता-अन्यथा ऐसेदास बड़ेउत्तम प्रारब्धी धनपात्रों वा अमीरोंके समीप हुआकरते वा उनके प्रारब्धोंके अनुकूल स्वतःआमिलतेहैं जो स्वामीकी उ-दासीन प्रकृतिसे विपरीतभी शुभचिन्तकताके अनुकूल यद्वास्वकीयस्वच्छस्वभावके हेतुसे मलीनता नहींदेख सक्के १५३ ॥

गोब्राह्मणानलान्नानिनोच्छिष्टोनपदास्पृशेत् । ननिंदाताडनेकुर्यात्पुत्रंशिष्यंचताडयेत् १५४ ॥

ऐ०—गऊ ब्राह्मण अग्नि अन्नजो संसिद्ध भोजनयोग्य कोई वस्तुहो इनको आप जूठेहो तो नहींछूवे या विनाजूठेभी लातसे न छूवे-पुत्र और शिष्यकी शिक्षा हेतुसे ताड़नाकरे और इनकेयोग्य ताड़न करनेवालेकी निन्दाभी न करे १५४ ॥

अधि०—ऊपर निषेधकियेहुओंको कदाचित् भूलचूकमें जूठे या लातसेछूलेवे तो मनुजीकाकहा प्रायश्चित्तकरना उचितहै तथाच (स्पृष्ट्वैतानशुचिर्नित्यमद्भिःप्राणानुप स्पृशेत् । गात्राणिचैवसर्वाणिनाभिंपाणितलेनतु) अर्थात्-इतनोंको जूठे या लातसे छूकर आप नित्यअशुचिहोजाताहै इसलिये अपनेशरीरकी शुद्धिकरनेकेलिये शुद्ध जलोंसे प्राणोंको और सबगात्रोंकोभी स्पर्शकरे और नाभिको हाथमें जलरक्खेहुये हँथेलेसेकुछदेरतक स्पर्शराखे-ताड़नविषय यद्यपि यहबात सामान्यलिखीहै पर इसमें अधिकाविवेककी आवश्यकताहै क्योंकि पुत्र और शिष्य ये अधिकताड़नासे भी बिगड़

जाते और अधिक लाडप्यारसेभी शिरपरचढजाते हैं इसलिये इनकीशिक्षा और सौशील्यकी परिसिद्धिकेहेतुसे ताड़न और प्यारभी यहदोनो एकतुल्यबराबर कॉटेकी तौलसे करनेउचितहै सो वहताडनभी जबतक केवलनेत्रोकीताडनासे कामदेसक्ताहो तबतक और कोईरीतिनही और वह प्यारभी अतिबाल्यअवस्थासे जोकुछ किया जाय केवल शिक्षा वा सौशील्यके आश्रयभूत होकरहो-योग्य ताड़नकरनेवाले की निन्दाकानिषेध जोकियाहै सो केवल उसीअवस्थामे कि जो ताड़ना उचितरीतिकीहो या पुत्र वा शिष्यादिक अपने पिता और गुरुओका सामनाभी करतेहो अन्यथा जहाँ जैसा सम्भवहो १५४॥

कर्मणामनसावाचायत्नाद्धर्मंसमाचरेत्। अस्वर्ग्यंलोकविद्विष्टंधर्ममप्याचरेन्नतु १५५॥

भक्ष०-कर्मसे मनसे बचनसे यत्नसे धर्मकोसम्यक् आचरै-अस्वर्ग्यलोक विद्विष्ट धर्मकोभी नही आचरै १५५॥

भभि०-कर्मकहिये शरीरद्वाराकरनेसे अपनीशक्तिकेअनुसार जोकुछ होसके धर्म का आचारकरै-मनसेभी धर्मकाध्यानकहिये शोचविचार लगारक्खै-वचनसेभी उसकी प्रशंसा वा कर्त्तव्यता वा न्यूनाधिक्य वा शुभाशुभका कथन उच्चारणकरतारहै इन तीनोप्रकारोसे यत्नपूर्वक जहातकबनिआवै धर्मका समाचारकरै-परन्तु अस्वर्ग्यकहिये जिसधर्मकेआचरणकरनेसे प्रत्यक्षभावमें स्वर्गकामिलना नहींप्रतीतहोताहो अथवा लोकविद्विष्टकहिये लोकानिदितहो किन्तु जिसधर्मका आचारकरनेसे लोकनिन्दाहो-नेकीशकाहो ऐसाधर्मभी यद्यपि शास्त्रविहितहो पर उसकाआचार कदाचित्भी नहीं करै (दृष्टात) जैसा सतीकाहोना यद्यपि शास्त्रविहितहै और किसी कालातरमे उसकी प्रवृत्तिभी अधिकथी परन्तु प्रत्यक्षभावसे उसमे कोईलक्षण स्वर्गप्राप्तिकाभी नही पायाजाता क्योकि बहुधा ऋषीश्वरोने पीछे २ अनेकस्मृतियोमे निषेधभी किया है जो स्वर्ग प्राप्तिका हेतु होता तो ऐसे त्रिकालज्ञ दूरदर्शी उसका निषेध क्यो करते और यथार्थसे लोकमें भी वहबात निंदितहै जैसा १३८ के श्लोकमे पीछे वर्णन हो चुकाहै ऐसेही और भी अनेकबाते अपनी बुद्धिसे समझी जायँ १५५॥

मातृपित्रतिथिभ्रातृजामिसम्बन्धिमातुलैः। वृद्धबालातुराचार्यवैद्यसंश्रितबांधवैः १५६॥
ऋत्विक्पुरोहितापत्यभार्यादाससनाभिभिः। विवादंवर्जयित्वातुसर्वान्लोकान्जयेद्गृही १५७॥

भक्ष०-सहद्वयो माता, पिता, अतिथि, भ्राता, जामय ,सम्बन्धी,मामाओसे-वृद्ध, बालक, आतुर-आचार्य-वैद्य-संश्रित-बाधवोसे १५६ ऋत्विक्-पुरोहित-अपत्य-भार्या-सनाभियोसे-विवादको वर्जितकरिकेभी सबलोकोको गृहस्थी जीतै १५७॥

भाभि० सहद्वयो -यहाँ (माता) के नामसे चाची, ताई, फूआ, मामी, मावसी आदि

भी अपेक्षित हैं-(पिता) केनामसे चाचा, ताऊ, फूफा, मावसाआदिभी सम्बन्धित हैं-(भातिथि) अभ्यागत बटोही जोकोईजातिकाहो जिस्सेअपनी चिन्हारभी नहींहै-(भ्राता) शब्दसे चचेरे ममेरेआदि जो कोईहों-(जामी) शब्दसे नवोढ़ा वहू वेटीआदि जिनके पतिविद्यमानहैं कोईहों-(सम्बन्धी)जिनसे विवाहसम्बन्ध हालमेंहुयेहों-(मामा)केनामसे सगे और चचेरेआदि सब अपेक्षितहैं-(वृद्ध) जो अपनीइन्द्रियों और अंगोंसेशिथिलहो चाहै अपना या विरानाकोईहो-(बालक) जो षोडश१६वर्ष अवस्थासे नीचाचाहै अपना या विरानाकोईहो-(आतुर) शब्दसेरोगी और कातर जिसकोडरपोंका कहतेहैं-(आचार्य) जो विद्या या ज्ञानदेवै या कोईसी जीविकावृत्ति करनीसिखलावे-(वैद्य) जो विद्वान् किसीविद्यामें निपुणहो या केवल चिकित्सामें तत्परहो-(संश्रित) जो अपनेआश्रय भूतरहकर जीविकाआदिसे निर्वाहकरताहो-(बांधव) शब्दसे पितापक्ष और मातापक्षकेभी गोत्रीलोग चाहै कोईहों १५६ (ऋत्विक्) यज्ञादि कर्म करवानेवाला(पुरोहित) प्रसिद्धहै पर अपना या अपने नातेदारका भी हो (अपत्य) पुत्रादि संतानें चाहै अपनी या अपने किसी गोत्री आदिकीभी हों (भार्या) वामांगी (दास) कर्मकार सेवक चाहै अपने या अपने संबंधीके भी हों (सनाभि) कहिये सहोदर चाहै भाईहो या बहन-इन ऊर्ध्वोक्त सबोंसे विवादको छोड़कर गृहस्थी सबलोकोंको जीतलेताहै १५७॥

भधि०-लोकशब्द प्रजापति आदि लोकोंका बाचक और संसारके मनुष्योंका भी वाचकहै किन्तु लोके भवालोकाः इसी लोक शब्दका अपभ्रंश होनेसे मनुष्योंको लोगकहा करते हैं-संसारमें आकर जो कोई गृहस्थी प्रजापति आदि लोक पालोंके लोकों को जीता चाहै अर्थात् अप्रतिहताज्ञ होकर उन लोकोंकी रचना में ईश्वरकी ईश्वरता मध्ये सैर विहारकरना चाहै या इसीसंसारके सम्पूर्ण मनुष्योंको अपनेवशकरना चाहै तो इन कहेहुये मनुष्यों से वाणी कलह कदाचित् भी नहोनेदे और नहोनेदेने का यह सिद्धांतहै कि जब उनके कुछेक अनुचित वचनको भी सुनिकर आप मौनकर जावेगा तो आगेको उत्तर प्रत्युत्तर तक दशा नहीं पहुँचेगी और पीछे वेहीलोग आप अपने मनमें संकुचित होजावेंगे वरन वेही संकुचित हुये वशीभूत बनेरहकर किसीभीर पर सहायता करनेकी अभिलाष अपने आपपैदा करेंगे इसहेतुसे सारालोक अपनाहितू सादिखाईदेवेगा १५६।१५७॥

पंचपिंडानजुद्धृत्यनस्नायात्परवारिषु। स्नायान्नदीदेवखातह्रदप्रस्रवणेषुच १५८॥

अक्ष०-(पांचपिंडों) को उद्धारनकरके पराये जलोंमें स्नान नहीं करे-स्नान करेनदी में देवखातमें ह्रदमें प्रस्रवणमें १५८॥

अभि०-परायेजल उन्हें कहते हैं कि जो जलाशय बनाकर किसी देवता के नाम से या सारे संसारके नामसे नहींछोड़े गयेहों अर्थात् किसीनेकोई जलाशय ठेठअपने

घरके या अपने सारे गोत्री लोगोकी आरामके लिये अपने स्थानकेआगे या अपनी बगीची फुलवाड़ी आदि किसीजगहबनारक्खाहो जिनमे सबलोगोकोन्हानेका अधिकार नहींहै उनमें जो कोई दैवयोगसे स्नानकरनाचाहै तो पहलेपांच पिडउद्धार करलेवे तब स्नानकरै-और (पिंड)शब्दका अर्थ एकग्रासमात्र अन्न जो मुखमें एकबार धराजाय और मुरगाके अंडामात्रकोभी ग्रासकहते हे-और उसीकेउपलक्षणसे मुट्ठी मात्र अन्न जो एक हाथ के वकोटे मे आजावे-और एक आदमी के पूरे आहार को भी पिड कहते है-और दोनों हाथमे जितनी गीली मट्टी आजावे उतने गोले को भी एक पिड कहते हैं-यहांपर इन सभी प्रकार के पिडोसे अपेक्षा है अर्थात् अवसर के अनुसार जहा जैसे (पिंड) का संभव हो उसी प्रकार के पांच पिंड उद्धार करै अर्थात् देदेवे (वा) निकाले तब स्नानकरे सो यह प्रकार रोज रोज के स्नान मध्ये किसीकाल में बडी सी आवश्यकता ऊपर कहाहै-(अन्यथा) जो नैत्तिक स्नानका प्रकार मुख्यभाव से होता है सो यही है कि नदी जो अबाध अर्थात् किसीकी रोक टोक से रहित प्रवाह वाली हो या (देवखात) कहिये देव निर्मित पुष्कर आदि तीर्थ या (ह्रद) अर्थात् जलप्रबाह के तीव्र अभिघात से स्वयंभूत अतिनिम्न प्रदेश-जो जल से पूरित हो जिसको लौकिक भाषामें झील और तालाव भी कहतेहै या (प्रस्रवण) जो पर्वतआदि उच्चस्थान से बहता हुआ जल झरना प्रसिद्ध है इन्हो मे स्नानकिया करे तो पाच पिडों के उद्धारकरने की आवश्यकता नही है-और उनमे भी पिडो के उद्धार करनेकी आवश्यकता विशेष नहीं है जो जलाशय किसीठठ अपने आत्मीय भ्रात मित्रादिक ने बनाया और स्वकीय भावसे स्नानादि करने की आज्ञादेरक्खी हो १५८॥

अधि०—कई प्रकार के पिंड कहने का यह हेतुहै कि स्नान करनेवाला मनुष्य जैसा हो तैसे प्रकार का पिड उद्धार करै सो (उद्धार) का अर्थ देना और निकालना इनदोनो पर आरूढ है अर्थात् जो स्नानवाला राजा वा अमीर हो तो पाच पिड आहारमात्र किंतु पांचखुराके उसजलाशयवाले वा उसकेसमीपियो वा चाहे जिस किसीको उचित समुझकर भिन्न २ वर्त्ता देवें (अथवा) स्नानकर्त्ता जो सामान्य होवै तो निज शक्तिके अनुसार कुक्कुटाड प्रमाणके पिडसे पांचपिड मात्र कुछ उत्तम या मध्यम वस्तु देवें या पाच मुट्ठी मात्र कुछ अन्न अथवा पांच मुख ग्रासमात्रही कुछ वस्तु देदेवें तब स्नान करें (जो) स्नान कर्त्ता इतना देनेकी भी शक्ति नही रखता हो वह उस जलाशय मे से पांच पिंड मट्टीकेही काढ़कर बाहररखदेवे जिस्से वह जलाशय मट्टी से भरने नहीं पावे जहा कोई ऐसा जलाशय होवे जिस्से मट्टी के पिडभी निकलनेकी सभवता नहीं हो (दृष्टांत) जैसे कूप या बावड़ी आदि हो तहा केवल उनके ऊपरकी कीचड़जो अन्य लोगो की धोवामांजी से जमरही हो उसकोही धोडाले या उस जलाशय पर

दूसरा कुण्ड जो गदीले पानी या कीचड़से भराहो उसकोही निर्मल करदेवे या उस कुण्ड में मनों कीचड़ भरीहोवे तो केवल पांच पिंडमात्र किन्तु पांचलोंदे उसमें से निकालकरपीछे स्नान करे तव उस जलाशय के स्नान भारसे उद्धार होवे-क्या सुन्दरसुगमरीति है कि जो पांच २ पिंड दश आदमी निकालेंगे तो पचास लोंदा माटी उसमें से विना मजूरी दिये निकलजावेगी और इधर स्नानवालाभी विना दाम खर्चे अपने ऋण से उद्धार होगया-स्नानके उपलक्षण भावसे जहांकेवल हाथ पैरोंआदि शौचकाही कामहो तहां भी पहले या पीछेही दो लोटा जलकाढ़कर जलाशय का तट धोडाले तव उस जलकाव्यय करने के ऋणसे उद्धार होवे-क्योंकि (तटशुद्धि) आदि के विषयमें वे जलाशयभी परसंबंधी हैं कि जो ठेठकर अपनेनहीं किन्तु देवताके नाम से या सब लोगों के वर्त्तावा के नामसे किसी ने वनाकर छोड़दिये हों यद्वा छुटेहुयेप्राचीन चलेआतेहों कुछ यह नियम नहीं है कि उनके कर्त्ता का नाम प्रसिद्ध है या नहीं अर्थात् इसप्रकार के जलाशयों में जैसे जलपीनेका सबको अधिकार है तैसेही उनकी रक्षा और तटशुद्धि आदिमें भी सबके ऊपर ऋणभार है-पांच पिंडों में जहां अन्न देना कहा वह केवल एक निदर्शन है किन्तु चाहें अन्न दे या उसके पलटे कोई और वस्तु यथायोग्य या दाम भी देदेवे तो वही वात है १५८॥

परशय्यासनोद्यानगृहयानानिवर्जयेत् । अदत्तान्यग्निहीनस्यनान्नमद्यादनापदि १५९॥

अक्ष०—पराईसेज, आसन, उद्यान, गृह, यान ये विना दियेहुये वर्जित करे-अग्निहीनका अन्न आपत्काल विना न खावे १५९॥

अभि०—शय्या सेज अर्थात् पलँग आदि और भी जो कुछ वस्तु सोवने लेटनेकी पराईहो-आसन जो कोईसी वैठनेकी पराई वस्तुहो चाहे वस्त्रकाहो चाहे पीढ़ा मोढ़ा चौकी आदि कुछहो-उद्यान वगीची फुलवाड़ी आदि जो पराईहो-गृह स्थान घर वैठक आदि-यान रथ गाड़ी घोड़ा आदि जो कुछ सवारीकी वस्तुहो इन वस्तुओंको पराई जानकर बचावे किन्तु विना वताये भोगे नहीं-और अग्निहीन मनुष्य अर्थात् शूद्र जाति या प्रतिलोम जातें जिनको अग्निहोत्रका अधिकार नहीं अथवा जिनको अधिकारहै वेभी जो अग्निकर्म करते नहीं इनका अन्न अच्छे भलेमें लोभ लालचसे न खावे पर जो आपत्काल हो तो लाचारी है १५९॥

अधि०—ऊपर कहीहुई विरानी कोई वस्तु विना दियेहुये नहीं भोगे इसका यह सिद्धान्त नहीं है कि वह वस्तु अपनेको निपट मिलजावे अर्थात् इसमें यह तात्पर्य है कि जिसकी वह वस्तुहै वह अपनेको आज्ञा देवे कि इसपर लेटो या वैठो या सवारी करो या विहारकरो या निवास वा विश्राम करो तव जितनी देर या जितने प्रहर वा जितने दिवसोंके लिये उसने आज्ञादीहो उतनेही प्रमाणताईं वर्त्तावा करे तो दिया

हुआ भोग कहलावेगा और जब उसकी परिनियमित आज्ञासे अधिक दिनोंका वर्त्तावा करेगा तो वही वर्त्तावा अदत्त भोगमे गिनती है-इसके सिवाय विना आज्ञाका जो भोग है उसके लिये यहां तक निषेधहै कि जब किसी दूसरेके समीप या घरजावे तो उसकी खाट या मोढ़ा आदि पर उसकी समस्या वा संकेत विना न बैठजावे चाहै वह अपना सगा भाईभी हो किन्तु पराया या विराना शब्द यह अपने शरीरके सिवाय सगेभाई आदि पर भी आरूढहै फिर भाईके सिवाय औरोका क्या लेखा है-(उद्यान) यहां पर सम्बन्धका दृष्टांत जैसे किसी एक प्रतापी अमीरका अति रमणीक वहु विस्तारवान् वाग जो विचित्रतामें जानो नन्दनवन कल्पहो जिसका कोई एक विभाग जिसमे अलभ्य पुष्प वाटिका या फलवाटिका लगी है जिसकी रक्षा उस सम्पूर्ण वाग से भी अधिक निर्विकल्प रहाकरती है-उस अमीरका पुरोहित या पुरोहितका पुत्र आदि कोई प्रिय आत्मीय उसी परिरक्षित फुलवाड़ी में से उत्तम फूल जो केवल नेत्रविषय मात्रके लिये लगायेगयेहै नित्यंप्रति तोड तोड़ लावे और जब कोई सिपाही आदि रक्षक उसे निषेध करे तो यही उत्तर देवे कि यह रक्षा मेरे लिये नहीं है यद्यपि वे रक्षक लोग कुछदिन इस शोच विचारसे निषेधसे चुपके रहे और मालिकको सबोधन भी नहीं करे कि हां इनके लिये आज्ञा देरक्खी होगी पर जिस दिन वह सबोधन होगा या किसी हेतुसे भेद खुलेगा उसदिन मालिक यही कहेगा कि उसमे पुष्प तोड़ने को निर्विकल्प मेरे पुत्रको भी आज्ञा नहीं है फिर पुरोहितका पुत्र किस हेतुसे तोड़सक्ताहै और यथार्थ मे यह वात है कि जो कोई इस वातका दावा रखकर विना आज्ञाकी कोई वस्तु भोगे या भोगना चाहे कि मै इस वस्तुके मालिकका खास या सगाहू तो यह दावा उसका अनुचितहै क्योंकि जो वह सगाहै तो वनाने के लिये सगा है पर विगाड़नेके लिये कोई सगा नहीं होसक्ता-कदाचित् पुरोहित इस वातका दावा अपने मनसे आरोपित करे कि मै उसकी रक्षाका हेतु प्रसिद्ध और पूज्यहूं मुझको ऐसी वातोकी आज्ञा मिलने या न मिलनेसे क्या अपेक्षा है सो यह मनकी भ्रांति उसकी वृथाहै क्योंकि पूज्यता और वड़प्पनके अनुसार मालिकको यहां तक अधिकार है कि वह चाहे अदेय वस्तु और सर्वस्वभी उसे देदेवे पर आज्ञा विना वह भोगने का अधिकारी इस हेतुसे नहीं है कि जब उसकी रक्षाका हेतु वह प्रसिद्धहै तो जैसे और वातोकी रक्षा पुरोहितको करनी उचित होती है तैसेही उस मालिककी निर्विकल्प आज्ञाकी भी रक्षा करनी उचितहै अर्थात् जिस वातमे वह निषेधकी निर्विकल्प आज्ञा देवे उसमे पुरोहितको चाहिये कि आप भी उस निषेधको माने और अन्य भी प्रतिष्ठित सेवक या सम्बन्धी जनोको उसी रीतिपर चलावे तब उसकी रक्षाका हेतु आप निश्चित होसक्ताहै-अन्यथा जब पुरोहितने उसकी निर्विकल्प आज्ञा या निषेधमें वि-

कल्प करदिया तौ उसकी देखादेखी अन्यभी प्रतिष्ठित सेवक वा उस मालिकके ठेठ सम्बन्धी लोग भी ऐसा करने लगेंगे तभी वह पुरोहित रक्षाका हेतु नहीं बल्कि उस के विनाशका हेतु होगया जिसने उसके निर्विकल्प निषेधमें विकल्प डालकर आज्ञा की दृढ़तामें भंग किया इसी एक दृष्टांतके निदर्शन मात्रसे सारी वस्तुओंका सिद्धांत समझलेना चाहिये कि विना आज्ञाके कोई भी किसी वस्तुको नहीं भोग सक्ता है और यद्यपि इस १५९ के श्लोकमें केवल पांच वस्तु लिखीहैं पर उनके निदर्शनसे और भी संसारकी सारी वस्तुओं का सिद्धांत यही है १५९॥

अब यहांसे आगे अन्नोंको कहते हैं पर इसका चर्चा थोड़ासा ऊपरके श्लोकमें भी आया है अग्नि हीन इति॥

कदर्यबद्धचोराणांक्लीवरंगावतारिणाम्। वैणाभिशस्तवार्द्धुष्यगणिकागणदीक्षिणाम् १६०॥

ऐ०—(कदर्य) कहिये लुब्ध अतिलोभी—बद्ध बँधुआ निगड़ादि बंधनसे यद्वा वाग्बंधन सेहीहो-चोर प्रसिद्ध है जो साधारण चोरीभी करता हो-क्लीव नपुंसक जो सर्वथा पुरुषार्थ हीनहो-रंगावतारी अर्थात् नट चारण मल्ल आदि-इनसबोंका-औरवैण कहिये वंश फोड़ जो बांस को चीर फाड़कर उपजीवन के काम करै-अभिशस्त जो पतनीय कर्मों से अभियुक्त हो पतनीय कर्म जिनके करने से पतित कहावै ऐसे कर्म जिसमें बहुधा हों सो अभिशस्त-वार्द्धुष्य जो निषिद्धवृद्धिसे उपजीवनकरै जैसेकसाई आदि जीवघातियों को धनवृद्धिपर किस्तें देनी या मुर्दे का धन सस्ताखरीदकर बेंचना या चोरीका धन किसी से सस्तालेकर लाभउठाना आदि-गणिका पण्यस्त्री वेश्या प्रसिद्ध है-गण दीक्षी जो बहुतेरे गणसमूहों को दीक्षा करवावैं अर्थात् शिष्यों के गुणदोष विचारे विना सहस्रों सब जातों के मनुष्यों को दीक्षा देकर कंठी बांधैं औरउनके असत्कर्मोंके भागी बनें यद्वा बहुतों को यजनकरावै वह भी गणदीक्षी है इनसबों का भी अन्न अच्छेभलेमें न खावै पर आपत्कालमें लाचारीहै यहअनुकर्ष इस्से पहलेश्लोक मेंसे लियागया १६०॥

अधि०—ऊर्ध्वोक्तसबों में से एक कदर्यका माहात्म्य समक्ष कहतेहैं-यथा (आत्मानं धर्मकृत्यंचपुत्रदारांश्चपीडयेत् लोभाद्यःपितरौभृत्यान्सकदर्यइतिस्मृतः) अर्थात् जो पुरुष अतिलोभकी तृष्णासे अपने आत्माको और धर्म कृत्यको और पुत्रदाराओंको भी और माता पिता को भी भृत्यवर्गों को भी पीड़ादेवै सो कदर्य कहलाताहै(दृष्टान्त) इसका प्रत्यक्ष संभूतहै कि औरों को कहांतक शोचें पर जो मनुष्य दशवीस हजारकी धन संपत्ति संचित होने और दश पांच मुद्रा नैत्तिक आमदि होने और सहस्रों में प्रतिष्ठापद मिलनेपरभी ऐसा लोभी हो जो संध्यासमय छदाम का तैल नहीं बाले और आये गये को पान या तमाकू तौ कठिनहै पर बैठने को चटाईभी न देवै अपने

आत्माके भोजन वस्त्रादिक और दवा दारू में भी सुम खींच जावे-यह सब एक और पर एक दो मुद्राके व्ययहोने से सारे कुटुंबका आनन्द वलिकदोही एक आनेके उठाने से प्राण रक्षामात्र प्रत्यक्ष होसक्तीथी मित्रादिकों के उपदेश परभी ध्यान नहीं लावे केवल लोभ तृष्णामें उन्मत्त है और ठेठ उस २) या ≈) के हेतुसे ऐसा प्राणांतिक दुःख पावे कि शायद एक जन्म तौ थोड़ाहै पर सात जन्म भी न भूले बल्कि उसके सर्वसम्बन्धी और मित्रादिक भी न भूलें उस दुर्दशाको देखकर क्योंकि उस दुःखमें आयेहुये सम्बन्धी लोग रातौंदिन दुःखसाथी होने परभी खानेको न पावें पुनि उसी हेतुसे सौ दोसौका आवश्यक व्यय तत्काल करनापड़े और आगेको उसी हेतुसे नैत्तिक आमदिमें भी कमताई होजावे सो यह अपने आत्माको पीड़ा देनाहुआ-और (धर्मकृत्य) को पीड़ा देना यथा उसी घरमें तरुणकन्या जो गौनेके होजाने पर भी आरात् किसी हेतुसे अपने घर आईहो वर्षों ताईं इसी शोचसे चालेमें उपेक्षाकरे कि जो अभी इसको भेजेंगे तौ सवारी आदि खर्चोंमें दशवीस मुद्रा वृथा उठिजावेंगे इस्से घर आये हुये जामातृको केवल एक मुद्रा देकर दो तीनवार पैरों लौटार देना यह कुछ ओछी बात नहीं है और अगिले साल काका देवदत्त गयाजीको जानेवाले हैं उनके साथ भेज देवेंगे तौ सवारी नहीं करनी होगी वे अपने साथ लेजाकर पहुँचाते चलेजावेंगे और भरोसाहै कि वे हमसे इसका भाड़ा नहीं मांगेंगे पर जो जाना उनका होसके और जो यह नहीं तौ तीसरे साल तक हमकोभी सकुटुम्ब गोकर्णनाथजी को लड़केका मूड़-न करवानेको अवश्य जाना होगा तव साथ लियेजावेंगे तव तक जो आधसेर आटा यह खावेगी सो काम धन्धाकी आराम रहीआवेगी-सो यह लोभसे धर्मकार्यको पीड़ा देनाहुआ क्योंकि ऐसे दुर्ज्ञानियोंको शास्त्रकी सम्पन्नता पर भी यह नहीं सूझपड़ता कि ऐसी कन्याका पिताके घरमें रहनाही निषेधहै फिर जिस धर्मकी रक्षा और अधर्म की निवृत्तिके लिये पहले सौ दोसौ चारसौ मुद्रा व्याह और गौनेमें भी खर्च करचुके अव केवल दश वीसके लोभ लालचसे वही अधर्म तीन वर्षोंतक अपने शिरपर कैसे रक्खे रहेंगे-पुत्र दाराओंको पीड़ा देना यह कि प्रथम तौ जैसा खाना पहिरना उस घरके अनुरूप उनके योग्यहो तैसा लोभसे न करना दूसरे आधिक्यता यह कि ऐसे कुत्सित काम छोटे २ उन्हीं पुत्र दारादिकों से करवाना जिनको देख सुनकर अपने विराने सब निदाकरें क्योंकि जिनमें पैसा दोपैसा की प्राप्ति और वह काम न उस घर के योग्य न उस प्रतिष्ठाके योग्य परंतु उनका यह सिद्धांतहै कि निंदाहो तौ हो पर य-त्लब्धंतल्लब्धं किन्तु ये पुत्र दारादि जो खाते हैं उस्से आधा भी पैदा इनके हाथसे होतारहे तौ घरकी आमदि या धनमें दाग न लगनेपावे-(मातापिता) को पीड़ा देना लोभसे यह वात कि पुत्रकी योग्यता में उनको वृद्धावस्था पर बैठके आराम करना

योग्यथा परंतु उनकी परमशिथिलता पर भी उनसे अनुचित परिश्रम करवाना। और ऐसी निंद्य नौकरी आदि करवाना जिसको देख सुनकर गैरोंके रोवां खड़ेहों और जो कदाचित् कोई रोज वे नौकरी आदिसे रहितहों तो घरसे भी एक आना रोजके हिसाव नौकरीकी रीतिपर जुदा देदेना और चतुर्गुण मिहनत लेना बल्कि यहांतक बैठा नहीं देखसकना कि तुच्छ तगादेके निमित्तसे ग्रीष्मऋतुमें पचास कोसके अन्तर पर विना जूता भेजदेना और केवल चारआने खर्चको बँधादेना इस प्रकार दो महीने की ग्रीष्मऋतुमें वारवारका दौड़ाना भी एकही लक्ष्यपर सुगम है चाहै वहांसे कुछ लाभहो या नहो पर लौटिआनेके साथही तत्काल निवर्त्तनकी आज्ञा करदेना यह कुछ हिंसामें गिनती नहीं है पर उस एक आनासे अधिक जो कुछ उनसे पैदा करवाना किसी निंद्यकामसे वह उनसे लेलेना यह धर्म इन्साफमें गिनती है-(भृत्यवर्ग) में नौकर चाकर दासादिकोंका होना तो ऐसे घरमें एक जन्म क्या सात शाखमें भी असम्भवहै पर कुछ खुशामदी लोग जो अपने २ किसी झूठे स्वार्थकी आशा किये अपने कठिन कालको काटतेहुये पड़े रहते हैं वेही भृत्यवर्ग हैं जिनको सिर्फ इसीलिये कुछ झूठी दमदिलासा देदीजाती है कि इनके पड़े रहनेसे कुछ काम निकलैगा उनको यहां तक लोभसे पीड़ादेनी कि प्रथम तो कोई स्थल ऐसा नहीं दरवाजे आगे अधिक राखना जहां कोई दशदिन भी आरामसे काटिसके पर भाग्योंके मारे हुये जो ऐसी दशापर भी भड़भूजाके भाड़में आनि घुसे कि निराश्रय से दुःखाश्रय भी बेहतर है और उन्होंने अपने उदर पूर्णमात्रका कोईसा परिश्रम जहां तहां से लाकर आरम्भ किया कि वरस छःमहीने इस रीतिसे काटैं फिर न जानैं कुछ यहांके झूंठे दमदिलासा में भी कोई फल उत्पन्न होजावे तथापि उन विचारों को यहां तक पीड़ा देना कि वह काम पूरा करना दुर्लभ करदेना बल्कि रोटी भी बनाकर खाना कठिन करदेना क्योंकि घरके घर धनीसे लेकर दो वरसका वालक पर्यंत एक एक घड़ीमें तीन तीन वार ऐसा तीव्र हुक्म करताहै कि उस मन्दभागीकी प्रतिष्ठा पर भी दृष्टि नहीं डालकर करने और न करनेके भी सवकाम करवाना चाहैं उसने अपने घरभी कभी न भराहो पर कोस आधकोसके अन्तरसे पानीके घड़े और मट्टी आदि मँगवाना वाजार की यह दशाहै कि एक छदामके सौदापर तीनवार चक्कर लगवाना जो आने दोआनेका सौदा होतो मातिवरीके लिये दो तीन और भी साथजावें तब सौदा आवे पर दो तीन वार वानगीका आना और सौदेका फेरमारना यह तो साधारण परिनियमितहै इस प्रकार उनको संकटमें राखना पर होली और अन्नकूटमें भी यह न बूझना कि दोपैसे भर प्रसाद तुम भी लेलो क्योंकि यह अन्नकूट एक दूसरे प्रकारका होता है किन्तु अपने घरू घराके लड़के वालोंकाही और भाई विरादरी या मित्रादिक इसमें इसलिये साझी

नहीं होसक्के कि उनके घर चाहे सालमें दशबार वे बुलावें तौ सारा घर मिलकर खाइ आना पर उनको किसी बहानेसे बुलाकर कभी अपने घर खवाना यह अशुभ होता है-और यह बात भी अच्छी है कि उन मन्दभागी भृत्यवर्गोंको किसी काम पर दौड़ा देना तत्काल बोलीके साथही और पीछे उनका कपड़ा लत्ता जो मकानके न होनेसे छुटा पड़ारहताहै उसको कोई घरका छोटा बड़ा खोल खखोलकर पैसा टका हाथलगा तौ निकासलेना वे बिचारे जानते हैं कि देवदत्तने लिया पर यह कहना तौ अनुचित है इसके सिवाय उनकी कोई साधारण वस्तु मांगेसे बातोंमें फुसलानेसे, घरका कोई लड़का लड़की झपट लेवे तौ यह बात घरके धनीको भी देख सुनकर बहुत अच्छी लगे क्योंकि कदर्योंकी यह नीति तौ प्रसिद्धही है कि यार तुम हमारे आवोगे तौ क्या लाओगे और हम तुम्हारे आवेंगे तौ क्या खिलाओगे-यह सारे लक्षण जिस मनुष्य में या जिस घरमें हों वही मुख्य कदर्य्य कहलाताहै किन्तु एक दो बातके होनेसे नहीं यद्यपि (कदर्यों) के लक्षण जो प्रत्यक्ष देखनेमें आये हैं उनको अशेष लिखना चाहें तौ हमारा एक मासका परिश्रम और लागति उन (कदर्यों) केही निमित्तमें लगजावे क्योंकि जिनके घरमें इस प्रतिष्ठा पर भी घरकी मालिकनीसे लगा बहू बेटी पर्य्यंत इकहरी चद्दर ओढ़कर दिनभरमें चारवेर तगादेको शूद्रादिकों के घर पहुँचती हैं इस हेतुसे कि वे मुफ्तके नौकर जो बारम्बार हैरान किये जाते हैं और दुःखी होकर झूँठी सच्चीबात बनाकर उत्तर देतेहैं तभी झुंझलाहटकी तेजीमें आप उठ दौड़ती हैं ऐसेही बाजारके सौदा मध्ये किसीका विश्वास न मानिकर आप खरीदती फिरती हैं इसहेतु से कि निरख हरवक्त हमको मालुम रहै जिसका सौदा घर बुलाकर खरीदती हैं उस विचारेको प्राण छुटाने मुश्किल होजाते हैं यह सब लोभका हेतु है बल्कि घर धनी आप इन आचरणोंमें सन्मुख देखतेहुयेभी नहीं दखलदेता बल्कि बाजारके कामोंको वह आप नहीं जासक्ता क्योंकि प्रतिष्ठाका माहात्म्य कुछ तौ चाहिये फिर इन इतिहासों को किसकी सामर्थ्य है कि जो अशेष लिखसक्ता है-इसलिये हजार बातोंमें एक बात सो उसको भी ऐसा तत्त्वभूत स्वल्प करिके लिखाहै जैसे मनभरमें एक रत्ती क्योंकि इतनेसे भी समझने वाले बहुत समझ लेंगे-कदाचित् कोई ऐसा मनुष्य जिसने संसारको थोड़ा देखाहो वह इस बात पर अविश्वासता लाकर हास्यपूर्वक यह कहने लगे कि ऐसा होही नहीं सक्ता कि ये सारे लक्षण एकत्र इकट्ठेहों-तहां-उस जगत्कर्त्ता ने यदि अद्यावधि पर्यंत असत्यके बोलने और लिखने पर प्रकृति नहीं दौड़ने दी है यह बात सत्यहै तौ हम भी प्रतिज्ञापूर्वक वचन देतेहैं कि मुजरिम् को मये माल बांध कर हाजिर करदेना स्वाधीनहै पर दूर पहुँचाना बड़ा कठिनहै यद्यपि वर्षोंका विलंब और कोसोंका अन्तर हमसे परचुका है पर ऐसे लुब्धोंका निकट आकर्पण क्या मु-

शिकलहै-परंतु इन वातोंमें कुछ वाद विवादकी अपेक्षा नहीं है सिद्धांत केवल इतनाहै कि जो कोई इस अपार संसारमें सुकीर्त्ति अपनी चाहो तो वाल्य अवस्थासे इन वातों के जिज्ञासु होकर ऐसी वृत्ति धारणकरो जिस्से तुमको इनकी गिनतीमें न आना पड़े अर्थात् तुम ऐसा कभी न करना और अपने संसर्गियोंका भी निषेध युक्ति साथ करते रहना इसलिये इसके लिखने की आवश्यकता थी क्योंकि गुण और दोष सुने और सुनाये विना कोई नहीं जानिसकता और जव जानै नही तव संग्रह या त्याग किसका करें इस्से जो वात वाल अवस्थामें जानीजायगी वही सारे जन्मभर फलदायक होगी– अन्यथा यह (दृष्टांत) उस वात पर लिखा गयाथा कि जो कोई इस भांतिका कदर्य होवे उसका अन्न न खाना चाहिये क्योंकि प्रथम तो ऐसे लोभीका अन्न मिलसकनाही असम्भवहै पर जो कदाचित् दैवयोगसे पश्चिम सूर्य उदय होजावे तो (स्नातक) पुरुष को उस अन्नसे वचना चाहिये क्योंकि उन विपरीत आचरणोंसे जो कुछ अधर्म उस कदर्यको होताहै उसका अन्न खानेसे उसी अधर्मका भागी होना पड़ेगा दूसरे यह वात कि वह देतेहुये अपने हृदयमें अनेक दुःख मानिकर देवैगा तभी वह अन्न खानेवाले को न पचिकर सात धारहो निकलैगा और नानारोगोंके अंकुर पैदा करैगा-और कदाचित् किसी हेतुसे निरन्तर ४० दिन ताईं ऐसे कदर्य्यका अन्न जो खाना परै तो निःसंदेह वेही लक्षण उसमें भी होजावें १६० ॥

चिकित्सकातुरक्रुद्धपुंश्चलीमत्तविद्विषाम्। क्रूरोग्रपतितव्रात्यदांभिकोच्छिष्टभोजिनाम् १६१ ॥

ऐ०–(चिकित्सक) जो वैद्यकर्मसे जीविका करे-(आतुर) जो महा कुष्ठादि राजरोगों से ग्रसित हो-(क्रुद्ध) जो सदैव कोपरूप वनारहताहो या थोड़े हेतुपरभी अमित कोपसागर में डूव जाया करता हो-(पुंश्चली) व्यभिचारिणी जो प्रत्यक्ष भावमें प्रसिद्धहो-(मत्त) जो विद्या आदिकी अधिकता से गर्वित हो-(विद्विष) अर्थात् विद्विट् जो अनेकों से शत्रुता रखता हो यद्वा ठेठकर अपना शत्रु-(क्रूर) कुटिल अर्थात् अकड़पनवाला मनुष्य जो किसी को अपनी कुटिलता के आगे गिनती में न लाता हो-(उग्र) अर्थात् जो वाणी के और शरीर के व्यापारों से सज्जनों को उद्वेग पहुँचानेवाला हो-पतित अर्थात् ब्रह्मघाती आदि-व्रात्य जिसकी चर्चा ३८ अर्तीस के श्लोक में आचुकी है दांभिक पाखंडी वा छलिया-उच्छिष्ट भोजी जो और का भोजन शेष खानेवाला-इन सवोंकाभी अन्न अच्छे भलेमें न खावे पर आपत्काल में लाचारी है यह अनुकर्षभी १५९ श्लोक से लियागया १६१ ॥

आधि०–महारोगोंके लक्षण-यथा (वातव्याध्यश्मरीकुष्ठमेहोदरभगंदराः। अर्शांसि ग्रहणीत्यष्टौ महारोगाःप्रकीर्तिताः) अर्थात् १ वात व्याधि जो केवल एक वातकेही कोपसे अस्सी ८० वात रोग उत्पन्न होतेहैं जिनमें अर्द्धांग धनुर्वात पक्षाघात आदि

भी गिनती हैं-२ अश्मरीं पथरी शर्करा आदि रोग प्रसिद्ध हैं-३ कुष्ठ जो अठारहप्रकारके कोढ़ प्रसिद्ध हैं-४ मेहकहिये प्रमेह जो २० प्रकार के होतेहैं-५ उदरव्याधि-जो जलोदर काष्ठोदर आदि प्रसिद्ध हैं और मुख्य उनकी जाति आठ ८ प्रकारकी होती है-६ भगंदर रोग जो गुदा अथवा योनि द्वारा होता है-७ अर्शस् ववासीर के रोग जो छः प्रकार के होते हैं-८ ग्रहणी जो संग्रहणी नामका रोग प्रसिद्ध है ये आठ महारोग कहलाते हैं १६१॥

अवीरास्त्रीस्वर्णकारस्त्रीजितग्रामयाजिनाम्। शस्त्रविक्रयकर्मारतंतुवायश्ववृत्तिनाम् १६२॥

ऐ०-अवीरास्त्री अर्थात्स्वतंत्रा निरंकुशा-स्वर्णकारसुनार-स्त्रीजितःअर्थात् सर्वत्रस्त्री के वशवर्तीरहे-ग्रामयाजी अर्थात् सब जातों सहित सारेग्रामभरको छठी दसूठनिआदिशांति विषयकरवाने वाला-इनसबोंका और-शस्त्रविक्रयी जोशस्त्रोंकोबनावे या खरीदकरवेंचै-कर्मार अर्थात् लुहार और वढ़ई आदिभी-तंतुवाय अर्थात् कोली जोकपड़ा बुनताहै और दर्जी आदिभी-श्ववृत्ती अर्थात् श्ववृत्तिमान् किंतु जो कुत्ताओंके द्वारा जीविका करे चाहे कुत्ताओं को मारखावे चाहे कुत्ताओं से अन्यजीवों की आखेट करे-इनसबोंका भी अन्न अच्छे भलेमें न लेना चाहिये पर आपत्काल में लाचारी है यह अनुकर्ष भी उसी १५९ श्लोकसे लियागया १६२॥

भाधि०-सर्वत्रस्त्रीकेवशवर्त्ती रहने का दृष्टांत जैसे ठेठ अपने गुरु अथवा अन्यकिसी पूज्यके लिये श्रावणी रक्षाबंधन की दक्षिणा एकमुद्रा लिखचुके एवं अन्य सेवकों के लियेभी कुछइनाम अपनेहाथसेलिखचुके और निजकारपर्दाजको आज्ञाभी देचुके यह समाचार सबको विदित होचुके पीछेजब घरवालीने सुना और घुड़की दिखलाई और अपने सामने कलमसे कटवादिया तबउसकी आज्ञासे सबकापरिमाण चौथाई २ करदिया जोकुछ पहले लिखचुके थे—उसीघरका दूसरा दृष्टांत कुछ दिन पीछे पौत्रका जन्महुआ जिसकीअपेक्षा अनेकवर्षोंसे लगरहीथी कि कोई रीतिसे इसघरमें वंशवृक्ष का अंकुर जमे वल्कि इसबातकेलिये कुछदिनोंसे जपभी होरहेथे कि अबकीवार कन्या नहीं होवे परमेश्वर ने वहीकिया इस प्रसन्नतासे एक सहस्त्रताई व्ययकरनेका उत्साह किया और आज्ञाहुई कि जिस ज्योतिषी ने पहलेसे जपकिया है वही इसकी राशि गणनाको भी आवे क्योंकि जो दशवीस रुपये दियेजावें सो उसीको मिलें तो अच्छी बातहै इसलिये जन्म कालसे तीन घंटा पहले अर्द्धरात्रिके पीछेसे ज्योतिषीजी बुलाये हुये अति फूलेफाले आनि पहुँचे और अपने शास्त्रोंको सँभालकर निद्राको रोकेहुये संबुद्ध हरिका स्मरण करनेलगे जैसे तैसे वह रात्रिकटी ब्राह्ममुहूर्त्तमें प्रसव हुआ परंतु जब घरवालीने यह खबरपाई तब अत्यन्त घर धनीको घुड़काघुड़की करी और तत्काल उस ज्योतिषीको बुलवालिया कि जो विद्यामें तो निपुण थोड़ाथा पर सदैव बहु

जी बहूजी कहकर जनानी ड्योढ़ीकी खुशामदिमें होशियार अधिकथा उसने राशिगणना करी और देने लेने की प्रसन्नता में बहूजी की प्रशंसाकर घरकी राहली और जापक ज्योतिषी ने यामिक सेवा कियेपीछे कुछ साधारण दक्षिणा पाकर मुखमलीनता अंगीकारकी-यद्यपि घरधनी जो उनदोनों की विद्या और प्रभाव या धूर्त्तता को भलीभांति जानताथा इस व्यतिक्रम से अप्रसन्नभी हुआ परइसबात से लाचारथा कि स्त्री के वशवर्त्तित्व को छोड़ नहींसक्ताथा इस्से सब अंगीकारकिया दूसरेदिनसे नौबतरखवायेपीछे सातसौ रुपयेके वस्त्रआभूषण आदिकी तैयारीमें निरंतरतत्परहुये और यावन्मात्र मान्य और पूज्य और प्रतिष्ठित अधिकारी वा साधारणसेवक और पंडित वा नापित भांड़ भँड़ेले आदि उनसे संसर्गरखते और शुभ चिंतक थे सबकेलियेजुदे २ यथायोग्य पांचों कपड़े वा आभूषण या रोक रुपये जो कुछदेनाचाहा सो एकफ़र्द चिट्ठामें लिख २ कर तैयारकरवातेरहे और छठीकेदिन परम उत्सव और नाचरंग सहित बिरादरी की ज्योनारका सामान बड़ी धूमधामसे संसिद्धकिया और छठीसेएक दिन पहलेसंध्यासे आधीरात्रितांई घरवाली को वह चिट्ठा सुना २ कर समझातेरहे कि यह चीज उसकेलिये यह अमुकामुकों के निमित्त बनवाई है उससमय जो २उस घरिणी की इच्छामें आयासो२ उचित और अनुचित भी घटाबढ़ाकर काटकपटकरवाया और पीछे से यह शिक्षादई कि अभी यह सबचीज देने वा लुटानेका कुछकाम नहीं है कल छठीके रोज सिर्फ़ बिरादरीकी महफ़िल और बिरादरी या मान्योंकेलिये जो कुछ बनवाया और मैंने लिखवायाहै सो दीजिये जिस्सेनामहो नौकरआदि अन्य गजरभत लोगों को देनेसे क्या नामहै इस्से यह चीजें अभीरक्खो आगेपीछे समुझ २ कर जिसको जैसा उचित जानोंगी तैसा दूंगी सिद्धांत इसका यह कि उस आलिम और फ़ाज़िल और इक़बालमंद संभावित घरधनी को स्त्रीके वशवर्त्तित्व से यह भी करना अंगीकारहुआ औरपांचदिन से जो समस्त सेवक रातोंदिन उसकामकी धूमधाम और बहुताइत से काठकी पुतलीसी नाचते फिरते थे बल्कि ठेठ छठीकेदिन शामियाने और चंदोवे आदिकी खींचाखांची और दोसौ मनुष्यकी भोजन वस्तु तैयार करने वा कराने में लगेरहने से उनसेवकों ने नहाने और जलपीनेकाभी अवसर नहीं पाया पर इसउत्साहसे काम करनेसे हटे नहीं कि आजरात्रि को नानावस्तु का भोजन मिलेगा और पोशाकें वा आभूषण जो हमारेलिये बने हैं या और कुछ इनआम यह सबसारे समाजके सन्मुख हमको मिलेगा इस अभिमानमें डूबेरहे और घरके अधिकारियों ने यह भी नहीं बूझा कि तुम दो घड़ी की छुट्टी लेकर एक पैसे का चर्बण करलो अर्थात् रात्रिके दो तीनबजेतक सबको जिमाजुठाकर और समाज की सेवा शुश्रूषा से निपटकर मुहँ देखते से रहगये वह पोशाकें तो भला संदूकों में

वंद हैं पर उस भोजन वस्तुमें सेभी सिवाय विरादरी के किसी नौकर ने कुछ न पाया जिन विचारों ने वेशरमाई लादकर भोजन मांगा उनको वीचके अधिकारियों ने ट-कासा उत्तरदिया कि मालिकों से कहो-उन सेवकों में से शायद कोई ऐसा निर्लज्ज होगा कि जिसको दूसरेदिनभी वहरुकीहुई नीदलौटकर आई हो-उसघरधनीने फिर भी दो दिन पीछे वह चीज वस्तु खोली और यह कहा कि लोगोंको देदेनी चाहिये पर उस चातुर्यलहरी घरिणी ने घुड़कीदी कि अव क्या देकर होगा अगर उसदिन सवके सामनेदियाजाता तो कोई जानताभी अव इस फजूली की क्या जरूरत है-वह वंशांकुर जिसके हेतु से एक सहस्रका व्यय कियागया उसकी पीठमें उसी छठीकी रात्रिमें इधरतो महफिल होतीरही उधर उसके पीड़ारूपी कोई चिह्न उत्पन्नहुआ वह निरंतर वृद्धिको पहुंचगया यहांतक पीड़ा उसके होनेलगी कि अंदर घरमें आहि २ ऐसी करताथा कि वाहरवालोंको यह मालूम होताथा कि यह कोई वूढ़ा मनुष्यआह भरता है यद्यपिकईदिनतक रातोंदिनअनेक सयाने और खिलाड़ियों ने झाड़ फूँक दौड़ धूप उतारे पुतारे वहुतेरेकिये दश २ कोस के वावाजीवग्घी भेजकर वुलायेगये सवने अपनी विद्या दौड़ाई पर किसीसे भी कुछ न हुआ वह जन्म से तेरहवेंदिवस अपनी राहलेगया-घरधनीनेपीछेभी यह चाहा कि यह वस्तु जिसके नामसेवनी है देदीजावे पर स्त्रीके वशवर्त्तित्व को न छोड़सके और स्त्रीने वड़ी चतुराई से यह कहा कि मेरी हजार वर्षकी नीउँउठकर जातीरही तुमको अवतकभी इनाम का अनुमान चलाजाता है इस्से क्रमक्रम से वह वस्तु कुछवेचीगई कुछ घरमें खर्चकरलीगई इस वात में अभी वहुतकुछ शेष है सो यह वात केवल एक वारका नमूना है किंतु उन घरोंमें निरंतरयहीरीति है १६२ ॥

नृशंसराजरजककृतघ्नवधजीविनाम् । चैलधावसुराजीवसहोपपतिवेश्मनाम् १६३ ॥
पिशुनानृतिनोश्चैवतथाचाक्रिकवंदिनाम् । एषामन्नंनभोक्तव्यंसोमविक्रयिणस्तथा १६४ ॥

ऐ० सहद्वयोः—नृशंसराज अर्थात् निर्दय राजा निर्दयी इतिलोकेपि अथवा दोनोंपद भिन्न २ करनेसे नृशंस लक्षण वाला कोईहो और राज शब्दसे राजा जिसके अवगुण १३९ श्लोकके अन्त्यपदमें कहचुके हैं अर्थात् लुब्ध और उच्छास्त्रवर्त्ती भूपति किंतु सभी राजामात्र नहीं-रजक रँगरेज जो नील कुसुंभ आदिसे वस्त्रोंको रंजना करताहै-कृतघ्न कृतघ्नी जो कियेहुये उपकारको न मानकर मेटिदेवै-वधजीवी जो प्राणियोंका वध करिके जीवन करै-चैल धाव धोवी-सुराजीव जो मद्यादि वस्तु विक्रयसे जीवै-स-होपपतिवेश्म अर्थात् उपपति जो जार है तिस करके सहित एकही घरमें वसै इन सवोंका अन्न और १६३ पिशुन जो पराये दोषोंको चुगुलीचाई की रीतिसे कहे-अ-नृती जो प्रयोजनके माभिले परभी वारम्वार प्रत्यक्ष भावसे ऐसा झूँठ वकाकरै जैसे

कोई सबके सन्मुख गुड़का डला लियेहुये खारहाहै और कहताहै कि मेरे हाथमें गुड़ कहांहै अर्थात् वह भूँठ उसके मुखमेंसे निकलतेके साथही प्रतीत होजावे कि यह भूँठ कहताहै पर उसको इस बातकी लज्जा कमीभी न आवे जिसकी यह प्रकृति निर्विकल्प हो वह अनृती कहलाताहै-इन दोनोंका भी अन्न और तथा-चाक्रिक अर्थात् तेली और गाड़ीमान् भी-वंदिनःस्तावकाः अर्थात् वंदी उन्हें कहते हैं जो स्तवोंका पेशा करते हैं जैसे भाटभँडेले आदि इन्होंका अन्ननहीं खानाचाहिये तैसेही सोम विक्रयीकाभीनहीं-परजो आपत्कालहो तो लाचारीहै यहअनुकर्ष उसी १५९के श्लोकसे लियागया १६४॥

मधि०-सोमविक्रयी सोमलता वा सोमालताका बेंचनेवाला यद्वा सोम नाम अमृत काहै अर्थात् अमृतके तुल्य स्वादु और गुणवाली जो वस्तुहैं तिनका विक्रय कर्त्ता-और १५९श्लोकके अन्त्यपदसे यहां ताईं जो निरन्तर अन्नका निषेधकिया सो आमान्न या सिद्धान्नका निषेध कहाहै किन्तु पकान्न आदिके निषेधका अवसर यहां पर नहीं है क्योंकि जिन जातोंसे पक्वान्न आदि ग्रहण करनेकी प्राप्तिही प्रत्यक्षमें नहीं या जिसका निषेध अपने उचितस्थल पर प्रत्यक्षहै फिर उसकी चर्चाका क्या अवकाश है सोई नीचेके श्लोकसे स्पष्ट हुआ जाता है १६४॥

शूद्रेषुदासगोपालकुलमित्रार्द्धसीरिणः। भोज्यान्नानापितश्चैवयश्चात्मानंनिवेदयेत् १६५॥

इतिस्नातकव्रतप्रकरणम्॥

मक्ष०-शूद्रोंमें दास गोपाल कुल मित्र अर्द्धसीरी नापित भी ये इतने भोज्यान्नहैं पर जो आत्मा को निवेदन करे १६५॥

अभि०-ऊपर जो शूद्र आदि अनेकों का अन्नखाना निषेधकरचुके हैं उसमें कुछ विशेष कहते हैं कि शूद्र जातों में एक तो दासकहिये धीवर अथवा पंद्रह १५ प्रकार के दास जो नारद जीने अपनी संहिता में स्पष्ट लक्षणों सहित गिनाये हैं-दूसरेगोपालजो गौओंका पालनकरें किंतु अहीर आदि-तीसरे कुलमित्र जो कोईसा उत्तम शूद्रअपने कुलमें दादा परदादा आदि से संतान पूर्वकमेल मिलापमें मित्रता की रीति से रहता चलाआया हो-चौथे अर्द्धसीरी अर्थात् अपनी सीर कहिये खेती में आधा साभा जिस किसी उत्तम शूद्रकाचलाआताहो इतने शूद्रभोज्यान्नहोते हैं किंतु इनका आमान्न सिद्धान्नआदि जोकुछ वे प्रीति पूर्वकदेने लगें सोलेलेना चाहिये और नाई भी भोज्यान्नहै परन्तु उसअवस्थामें कि जोयेलोग अपने आत्माका निवेदनकरें अर्थात् सदैवही सत्यभावसे यहकहें कि हम आपहीके हैं १६५॥

मधि०-हम आपहीके हैं इसकहनेका यह सिद्धांतहै कि जो इसप्रकारसे एकतावान्होकर समीप रहेगा वह अपने सत्संगके प्रभावसे कुछ उज्ज्वलता क्रियाकर्म आदि भी करने लगेगा और यथार्थ में ग्राह्य या अग्राह्यके विषयमें क्रियाकर्मही प्रधानहै-

नापित यहां पर वहग्राह्यहै कि जो केवलदीवा वत्तीआदि गृहव्योपारोंका सेवकहोकि तुक्षौरकर्म और मृतकादि यजमानी धर्मोंसे रहितहो-पंद्रह १५ दास जो नारदजीने कहेहैं तिनकी परिगणना और लक्षणयथा-(गृहजातस्तथाक्रीतोलब्धोदायादुपागतः। अन्नाकालभृतस्तद्वदाहितःस्वामिनाचयः ॥ मोक्षितोमहतश्चार्णाद्युद्धेप्राप्तःपणेजितः। तवाहमित्युपगतःप्रव्रज्यावसितःकृतः ॥ भक्तदासश्चविज्ञेयस्तथैववडवाकृतः । विक्रेताचात्मनःशास्त्रेदासाःपंचदशस्मृताः) अर्थात्-एक तो (गृहजातदास) उसको कहते हैं जो अपने घरहींमें दासीसे उत्पन्न भयाहो १ (क्रीतदास) जो मोलको खरीदाहो२ (लब्धदास) जो स्वतः दैवइच्छासे पागयाहो३ (दायादुपागत) दास जो क्रमागतहो जैसे अपने दादाके दासका पुत्र अपने बापका दास हुआथा पुनि उसका पुत्र अपना दास हुआ पुनि उसका पुत्र अपने पुत्रका दास होवेगा ४ (अन्नाकालभृतदास) उसे कहते हैं जिसको दुर्भिक्षमें पालाहो ५ (स्वामिनाआहितः) अर्थात् आहितदास उसे कहते हैं जिस दास के स्वामीने किसी आवश्यकतासे गहने रक्खाहो या धरोहरकी रीतिसे सौंपा हो ६ (ऋणमोक्षितः) अर्थात् मोक्षितदास जिसने अपने ऊपरका महत् ऋण उद्धार कराकर छुड़ानेवालेका दास्य अंगीकार कियाहो ७ (युद्धेप्राप्तः) अर्थात् ध्वजाहृतदास जिसके स्वामीको युद्धमें पराजय करके अन्य धनके साथमें दासभी लेलियाहो ८ (पणेजितः) जो किसीसे उसका दास द्यूत आदि कर्मोंकी बाजीमें जीताहो ९ (तवाहमित्युपगतः) अर्थात् उपगतदास वह कि जो किसीका दास नहींथा पर आपही आनकर दासरूप होकर यह कहताहुआ रहनेलगा कि अब मैं तुम्हाराहीहूं मेरा और कोई रक्षक नहीं सो यह दास शरणागतके रूपमें है १० (प्रव्रज्याऽवसितः) संन्यासभ्रष्टः अर्थात् संन्यास धर्मसे भ्रष्टहोकर किसीके दासत्वमें रहनेलगा सो प्रवज्याऽवसितहै ११ (कृतः) अर्थात कृतदास जो नौकरी ठहराकर दास रक्खाजाताहै और वह भी कि जो किसी पेशेका काम सिखलाने के लिये दासरूपसे कुछदिनों को रक्खाजाय १२ (भक्तदास) जो सुकाल के होनेपरभी अपनी श्रद्धा भक्तिसे सत्लेवा समुभकरदास्य अंगीकारकरे जिसे उदरपूरण से अधिकवांछानहीं १३ (वड़वाकृत) अर्थात् वड़वाकृतदास जो वड़वाकेनिमित्त से दासहोवे या कियाजावे किंतुवड़वा जो दासी है किसी अमीर की उसदासी के लोभसे जो कोई दासबने इस्से कि वह अमीर भी यह चाहता है कि इसदासीका घरबसादेवें परउसी को यहदासी दीजावे जो आपभी दास होकर यहीं रहे १४ (आत्मविक्रेतादास) जिसने अपने पुत्रदारादिकों के किसी परमकल्याणके लिये धनचाह कर अपने आत्माको दासत्वरूप से बेंचादियाहो १५-शास्त्रनें यह पंद्रहप्रकारके दास कहेहैं-यद्यपि वर्त्तमान काल परिपाटी में मूल्यक्रीत संबंधी कई दासों का होना और करना भी निषेध वा अनुचित है तथापि जिस भूतकालकी यह व्यवस्था है उसमें

इसी की प्रधानता थी शेषको दोनों कालमें समता है पर लिखना इनका इस हेतुसे उचित है कि सार्वकालिकमर्यादों के जिज्ञासुओं को संसारी तत्त्व की विवेचनामध्ये पूर्वापरका अंतरसमुझाजाना हितकारी हुआ करता है १६५॥

इति स्नातकव्रतप्रकरणम्॥

यह (स्नातक) पुरुपका प्रकरण १२८ के श्लोकसे प्रारम्भहुआ था और यहां ताईं पूराहोचुका स्नातक पुरुष के लक्षण पीछे १३० की अधिकोक्ति में कहचुके हैं और यद्यपि स्नातक पुरुषके लक्षणभी विशेपतर विद्याव्रत स्नात ब्राह्मणपर आरूढ़हैं परंतु यह निर्विकल्प नियम नहीं है कि केवल स्नातकही इनवातोंको मानें और कोई नहीं मानें अर्थात् यहसारी मर्यादें उसीस्नातक के निदर्शनसे त्रैवर्णिक जाति मात्रकेलिये संसूचितहैं-हां-उनमें कहीं २ विरली वातें ऐसीभीहैं कि जिनसे केवल (स्नातकही) को अपेक्षा होसक्ती है-और इस्से नीचे जो अव द्विजातियों के नाम से धर्मों को कहते हैं उनमेंभी यहनिर्विकल्पता नहींहै कि केवल द्विजातीही उनवातोंको मानें और स्नातक नहीं मानें पर द्विजातियों के नामसे कहने का यह सिद्धांत है कि स्नातकको उन वातों से कोई भांति अपेक्षा नहीं होसक्ती है अर्थात् उसकेलिये स्वतः उनवातों का निषेधही हो रहा है फिर उसमें विधि या निषेध के कहने की क्या आवश्यकताहै परन्तु साधारण द्विजातियों को उनवातों से कुछ संवंधभीहै इस्से उनकेलिये विधि या निषेध कहने की आवश्यकता है (दृष्टांत) जैसे स्नातकको मांसभक्षण से कुछ भी संसर्ग नहीं और साधारण द्विजाती वहुधा मांसभी खातेहैं इसलिये उनको मांसके भक्षण में विधि या निषेध कहने की आवश्यकता हुई ऐसेही और भी सारीवातों को जानलो—

अथसाधारणद्विजातिधर्मकथनम्॥

यहांपर साधारण यह विशेषण देने का यह भाव है कि द्विजाती शब्द से ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तीनोंका वोधहोताहै परन्तु साधारण कहनेसे वे इस गिनतीमें नहीं आये कि जो स्नातक पदवी को पहुँचे हों क्योंकि उनका प्रकरण ऊपर हो चुका है इसअ-वस्था से वे ब्राह्मण भी साधारण द्विजाति में गिनतीहुये कि जो विद्याव्रतस्नात नहीं और मांसादि भक्षण में तत्पर हों इसीलिये उनके धर्मों को अवनीचे भिन्न कहते हैं १६५॥

अनर्चितंवृथामांसंकेशकीटसमन्वितम्। शुक्तंपर्युषितोच्छिष्टंश्वस्पृष्टंपतितेक्षितम् १६६॥
उदक्यास्पृष्टसंघुष्टंपर्यायान्नंचवर्जयेत्। गोघ्रातशकुनोच्छिष्टंपदास्पृष्टंचकामतः १६७॥

अत्रद्वितीयपाठे(पर्याचान्तंचवर्जयेत्) तथातृतीयपाठे (पार्श्वाचान्तंचवर्जयेत्)

ऐ०सद्वयो०—मांस यहऊपरके श्लोकसे अन्न यह नीचेके श्लोकसे लेना क्योंकि इ

दो श्लोकोंमें इन्हीं दोनों वस्तुका मुख्यविधि निषेध कहाहै कि-अनर्चित अर्थात् अर्चा कहिये सत्कार तिस्से रहित जो मांस अथवा अन्नहो तिसको वर्जितकरे किन्तु जो कोई सत्कारपूर्वक देने योग्यहै उसको असत्कारसे यह दोनों वस्तु दीजावें तो न लेवे यद्वा किसी हेतुसे लेलेनापरै तो न खावे किसी और को देदेवे-ऐसेही वृथा मांस अथवा वृथा अन्नको भी वर्जितकरे-ऐसेही केश कहिये बाल या रोमा और कीट कहिये कृमि जीव जंतु जिस मांसमें या जिस अन्नमें पड़जावें उसेभी छोड़देवे-ऐसेही शुक्त मांस या शुक्तान्नकोभी छोड़देवे शुक्त उसको कहते हैं कि कोई अन्नादि वस्तु कच्ची या पकाईहुईको जलके या सीरा आदिके योगसे या राई नमक आदि किसी द्रव्यांतर योगसे धूप या गरमी देकर कुछ दिनों तक स्थापन करनेसे खटाइँधको पहुँचाई जाय जैसे कांजी या कांजीके वड़े आदि अनेक भांतिके शुक्त होते हैं शुक्त मदिराके प्रकार में भी बनताहै शुक्त मांसका भी होताहै शुक्तोंकी अनेक जातें लोकमें प्रसिद्ध हैं उनको नहीं खावे-ऐसेही पर्युषित कहिये बासी तिवासी मांस अथवा अन्नको न खावे-ऐसेही उच्छिष्ट जो खातेहुये आगेसे बचजावे चाहे मांसहो अथवा अन्न उसकोभी उस काल के सिवाय फिर न खावे-ऐसेही श्वस्पृष्ट कहिये कुत्तेकासूँघा या छुआहुआ मांस यद्वा अन्न भी न खावे-ऐसेही पतितेक्षित कहिये चांडालादि या ब्रह्मघाती आदिका देखा हुआ मांस और अन्न भी न खावे १६६॥ ऐसेही उदक्या स्पृष्ट अर्थात् उदक्या जो रजस्वला पुनि उसके उपलक्षणसे चांडालीभी पुनि उसके उपलक्षणसे चांडालभी पुनि उसके उपलक्षणसे अमेध्य कुनखी कुष्ठी आदिगी जो शंखजीने कहे हैं इनका छुआहुआ मांस और अन्नभी न खावे-ऐसेही संघुष्ट कहिये जो मांस या अन्न किसी ने घुड़ककर कुरबुराकर कुछ बकतेहुये दियाहो उसको भी बचावे-ऐसेही पर्याय मांस और पर्याय अन्नभी न खावे-पर्यायवस्तु उसको कहते हैं कि जो कोई वस्तु किसी अन्यके नाम संकल्प कीगईहो उसे कोई और किसी औरको देदेवे या वही जानि बूझकर आप लेलेवे जो किसी द्वितीयके नामसे रक्खीथी और उसकोभी पर्याय वस्तु कहते हैं जो अन्यकी वस्तु अन्य दान करदेवे-ऐसेही गोघ्रात कहिये गऊ वृषभ आदि से सूँघाहुआ या चाटाहुआ जो मांस अथवा अन्न होवे उसको भी न खावे-ऐसेही शकुनोच्छिष्ट अर्थात् शकुन कहिये काकआदि पक्षीमात्रका जुठाराहुआ मांसया अन्न भी न खावे-ऐसेही कामतःपदास्पृष्टं अर्थात् जिस मांस अथवा अन्नको जानि बूझ कर बुद्धि पूर्व लातसे छूदियाहो उसको भी न खावे-किन्तु अज्ञातभावमें छूगया हो उसका दोष नहीं है १६७॥

अधि०—यहां पर दोष दूषित मांस या अन्नोंका निषेध जो वारम्वार किया है सो मांस तो आम अर्थात् पाकरहितभी पूर्वोक्त दोषोंसे दूषित होजाताहै पर अन्न केवल

वही जो परिपक्कहुये पीछे अदनीय होजावे सो दूषित होसक्ता है-वृथा मांस और वृथा अन्न जो कहाहै सो वृथा मांस तो उसको कहते हैं कि जो गुल्ला गुलेल या ईंट पत्थर आदिसे माराहो या किसी जीवने तोड़ाहो या आपही किसी रोगसे मरगयाहो पुनि वहभी वृथा कहलाताहै कि जो देवादिपूजा या यज्ञादि हेतुसे न व्यापादन हुआहो जिसकी निर्दोष मर्यादा आगे १७८ के श्लोकमें आवैगी किन्तु केवल जिह्वा स्वाद के हेतुसे होवे सो वृथाहै-और अन्नभी वह वृथाहै जो अभक्ष्यहो या भक्ष्यभी जो प्रत्युकारा शक्तिसे हीनहो किन्तु जिसका बदला देनेकी शक्ति वा श्रद्धा अपनेको नहो-पर्याय अन्नका खाना जो निषेध कियाथा तिसका प्रायश्चित्तोपदेश-यथा (ब्राह्मणान्नं ददच्छूद्रःशूद्रान्नंब्राह्मणोददत्। उभावेतावभोज्यान्नौभुक्त्वाचांद्रायणंचरेत्) अर्थात् ब्राह्मणका अन्न शूद्र दानकरै या शूद्रका अन्न ब्राह्मण दानकरै यह दोनों अन्न अभोज्य हैं जो कोई भोजन करिलेवे चान्द्रायण नामका प्रायश्चित्तकरै तब शुद्धात्माहो-और इसी पर्यायान्न शब्दके प्रतिस्थान जहां द्वितीय पाठसे (पर्याचांत) शब्द होवे तहां यह अर्थहै कि जिस अन्नको भोजन करते हुये भोक्ता पुरुष कुल्ला करलेवे तिस पीछे उसी शेष अन्नकी संज्ञा (पर्याचांत) होजाती है तिसको छोड़देवे फिर चाहै पूर्ण तृप्ति होने पाईहो या नहीं-सोई अन्यत्रभी स्पष्टभावसे यह कहाहै कि(गंडूषग्रहणादूर्ध्वमाचमनाद्प्राङ्नभोक्तव्यम्)अर्थात्-भोजनके अन्त्य आचमनसे पहले किन्तु भोजनके बीचही में कुल्ला लेलेनेके उपरांत शेष अन्नको न खाना चाहिये-पुनि उसी पर्यायान्न शब्दके प्रतिस्थान तृतीय पाठसे (पार्श्वाचांत) शब्द होवे तहां यह भावहै कि किसी पार्श्वस्थ के आचमन करलेने पर पश्चात् उसी शेष भोजनकी संज्ञा (पार्श्वाचान्त) होजाती है यथा एक निर्भेद पंक्तिमें अनेकलोग बैठेहुये भोजन करतेहों वे परस्पर एक दूसरे का पार्श्वस्थ कहलातेहैं उनमेंसे कोई एक असुशील जब आचमन या गंडूष करडाले तब औरोंको भी भोजन छोड़देना उचितहै चाहै तृप्ति होनेपाई हो या नहीं-निर्भेद पंक्ति कहनेका यह आशयहै कि जिनके लिये जलकाष्ठ भस्म आदि रेखासे पंक्तिमें आसन भेद कियागयाहो उनको वह गंडूष बाधक नहीं है किन्तु निरंतर एक पंक्तिवालोंसे अपेक्षाहै-और गंडूष संज्ञा उसीको कहसक्ते हैं कि जब आचमन का जल मुखमें से उद्गीर्ण कियाजावे किंतु घूंटिजानेको नहीं आचमन संज्ञायद्यपि जलप्राशकीभी होतीहै पर इसविषय में केवल ओष्ठादि प्रक्षालनकोही आचमन मानाहै-और जलोद्गीर्णके तद्रूपलक्षण से वहगंडूष निषेधरूप नहीं है जो जलपान समयश्वासा ग्रंथिसे स्वतःउद्गीर्ण होजाताहै पर जो किसी पार्श्वस्थके अन्नादिपर इसधांसके उद्गीर्णका छींटा पहुँचजावे तोजहांताईं पहुँचाहो उतनीपंक्ति और वहआपभी तात्कालपर्यंत भोजनको विश्राम देकरमौन बैठारहैं जबतकवहशेष पंक्तिभोजन करिलेवै १६६।१६७॥

पर्युषित अर्थात् वासी तिवासी आदि चिरकालस्थ अन्नमें विशेषता कहते हैं॥

अन्नंपर्युषितंभोज्यंस्नेहाक्तंचिरसंस्थितं। अस्नेहाअपिगोधूमयवगोरसविक्रियाः १६८॥

ऐ०—अन्न अर्थात् अदनीय वस्तु जो परिसिद्धहुई भोजन योग्यहो ऐसा अन्नयदि स्नेहाक्तहो अर्थात् घृतादि स्नेहोंसे संयुक्तहो जिसे पकवान कहतेहैं वहचिरकाल संस्थितभी पर्युषितहोवै तथापि भोजनकरने योग्यवना रहताहै-इसके सिवाय अस्नेहा अपिकिंतु विना चिकनाई के भी अन्नजोगोधूम यव गोरसके विकारसे वनतेहैं वे भी पर्युषित कहिये धरेहुये भोजनकरिवे योग्यवनेरहते हैं-पर जो विकारांतरको न पहुँचे हों-गोधूम विकारके अन्नजैसे गेहूंकाचूर्ण जो कढ़ाहीमें भूनिलिया जाताहै या भूनेहुये गेहूंपीसलिये जातेहैं या गुड़ धानी आदि-और यवके विकारसे सत्तू या धानाआदि धानावहुरी को कहते हैं-गोरस विकारके अन्न दधि तक्र किलाट अर्थात् मावा खोवा और किलाटी अर्थात् खड़ी और पायस अर्थात् खीर इत्यादि औरभीजानो १६८॥

अधि०—यह पर्युषित अन्न की विशेष विधि यहांपर इसलिये कहीगई कि इस्से पहले १६६ श्लोकमें पर्युषितका निषेध सामान्य वचनसे करचुकेथे पर उसकी अतिव्याप्ति नहीथी-और गोधूम यव गोरस के विकार स्नेहरहितभी जो अंगीकार किये हैं तिसमें केवलता नहीं है अर्थात् गोधूम यव गोरस इनके निदर्शन मात्रसे और अन्न भी उसी रीतिसे समुझलेने परन्तु उस अवस्था ताईं कि जवतक उनपदार्थोंमें किसी भाँति की विकृति नही होजावे और विकृति के न होनेपरभी जो पदार्थ भुक्तशेष होजावे वहभी त्यागयोग्यहै सो यह त्याग केवल इन्हींमें नहीं किन्तु पूर्वोक्त पक्वान्नमेंभी संभवित है क्योंकि इस्से पहले १६६ के श्लोकमें उच्छिष्टका निषेध जो सामान्य वचन से कियाथा उसका कोई विशेषवाक्य इसमें नहीं पायागया जिस्से भुक्तशेष पकवान खाना उचित जानाजाय १६८॥

संधिन्यनिर्दशावत्सागोपयःपरिवर्जयेत्। औष्ट्रमैकशफंस्त्रैणमारण्यकमथाविकम् १६९॥

अक्ष०—संधिनीगोःपयः अनिर्दशागोःपयः अवत्सागोःपयः (अथ) औष्ट्रंपयः ऐकशफंपयः स्त्रैणंपयः आरण्यकंपयः आविकंपयः परिवर्जयेत् यह प्रत्येकमें जोड़लेना १६९॥

अभि०—जिसगऊपर वृषभछोड़ाजावै गर्भके हेतुसे वह संधिनी कहातीहै उसकादुग्ध छोड़देवे पुनि उसकोभी संधिनी कहते हैं जो एकवेला छोड़ दूसरेसमय दुहीजावै और जो अपनावच्चा छोड़ किसी औरके वच्चेसे लगाईजावै उसका दूधभी छोड़देवे—जिस व्याईहुई गऊको पूरे दशदिन नही वीतेहों वह (अनिर्दशा) कहाती है अर्थात् दशदिन भीतर दूध नहीं खावै (अवत्सा) वह कि जिसकावच्चा मरजावै और भूसी आदि वाट से लगतीहो उसका दूध छोड़देवै (अथ) औष्ट्रकहिये ऊंटका दूध और मूत्र आदिभी सदैववर्जितराखै-ऐकशफ अर्थात् एक खुरवाले जो घोड़ीखच्चरी खरीआदिपशु जिन

के खुर फटेनहीं होते उनका दूध न खावे अवैणकहियेर्ल्लोका दूधनहींखावै-आरण्यक अर्थात् अरण्यमें रहनेवालेमृग पशुओंका दूधनहींखावै-आविक अर्थात् अविसंज्ञा भेड़कीहोती है उस्से उत्पन्नहुआ दूध आविक सो न खावे १६९॥

अधि०—यद्यपि संधिनी दो प्रकार की अधिक पीछेसे लिखीगई परंतु विचारदृष्टि से भी उनके दुग्ध पानमें कुछ दोष नहीं देखपड़ता क्योंकि प्रथम तो इसबात की साधना भी असंगत है दूसरे वह दोनों संधिनी भी (गौण) संज्ञक, हैं अर्थात् संधिनी मुख्यभाव से वह एकही है जो पहले कहीगई और उसीका प्रमाणभी त्रिकांडी स्मरणसे पायाजाता है-यथा(वंशांवंध्यांविजानीयाद्वृषाक्रांतांचसंधिनीम्)परन्तुसंधिनीके निदर्शन मात्रसे स्यंदिनी और यमलप्रसूके भी दुग्धका निषेध संभवित है क्योंकि गौतम ऋषिने तीनों का निषेध एकसाथ एकपदमें किया है (स्यंदिनीयमप्रसूसंधिनी नांचेति)स्यंदिनी उसेकहतेहैं जिसकेस्तनोंसे दुग्धकेबूंद या धारेंटपकाकरें-यमप्रसू या यमलप्रसू या यमलप्रसूता या यमलप्रसविनी उसेकहते हैं जो दोबच्चे एकसाथदेवे-जो जोबातें गऊके विधि निषेधमेंऊपर लिखीगईं सोई सवनिदर्शन वकरी और भैंसकाभी जानलो क्योंकि वसिष्ठमुनि ने इन तीनों का चर्चा एकसाथ एकपदमें किया है-यथा (गोमहिष्यजानाममनिर्दशानामिति)ऊँटऔर एक शफवालोंके दूधका सदाही निषेधहै इसलिये उनका कोई विशेष भेद कहने की आवश्यकता नहीं है- स्त्रीदुग्धका निषेध करने से मानुषी मात्र कोई हो और इसीके उपलक्षण से दो थनोंवाला और भी जो कोई जीव होताहो उसकाभी निषेध है पर वकरी का नहीं क्योंकि वकरी भी दोथनों की होती है परन्तु उसका दूधगऊ के समान ऊपर अंगीकार हो चुका है-अर्थात्वन मृगोंका दूधजो निषेध कियाहै तहां भैंसभीवन पशुओंमें गिनतीहै पर उसके दूधका निषेध नहीं है क्योंकि ऊपर उसको गऊ और वकरी के साथमें समान अंगीकार करें चुके हैं सोई इसका वाक्य भी स्पष्ट प्रमाण हो रहाहै-यथा-(आरण्यानांचसर्वेषांमृगा णांमहिषींविनेति) (आविक) जो भेड़ों का दूध निषेध किया है यद्यपि उसकी ग्राह्यता भी वहुधा लोकमें जहां तहां दिखाई देती है अर्थात् जो लोगवकरी का दूधग्रहण करते हैं वे भेड़ से भी वचाव नहीं करते किंतुभेड़ और वकरी को तुल्य समुझलेते सो यह मूर्खता उनकी वृथा है क्योंकि आविक दूधका निषेध नित्य और निर्विकल्प है सोई गौतमऋषिने स्पष्ट कहा है-यथा(नित्यमाविकमपेयमौष्ट्रमैकशफंचेति)वलिकविरले अज्ञानी अजा को भी अति अशुद्ध और अशुभ कहदेते हैं सो यह उनकादोष नहीं किन्तु केवल अज्ञानताकाही दोष है क्योंकि यह शास्त्र तो केवल विधि औरनिषेधकाही प्रत्यक्ष है तिसमें भी वकरी के दुग्ध की ग्राह्यता ठेठ इसी श्लोकमें लिखीहै इसके सिवायअन्य शास्त्र जो महानुभाव ऋषीश्वरों के निर्माण कियेहैं जिनमें वड़े २

प्रकरण केवल छाग माहात्म्यकेही लिखे हैं और वह माहात्म्य कुछ मांसपक्षमें नहीं किन्तु केवल छागके पालने या पवित्रता मध्ये और उनके नानाभेदसे शुभाशुभ फल कर्तव्य के विषय में आरूढ़हैं- इसके सिवाय वैद्य शास्त्र में जैसा छागीदुग्धका गुण प्रसिद्ध है तैसाऔर किसी का नहीं फिर इस दशापरभी छागीको अशुद्ध या अशुभ क्योंकर कहसकें १६९॥

देवतार्थंहविःशिग्रुंलोहितान्व्रश्चनांस्तथा। अनुपाकृतमांसानिविड्जानिकवकानिच १७०॥

ऐ०—देवताकेअर्थ कहियेनिमित्तसे जो कोई वस्तु वलिउपहार आदि कल्पितकरीहो किजो देवताको अर्पण नहीं करिपाईहो क्योंकि उसकार्यमें अभीविलम्ब शेषहै-हवि जो हवनकेनामसे बनाई हो पर अबतक हवन नहीं होचुका है-शिग्रु सहिंजना-लोहितान् अर्थात् लोहित वर्णके वृक्षनिर्यास कहिये गोंदोंको तथा-व्रश्चनान् अर्थात् व्रश्चनकर्म जो हरेवृक्षोंका छेदनकरना तिस्से उत्पन्नहुये गोंदोंको-अनुपाकृतमांसानि अर्थात्यज्ञ विधिसे नकल्पितकिये पशुओंकेमांस-विड्जानि अर्थात् मनुष्यादिकोंके खायेहुयेफल बीजोंसे विष्ठाद्वारा निकलकर उत्पन्नहुये शाकादिकों को यद्वाविष्ठाके स्थान में उत्पन्न हुयोंकोभी-कवकानि अर्थात् छत्राक जो वर्षाऋतुमें होतेहैं-इनवस्तुओं को भी वर्जित करे वर्जितकरना यह पहलेश्लोकमेंसे लियागया है १७०॥

मधि०—लोहित और व्रश्चनशब्दका अर्थ यद्यपि इसके श्लोकमूलसे अच्छास्पष्ट नहींहोता पर मनुजीका कहा प्रमाण इसमें प्रत्यक्ष है कि-(लोहितान् वृक्षनिर्यासान् व्रश्चनप्रभवांस्तथेति)-लोहितनिर्यासों के निषेध से राल कपूर हिंगुआदि निर्यासों का निषेध नहींपायागया १७०॥

क्रव्यादपक्षिदात्यूहशुकप्रतुदटिट्टिभान्। सारसैकशफान्हंसान्सर्वांश्चग्रामवासिनः १७१॥

ऐ०—क्रव्यादतो वेजीव जो अन्यजीवोंका कच्चा और मरामांसभी भक्षणकरतेहैं यथा श्वान शृगाल आदि-और पक्षीभी उसीप्रकारके यथा काक ढेंक गृध्रादि अनेकप्रसिद्ध हैं-और दात्यूह चातक जिसे पपैया वा पपीहा कहतेहैं-शुक तोता-और प्रतुदपक्षी वे कहलातेहैं जो किसी कीड़ेको या किसी रोटीआदिवस्तुकोभी जब खातेहैं तब अपनी चोंचसे वारम्वार तोद कहिये पीड़ादेकर अर्थात् कूट पीटकर उछालतेहुये और अपनी ग्रीवाको भी पीड़ासीपातेहुये किन्तुग्रीवाको हिलाते झुलातेहुये खाते हैं-और टिट्टिभ टटीहरी जो श्येनपक्षीका शब्दानु कारी प्रसिद्धहै-सारस यहलोकमें भी अतिविदितहै-एकशफा यह घोड़ा आदि एक सुमवाले प्रसिद्धहैं-हंस जो अपने नामसे विख्यातहैं-औरभी ग्रामवासी पक्षी जोपारावत पंडुकी आदि अनेक वस्तीमें रहतेहैं वे सबके सब और वे पशुभी कि जो ग्रामचरप्रसिद्ध हैं-इनकहेहुये जीवोंका मांसभी न खावे किंतु वर्जितकरे यह १६९ श्लोकसे सम्बन्ध जोड़ा गया १७१॥

भाषि०—प्रतुद पक्षियोंका उदाहरण-यथा(हारीतोधवलःपांडुःचित्रपक्षोन्त्हच्छुकः। पारावतःखंजरीटःपिकाद्याःप्रतुदाःस्मृताः १ प्रतुद्यभक्षयंत्येतेतुंडेनप्रतुदास्ततः । पिकाद्याइतिआदिशब्देनश्येनादयोप्यन्येवहवः यथाश्येनःकंकःकाकःद्रोणकाकःउलूकःमयूरः एवमन्येपिवहवोभवंति एपांकेचित्प्रसहापि प्रतुदलक्षणाद्ग्रहीताः कार्यापेक्षयान तुलक्षणमात्रपरिज्ञानार्थमित्याशयः) १७१ ॥

कोयष्टिप्लवचक्राह्वलाकावकविष्किरान्। वृथाकृशरसंयावपायसापूपशष्कुलीः १७२ ॥

ऐ०—कोयष्टि नामजल कुक्कुटपक्षी क्रौंच इति मिताक्षराकारः-प्लवनामजल कुक्कुट चक्राह्वनाम चकवाक—वलाकास्वनाम प्रसिद्ध है-वक वगुला-विष्किरा वे पक्षी कहलाते हैं जो नखों या चोंचसे फैलाकर चुगते हैं जैसे मुर्गा और चकोर आदि अनेक इन का मांस नहीं खावै और वृथा कृशर वृथा संयाव वृथापायस वृथाअपूप वृथा शष्कुली इनको भी वर्जित करै यह योजना १६९ के श्लोक से हुई-कृशर खिचरीको कहते हैं वह खिचरी दाल चावर आदि से जैसी सनातन से होती आई और सवलोक में प्रसिद्ध है सो तौ वृथा नहीं है पर जो विपरीत और असंगत या अभक्ष्य वस्तुओं से वनाई जाय सो वृथा है-संयाव गुझिआ पिराकों को कहते हैं जैसी उनकी क्रिया प्रसिद्ध है सो तौ वृथा नहीं है पर जव असंगत या अभक्ष्य वस्तुओं से वनाई जाय सो वृथा है-ऐसेही पायस खीर जो असंगत या अभक्ष्य वस्तुओंसे वनाई जाय वहवृथाहै-ऐसेही अपूप कहिये पुआ वा कसार-और शष्कुली नामपूरी ये परिनियमित रीतोंसे असंगत या अभक्ष्य वस्तुसे वनाये जावें सो वृथाहैं इनकोभी वर्जितकरै १७२ ॥

भाषि०—विष्किर पक्षियोंका उदाहरण-यथा-वर्त्तिकोलावचिकुरकपिञ्जलकतित्तिराः। कुलिंग कुक्कुटाद्यास्वविष्किराःसमुदाहृताः १ कपिञ्जलइतिप्राज्ञैःकथितोगौरतित्तिरः। विकीर्य्यभक्षयंत्येतेयस्मात्तस्माद्विविष्किराः २ आदिशब्दादन्येपिवहुशःसंवोध्याः यद्यप्येपांकेचिल्लावादयोभक्ष्याअपिलोकप्रसिद्धाः तथापि शास्त्रवाक्यपरिसिद्धिनिमित्तमेतल्लक्षणम् १७२ ॥

कलविंकंसकाकोलंकुररंरज्जुदालकम्। जालपादान्खञ्जरीटानज्ञातांश्चमृगद्विजान् १७३ ॥

ऐ०—कलविंक नाम कुलिंग चटक या ग्राम चटक अर्थात् गरगैया गौरैया चिड़ा इतिच लोके प्रसिद्ध जो घरों में घुसिलारखता है-काकोल नाम द्रोणकाक अर्थात् कगार जो अशेपकाला और इसकाक से कुछ ऊँचा भी होताहै—कुररनाम उत्क्रोश पक्षी जो निरंतर रुदन सम शब्द करताहै जिसेलोक में भी कुररी कहतेहैं-रज्जुदालक नाम वृक्षकुट्टकपक्षी जिसे खुटक वढैया कहते हैं-जालपाद पक्षी उन्हें कहते हैं जिनके पंजाओंके वीच २ खालकी जालीहोतीहै-खंजरीट नाम खंजन ममला किरखिंदा इति

लोके प्रसिद्ध जिसका कार्त्तिकमें आगमन और चैत्रमें प्रस्थान होता है-अज्ञात कहिये विनाजानेहुये जिन्हें कभी देखा और सुनाभी न हो ऐसे मृग अर्थात् वनकेजीव चतुष्पद और द्विजकहिये पक्षी-इन सबका मांस वर्जितराखै यह योजना १६९श्लोक से हुई १७३॥

अधि०—कलविंक यद्यपि १७१ श्लोक में भी ग्राम वासियों के निषेधमें आचुका क्योंकि इस कलविंक का दूसरानाम ग्राम चटक होताहै और १७२ की अधिकोक्तिमें भी विष्किरगणना में कुलिंगनामसे आचुका परंतु यह संदेहका स्थल नहीहै क्योंकि इसी प्रकार और भी अनेक पक्षी जो अपने २ नामसे इन्हीं श्लोकों में निषेध हुये फिर वेही बहुधा प्रत्तुद और विष्किरमें भी पाये जाते हैं इसका यहहेतु है कि वे प्रत्तुद या विष्किर या ग्रामनिवासी केवल उनके निषेध में दर्शाये हैं कि जिनके नाम इन श्लोकों में प्रत्यक्ष नहीं आयेथे और निषेध उनका योग्य था इससे किसी किसी की पुनरुक्ति हो जानाभी कुछ दूषण नहीं बल्कि पुनरुक्ति से निषेध में विशेषता पाई जातीहै १७३॥

चापांश्चरक्तपादांश्चसौनंवल्लूरमेवच। मत्स्यांश्चकामतोजग्ध्वासोपवासस्त्र्यहंवसेत् १७४॥

ऐ०—चापनाम किकीदिव पक्षीजिसे पुण्य दर्शन कहा करतेहैं अर्थात् नीलकंठ जिस की ग्रीवा नीलमणिके समान और चोंच स्वर्ण वर्ण होतीहै इसकी उपजाति में और भी कई पक्षी छोटे२ उसी समान होतेहैं(रक्तपादाःकादंबादयः) अर्थात् कलहंसआदि अनेक पक्षी जिनके पंजालाल होतेहैं-सौन कहिये सूनाका स्थान किंतु क़साइयों का घातस्थान तिस्से उत्पन्न भया जो मांस तिस को भी सौन कहते हैं वहमांस चाहे भक्ष्यजीवों का भी हो-वल्लूर कहिये सूखामांस-मत्स्यभी जो नाना प्रकारके जलजीव प्रसिद्ध हैं-इनको वर्जितकरै यह योजना १६९ श्लोक से हुई-इन सबों को कि जो १६९ श्लोकसे यहांताईं गिनाये गये अर्थात् इनमें से एक वस्तुको भी कामना पूर्वक भक्षण करिलेवै तौ तीनदिनताईं उपवासकहिये निराहार होकरबसे तब शरीर शुद्धि होवै या जो अकामभक्षणकिया होतौ एकहीदिनरात्रिके उपवासमें शुद्धिहोवै यह एक दिनरात्रि मनुजी के कथनसे प्रमाण है १७४॥

अधि०—जो कि शंखजीने इस विषयमें १२ दिवस इस प्रकार से कहे हैं कि-बक बलाका हंस प्लव चक्रवाक कारण्डव गृहचटक कपोत पारावत पांडुशुक सारिका सारस टिट्टिभ उलूक कंक रक्तपाद चाप भास वायस कोकिल शाङ्गलि कुक्कुट हारीत भक्षणे (द्वादश रात्र मनाहाराःपिबेद् गोमूत्रयावकमिति) सो यह शंखजीकावचन बहुतकाल पर्यंतजानि बूझिकर भक्षण करनेपर संभवित है १७४॥

पलांडुंविड्वराहंचछत्राकंग्रामकुक्कुटम्। लशुनंगृंजनंचैवजग्ध्वाचांद्रायणंचरेत् १७५॥

ऐ०—पलांडु पिआज-विड्वाराह ग्रामसूकर-छत्राक सर्प छत्र जो छत्राकार वर्षाऋतु में होता है जिसका चर्चा १७० श्लोकमें कवक शब्द पर आयाथा-ग्रामकुक्कुट पालतूमुर्गा-लशुनंलहसुन इतिलोकेपि-गृंजन गाजर-इन चीजों को धोखेसेभक्षण करिकै चांद्रायणकरे तव शरीर शुद्धिहोवे अन्यथा जानिकर खानेका प्रायश्चित्तनहींहै १७५॥

मधि०—ग्रामकुक्कुट और छत्राक इन दोनों का निषेध पहले हो चुकाथा पर यहांपर पुनरुक्ति इसहेतु से हुई कि पिआज आदि अति निषिद्ध वस्तुओं के समान इनका भी प्रायश्चित्त दर्शाना अंगीकार था-और इन्हीं को जानिबूझि कर वहुत दिनोंखाने से द्विजाती पतित होजाता है सोई मनुजीका वाक्य प्रमाण है कि(छत्राकं विड्वराहंच लशुनं ग्राम कुक्कुटम्। पलांडुंगृंजनंचैव मत्याजग्ध्वापतेद्विजः)और जो विनाजानेधोखे में खालेवे तिसके मध्ये भी मनुजी ने यह कहा है कि(अमत्यै तानिषट्जग्ध्वाकृच्छ्रंसांतपनंचरेत्)अर्थात् विनाजाने इन छःमेंसे कोई वस्तु खालेवे तो कृच्छ्र सांतपन नाम का व्रत आचरे तव शरीर शुद्धि होवे-इस्से प्रत्यक्ष विदितहुआ कि इन वस्तुओंकोजानि करखानेपर प्रायश्चित्तसे भी शुद्धि नहीं होती क्योंकि केवल पतित होजानाहीलिखा उसका प्रायश्चित्त मनुजीने भी नहीं कहा १७५॥

अथ नीचे भक्ष्य मांसोंको कहते हैं॥

भक्ष्याःपंचनखाःसेधागोधाकच्छपशल्काः। शशश्चमत्स्येष्वपिहिसिंहतुंडकरोहिताः १७६॥
तथापाठीनराजीवसशल्काश्चद्विजातिभिः। अतःशृणुध्वंमांसस्यविधिंभक्षणवर्जने १७७॥

ऐ० सहृदयोः—(सेधाश्वावित)अर्थात् पंचनखोंमें एक मृग विशेष-गोधा गोही गोह इतिच कच्छप कछुआ-शल्लकस्सेह सेही-शश खरहा खरगोश-इतने पंचनखवाले भक्ष्य हैं अर्थात् वानर मार्जार आदि जो अनेक जीव पाँचनखोंवाले होतेहैं तिनमें यह इतने मांसखाने योग्य हैं-और मत्स्यों में भी(सिंहतुंडक) अर्थात् सिंहमुख नाम मच्छी (रोहित) कहिये लोहित वर्ण जिसको रोहू मच्छी कहते हैं १७६ तैसेही (पाठीन) जिसे पाठा या चंदानाम मछली कहते हैं-(राजीव) जो पद्मवर्ण की मच्छी होतीहै (सशल्क)अर्थात् जिस मच्छी के ऊपर सीपके आकार चिह्न हों-सब जाति की मछली में से इतनी मछली भी द्विजातियों को भक्ष्य हैं-इसके आगे तुम सब सुनो मांसभक्षणके निषेध में जो विधि है १७७॥

मधि०—पंचनखों के प्रमाणमें गौतमजीका वचन-यथा (पंचनखाःशशशल्लकश्वाविद्गोधाखड्गकच्छपाइति) इसीपर मनुजी का वचन-यथा (श्वाविधंशल्लकं गोधां खड्ग कूर्मशशांस्तथा। भक्ष्यान् पंचनखेष्वाहुरनुष्ट्रांश्चैकतोदतइति)और जो कि वसिष्ठजीने खड्ग नाम मृगके मांस भक्षण मध्ये कुछ विवाद पूर्वक अभक्ष्यत्व भी कहाहै सो वह श्राद्धके सिवाय अन्य दशापर कहा है क्योंकि इसके फल विशेष पर भी वाक्य प्र-

माण है कि (खड्गमांसेभेवेहत्तमक्षय्यंपितृकर्मणिइति) उक्तमत्स्यों के भी प्रमाणमेंमनुजी का वाक्य है कि (पाठीनरोहितावाद्योनियुक्तौहव्यकव्ययोः। राजीवाः सिंहतुंडाश्च सशल्काश्चैवसर्वशइति) यह साधारण द्विजातियों के धर्म कहे अर्थात् इनमेंस्नातक ब्राह्मण गिनती में नहीं है और शूद्रभी इस गिनतीमें नहीं है-क्योंकि शूद्र उसगिनती में आवेंगे जो नीचे अब चारों वर्ण के धर्म कहे जायँगे परन्तु इसमें यह विचार दृष्टि अधिकहै कि मांसादि भक्षणमें जो विधि शास्त्रोक्त भी प्रमाण पूर्वक लिखीहै उसकेआशय से कोई ऐसा द्विजाती नहीं भक्षणकरसक्ता है कि जिसके कुल या देश या जाति में उसवातका प्रचार नहीं है क्योंकि वह विधिभी केवल उन्हींके लिये कही है कि जो द्विजाती पूर्वकाल से ग्रहण करते चले आये हों और उस प्रकृति को अब छोड़नहीं सक्ते हैं-अन्यथा जो शास्त्रमें द्विजाती यह सामान्य संज्ञा अविशेष लिखी है उसके लिये वह वाक्य भी वाधक है जो १५५ के श्लोकमें कहचुके हैं-कि (अस्वर्ग्यं लोकविद्विष्टंधर्ममप्याचरेन्नतु) १७६। १७७॥

अथ चातुर्वर्ण्य धर्मों को कहते हैं॥

प्राणात्ययेतथाश्राद्धेप्रोक्षितंद्विजकाम्यया। देवान्पितॄन्समभ्यर्च्यखादन्मांसंनदोषभाक् १७८॥

भक्ष०—प्राणोंके अत्ययमें तथा श्राद्धमें प्रोक्षित मांस द्विजकामनासे साधाहुआ मांस देवताओंको पितरोंको सम्यक् अभ्यर्चना करिकेमांसखातेहुये दोपभागी नहीं १७८॥

अभि०—प्राणों का अत्यय कहिये नाशहुआ जाताहो जैसे अन्नकी प्राप्ति नहीं है या कोई रोग ऐसा है कि वह मांस के खाने विना प्राणलेजायगा तो निःसंदेह प्राणों की रक्षाकेलिये उसका भक्षण नियमों के साथ करै-तैसेही श्राद्धमें निमंत्रितहुआ भी नियम से खावै-प्रोक्षित मांस अर्थात प्रोक्षण नामसे वेद विधिमें पशुका संस्कार जो कहा है उसके अनुसार जो पशु संस्कृत कियागया हो अर्थात् अग्नीषोमीय आदि यज्ञों में विधि सहित होमागया हो उसकाशेष मांस-द्विजकाम्यया अर्थात् ब्रह्मभोज के निमित्तसे और देवअर्चाके निमित्तसे-और पितृकर्मके निमित्त से जो मांस साधन हुआ हो उसकेखाने से दोपभागी नहीं होसक्ता १७८॥

भाषि०—नियमसे भक्षणकरना यह कि जैसी उसकी विधि या निषेध ऊपरसे कहते चले आतेहैं उसके अनुसार-प्राणोंकी रक्षाकेलिये जो कहाहै सो प्राणोंकी रक्षा सब धर्मोंके ऊपर प्रधानहै-यथा(सर्वतएवात्मानंगोपयेदित्यात्मरक्षणविधानम्-तस्मादिहनपुरायुषः स्वःकामीप्रेयादितिमरणनिषेधस्तु) अर्थात्-आत्मा जो प्राण अथवा शरीरहै तिसको सबसेही अधिकसमुझकर रक्षाकरे यह आत्मरक्षण विधानहै-तिस हेतुसे इह संसारमें स्वर्गकीकामनावाला आयुसे पहले न परलोकजावे यहनिर्थ मरणका निषेध भीहै-और श्राद्धमें निमंत्रित हुआ भी नियमोंसे मांसभक्षणकरे यह कहाहै तहां निमंत्रणचाहे ब्राह्म-

एत्वकाहो अथवा गोत्रित्वका क्योंकि यह स्थल चारों वर्णके मध्ये कहरहेहैं और श्राद्ध में न भक्षण करने का दोष भी मनुजीने कहा है कि (यथाविधिनियुक्तस्तुयोमांसंनात्तिमानवः। सप्रेत्यपशुतांयातिसंभवानेकविंशतिम्)अर्थात्-जो मानव यथाविधिसेनियुक्त हुआ भी मांस नहीं खावे है सो मरे पीछे इकीस जन्मताईं पशु योनिमें जाताहै-परंतु इस दोष में भी यह बड़ा निर्वाह पायाजाता है कि जो यथा विधिसे नौतागया हो वह न खावे तौ दोष भागी हो पर जो उस भेद को न जानेबिना नौति दियागया हो और न खावे तो दोष भागी नहीं है इसलिये जिसको उसबातका त्याग है वह उस प्रकार के निमंत्रण कोही यथा विधिसे क्यों मानेगा-यथाविधिसे नियुक्तहोनायह कि जब श्राद्धसे पहले दिन सायंकालमें उसको शास्त्रोक्त विधिसे पादप्रक्षालन आदि प्रकारों से नौतादियागया और यह सुना दियागया कि तुम आज ब्रह्मचर्य आदि संयमसे रहना और भोजनमें अमुकामुक वस्तु भोजन करनी पड़ेंगी तब उसने अधिक दक्षिणा या वस्त्रादिक मिलना सुनिकर लोभ लालच से अंगीकार करलिया पर भोजन समय विवेकी बना तौ निःसंदेह दोषभागी हैं ऐसेही जहां केवल गोत्रित्व भाव का निमंत्रण है या साधारण है तहां भी प्रथम उसबात का संबोधनहो-और प्रोक्षित मांस जो यज्ञोंमें संस्कार विधिसे संसाधनहुआ उसको यज्ञका यजमानही नहीं खावे तौ यज्ञमें असिद्धि कही है-अन्यथा मांस वहभी यज्ञार्थ है जो केवल भृत्यभरणापेक्षा से संपादन हुआहो क्योंकि-भृत्यभरणभी एक प्रकारका यज्ञ है-ऐसेही अतिथि आदि का सत्कार करना यह भी एक यज्ञ है इसमें से भी जो सत्कार से बचाहुआ मांस वह यज्ञार्थसंज्ञावान्है-और दोषभागी न होना इसका यहसिद्धांतहै कि दैवयोगसे स्वतः इन प्रकारों के आनि पड़ने में खाने से दोष भागी नहीं पर केवल मांस की अभिरुचि सेही इन यज्ञों का प्रारम्भ करिके मांस खाने से निःसंदेह दोषभागीहोगा इस्से जिन जीवों का मांसखाना भी १७६ और १७७ श्लोकमें उचित लिखचुके हैं उनका मांस भी इस १७८ में कहीहुई मर्यादों से रहित खानेवाला निःसंदेह दोषभागीहोगा सोई नीचे कहते हैं १७८ ॥

वसेत्सनरकेघोरेदिनानिपशुरोमभिः। संमितानिदुराचारोयोहंत्यविधिनापशून् १७९ ॥

ऐ०-वह दुराचारी जो पशुओंको विधिबिनामारैहै सो घोर नरक में उतनी संख्या के दिनों ताईं बसता है जितने उस पशु के रोमा हों १७९ ॥

अब मांसके परित्याग का फल कहते हैं ॥

सर्वान्कामानवाप्नोतिहयमेधफलंतथा। गृहेपिनिवसन्विप्रोमुनिर्मांसविवर्जनात् १८० ॥

ऐ०-सब कामनाओं को पूराकरि पावै है और अश्वमेधयज्ञका फलभी तथा गृह में निवास करताहुआ भी विप्र मांस के छोड़ने से मुनि होता है १८० ॥

भधि०-विप्रके उपलक्षणसे चारोंवर्ण संभवित हैं-और मुनि होताहै अर्थात् मुनि के तुल्यमाननीय विना तपस्याके भी होता है-अश्वमेध फलके विषयमें मनुजी ने भी कहा है कि-(वर्षेवर्षेऽश्वमेधेनयोयजेतशतंसमाः। मांसानिचनखादेद्यस्तयोःपुण्यफलंसमम्)अर्थात् एक तो वह पुरुष जो हरसाल अश्वमेध यज्ञसे सौ वर्षताईं प्रभुकायजन करै और एक वह जिस्से कुछ और तो न होसके पर मांसों को न खावै इन दोनोंका पुण्यफल वरावर होता है १८० ॥

इतिभक्ष्याऽभक्ष्यप्रकरणम् ॥

अथ द्रव्यशुद्धिकथनम् ॥

सौवर्णराजताब्जानामूर्ध्वपात्रग्रहाश्मनाम्। शाकरज्जुमूलफलवासोविदलचर्मणाम् १८१ ॥

पात्राणांचमसानांचवारिणाशुद्धिरिष्यते। चरुस्रुक्स्रुवसस्नेहपात्राण्युष्णेनवारिणा १८२ ॥

ऐ० सहृदयोः-(सौवर्ण) कहिये सुवर्णकेपात्र-(राजत) रजतके पात्र अर्थात् चांदीकेबने हुये-(अब्ज) अर्थात् मुक्ताफल शंखसीपी आदि चीजें-(ऊर्ध्वपात्र) अर्थात् यज्ञसंबंधी उलूखल आदि इति मिताक्षराकारःयद्वा ऊर्ध्वपात्र सुवर्ण और रजत इन दो धातुओंसे ऊर्ध्व उपरांत जो अन्य धातु ताम्र आदि तिनके पात्र-(ग्रह) अर्थात् यज्ञ संबंधी सोम धारणपात्रआदि यथा (सौत्रामण्यांसुराग्रहान्गृह्णाति इतिवाक्यप्रमाणात्) (अश्म) जो पत्थरके सिलवट्टाआदि अनेकप्रसिद्धहैं इनसबोंकीशुद्धि और-(शाक) सागतरकारी यावन्मात्र होतेहैं-(रज्जु)रस्सी डोरीआदि-(मूल)आर्द्रक आदि यावन्मात्र नानामूल वस्तु होतीहों-(फल)आम्र आदि यावन्मात्र खानेयोग्य होते हैं-(वासो)वस्त्रमात्र-(विदल)वैणव आदि किंतु बांसआदिसे जो वस्तुपिटारी बिलहरा आदि बुनीजातीहैं-(चर्म)चामबकरीआदिका-इनसबोंकी शुद्धि १८१ और (पात्र) अर्थात् प्रोक्षणी पात्रआदि-(चमस)अर्थात् होतृचमसआदि और काष्ठका बनाया हुआ यज्ञपात्रोंमेंसे एकपात्र विशेष और सोमपान पात्रकोभी चमसकहतेहैं-इनसबोंकी शुद्धिकेवलजल से होतीहै परउस अवस्थामें कि जो किसीवस्तुकालेप इनमेंनहीहो अर्थात् केवल उच्छिष्टवस्तुके स्पर्शमात्र की भ्रांतिमें जलसे धोलेना उचितहै और जोउच्छिष्टादिका लेपभीहोवे तोभस्ममृत्तिका गोमयआदिसे शुद्धकिये पीछे जलसेधोवे-और(चरु)कहिये चरुस्थाली-(स्रुक्)और (स्रुवा)यह दोनों होमके उपकरण प्रसिद्धहैं यह और अन्यभी जो चिकनाई लगे पात्र हों सो सबउष्ण जलसे प्रक्षालनकरे तबशुद्धहोवें १८२ ॥

भधि०-यद्यपि बकरी आदिके चर्मकी शुद्धिभी जलसे कही और लोकमें यहभीप्रसिद्धहै कि चर्मकी शुद्धितेलादि स्नेहोंसे होतीहै सोभी असंगत नहीं क्योंकि प्रत्यक्ष प्रमाणमें कुतर्क नहीं होसकी परन्तु इसमें यह आशय है कि जैसे चामकामढ़ाहुआ संदूक वा पिटाला अथवा खड्गका पड़तला आदि कोई वस्तु जो अवश्यवर्त्तावमें

रहतीहै उसके ऊपर काक या विलाई आदि कोई वीटकरदेवै तो प्रथम जलसेप्रक्षालनकरै फिरसूखे पीछे तैलका स्पर्शकरै-तवशुद्ध होतीहै ऐसेही बुद्धिका विचारसर्वत्र मुख्यहै कुछ लिखेपरभी केवल आरूढ़ता नहीं होसक्ती क्योंकि अभी ऊपर ऐक्यार्थ में कहचुकेहैं कि बिनालेपकी वस्तुकेवल जलसे शुद्धहोतीहै और उन्हींवस्तुओंमेंचामकोभी गिनती करचुकेहैं और यथार्थमें चामजलसे भीगजाने पर प्रत्यक्ष अशुद्धहो जाताहै परन्तु वह संघातवाक्यथा इसलिये उसमें, भिन्न २ वस्तुपर दृष्टिडालकर यथायोग्य व्यापार करना उचित है क्योंकि उच्छिष्टादिके स्पर्शमात्र की भ्रांतिमें केवल जलसे प्रक्षालन कहा तो चर्मके साथमें स्पर्श भ्रांति यह असंगत है क्योंकिजव चर्म की वस्तुमें केवल स्पर्शमात्रकी भ्रांति है तव जल से धोना अनुचित है किंतु केवल तैलके घर्षण मात्र से उसकी शुद्धि हो जायगी अन्यथा जलसे धोना उसी अवस्थामें उचित है कि जव पूर्वोक्त अनुसार विष्ठा आदिकालेप होजाय ऐसेही प्रत्येक वस्तुका भिन्न २ निर्णय करलेना उचित है-मनुजी का वाक्य-(निर्लेपंकांचनंभांडमद्भिरेवविशुद्धयति। अब्जमश्ममयंचैवराजतंचानुपस्कृतम्)-अर्थात् कांचनकापात्र जिसमें किसी उच्छिष्ट का लेप नहीं होवै वह जलोंसेही शुद्ध होजाता है और अब्जकहिये शंख सीपी मुक्ताफल आदि चीजें तथा अश्ममय कहिये पत्थरकी पियाली आदि जो कुछ होता हो और राजत कहिये चांदी के पात्र आदि यह सब जल से शुद्ध होजाते हैं परंतु जो अनुपस्कृत हों अर्थात् जिनमें रेखा खुदी होवें कूँची आदिसे रगड़नेपर शुद्ध होवेंगे-और जिनमें किसी वस्तु का लेप लगा हो उच्छिष्ट आदि तिनके मध्ये मनुजी ने कहा है कि-(तैजसानांमणीनांचसर्वस्याश्ममयस्यच। भस्मनाद्भिर्मृदाचैवशुद्धिरुक्तामनीषिभिः)-अर्थात्-चांदी आदि सवधातुओं के और मणियोंके और सर्वजाति के पत्थर के भी जो पात्र आदिलेप सहित होवें उनकी शुद्धि भस्म और जलसे अथवा मृत्तिका और जलसे बुद्धिमानों ने कही है-अन्यथा जिन पात्रों में काक अथवा श्वान आदि मलीन जीव मुख डालें उनकी शुद्धि जो धातुके होवैं तो अग्निमें देनेसे अथवा जो पत्थर या सीपी आदिके होवें तो शाण अर्थात् खराद आदि से खुर्चाने पर शुद्धहोते हैं १८१। १८२॥

स्फ्यशूर्पाजिनधान्यानांमुसलोलूखलानसां। प्रोक्षणंसंहतानांचबहूनांधान्यवाससां १८३॥

ऐ०-(स्फ्य) अर्थात् वज्रजो एक प्रकार का यज्ञांग होताहै-(शूर्प) सूपया आजकेनाम से प्रसिद्धहै (अजिन) यद्यपि चर्म मात्रका नामहै पर चर्मको पहले १८१ मेंभी कहचुकेहैं इसलिये यहां पर वह मृगछाला आदि चर्म समझने जो यज्ञादि कर्म या पूजनपाठ में काम आते हैं-(धान्य) नाजमात्र-इनसवों की शुद्धि और-(मुसल) मूसल जो अन्नादि कूटने का होता है-(उलूखल) ओखली या गाली प्रसिद्ध है-(अनः) शकट अर्थात् गाड़ी

आदि यानयंत्र (एतेषांप्रोक्षणंशुद्धिः) अर्थात् इनकी शुद्धिजलका छींटा देनेसेही हो-जाती है (तथैवसंहतानांवहूनांधान्यवाससांचशुद्धिःप्रोक्षणं) अर्थात् वहुत से अन्न और वस्त्रों का संघात कहिये ढेर लगाहो उनकी शुद्धि भी केवल जल के छींटा मात्र से होजाती है॥

अधि०—यहां पर धान्य या वस्त्रादि वस्तुओंका ढेर किंतु राशि जो कही सो अशुचिके स्पर्श की अपेक्षा में कही है तिसका शास्त्रांतर वाक्यों से यह विवेक है कि उस राशिमें से एक ओर थोड़ी या वहुत वस्तु को कोई चांडाल आदि छूजावे या कुछ मलीनता लगजावे तो उसमें से जितनी वस्तु अशुद्धहुई हो उतनी की शुद्धि तो उसी रीति से करी जायगी जैसे पूर्व से कहतेचले आतेहैं शेषकी शुद्धि केवल जलके छींटा देनेसे (दृष्टांत) जैसे एक गठरीभर कपड़े सुखानेको रक्खेगये उनमें काकनेविष्ठाकरदिया तो जहां२ विष्ठाका स्पर्शहुआहो तहां२ तो पूर्वोक्तरीतोंसे धोनाचाहिये शेष और सब कपड़े जलके छींटा सेही शुद्धहो जायँगे-तथाचस्मृत्यंतरम् (वस्त्रधान्यादिराशीनामेकदेशस्यदूपणात् तावन्मात्रंसमुद्धृत्यशेपंप्रोक्षणमर्हति) इसका अर्थ ऊपरके कथनसे प्रकट होचुका-अथवा जिसराशिमें वहुतसाविभाग तो छुयागयाहो और थोड़ासा विनाछुया शेपहो तहां समस्तराशिमात्रका धोडालना उचितहे क्योंकि थोड़ीसी जो नहीं छुईगई उसकाधोना तो उस वहुतकेस्पर्श दोपसे १८१-१८२ में कहचुके हैं और वहुतसी जो चांडालादिने छुई या किसी मलीनवस्तुसे लिपगई उसकाधोना प्रत्यक्षही संभवितहै किंतु अशुचिलेपकी शुद्धि विना धोने के नहीं होती चाहें थोड़ी हो या वहुत-सोई मनुजी ने भी कहा है-कि (अद्भिस्तुप्रोक्षणंशौचंवहूनांधान्यवाससाम्। प्रक्षालनेनत्वल्पानामद्भिःशौचंविधीयते) अर्थात्-वहुतसेधान्यवस्त्रादिकोंकाशुद्धहोना जलोंके छींटा से और थोड़ोंका शुद्धहोना भ्रांतिमेंभी जलोंसे धोनेपर होताहै-इसी कहेहुये न्यायसे जिस राशिमें शुद्ध और अशुद्ध दोनों भाग वरावरहों उसको समस्त धोडालना उचितहै-जहां यह विवेक निश्चय नहीं होसक्ताहो कि इस राशिमें कितना भाग शुद्धहै कितना अशुद्ध परस्पर्श दोपकी भ्रांति प्रत्यक्षहे तहांभी समस्तका धोडालना संभवित है-इसी न्यायसे जो वस्तु पंद्रहदिवस ताईं विना वर्त्तावा अज्ञातभावसे रक्खी रहीहो उसकोभी वर्त्तावेके समय जलका छींटा देकर शुद्ध करलेना उचितहै-इसी न्यायसे उन धान्य वस्त्रादिकोंकाभी जलके छींटासे शुद्ध करलेना उचितहै कि जिनको अनेक पुरुप ढोढोकर भारवाही से लातेहों चाहें उनमें स्पर्श अथवा अस्पर्शकाविवेकहो या नहो-(दृष्टान्त) यथा रेलाख्य धूम्राकर्पक यानसे उत्तीर्णहोनेपर अनेक भारवाहों से वस्त्रादि उठवाना पड़ता है एवं अन्यदशाओंमेंभी समझलेना १८३-यहां ताईं मूलके तीन श्लोकोंमें यद्यपि कहीं २ अर्थकी पंक्तिमें काक विष्ठा आदिके लेपका दृष्टांतभी दिया

केवलभीहों-तथाच(तूलकामुपधानंचपुष्परक्तांवरंतथा। शोपयित्वातपेकिंचित्करैःसंमार्जयेन्मुहुः। पश्चाच्चवारिणाप्रोक्ष्यविनियुंजीतकर्मणि। तान्यप्यतिमलिष्ठानियथावत्परिशोधयेत)-अर्थात्-तूलिका कहिये तोसक वा गलीचा और उपधान कहिये तकिआ तथा कुसुम कुंकुम आदि पुष्पोंके रँगेहुये रक्तांवर जो धोव नहीं सहसक्तेहों यद्वा रक्तांवरके उपलक्षणसे पीतांवरभी जोहरिद्रा आदिसे कच्चे रँगवालेहों किंतु मंजिष्ठआदिपक्के रँगवालोंको छोड़कर इनकहे हुये वस्त्रोंको थोड़ेलेपकी भ्रांतिमें मध्यमधामसे सुखाकर उतने खूंटको दोनों हाथसे वारम्बार मींजे मसलै जिस्से वह अमेध्यलेपभ्रड़जावै तिसपीछे जलके छींटादेकर वर्त्तावामें लगावे-और जो वेही कपड़े अतिशय मलीनहोवें तो उनकोभी पूर्वोक्तरीतीसे यथावत् प्रक्षालन करवावै-सोई शंखजीनेभी एकपदमें यहकह दियाहै कि-रागद्रव्याणिप्रोक्षितानिशुचीनीति-अर्थात् रँगवालीचीजें छिड़कडालनेसे शुद्ध होजातीहैं १८५ ॥

सगौरसर्पपैःक्षौमंपुनःपाकान्महीमयम्। कारुहस्तःशुचिःपण्यंभैक्ष्यंयोपिन्मुखंतथा १८६ ॥

ऐ०-पीली सरसोंके चूर्ण सहित जल गोमूत्रोंसे पूर्वोक्त (क्षौम)अर्थात् अतसीतंतुनिर्मित वस्त्रकी शुद्धीहोतीहै-और (महीमय)कहिये मट्टीके पात्र जो अन्नादि उच्छिष्टसेलिटेहों उनकी शुद्धि फिर अग्निमें पकानेसे होजातीहै-(कारु) जाती लोगोंका हाथ सदा शुद्धहोताहै-एवं(पण्य)वस्तु अर्थात् जो अन्नअथवा नोनमिठाई आदि विक्रयकरनेके निमित्तसे खोलकरदूकान आगे धरीजाती है जिसमें अनेकोंका हाथपाँव लगजाताहै वह भी सदाशुद्धहै-तथैव(भैक्ष्य)कहिये भिक्षाका अन्न जो अनेक घरसे ब्रह्मचारी आदिकोंई आश्रमीलायाहो वहभी सदाशुद्धहै-तथैव(योषित)कहिये भार्याका मुखभी भोग समय सदाशुद्ध है वरन स्मृत्यंतर मतसे रति कालमें स्त्रीका सर्वांग शुद्धहोताहै और स्त्रियां पादत्राण विनामलीन मार्गके आक्रमणसे भी नहीं अशुद्ध होतीहैं १८६ ॥

भाष्य०-गौरसरसोंके साथमें जल गोमूत्र यह दोनों १८५ के श्लोकमेंसे जोड़े गये क्योंकि उनका संबंध चला आताहै-(कारु)जातीके यह लोग कहलातेहैं रँगरेज छीपी धोवी सूपकार अर्थात् खटीक आदि जो छाज वनाताहो इत्यादि औरभी इनकाहाथ सदाशुद्ध केवल अपनेकारमें और कारकी अपेक्षासे सूतकादि दशाका सिद्धांतहै किंतु अन्यथा प्रत्यक्ष चांडालादि में गणनीयहैं-सोई सूतक दशाकी अपेक्षासे स्मृत्यंतरवाक्यभी दृढ़ताकारहै कि(कारवःशिल्पिनोवैद्यादासीदासास्तथैवच । राजानोराजभृत्याश्चसद्यःशौचाःप्रकीर्त्तिताः)अर्थात्-(कारव)कहिये कारुजाति के लोग जिनको अभीऊपरकहाथा-और(शिल्पी)कहिये राज वढ़ईआदि कारीगरलोग-और वैद्य पेशावाले-औरदासी दास-तथैव राजालोग और उनके भृत्यवर्ग सेवक आदि यहसवलोग अपने २ घर सूतक होनेपरभी (सद्यःशौच) कहातेहैं-अर्थात् इनकेलिये दशाहद्वादशाह आदि

अवधिकाबंधन नहीं है क्योंकि इनके संबंधीकामोंकी हानिसे अनेक संसारी फलसाधकतामें अप्रमेय हानिहोजावे इसलिये धर्मशास्त्र ऐसी आज्ञा नहीं देता जिस्सेपरमहानिहोजानेकी संभावनाहो क्योंकि धर्मशास्त्रकेवल कल्याणके आशयपर आरूढ़ होताहै १८६ ॥

अव आगे भूशुद्धिकहते हैं ॥

भूशुद्धिर्मार्ज्जनाद्दाहात्कालाद्गोक्रमणात्तथा । सेकादुल्लेखनाल्लेपाद्गृहंमार्ज्जनलेपनात् १८७ ॥

प्रक्ष०–भूशुद्धि –मार्ज्जनसे १ दाहसे२ कालसे ३ गोक्रमणसे ४ तथासेकते ५ उल्लेखनते ६ लेपते ७ गृह मार्जनसे १ लेपसे २ । १८७ ॥

भाभि०–विगड़ी हुई धरती इनसात प्रकारोंसे शुद्धहोती है एक तौ झारने वहारनेसे १ लकड़ी घासफूस उसपर फूँकदेलेसे २ (काल)से कहनेका यहअभिप्रायहै कि जितने दिनों या महीनाओंतक सूनीपड़ीरहने या उसपर वहुत मनुष्योंकी चलाफिरीहोनेसे उसधरतीका पहलादोप लेपादि अथवा जो कुछहो वहनाशहोसक्ताहो उतने कालमें आपही शुद्धहोजातीहै ३ ऐसेही जितने दिनोंतक गौओंके फिरने या बँधीरहनेसे दोपदूर होसके वह गोक्रमण कहाताहै ४(सेक)छिड़कावको भी कहतेहैं कही तौ दोपकी लघुता या गुरुताके अनुसार छिड़कावसेही शुद्धहोसक्ती है कहीं दोपकी अधिकता पर दूध गोमूत्र गोवरजल या गंगाजल इनसवका प्रसेक किया जावै या इनमें से एकही दोवस्तु जो हाथलगे या दोपके अनुसार छिड़की जावें तव शुद्धहो तिसको (सेक) कहतेहैं-अथवा दैवयोगसे उसपर वर्षाहोजाय सो यह सवसेउत्तम(सेक)है ५ (उल्लेखन) कर्म अर्थात् दोपके अनुसार उसधरतीको छीलडाले या खोदडाले६ (लेप) शब्दसे चूनाकी गचकरनी मट्टीकालेस गोवरआदिसे लीपनापोतना सवसंबंधितहैं७ यहसात प्रकार जो धरती शोधनके कहेगये इनमेंसे जहां जैसी संभावना या योग्यताहो उसके अनुरूप सवके सव संस्कार कियेजावें अथवा जहां एकही दोप्रकारोंसे शुद्धि समझी जाय तहां एकही दोका करना उचितहै सोई नीचे आधिकोक्तिमें देखो और नित्यके वर्त्तावेका गृहस्थानझारने और लीपने पोतनेसेही शुद्धहोताहै क्योंकि यह इतना संस्कार नित्यकरना उचित है इस नित्यगृहसंस्कार कर्मको साधारण धर्मकी शिक्षाओं मध्ये १५३ के श्लोकमें विस्तारसहित लिखचुकेहैं सोदेखलो १८७ ॥

अधि०–भूशुद्धिका प्रकार देवलऋपिनेभिन्न २ समझाकर कहाहै (तथाच) (यत्रप्रसूयतेनारीम्रियतेदह्यतेपिवा । चांडालाध्युपितंयत्रयत्रविष्ठादिसंगतिः। एवंकश्मलभूयिष्ठाभूरऽमेध्याप्रकीर्त्तिता। श्वशूकरखरोष्ट्रादिसंस्पृष्टादुष्टतांव्रजेत्। अंगारतुपकेशास्थिभस्माद्यैर्मलिनाभवेत्। पंचधावाचतुर्धावाभूरमेध्यापिशुद्ध्यति। दुष्टान्वितात्रिधाद्वेधाशुद्ध्यतेमलिनैकधा) अर्थात् जहां स्त्रीने प्रसव कियाहो १ जहां कोई मराहो २

है पर शास्त्रवक्ताका अभिप्राय यहां तक निर्लेप शुद्धिमें है किन्तु जो वस्तु चांडाल आदिने छूलीहोवे उसका शुद्धिविधान कहाहै सलेप शुद्धिके विषयमें अब आगे कहते हैं और अबतक जो कहींकहीं लेपका दृष्टान्त दियाथा वह केवल इसलियेहै कि थोड़ी बुद्धिवालोंकीभी समझमें सुगमतासे आजावे ॥

तक्षणंदारुशृंगास्थ्नांगोबालैःफलसंभुवां । मार्जनंयज्ञपात्राणांपाणिनायज्ञकर्मणि १८४ ॥

ऐ०-(दारु) कहिये काष्ठके पात्र-(शृंग) मेष महिषादि पशुओंके सींगोंसे बनेहुयेपात्र-(अस्थि) हाड़ अथवा दांत जो हाथी और बनवाराह यद्वा बारहसिंगा आदि जीवोंके वर्त्तावेमें आतेहैं तथैव हाड़के उपलक्षणसे शंख वा सीपी आदिभी इन सबोंकी शुद्धि (तक्षण) कर्मसे होती है और (फल) अर्थात् बिल्वादि फलोंकी खोपड़ी यद्वा नारिअर का ठीकरा यद्वा तोमड़ीका तूँबा इनसे बनीहुई वस्तुओंकी शुद्धि गऊके बालोंकी कूँची से यथा संभव जल मृत्तिका सहित रगड़नेसे होती है-यज्ञकर्मके बीच जो यज्ञसम्बन्धी अनेक सामान्यपात्र होते हैं तिनकी शुद्धि केवल हाथसे कुशाओंकी कूँची अथवा दशा पवित्र थांमकर जलमात्रसे होती हे किन्तु भस्म या मृत्तिकाका कुछ काम नहीं और (दशापवित्र) साफा वा अँगोछाको कहते हैं पर अंग पोंछनेका नहो किन्तु केवल नवीन वस्त्रका टुकड़ाहो-यज्ञोंका यहभी एक संस्कार भूतकर्मका अंगहै कि जिस रीतिसे कहा हो उसी रीतिसे करना किन्तु मनमौजी नहीं १८४ ॥

भधि०-(तक्षण) कर्म उसको कहते हैं कि जो कोई वस्तु घिसीजावे या छीलीजावे जिस्से कुछ पतली होजाय सोई कहाहै कि काष्ठ सींग हाड़ दांतोंके पात्र जो जूठ या चिकनाई आदिसे लिपटेहों और भस्म जल मृत्तिकादिसे धोने परभी लेप दोष नहीं दूर होसक्ताहो तो उतने स्थलको ऐसा किसी कंकण या लोहे आदिसे घसिडाले जिस्से वह लेप या चिकनाई या दुर्गंधि उसकी उड़जावे-परंतु जो जल मृत्तिकासेही रगड़ने से शुद्ध होसक्ताहो तो इस बातकी अपेक्षा नहीं है क्योंकि लेपवाली सामान्यभावसे सभीवस्तुका शोधना प्रथम जल मट्टीसे कहा हे-यथा (यावन्नापैत्यमेध्याक्तोगंधोलेपश्चतत्कृतः । तावन्मृद्वारिवादेयंसर्वासुद्रव्यशुद्धिषु) अर्थात्-सभी प्रकारकी द्रव्यशुद्धि के विषयमें जबताईं अशुचि वस्तु का लगाहुआ लेप या उसकी करीहुई दुर्गंधि दूर नहीं होवे तबताईं वारम्वार मृत्तिका और जलसे शोधन करता रहे-गऊ के वालोंकी कूँची यह एक निदर्शनमात्रहै किन्तु घोड़े के वाल और मूँज आदि औरभी उचित वस्तुओंकी कूँची संभवित है १८४ ॥

सोषैरुदकगोमूत्रैः शुध्यत्याविककौशिकं । सश्रीफलैरंशुपट्टंसारिष्टैःकुतपंतथा १८५ ॥

ऐ०-सोषैः अर्थात् सहित ऊपर मृत्तिकाके उदक और गोमूत्रों से शुद्ध होता है (आविक) जो ऊनी वस्त्र प्रसिद्ध है और (कौशिक) जो रेशमी आदि कहाता है वहभी-

(अंशुपट्ट) अर्थात् किसी देशके वृक्ष विशेषते उत्पन्न हुये वल्कल सूत्रों से बुनाहुआ वस्त्र सो यह श्रीफल सहित शुद्ध होता हे अर्थात् श्रीफल जो वेल तिसका औटाया जल अथवा गूदाही यथा संभव और पूर्वोक्त गोमूत्र और ऊपर मृत्तिकाभी इनसवों से शोधाजाय तव शुद्ध होवे-तथा (कुतप) कहिये पहाड़ी वकरी के रोमा से वुनाहुआ ऊनवस्त्र सो रीठासहित पूर्वोक्तचीजोंसे धोयाजाय तव शुद्धहोवै पूर्वोक्त अर्थात् ऊपर मृत्तिका और गोमूत्र इनमें रीठाका फेन भी मिलावे अथवा पहले पूर्वोक्तों से धोकर पीछे रीठाके फेन से शोधे यह भावहे-ऊपर मृत्तिकारेहको कहते हें जिसको धोवीखर्च में लातेहें-जहांरेह गोमूत्र वेल जलकई वस्तु कहींहें तहां कुछ यही सिद्धांत नहीं हे कि सव चीजें मिलालीजावें अर्थात् किसीसे पहले किसीसे पीछे किंतु जैसी उसकीक्रिया उसकामके ज्ञाता को संविदित हो सो उचित हे॥

भाषि०—इस श्लोकमें कही हुई क्रिया उस अवस्थामें करनी योग्य हे कि जवकोई चिकनाई आदिकी जूठ या अशुद्ध वस्तु का लेप दृढ़तर उन वस्त्रों में प्रवेश होगया हो-अर्थात् जहां किंचित्‌मात्र लेशहुआ हो तहां छींटा आदि साधारण क्रियाओं से काम चलावे क्योंकि उसप्रकारके वस्त्रोंसे गाढ़ीधोव नहीं सहीजाती किंतु गाढ़ीधोव से फट जाते या झड़जाते हें और शुद्धि का करना उस भांतिसे अपेक्षित हें जिस्से वस्त्रादि द्रव्यों का विनाश नहीं होनेपावे-सोई इसका प्रमाण देवल ऋषिने प्रथम तो यह कहाहे कि-(ऊर्णाकौशेयकुतपपट्टक्षौमदुकूलजाः। अल्पाशौचाभवंत्येतेशोपण प्रोक्षणादिभिः)-अर्थात् ऊनके रेशमके पहाड़ी ऊनके वृक्षकी छालिके क्षौम कहिये अतसी तन्तुके दुकूल कहिये और भी वारीक वहुमूल्य वाले वस्त्र यह सव अल्पाशौच होतेहें अर्थात् ये स्पर्श दोषमात्रसे किंचित् अशुद्ध समझेजाते हें इसलिये केवल धूपमें सुखाने अथवा जलसे छिड़क देनेसेही शुद्ध होजाते और आदि शब्द से कभी वायुके संयोगसेही किन्तु पवन चलतीमें फैलानेसे विना धूपकेभी शुद्ध होजाते हें कभी झाड़ने फटकारनेसेही शुद्ध होजातेहें जहां जेसा सम्भवहो-यह कह कर फिर उन्हीं देवल ऋषिने यहकहाहे कि (तान्येवामेध्ययुक्तानिक्षालयेच्छोधनैःस्वकैः। धान्यकल्कैस्तुफलजैरसैःक्षारानुगैरपि)-अर्थात्-वेही पूर्वोक्त वस्त्र जो किसी अमेध्य वस्तुमें लिटपजावें तो उनको भी अपने २ शोधन प्रकारोंमे धोवे तवशुद्धिहो परन्तु धोवी आदिसे नहीं धुवावे किंतु अपने हाथसे वनायेहुये धान्य कल्क अर्थात् वेशन या चूनपिट्ठी आदि जहां जिसकी योग्यताहो तिनसे और नींवू अथवा रीठाआदि फलकेरसोंमें जो क्षार कहिये रेह अथवा चूना कलई आदिसे मिलेहों तिनसे अपने हाथसेही धोवे-यद्यपि ऊर्णा वस्त्रको सवके साथमें पहलेही कहचुकेहें पर वेही देवल ऋषि अव ऐसे ऊन आदि वस्त्रोंको कहतेहें कि जिनमें कभी सूतकाभी संयोग हुआकरता हे अथवा चाहे

जहां कोई फूँकागयाहो ३ जहां चांडाल आदि कोई वसाहो ४ जहां विष्ठा आदि कोई से महामलका संसर्ग रहाहो ५ इस भांति (कश्मल) कहिये मलोंसे यद्दा उक्त दोषोंसे दूषित हुई धरती (अमेध्या) कहलाती है १ इत्येकभेदः अर्थात् इन पांचों दोषवाली पृथ्वी एक अमेध्यानामसे विख्यात होती है-और कुत्ता शूकरगर्दभ ऊंट आदि अशुचि जीवोंसे विगाड़ीहुई (दुष्टा) कहलाती है २ इति द्वितीयोभेदः-अंगार-तुष कहिये भूसी कूड़ा आदि-केश वाल-अस्थि हाड़-भस्मराख आदि और भी इन्होंसे विगड़ीहुई धरती (मलिना) कहाती है किंतु केवल मैली गिनीजाती है कुछ बड़े दोषवाली नहीं ३ इति तृतीयोभेदः-इन तीनों भेदमें जैसे यह तीसरा सबसे छोटा गिनागया ऐसेही पहला सबसे बड़ाथा और वीचका मध्यमदोषहै इनकीबड़ाई छुटाईके अनुसारशुद्धिसंस्कारभी कियेजातेहैं सोई ऊपर (पंचधा)इत्यादि श्लोकसेदेवलऋषिने यहकहाहै कि-तीन भेदोंके प्रथम भेदमें जिसधरतीको कई भांतिसे अमेध्याकहचुकेहैं वह(अमेध्या)धरती पंचधा अथवा चतुर्धा संस्कारोंसे शुद्धहोतीहै-और (दुष्टा)धरती जो विचले भेदमें कहीथी वहत्रिधा अथवा द्वेधा संस्कारोंसे शुद्धहोतीहै-और(मलिना)जो तीसरे भेदमें गिनती है वह एकधा संस्कारसेही शुद्धहो जातीहै॥ इसअर्थका स्पष्टभाव यहहै कि याज्ञवल्क्य ऋषिने १८७ के इसी श्लोकमें जो सातप्रकारके भूसंस्कार कहेहैं उनमें से पंचधा वा चतुर्धा वा त्रेधा वा द्वेधा और एकधा देखलेने-अर्थात् जहां मनुष्यफूँकेगयेहों या चांडालवसेहों इनदो लक्षणोंवाली(अमेध्या)पंचधासंस्कारोंसे किंतुदहन१ काल२गोक्रमण३सेक४उल्लेखन५इनपांचोंके करनेसे शुद्धहोतीहै-औरजहांमनुष्योंका प्रसूतहुआहो या जहांपरमनुष्योंके प्राणछूटेहों या जहांअत्यन्त विष्ठाआदिकी संगतिहुईहो इनतीन लक्षणोंवाली (अमेध्या) चतुर्धासंस्कारोंसे किंतु अभी जो पंचधाकहे थे इनमें से एकदहनकहिये दाहको छोड़कर शेषचारो संस्कारकरै तब शुद्धहोवै अमेध्याके चतुर्धा पंचधाका स्पष्टकथनहो चुका अब (दुष्टा) के त्रिधाद्वेधाको स्पष्टकहते हैं कि जहां कुत्ता या सूअर या गर्दभ बहुत दिनोंवसेहों ऐसी(दुष्टा)तो त्रेधा संस्कारों से किंतु गोक्रमण १ सेक २ उल्लेखन ३ इनतीनोंके करनेसे शुद्धहोतीहै-और जहां परऊंट अथवा आदि शब्दसे मुर्गाआदि और कोई साधारणजीव कुछदिनों वसाहो तो ऐसी(दुष्टा)द्वेधा संस्कारोंसे किंतु सेक १ और उल्लेखन२ इनदोहीसे शुद्धहोजाती है॥ आगे(मलिना)शेषरही वह एकधा संस्कारसेही किंतु उल्लेखनकर्मसे शुद्धहोजातीहै॥ इसप्रकार पांचसंस्कार याज्ञवल्क्यजीके कहेहुये यथास्थान कामआये पर उन्होंने सातकहेथे तिनमेंसे मार्जन कहिये(झारना)और(लेप)यह दोशेषरहे सोसर्वत्रकाममआवेंगे किंतु उनकहे हुये संस्कारोंके भी साथमें पीछेसे यहदोनों अधिक लगेरहते हैं अर्थात् इनके विनाकहीं काम नहीं चलता १८७॥

अब सिद्धान्न शुद्धिकहते हैं॥

गोघ्राते॓ऽन्नेतथाकेशमक्षिकाकीटदूषिते। सलिलंभस्ममृद्वापिप्रक्षेप्तव्यंविशुद्धये १८८॥

ऐ०—गऊके सूँघेहुये किंतु खासमारे हुये अन्नमें-तथा बाल मक्खी कीट पिपीलिकाआदि इनसे दूषितहुये अन्नमें उसकीशुद्धिके लिये यथासंभव अवसर या उसअन्नकी अपेक्षा अनुसारजल या भस्म जो अतिशुद्धपूजन आदि कर्मकी शेषहो या मृत्तिका जो निर्विकारहो सो किंचित् प्रक्षेपकरनीचाहिये-यहां पर अन्न जो संसिद्धहुआ भोजन योग्यहो तिसका चर्चाहै और अन्नशब्दसे कोई वस्तु जो खाने योग्यहो तिसकाभावहै और बालोंके निदर्शनसे ऊनवस्त्रादिकेभी रोमसंभवितहैं-और सलिलआदिका यथासंभव यह अपेक्षितहै कि जिसवस्तुमें जलके पड़नेसे वस्तु बिगड़े नहीं उसमें तो मुख्य जल काही प्रक्षेप उचितहै जैसे दही आदिमें-और जो वस्तु जलके पड़ने से बिगड़ सकतीहो जैसे बूराआदि इनमें भस्म या मृत्तिका उपकल्पहै १८८॥

अधि०—गौतम ऋषिने यहकहाहै कि (नित्यमभोज्यंकेशकीटावपन्नम्) अर्थात् जिसमें केशआदि या मक्खी मकरी आदि कोई कीट पड़गयाहो वह अन्न नित्य प्रति अभोज्यहै किन्तु कभी नहीं खानाचाहिये—सो उनके इसकथनके दोसिद्धांत हैं कि एक तो जिसके साथ मिलकर केशकीटादिभी रँधगयेहों या पकगयेहों उस अन्नका परित्यागही उचितहै किंतु उसकी शुद्धि नही होसकती—दूसरे यह कि पकेहुये संसिद्ध अन्नमें जब केशकीटादि कुछपड़जावे या जुठार जावे तब उसमेंसे उतना अन्नअभोज्यहै जितनेके निकासडालनेसे दृष्टिकी भ्रांति या ग्लानि दूरहोजावे अर्थात् उतनेको निकासडालने पीछे संस्कारकरै जो जल मृत्तिका भस्मसे कहाहै १८८॥

अब सोना चांदीके सिवाय अन्य धातुओं और घृतादि रसोंकी शुद्धि कहते हैं॥

त्रपुसीसकताम्राणांक्षाराम्लोदकवारिभिः। भस्माद्भि कांस्यलोहानांशुद्धि प्लावोद्रवस्यतु १८९॥

ऐ०—(त्रपु)कहिये रांग और जस्ता अर्थात् यसद-(सीसक,सीसा-तांबा और तांबे के उपलक्षण से पीतल भी इन सबोंकी शुद्धि क्षारोदक और अम्लोदक और केवल उदक से भी यथा संभव दोष विकारकी अपेक्षा अनुसार सबसे या एकहीदो उदकों से होतीहै-कांसा और लोहाइन्हों की शुद्धि भस्मोदक अर्थात् भस्म और उदकमिले हुये अथवा भिन्न २ से भी होती है-औरद्रवस्य नाम द्रव द्रव्यस्य अर्थात् पिघलेहुये बहते द्रव्य जो घृत सहत आदि अनेक प्रसिद्ध हैं उनकी शुद्धि (प्लव) कर्मसे होतीहै प्लावकहतेहैं वह चलनेको अर्थात् जिसपात्रमें रक्खेहुये घृतादि किसी द्रव्यको किसी प्रकार का अशुद्धि दोषलगेतो उसीपात्रमें वहीवस्तु अधिकमँगाकर ऊपरतक भरता चला आवे यहांतक कि वह उमड़कर पात्र के मुखमें से बहनेलगे तब उसमें मिल

कर वहभी शुद्धहोजायगा-अन्यथा जहां यह बात असभवहो तहां नीचे अधिकोक्ति में लिखाहुआ मनुजी का प्रकार करे १८९॥

अधि०-मनुजी का वाक्य-यथा(द्रवाणांचैवसर्वेषांशुद्धिउत्पवनंस्मृतम्)अर्थात्-सवही द्रवरूप वस्तुओं की शुद्धि (उत्पवन) कर्म कहा है-वस्त्रसे छानडालने को उत्पवन कहते हैं-इसके सिवाय जो वस्तु किसी प्रकार से दूपित नहीं है पर शूद्रजातिकेपात्र में रक्खीआईहै जैसे गांड़ेका रस सहत घी दूध आदि कोई द्रवरूप द्रव्य हो तौ वह बौधायन ऋपि के वाक्य अनुसार अपने घरके शुद्धपात्रमें भरलेने से पवित्र होजाताहै-इसके सिवाय शंखजी के वाक्य अनुसार उनवस्तुओं की शुद्धि (पुनःपचन) कर्म करने से होती है जो घृत के अनुरूप वस्तु हों और अधमजातिके हाथसे आई हों-घृत के अनुरूप कहने का यही सिद्धांत है कि जो वस्तु आगपर औटाने योग्य हो जैसा घी तेल दूध सहत रस आदि किंतु दही मट्ठा आदि नहीं क्योंकि ये अग्निपर नहीं धरेजासक्ते-भेद २-इसी १८९ श्लोकके अनंतरोक्त ऐक्यार्थमें क्षारोदक अम्लोदक से जो ताम्रादिकों की शुद्धिकहीहै सो कुछ नित्य शुद्धिका विषय नहीं है और (यहभी) नियम नहींहै कि क्षारोदक अम्लोदकसे सिवाय और किसी वस्तुसे न शुद्धि करीजाय क्योंकि (नित्यशुद्धि)का विषय तौ १८१ के श्लोक में ऊर्ध्व पात्र शब्द से सब धातुओं का दर्शाय चुके हैं अर्थात् यहां पर क्षारोदक आदि से अति कालांतर शुद्धि कहीहै कि जिन पात्रोंमें अतिकाल वितीत होनेसे काई आदि जटिजावें तिनकीशुद्धि क्षारोदक अम्लोदकसे करे—सोई मनुजीने भी यहकहाहै कि(ताम्रायःकांस्यरैत्यानां त्रपुणः सीसकस्यच। शौचंयथार्हंकर्त्तव्यंक्षाराम्लोदकवारिभिः) अर्थात्-ताँबा लोहा कांसा पीतल इनकेपात्रों वा रांगके पात्रों वा सीसेके पात्रोंका शौचकर्म किंतु परिशोधन करना सो क्षारोदक से अम्लोदकसे और केवलवारिनाम जलसे भी यथार्हकर्त्तव्यहै अर्थात् जैसीयोग्यतादेखे तैसाही उसमलकेअनुसार शोधनकरे-किंतु जो औरही किसीवस्तुसे होसकताहो तौ इनचीजोंकीभी कुछ आवश्यकता नहीं है—या—जबकभी विशेपदोपकी संभावनाहो तबकईचीजोंसे वारम्वारशोधनकरे—सोई यहवाक्यभी प्रमाणहै कि (गवाघ्रातानिकांस्यानिशूद्रोच्छिष्टानियानिच। शुद्ध्यन्तिदशभिःक्षारैःश्वकाकोपहतानिच) अर्थात्-गऊकेसूँघे चाटे या शूद्रकेजूठेकिये या कौवा कुत्ता आदिके विगाड़हुये ऐसे कांस्य पात्र क्षारोंसे दशवारशोधेजाकर शुद्धहोतेहैं-किंतु यह भावनहीं है कि दशप्रकारके क्षार इकट्ठेकरके शोधे-हां-जोकुछ दोचार अम्लोदक क्षारोदक आदि वस्तुमिलजावें तिनसे दशवार शोधनकरे यह भावार्थहै-और जोकि यहां पर केवल कांस्यकाचर्चा कियाहै सो भीयथार्थमें निदर्शनमार्गहै अर्थात् उसकासिद्धांत समीपरआरूढ़है क्योंकि काँसा ताँबे और राँग इनदोनोंसे बनताहै फिर उसीताँवेमें जसदकायोग होनेसे पीतल बनतीहै इस

हेतु काँसाकहनेसे सबआगये क्योंकि इनके परस्पर संवन्ध मिलरहे हैं-और जोकि यह वाक्यस्मृतियोंमें प्रसिद्धहै कि(भस्मनाशुद्ध्यतेकांस्यंताम्रमम्लेनशुद्ध्यति) अर्थात्-भस्मसे कांसाशुद्धहोताहै-और खटाईसे तांवा शुद्धहोताहै-इस वाक्यसे यद्यपि भिन्न २ विशेषता पाईगई परन्तु यह विशेषता कुछ इसलिये नहींहै कि इनकेसिवाय औरकिसी वस्तुसे न शोधे किंतु यह परमदशा दर्शाई है कि जव कांसा या तांवा किसीऔरवस्तुसेन साफ़ होसक्ता हो उस अवस्थामें यह दोनों वस्तु भिन्न २ इनकी निर्मलतामें उस्ताद हैं और यह भी नियमनहीं है यह पंक्तिजो ऊपरलिखचुके हैं तिसका साधारण शुद्धि वाक्यसे यह आशय है कि(मलसंयोगजंतज्जंयस्ययेनोपहन्यते। तस्यतच्छोधनंप्रोक्तं सामान्यंद्रव्यशुद्धिकृत्) अर्थात्-जिस किसी वस्तुमें ऊपर से लगेहुये किसीमलसेजो कुछ दोष लांछनदाग उत्पन्नभया हो जैसे वस्त्रादिकों में तेल आदिका चिह्न जमजाताहै यद्वा उसी वस्तुमें से कुछ विकार उत्पन्नभया हो जैसे मोर्चा काई आदिपात्र या शस्त्रादिकोंमें जमती है इसभांतिके दोष जहां२ जिस२ वस्तुके लगाने या जिस किसी उपायके करनेसेदूरहो सकतेहों तहां उनवस्तुओंका शोधन उन्हीं प्रकारोंसेकरै अर्थात् निर्विघ्नता से कार्य की सिद्धि करलेना यही मुख्य सिद्धांत है सो यह सभी प्रकारके द्रव्यों काशोधन प्रकार सामान्यभावसे कहा है-इसमर्यादकी अपेक्षा उस नियमकीभी दृढ़ता नहीं रही कि केवल क्षारोदक या अम्लोदक सेही धोवै तव शुद्धि हो-हां यह सिद्धांत है कि जव और किसीउपायसे शुद्ध नहीं होसक्ता हो तव क्षारोदक या अम्लोदक में आलिप्तकरके रख छोड़ें कुछ काल पीछे जलसे शुद्धकरलेवे तो शीघ्र मलछुटजायगा यह परमदशावतलाई है-इसीलिये बौधायन ऋषि का यह वाक्य सर्वोपरि प्रमाण है कि (देशंकालंतथात्मानंद्रव्यंद्रव्यप्रयोजनम्। उपपत्तिमवस्थांच ज्ञात्वाशौचंप्रकल्पयेत्) अर्थात्-जव किसी वस्तुका परिशोधनकरने की आवश्यकता आनिपरे तहां प्रथमतो-देश १ काल २ आत्मा ३ द्रव्य ४ द्रव्यकाप्रयोजन ५ उपपत्ति कहियेसिद्धान्त ६ अवस्था कहिये दशा ७ इनसातोंको जानिकर किंतु विधिपूर्वकइनका निर्णयकरके तवउसद्रव्यका शौचकर्म आरम्भकरै-किंतु द्रव्यशुद्धिके विषयमें सर्वत्र या सर्वदा कुछलिखेहुये नियमपरभी आरूढ़तानहीं होसकती क्योंकि किसीदेशमें या किसीकालमें या किसी अवसरपर कोईवस्तु ऐसीहै कि वह मिलही नहीं सकती या मिलसकतीहै परउसदेश अथवा कालसे विरुद्धहै या उसद्रव्यकी अवस्थासे विरुद्धहै इत्यादि अनेकसंकेत ऐसेहैं जिनके अनुसार कोई आग्रहकरने लगे कि अमुक हेतुसे अमुकद्रव्यकी शुद्धिनही होसकती अवइसका त्याग करना उचितहै सो नहीं इसीसे बौधायनजीने संदेहदूरकियाहै कि जैसादेश अर्थात् जैसीजगहपर वहकामहै तैसाही विचारकरै १ या जैसाकाल अर्थात् ऋतु अथवा वर्तमान समयका अवसरसंयोग २

याआत्मा कहिये शरीर यद्वामनबुद्धिसो किसकी किजिसको उसद्रव्यसेसंबंधहोतिसके अनुरूपविचारकरै ३ या द्रव्यजिसका शोधनकरना अपेक्षितहै उसकेअनुरूपक्रियाकरै ४ याद्रव्यका प्रयोजन कि इस द्रव्यसे यहप्रयोजन आगेकोपरैगा या वर्त्तमान हैउसकेअनुरूपकामकरै ५याउपपत्तिकिंतुसिद्धान्तइनसेभीलक्षणोंकाजैसाकुछसंभवित हो उसको भी शोचै ६ या अवस्था कहिये दशा किंतु जैसीदशामें परिशोधनकी आवश्यकताहुईहो उसके अनुरूप शोधनकरै(दृष्टांत)जैसे एकदशा तो ऐसे अवकाशकी है कि चाहें दशदिनों तकशोधनकरतेरहो कुछहानि नहीं है और एकदशा ऐसीहै कि तत्काल उसवस्तुसे आवश्यकताहै फिर अवस्था शब्द वयसकाभी वाचकहै अर्थात् जैसी उमिर उसवस्तुकीहो उसके अनुसार शोधनकरै (दृष्टांत)जैसे एक दुशालामें तैलादिस्नेहकागहिरा दागपड़गया जो विशेष परिशोधनसे छूटसकताहै परन्तु वहदुशाला ऐसाजीर्ण अवस्थाहै कि विशेष मर्दनसे झड़जायगा तो ऐसी अवस्थामें थोड़ाही शोधनकरना थोड़ादाग शेषरहजायगा तो चिंतानहीं परजो कदाचित् वहदाग दीप शेष तैलसे पड़ाहो जिसमें अनेक पतंग भस्महुयेथे और वहदुशाला ठेठकरपूजनके समय परिनियमित कामआताहै तो उसजीर्ण अवस्थामें भी अधिक शोधन करना उचितहै इत्यादि लक्षणभेद अपनी बुद्धिसे विचारलेने तब उसकाम का आरंभकरना इसप्रकरणमें जहां तहां कहीं क्षार और कहीं भस्मका चर्चा बहुधा आयाहै यद्यपि क्षारभस्मकोभी कहतेहैं परन्तु यहां उसमें भेदहै किंतु भस्मसे तो राखसमझनी और क्षार शब्दसे उचित खारोंका भावार्थहै जैसे रेहखार चूनाखार सज्जीखार आदि जहांपर जिसवस्तुके लिये जिस२ खारकी योग्यता लोकमें प्रसिद्धहो सोसमझलेना १८९॥ यहां ताईं १८१ से लेकर १८९ तक नौश्लोकोंसे जो शुद्धि विषय वर्णन किया सो सबसोना चांदी रत्नताम्रादि धातु पत्थर काष्ठ वस्त्र शस्त्रादि अन्नादि वस्तुओंके परिशोधन मध्ये चांडालादि स्पर्श और मलके संयोग और स्नेह उच्छिष्टादिके लेप और अमेध्यादिकी उपघात दशाओंपर आरूढ़था अबआगे जो १९० से प्रारंभकरते हैं वहशुद्धि विषय मनुष्यके शरीरों पर आरूढ़है किंतु शरीरोंसे अमेध्यका स्पर्श यद्वा लेपहोने पर शुद्धिका प्रकारकहतेहैं पर इसकोभी शरीरोंके उपलक्षण से पूर्वोक्तवस्त्र शस्त्रादि पात्रादि द्रव्योंपर यथा संभव संबंधितकरलेना यहसिद्धान्तहै॥

अमेध्याक्तस्यमृत्तोयैःशुद्धिर्गंधादिकर्षणात्। वाक्शस्तमंबुनिर्णिक्तमज्ञातंचसदाशुचि। १९०॥

अक्ष०—अमेध्याक्तकी शुद्धि मट्टी जलोंकरके गंधादि अपकर्षणसे—वाक्शस्तभीशुचिहोताहै—अंबुनिर्णिक्तभी शुचिहोवे—और अज्ञातसदाही शुचिहोताहै १९०॥

भा०—अमेध्याक्त कहिये अमेध्यलिप्त शरीर या जिनका चर्चापहले ९ श्लोकोंमें होचुका है उन्हींमेंसे कोई द्रव्य अमेध्यमलसे लिप्तजावे तिसकी शुद्धि मट्टी और

से वारम्वार यहां तक मंजन करने से होती है कि जबतक उसमें से गंधादि अर्थात् दुर्गंधि और दाग चिह्न मिटजावें-वाक्शस्तसे भी शुद्धिहोती है अर्थात् यथोक्त रीतों से शौचकरने परभी मनकीभ्रांति नही जावे तव ब्राह्मणादि शस्तवाक्योंसे शुद्धिहोतीहै यथा ('एतच्छुद्धमस्तु')-इत्यादि ब्राह्मण वाक्यसहित जलका छींटालगनेसे यद्वा (अपवित्रःपवित्रोवा)-इत्यादि वेद मंत्रोंसहित जलका छींटालगनेसे मनकीभ्रांतिभीदूरहोजातीहै तिसको (वाक्शस्त)-कहते हैं-अन्यथा अंवुनिर्णिक्तं अर्थात् जिनदशाओं की शुद्धिशास्त्रोक्त नहीं पाई जावै तहाँभी जलसे धोडालना कहाहै या जहां परधोडालनाभी असंभवहो तहां केवल जलकेछींटाओंसे शुद्धिहोवैगी-और अज्ञातदोष सदाही शुचिहोताहै अर्थात् जो कोईसी मलीनता देखने यद्वा सुननेमेंभी नहीं आईहो उसमें दोष नहीं है १९०॥

अधि०-प्राणियोंके शरीरसे उत्पन्नहुये १२ मलप्रसिद्धहैं वेही अमेध्य कहिये अपवित्रकहलातेहैं तथाच(वसाशुक्रमसृङ्मज्जामूत्रविट्कर्णविड्नखाः। श्लेष्माश्रुदूषिकास्वेदोद्वादशैतेनृणांमलाः) अर्थात्-वसाकहिये मेदा जो बसके नामसे प्रसिद्ध है १ शुक्र वीर्यको कहतेहैं २ असृक् रक्त ३ मज्जा जोहाड़की पोंगमेंसे मींगनिकलतीहै कुछ गीली कुछसूखी यह उसका स्वरूपहै ४ मूत्र ५ विट् विष्ठा ६ कर्णविट् कानकामेल ७ नख ८ श्लेष्म कफ खँखारआदि ९ अश्रु आँशू १० दूषिकाकीचर गीड़नेत्रमल ११ स्वेद पसीना १२ यह वारहमल मनुष्योंके कहेहैं परसभी जीवोंका उपलक्षणहै-इनके साथ मद्यभीअमेध्यमेंगिनतीहै सोईकहाहै कि(मानुषास्थिशवंविष्ठारेतोमूत्रार्तववसा। स्वेदोश्रुदूषिकाश्लेष्ममद्यंचामेध्यमुच्यते) अर्थात्-मनुष्यकाहाड़-शवंमृतक-विष्ठा-रेतः शुक्र वीर्य-मूत्र-आर्तवं रजोदर्शनकारक्त-वसा-वस-स्वेदपसीना-अश्रु आँशू-दूषिका नेत्रमलश्लेष्मखँखार-मद्यंच मदिराभी यहइतने अमेध्यकहेजातेहैं-ऐसेमनु और देवल आदि सबनेकहाहै और मनुष्य यह एकनिदर्शनहै किंतु सभीजीवोंकेसमझने पर जव तक शरीरमें लगेरहैं तवतक (अमेध्य)नहीं किंतु शरीरसे छूटजाने पर अमेध्य होतेहैं जैसे अंगुलीमेंसे नखकाट डालागया तव अशुद्धहुआ-इनकहेहुये अमेध्यमलोंसे जो वस्तु या अपना शरीरहीलिप्तहो जावे तिसको (अमेध्याक्त)कहतेहैं-अमेध्याक्तकी शुद्धि जैसे याज्ञवल्क्यजीने मट्टी और जलसे कही तैसेही गौतमजीनेभी यहकहाहै कि(लेपगंधापकर्षणैःशौचममेध्यलिप्तस्य)अर्थात् अमेध्यलिप्तकाशौचलेप और गंधकेअपकर्षणकरनेके उपायोंसे करे तहां वे उपायभी मट्टी और जलसेही संभवितहैं(यथा-सर्वशुद्धिषुचप्रथमंमृत्तोयैरेवलेपगंधापकर्षणंकार्यं) अर्थात्-सभीविषयकी शुद्धियोंमें पहलेमट्टी और जलोंसेही लेप और दुर्गंधिकोदूरकरे जब इनमे न होसके तव औरकिसी उपायसे जल मट्टी सहित-परन्तुकेवल नखके स्पर्शसे स्नान या मृत्तिकासे मंजन

की आवश्यकता नहीं शेषमलोंके स्पर्शमें स्नान और लेपहोजानेपर मृत्तिकासे मंज-नकरे-सोई कहाहै कि-पुरुषस्यनाभेरूर्ध्वंकरव्यतिरिक्तांगानामन्यामेध्यस्पर्शेस्नानम्-अर्थात्-हाथका मलकहिये नखतिसको छोड़कर अन्यअंगोंके अमेध्यमल पुरुषकेना-भिसे ऊपर किसी शरीर स्थलमें लगजावें तबस्नान करे-यह स्नानपूर्वोक्त मट्टी जल से माँजेपीछे समुझना-और नखको छोड़करकहनेका यहभावहै कि नखके स्पर्शमें केव-लउतने अंगकेप्रक्षालनकरनेसेही शुद्धिहोजातीहै-औरनाभिसे ऊपरकहनेका यहआ-शयहै कि नाभिसे नीचे किसी अंगस्थलमें जो स्पर्शहोवे तो केवल उतने अंगका प्र-क्षालनकरनेसेही शुद्धि होजातीहै इसी श्लोकार्द्धका दूसरा अर्थ यहभीहै कि-पुरुषके नाभिसे ऊपरके सब अंग (करव्यतिरिक्त) अर्थात् हाथको छोड़कर ऊपरके और किसी अंगमें जब(अमेध्य) मलकालेप या स्पर्श होजावे तबस्नानकरे किंतु जो हाथहीमें मल कास्पर्श होजावे तो हाथके माँजने धोनेसेही शुद्धिहोजायगी-सोई इसअर्थकी दृढ़ता में यह वाक्यभी प्रमाणहै कि(ऊर्ध्वंनाभेःकरौमुक्तायदंगमुपहन्यते। तत्रस्नानमधस्तात्तु प्रक्षाल्याचम्यशुद्ध्यति)अर्थात्-नाभिके ऊपरले अंगोंमें हाथोंको छोड़कर और कोई अंग जो दूषितहो जावे तब उसके धोने माँजने पीछे स्नानभीकरे और नाभिसे नि-चले अंगोंमें कहीं मलका (स्पर्श)होजावे तब उतनेअंगकोधोकर और आचमनआ-दिकरके शुद्धहोजाताहै-आचमन आदि पवित्रीकरण क्रियाओंकी योजना सर्वत्र समुझलेनी जहां नहीं भी कहीहो-परन्तु इस अर्थसे और अर्थकी अनंतरोक्त दृढ़ता के प्रमाणसे भी वह पहला अर्थ असंगतहुआ जाताहै जिसमें नखोंका चर्चाऊपर आयाथा-तथापि वह असंगत नहीं किंतु दोनों अर्थ यथार्थ हैं क्योंकि वहांपर नखों के स्पर्शमें स्नानकी आवश्यकता नहीं पाई गईथी सो प्रथम तो प्रत्यक्षभावमेंभी न-खऐसा महामलीन नहींहोता जिसकालेप शरीरमें होसके जिस्सेस्नानकी आवश्य-कतापाईजाय दूसरे यह प्रमाण है कि-देवल ऋषिने स्नानकी आवश्यकताके साथमें नखोंकानाम तक नहीं लिखा (तथाचदेवलः-मानुषास्थिवसांविष्ठामार्तवंमूत्ररेतसी। म-ज्जानंशोणितंस्पृष्ट्वापरस्परस्नानमाचरेत्॥तान्येवस्वानिसंस्पृश्यप्रक्षाल्याचम्यशुद्ध्य-ति) अर्थात्-मनुष्यकाहाड़-असा-विष्ठा-आर्तवरजोरक्त-मूत्र-वीर्य-मज्जा-शोणितरक्त-यह पराये शरीरसे उत्पन्नहुयेहों तो इन्हें छूकर स्नानकरे-और येही जो अपने शरीरसे उत्पन्नहुयेहों तो इन्हेंछूकरधोने और आचमनकरनेसेही शुद्धहोजाताहै किंतु स्नानकी आवश्यकता नहीं-अब ध्यानकरना चाहिये कि मल वस्तु औरभी कईशेषहैं परयहां उन्हींका चर्चा कियाहै जिनसे स्नानोंकी आवश्यकता थी इसलिये नखोंकाभी चर्चा इनमें नहीं आया सोई उसपहले अर्थका भावथा-यहांभी यद्यपि मनुष्यकेनामसे हा-ड़आदि कहेहैं परन्तु वसाके उपलक्षणसे सभी जीवोंका भावार्थ समुझलेना क्योंकि

वसामनुष्यके शरीरमें यद्यपिहोतीहै पर उसका स्पर्शके लिये मिलना या होना असंगतहै-और यह बात जो अक्षरार्थ यद्वा अभिप्रायार्थमें कहीथी कि (अज्ञात)का दोप नहीं है-पुनि-प्रायश्चित्त विषयमें यहभीकहाहै कि (संवत्सरस्यैकमपिचरेत्कृच्छ्रंद्विजोत्तमः। अज्ञातभुक्तशुद्ध्यर्थंज्ञातस्यतुविशेषतः) अर्थात्-द्विजातीमात्रमें जो कोई अपने कोजातित्वसे यद्वा आचारसे उत्तम समुझाकरताहो या औरोंकेनिकट उत्तम समुझा जाताहो वह द्विजोत्तम होताहै ऐसे द्विजोत्तमको यह उचितहै कि वह अज्ञातभुक्तशुद्धिके लिये संवत्सरमें एकवार तौ अवश्यही कृच्छ्रचांद्रायणनामका व्रतकर डालाकरै और जानेहुये दोषका प्रायश्चित्त विशेष लक्षणसे किंतु जैसी उसकीविधि जहांकहीं लिखीहो तिसके अनुसारकरे-अज्ञातभुक्तशुद्धि यह कि विनाजाने किसीके हाथसेदूषित अन्नखायाहो तिसकी शुद्धिसंवत्सरके अंतमें एकवार चांद्रायण करनेसे होजाती है फिरचाहे कुछखायाहो या न खायाहो पर केवल अपने शरीरके तेजोवलवुद्धिआदिकी उन्नतिके हेतुसे मनकी भ्रांति दूरकरदेवै-इसवाक्यसे उसमें यह विरोधदृष्टि आताहै कि यहां तो अज्ञातकाभी प्रायश्चित्त कहा और वे कहतेहैं कि अज्ञातका दोप नहीं वह सदाही शुचिहोताहै-परन्तु यहविरोधदृष्टि वृथाहै अर्थात् विरोधकिंचित्भी नहीं है क्योंकि यह प्रायश्चित्तकेवल अज्ञातभुक्त विषय पर कहाहै किंतु इसमें खाने पीनेका चर्चाहै और वहवात केवल अमेध्यलिप्तके ऊपर कहीहै किंतु उसमें शरीर शुद्धिका चर्चाहै तिसके लिये यह कहाहै कि विनाजाने कोई अमेध्य मल शरीरमें छूजावै या शरीरके उपलक्षणसे औरही किसी वस्त्र या पात्रादिक द्रव्यमें छूजावै तौ उसका दोप नहीं है १९० ॥

[illegible]गोतृप्तिकृत्तोयंप्रकृतिस्थंमहीगतम्। तथामांसंश्वचांडालक्रव्यादादिनिपातितम् १९१ ॥

[illegible]गोतृप्तिकृत्-अर्थात् एक गऊ जिसकेपीने से छकजावै इतनाजल जंगलकी पृथ्वी में पड़ाहुआ अर्थात् किसी निर्मल निम्न स्थानमें भराहुआ शुचि होताहै किंतु उसमेंसे आवश्यकदशा पर आचमन आदि करलेना दोपनहींहै पर उसदशामें किवह जल प्रकृतिस्थहो अर्थात् ज्योंकात्यों बनरह्वाहो किंतु नतो उसका रूप विगड़ा हो न रसमें अंतरहुआ हो न दुर्गंधिआनेलगीहो न उसमें कोई गुदाआदि प्रक्षालनकरताहो और न उसकेनिकट चांडालोंका संसर्गहो-तैसेही श्वान चांडाल क्रव्याद आदि इन्होंसे निपातित मांस भी शुचि होताहै अर्थात् मांसके आहारी लोगों के लिये जो २ मांस खाने योग्य पहले कहचुके हैं उन्हीं में से कोई जीव ऐसाहो जिसको कुत्ताने मारगिरायाजैसे विरले मांसभक्षीकुत्तासे आखेटकरवाते हैं सो वह उनके निकट शुद्धमें गिनती है पर जो कुत्ताने उसमें से कुछखाया भी हो तो अशुद्ध है-एवं चांडालने मारा हो पर उसमें से खायानहीं तौ शुद्ध में गिनती है-एवंक्रव्याद कहिये मांसभक्षीपक्षी

तिसका माराहुआ जैसे श्येन किंतु वाजका गिराया हुआ जो वाज ने खाया नहीं हो तौ पवित्र में गिनती है ऐसेही आदि शब्द से और भी पुल्कस आदि जातोंके हाथ का माराहुआ समुझलेना १९१ ॥

भधि०—गोतृप्तिमात्रजल जोकहा सोयह परमन्यूनतर मानवतलायाहै किंतु इस्से अधिक जितनाहो उतना अधिक पवित्रहै पर इस्से कमतीनहीं और यहमर्याद उस में नहीं जो नदी या कूपादिमेंसे भराहुआ आताहै किंतु उसके लिये (देवल)जीने यह मर्याद कहीहै कि(उद्धृताश्चापिशुद्ध्यंतिशुद्धैःपात्रैःसमुद्धृताः।एकरात्रोषिताआपस्त्याज्याःशुद्धाअपिस्वयम्)अर्थात्-भरेहुये जलभी शुद्धहोतेहैं जो शुद्ध पात्रोंसे भरलिये जावें किंतु जवकहीं दूरसे भराहुआ जल मँगायागया और मार्गमें अधमादि जातों का स्पर्श होजानेकी संभावनाप्रवलहै तवउसजलको मँजेधुये अन्यपात्रोंमें वदलकर भरलेवे तौवहभी शुद्धहोजाता है-और एकरातिका वसाहुआ जलचाहै आपसेआप यह शुद्धभीहो पर दूसरे दिवस उसका त्याग करदेना उचितहै-और चांडालआदिके वनायेहुये जलाशयों मध्ये शातातपऋषिने यहकहाहै कि(अंत्यैरपिकृतेकूपेसेतौवाप्यादिकेतथा। तत्रस्नात्वाचपीत्वाचप्रायश्चित्तंनविद्यते)अर्थात्-चांडालों करकेभी वनाये हुयेकूपमें या सेतुमें तथा वावड़ी आदिमें भी स्नानकरके और पीकरभी प्रायश्चित्त नहीं पहुँचताहै अर्थात् प्रायश्चित्तकरने की आवश्यकता नहीं-परयह दोषका अभावकेवल उनकेवनायेहुये पर कहाहै किंतु जिसजलाशय परचांडालोंका संघातरहताहो चाहे वह उत्तमजातिका वनायाहो पर उसमें स्नान अथवा पानसे प्रायश्चित्तकी आवश्यकता प्रत्यक्षहै-मांसपक्षमें जो कुछकहा वह संदेहका स्थल नहीं है क्योंकि धर्मशास्त्र संसार और समयकी रीति अनुसार चलताहै यद्यपि मांसके प्रकरणमें अत्यंत भी हाभी लिखचुकेथे परन्तु मांसभक्षीलोग मुँहदेखतेसे रहजाते इसलिये यहां पर आन कर उनकाभी मान रखदियागया यहांतक कि कुत्ता और कौवा और चांडाल आदिभी उनके सहायक उनकी आरामके लिये वतलादिये क्योंकि धर्मशास्त्रके हृदयमें यहदयाभाव और कोमलता प्रविष्टहै कि वह किसीका अपमान नहीं करसकता और न किसीको दुःख देसकता है किंतु उसकी प्रतिज्ञा यहीहै कि मैं संसारका दुःख दूरकरूं और जो कोई मेरा आदरकरै उसकानिरादर मैं कभी नहीं होनेदूं १९१ ॥

रश्मिरग्नीरजश्छायागौरश्वोवसुधानिलः । विप्रुषोमक्षिकास्पर्शेवत्सःप्रस्नवनेशुचिः १९२॥

ऐ०—(रश्मिः)अर्थात्सूर्यआदि प्रकाशमान अन्यवस्तुओंकीभीकिरण-(अग्नि)जोचिता आदिकीनहो-(रज)धूलिजो उड़कर आयाकरताहै-(छाया)जो वृक्षआदिकी शीतलआवश्यकहो-गऊ-घोड़ा-(वसुधा)धरती जो पड़ीहुई निर्लेप जंगलकी-(अनिल)वायु-(विप्रुषः) अर्थात् ओसकेबूँद जो अतिमलीनवस्तुपर नहो-यहसव कहीहुईचीज़ें यद्यपिचांडाल

आदिनेभी छुईहों तौभीशुद्धहैं किंतु उनकी छुईहुई फिरअपनेको छूनीपड़ें तौदोषनहीं-ऐसेही मक्खी यद्यपि मलीनवस्तुपरभी वैठआतीहै परउसकेछूजाने या अपनेऊपर वैठ जानेका दोषनहीं-ऐसेही वछरा(प्रश्नवन)कर्म किंतु दूधउतारनेमें पवित्र है अर्थात् वाख मेंभरेहुये दूधके उतारनेमें वछराकीलार जोदूधमें मिलजातीहैतिसकादोषनहीं १९२॥

अधि०-(रज)धूलिभी यद्यपि पवित्रकहीहै तथापि जोर धूलें निषेधकरीहैं तिनकाविवेक उचितहै-तथाच(श्वकाकोष्ट्रखरोलूकशूकरग्राम्यपक्षिणाम्। अजाविरेणुसंस्पर्शादायुर्लक्ष्मीश्चहीयते)अर्थात्-कुत्ताके देहमें की धूलि कौवाके परोंमें की-ऊंटकेदेहकी-गदंभके शरीरकी-उलूक उल्लूनाम पक्षीके परोंमेंकी-सुअरके शरीरकी-ग्राम्यपक्षी मुर्गा आदि तिनके देहकी-वकरी और भेड़के शरीरकी-इतनी धूलोंके स्पर्शमात्रसे आयु और लक्ष्मीभी कमहोतीहै किंतु घटती जातीहै इसलिये उनका वचावकरना उचितहै पर ऐसावचाव नहीं करना जिस्से किसीसमय किसी कार्य्यमें हानि प्रकटहो १९२॥

अजाश्वयोर्मुखंमेध्यंनगोर्ननरजामलाः। पंथानश्चविशुद्ध्यंतिसोमसूर्यांशुमारुतैः १९३॥

ऐ०-अजावकरी-अश्वघोड़ा इन दोनोंका मुखपवित्रहै-परन्तु नगोःकिंतु गऊका मुखपवित्र नहीं है-ननरजामलाःअर्थात् नरदेहसे उत्पन्नहुये मल पवित्र नहीं हैं-और पंथाशुद्धहोतेहैं सोमांशु १ सूर्यांशु २ मारुत ३ इनतीनोंसे अर्थात् चांडाल आदिमलीनोंसे छुयेहुये किंतु चलेहुये मार्ग रास्ते यहरात्रिमें चन्द्रमाकी किरणों और वायुके स्पर्श मात्रसे आपही शुद्धहोजातेहैं और दिनमें सूर्यकी किरणों तथा वायुके लगनेसे विशुद्धहोते रहतेहैं इसलिये उनका दोष नहीं अर्थात् उनपर कोईचलो १९३॥

अधि०-मार्गोंके शुद्धहोजानेका रूपक दृष्टांत सहित जैसे किसीवस्ती या वाजारके मार्गमें किसी मरेहुये पशु अथवा कुत्ताआदिको चांडाल घसीटकरलेगये तो प्रत्यक्ष लोकदृष्टिसे वह मार्ग अशुद्ध समझागया तहां जोतात्कालिक अवश्यचलने फिरने वाले साधारण वाजारू लोगहैं उनकेलिये तौतत्काल उसकीशुद्धिकार्यकी आवश्यकता अनुसार संभवितहै क्योंकि सूर्यका प्रकाश और वायुका संचार तौसर्वत्रहोहीरहा है या जो रातिहै तो चन्द्रमाका प्रकाश अथवा वायु और चन्द्रमाके उपलक्षणसे उसके अभावमें तारागणभी अंगीकारहैं-अथवा जो कोई (स्नातक) वा (विवेकी) है उसके लिये इतने कालमें शुद्धिहोवेगी कि जव कोई और साधारण मनुष्य यद्वा गऊआदि पुनीत जीव पहले उसदूषित मार्ग परचला जावे तव उसके मनकीभ्रांति दूरहोवेगी अन्यथा जहां किसी नरसमूहको(ठाकुर) का विमान किसी उत्सवसे याविवाहको उद्यत हुये (वर) का विमान लेजानेकी आवश्यकता है और सिवाय उसदूषित मार्गके कोई और मार्गभी ऐसा नहीं कि उसेछोड़ वहांको लेजावें और मनकीभ्रांति लोकदृष्टिसे दूरनहीं होतीहै तहां एक याम काल यद्वा चार घटिकाके अनुमान या दोही घटिका

के परिमाण ताईं सूर्यकी किरणों और वायुके संघातसे वह दूषितमार्ग शुद्ध होजावेगा-यहां पर विलंबकालकी अधिकता वा न्यूनताको वायुकी मंदता और प्रबलताके अनुसार यथाक्रमसे जानलेना क्योंकि उस्से वहदूपित धूल उड़जाती है-जहां जिस कालमें वायु नहींहोवे और सूर्यमें किरणें भी बादलके प्रभावसे न होवें तहां उसदूषित पंथा पर एक सहस्रआदमियों के निकलनेसे परम शुद्धिहोजाती है इसमेंभीकार्यकी गुरुता लघुताके अनुरूप थोड़ेभी मनुष्योंके निकलनेसे शुद्धिहोजाती है-जिस कालमें वर्षाभीहोरहीहो तहां कोईसाविवेक आवश्यक नहीं है क्योंकि वहदैवीगतिसे आपसे आप शुद्धिहोरही है १९३॥

मुखजाविप्रुषोमेध्यास्तथाऽचमनविंदवः। श्मश्रुचास्यगतंदंतसक्तंत्यक्त्वाततःशुचिः १९४॥

ऐ०-मुखजा मुखसे उत्पन्नहुये विप्रुषकहिये लारकेबूँदमेध्यहैं अर्थात् अशुद्ध नहीं पर उसी अवस्थातक जो मुखमें बनेरहें किंतु देहपर गिरनेसे अशुद्धहैं तथा आचमनबिंदु किंतुकुल्लाकरते हुये जो छींटे उड़कर पैरोंपर गिरतेहैं वे भी अशुद्ध नहीं तथा श्मश्रुकहिये डाढ़ी मूँछके बाल येभी आस्यगत मेध्यहैं अर्थात् मुखमें प्रवेशहुयेअशुद्ध नहीं कहलाते-तथा दंतसक्त जो दांतमें लगीहुई अन्नादि वस्तु वह जबतक दांतमें लगीरहे तबतक मेध्यहै पर जब छुड़ाई जावै या आपही छूटपरेतब अमेध्यहोजातीहै अर्थात् छूटपरे पीछे उसका त्यागकरै तब आचमनकरिके शुद्धहोवे १९४॥

भधि०-मुखविप्रुषों के मध्ये गौतमजीका वाक्य-यथा-नमुखेविप्रुषउच्छिष्टंकुर्वंतिन चेदंगेनिपतंति-अर्थात्-मुखमेंविप्रुष रहतेहुये अशुद्ध नहीं करतेपर जो अंगपर गिरने नहीं पावें-दांतमें लगाहुआ अन्न जब तक दांत में लगारहे तबतक दांत के समान गिनाजाकर अशुद्ध नहीं समुझाजाता-इसके मध्ये गौतमजीने यह कहा है कि-दंत शिलष्टंतुदंतवदन्यत्रजिह्वाभिमर्शनात्प्राक्च्युतेरित्येके-अर्थात्-दांत में लगाहुआ दांत के तुल्य है पर जिह्वाभिमर्शनसे अलहदे किंतु जब तक उसमें जीभकी नोक नहींलगाई जाय और कोई यह कहतेहैं कि गिरनेसे पहले किंतु जब तक दांत में से न छूटे तबतक दांतके समान गिना जायगा कुछ जीभलगनेपरभी नियमनहीं-परंतु समय २ के अनुसार यह दोनों मत ठीक हैं-शातातपऋषिकावाक्य-(तांबूलेचफलेचैवभुक्तस्नेहावशिष्टके। दंतलग्नस्यसंस्पर्शेनोच्छिष्टोभवतिद्विजः)-अर्थात्तांबूलके खानेमें फलके खानेमें भोजनके स्नेहावशिष्टमें किंतु भोजन करनेसे घृत आदि चिकनाई जो मुख मंजनकरने परभी लगीरहजातीहै तिसकी दशामें द्विजाती जूठा नहींहोताहै १९४॥

स्नात्वापीत्वाक्षुतेसुप्तेभुक्त्वारथ्योपसर्पणे। आचांतःपुनराचामेद्वासोविपरिधायच १९५॥

ऐ०-स्नानाकिये पीछे कुछ शर्बत आदि पानकिये पीछे छींक आनेपीछे निद्रालिये पीछे कुछ भोजन किये पीछे मार्ग चलकर विश्राम लेने में वस्त्रों को उतारने और प-

हिरने पीछे भी आचमनकिया हुआ फिर आचमन करै अर्थात् चाहे पहले से आचमनकरिके शुद्धभीथा परइतनीवातोंकोकिये पीछेआवश्यकफिर आचमनकरे १९५॥

अधि०—शास्त्रांतरम्-यथा(चर्वणेत्वाचमेन्नित्यंमुक्त्वातांबूलचर्वणम्। ओष्ठौविलोमकौस्पृष्टावासोविपरिधायच)-अर्थात्-कोई वस्तुयद्वा तांबूलभीचवानेसेपहले और तांबूलको चबाकर थूकदेने पीछे सदाही आचमनकरै-दोनों ओठों को परस्पर उलटे सीधे ओठसे ओठलगाकर और वस्त्रों को उतारकर और पहिरके भी आचमन करै-वशिष्ठऋषि का वाक्य-यथा-सुप्त्वाभुक्त्वाक्षुत्वास्नात्वापीत्वारुदित्वाचाचांतःपुनराचामेत्-अर्थात्-सोवने पीछे कुछखाने पीछे छीकआने पीछे स्नानपीछे कुछपानकिये पीछे रोनेपीछे आचमनकियाहुआभी फिर आचमनकरै-मनुजीका वाक्ययथा-(सुप्त्वाक्षुत्वाचभुक्त्वाचष्ठीवित्वोक्त्वानृतंवचः।पीत्वापोध्येष्यमाणश्चआचामेत्प्रयतोपिसन्) अर्थात्-सोयकर छींककर खायकर खँखारिकर वृथावचन वोलकर जलोंको पीकर और पढ़नेको उद्यत हुआ मनुष्य सावधानीके होतेहुये भी आचमनकरै-शातातप ऋषिका वाक्य-यथा-भोक्ष्यमाणस्तुप्रयतोद्विराचामेत्-अर्थात्-भोजन को उद्यतहुआ मनुष्य चाहै पहलेसे शुचिभी हो पर भोजनसे पहले दोवारआचमनकरलेवै-स्नान और जलादिकोंकेपानसे पहले एकवार आचमनकरै पढनेकेआरम्भसेपहले दो वारआचमन करै-यद्यपि आचमन शब्दका अर्थ शास्त्रोंमें सर्वत्र जहां तहां यही कहाहै किहथेली पर जल रखकर आचमन किंतु जलका पीजाना-सोई मर्यादा परिपाटीमें भी १८।१९।२०।२१ इन चारों श्लोकों से याज्ञवल्क्यजी के आशय अनुसार लिखचुकेहैं और वहीविधि ठीक है पर यथार्थ में जो भाव यहां पर १९५ श्लोक में कहा गया अथवा जहांकहीं आचमन का चर्चा आया हो तहांसर्वत्र गंडूप और मुख प्रक्षालनसे अपेक्षाहै(कुतर्क) भला ऋषियों के वाक्य पर खाक डालना यह कहां की विज्ञता है क्योंकि जब चारों वर्णों को भिन्न २ आचमन की मर्यादें और उनके हृदय कंठ तालू आदि स्थान भी कहे और ब्राह्मतीर्थ आचमन को बतलाया औरयहां पर भी अभीलिखचुके हो कि भोजनसे पहले दोवार संध्यासे पहले दोवारस्नान औरपानसे पहले एकवार आचमन लेवै फिर इसवात में कुल्ला और मुख मंजनसे क्या अपेक्षा है—मुखभंजन चपेटिकामुनो-खाकनहीं किंतु ऋषियों के वाक्य पर अज्ञानियों की कुबुद्धि रूप जाले का आवरण दूर करने को मयूर पक्षों का व्यजन परिवर्त्तन है क्योंकि-(यदेवरोचतेयस्मिंस्तस्मिन्नेवप्रयुज्यते। लवणंनचतांबूलेखदिरश्चनव्यंजने)-अर्थात्- जो वस्तु जिसमें रुचती है उसीमें प्रयुक्तकरी जाती है कोई कहे कि पानों में नोन लगायाजाय सो नहीं होसक्ता या यहकहे कि शाकादि व्यंजन वस्तुमें लवणके स्थानकत्थाडालाजाय तो क्या यह वाक्य भी प्रमाण होसक्ता है चाहे वह कहनेवाला ऋषियोंकाभी परम

ऋषीश्वर हो कुछ उसके वाक्य का प्रभाव अंगीकार नहीं है किंतु लोक प्रचार का सौगम्य और शास्त्रोक्त वाक्यों की सात्म्यता पाई जावे तभी दृढ़ विश्वास और आस्तिकता भी प्रमाण में आती है-परंतु यह अज्ञानियों की बुद्धि भ्रमता है कि अमुक ऋषीश्वर ने यह कहा-कोई ऋषिअसंभव नहीं कहसक्ते किंतु उस आशय का पूर्वापर आलोचन करना जिज्ञासुके आधीन है-जो शास्त्रोंमें ऐसीही कठिनतानहीं होती तो क्या केवल अक्षरार्थ से प्रयोजन की सिद्धि नहीं होसक्ती थी-जिसपर यह कुतर्क आरोपित करते हो वह आचमन भी आचमन कहलाता है पर उसका अवसर पूजनादिक स्थानों पर आरूढ़ है दूसरा गंडूष और मुख प्रक्षालन को भी आचमन कहा करते हैं उसीसे यहां पर अपेक्षा है क्योंकि जो गंडूष को न मानोगे तो इसवात का उत्तर देना होगा कि इसी १९५ श्लोक में कहेहुये शर्वत आदिके पीनेवालेजव हथेलीपरधरेहुये तीन बूँद जलको कंठ या तालू तक पहुँचाकर चीखलेवेंगे तवक्या मूँछ या ओठों का चिपचिपाहट दूर होसक्ता है या सोनेवाले जिनकी आंखों और ओठों पर लिबलिबाहट उतर आया है वे तीन बूँद जल पीकरउलटा उसमल को हृदयमें प्रवेश करदेवेंगे तो इस्से क्याशरीर की मलीनता नहीं समुझोगे ऐसेहीछींकने वाले या कुछ खानेवाले या राहके चलनेवाले जिनके मुखप्रत्यक्ष अशुद्ध होजाते हैं वे उस तीन बूँद जल को चीखकर क्योंकर ग्लानि रहित होसक्ते हैं या तांबूलके चवानेवाले या ओठों को उलटे ओठ पर फिरानेवाले जिनके ओठलारसे सनजाते हैं या रोनेवाले जिनका सारामुख आंसूसे भींगजाता है या वहुतभांति अनृत कहिये वृथावाद वकने से जब ओठों के जोड़ वा किनारोंपर दुर्गंधि सहित लारजमजातीहै क्या तीनबूँद जल पीकर उसमलको भीतर प्रवेश करलेने से पवित्र होजावेंगे-कदाचित् फिर भी यह कुतर्क करसक्ते हो कि जो वह वात नहींथी तो इसभांति से न्यारे वार क्यों लिखाहै कि भोजनसे पहले दोवार संध्यासे पहले दोवार स्नान वा पानसे पहले एक वार आचमन करे-तहां यह सिद्धांतहै कि प्रथम तो आवश्यकता जाने तो चरण भी धोवे नहीं तो कुल्ला और मुख प्रक्षालन विधिपूर्वक जलसे आँखों पर्यंत कानों पर्यंत करिलेवे फिर उसरीतिसे एकया दोवारजलपीवे तव आचमन कहलाता है सोई श्लोकोंमें यह कहा है कि-आचांतःपुनराचामेत्-अर्थात्-आचमन कियाहुआ भीफिर आचमनकरे-इसी प्रकार सर्वत्र हेतुगर्भित आशयहुआ करताहै जो ऋषीश्वर लोग हेतु गर्भित नहीं कहते तो छोटे २ श्लोकों में इतनी वड़ी २ वातों को क्योंकर कहसक्ते जिनका सिद्धांत दो २ पत्रों में पूरा होता है-यद्यपि यह सिद्धांतथोड़े से कथन में भी लिखाजासक्ताथा परंतु पाखंडियों की वहुताइत से लाचारीहै कि वे साधारण वात को भी पाखंड की निश्रेणी से आकाश पर चढ़ाते और निज बुद्धि की जड़ता

से निरक्षर लोगों को भ्रमजालमें फँसातेचलेआते हैं ऐसेही आचारका भ्रष्टाचार होकर नास्तिकताने बड़ाई पाई इस्से इतना विस्तार करना पड़ता है कि अब ऐसी उपकारी दशापरभी किसीको संदेह नहीं रहनेपावे-कोई यह उच्चारणकरे कि हम थोड़े कथनको समझते हैं-वह इसवातका ठेकाकरे कि मुझसेही सब होंगे १९५॥

रथ्याकर्दमतोयानिस्पृष्टान्यंत्यश्ववायसैः। मारुतेनैवशुद्ध्यंतिपक्वेष्टकचितानिच १९६॥

ऐ०-रथ्यामार्ग बड़ी छोटी सवतरहकी तिनमें कर्दम कहिये कीचड़ और तोय कहिये जल इत्यादि औरभी जो कुछ पड़ाहो यह सब चांडालों वा कुत्ताओं वा काकोंसे छुयेभीहों पर केवल वायुसेही शुद्ध होतेरहते हैं किन्तु और कोभी इनके छूजानेमें कुछ वड़ाभारी दोष नहीं ऐसेही पकीहुई ईंटकेचिनेहुये स्थान आदिभी चाहैं चांडालोंसे छुयेहों पर वायुके लगने से शुद्ध होजाते हैं १९६॥

अधि०-यद्यपि सव द्रव्योंकी शुद्धि कहचुके तिनमें ईंटभी आचुकीथी और गृहकी शुद्धिभी लीपा पोतीसे कहचुके हैं पर यहां पर पकीहुई ईंटके कहनेसे यह भाव है कि १९३श्लोक उत्तरार्द्धमें यहकहाथा कि-प्रोक्षणंसंहतानांच-अर्थात् संहतकहिये मिली हुई बहुतसी चीजोंकी शुद्धिप्रोक्षण किन्तु छिड़कदेना होती है सो यहांपर वह छिड़कना भी निषेध किया किन्तु कोई यह समझे कि वहुतसी ईंट और पत्थर आदि इकट्ठे लगे हैं प्रासादमें इसप्रासादकोभी किसीके छूजानेपर छिड़कना चाहिये सो नहीं-और पकीईंट कहनेसे दूसरा यहसिद्धांतभी है कि जो स्थान घास फूस लकड़ी पत्ता आदिसे बनायाहो उसको किसी अधमका स्पर्श होने पर छिड़कडालना उचित है १९६॥

इतिद्रव्यशुद्धिप्रकरणम्॥

अब आगे दानधर्म कहनेके प्रयोजनसे उसके अंगभूत पात्रकी प्रशंसा लिखते हैं कि दानयोग्य ऐसा पात्र चाहिये॥

तपस्तप्त्वासृजद्ब्रह्माब्राह्मणान्वेदगुप्तये। तृप्त्यर्थंपितृदेवानांधर्मसंरक्षणायच १९७॥

अक्ष०-वेद गुप्तिके लिये ब्रह्मा तप तपिकर ब्राह्मणोंको सृजताभया-देवता वा पितरोंकी तृप्तिके अर्थ और धर्मसंरक्षण के भी लिये १९७॥

अभि०-ब्रह्मा कहिये हिरण्यगर्भ तिसने कल्प रचनाकी आदिमें तपको तपिकर अर्थात् यह ध्यान धरिकर कि मैं किनको मुख्य बनाऊं जिनसे संसारकी मर्यादा बँधे ऐसा विचार किये पीछे प्रथम ब्राह्मणोंको बनाया इसलिये कि ये वेदोंकी रक्षा और प्रचार बना रखकर उनकी विधिद्वारा देवताओंको यज्ञादि कर्मों से और पितरों की श्राद्धादि करिके तृप्तिकरैं और यथोचित अनुष्ठान तथा उपदेश द्वारा धर्मकी मर्याद वंधी राखैं-वेदके निदर्शनमात्रसे सभीशास्त्र और विद्याओंका उपलक्षणहै किन्तु यह नहीं कि वेदकी रक्षाकरैं और औरोंका निरादरकरैं अर्थात् यावन्मात्र शुभ शास्त्र या

शुभ विद्या हैं वह सभी वेदका रूपहैं-वेद शब्द ज्ञानमात्रका वाचकहै जिस्से कुछ कल्याण विषय जाना जाय १९७॥

सर्वस्यप्रभवोविप्राःश्रुताध्ययनशालिनः। तेभ्यः क्रियापराःश्रेष्ठास्तेभ्योप्यध्यात्मवित्तमाः १९८॥

ऐ०—सर्वस्य अर्थात् सब क्षत्री आदि वर्णोंके मध्ये ब्राह्मण प्रभवहैं किन्तु श्रेष्ठ हैं जाति और कर्मसेभी फिर उन ब्राह्मणोंमेंभी जो श्रुताध्ययनशाली अर्थात् श्रुताध्ययन सम्पन्नहों वे अधिक श्रेष्ठहैं किन्तु श्रुत कहिये ज्ञान और अध्ययन कहिये शास्त्रादि विद्याओंका पढ़ना तिन संयुक्तहो वे साधारणोंसे उत्तम-फिर उनमें सेभी जो क्रियापरहों किन्तु शास्त्रोक्त कर्मोंका अनुष्ठानभी करतेहों वे अधिक श्रेष्ठ हैं-फिर उनसेभी अधिक वे उत्तमहैं जो अध्यात्म वित्तमहों अर्थात् इसी शास्त्रमें जो मार्ग आगे कहा जायगा उसके द्वारा आत्मतत्व ज्ञान किन्तु आत्मा जो परब्रह्म है तिसका तत्वज्ञान कहिये स्वरूप ज्ञान तिसमें यथार्थ निपुण और तत्परहों १९८ इसप्रकार जाति १ विद्या २ कर्मानुष्ठान ३ आत्मतत्त्व ज्ञान ४ इनके द्वारा एकएक लक्षणसेभी उत्तरोत्तर पात्रता कहकर अब उन्हींके समुच्चयसे परिपूर्ण पात्रता कहते हैं॥

नविद्ययाकेवलयातपसावापिपात्रता। यत्रवृत्तमिमेचोभेतद्धिपात्रंप्रकीर्तितम् ।१९९॥

ऐ०—केवल विद्यासे नहीं अर्थात् श्रुताध्ययन सम्पन्न होनेसेही पात्रता नहीं-तपसा वापि अर्थात् सूखे शमदम आदिकी तपस्यासेभी पात्रता नहीं-अपि शब्दकी लक्षणासे केवल अनुष्ठानमात्र यद्वा केवल जातिमात्रसेभी पूर्ण पात्रता नहीं-किन्तु-जिस पुरुष में वृत्त कहिये अनुष्ठान अर्थात् शास्त्रोक्त धर्मों का आचारभी हो और इमेचोभेकिंतु यह दोनों भी हों कौन एक तो विद्या १ दूसरी तपस्या २ इन तीनों की एकता में पूर्ण पात्रता समुझी चाहिये परन्तु (च) शब्द के तात्पर्य से ब्राह्मण जाति भी अपेक्षित है अर्थात् ब्राह्मण जातिके पुरुष में यह तीनों लक्षण हों तब पूर्ण पात्रता हो अन्यथा जहां यह तीनों असंभव हों किंतु एकही दो लक्षण की प्राप्तिहो तहां उसके अनुरूप पात्रता समुझी जायगी पर जातित्व लक्षण इस वार्त्ता में अवश्य भावसे अपेक्षित है १९९॥

भाषि०—जहां एकही एक लक्षण की प्राप्तिहै तहांभी उत्तरोत्तर उत्तमता ज्ञातव्य है अर्थात् प्रथम तो केवल एकलक्षण जातिमात्रका फिर उस्से अधिक विद्या विशिष्टका फिर उस्से अधिक आचार विशिष्ट का फिर उस्से अधिक तपो विशिष्ट का और इसीक्रमके अनुसार इनपात्रों में दान करने से फलमें भी उत्तरोत्तर विशेषताहै १९९॥

गोभूतिलहिरण्यादिपात्रेदातव्यमर्चितम्। नापात्रेविदुषाकिंचिदात्मनः श्रेयइच्छता २००॥

भाषा०—गऊ धरती तिल हिरण्य आदि अर्चित किया हुआ पात्रमें देना उचित है-अपना श्रेय इच्छा करनेवाले विदुष करके अपात्रमें किंचित् भी नहीं देना २००॥

अभि०—यह आदि शब्द सबमें लगता है अर्थात् गऊआदि कहनेसे हाथीघोड़ा आदि भी समुझने जो चतुष्पद दान योग्य प्रसिद्ध हैं-धरती आदि कहने से पृथ्वी ग्राम स्थान यह सभी समुझलेने और धरित्री में बीज ग्रहण वा जनन शक्ति के उपलक्षणसे कन्यादान आदिभी संबंधित हैं-तिल आदिके कहनेसे सर्व धान्यमात्रका निदर्शन है-हिरण्य आदि कहने से सर्व धातुमात्र वा रत्नादि द्रव्योंका निदर्शनहै-यथार्थ में आदि शब्द कहने से सभी प्रकार के दान समुझेगये तिनमें कोई दान करनाहो सो वह दानकी वस्तु अर्चित कहिये संकल्पित करीहुई विधिसहित उनपात्रों को देनी चाहिये जिनका चर्चा इस्से पहले श्लोक में आयाथा-न अपात्रे किंतु क्षत्रियादि यद्वा पतितादि ब्राह्मण को भी नही देवै वह कि जो विदुष होवे किंतु पात्र विशेषके द्वाराफल विशेष को जानता हो और दान देकर अपनाश्रेयभी चाहताहो सो किंचित्अपि अर्थात् थोड़ाभी नहीं देवै २०० ॥

अधि०—थोड़ा भी नहीं देवै इस कथन का यह सिद्धांत नही है कि क्षत्रियादियद्वा पतितादि ब्राह्मणों को कुछ भी नही या किसी दशा में भी नही देवे-किंतु-यहांपर केवल शास्त्रोक्तदान का चर्चा है कि जो वस्तु किसी विशेषफल की कामना से संकल्प द्वारा देनी हो चाहे वह थोड़ी भी हो पर पात्रकोही देवै अपात्रको न देवे-अन्यथा अपना श्रेय भी चाहता हो यह कहने से प्रकट होताहे कि कोई आवश्यक दशापर अपात्र में भी देनेसे निःसंदेह कुछ फल होताहे-हां-पात्रमें देनेसे उत्तमश्रेय की प्राप्ति थी अपात्रमें देनेसे तामसफल होगा यह सिद्धांत है-सोईभगवद्गीतामेंकृष्णद्वैपायन का यहवाक्यहे-कि(अदेशकालेयद्दानमपात्रेभ्यश्चदीयते। असत्कृतमवज्ञातंतत्तामसमुदाहृतम्) अर्थात्-जो दान-कुदेशमें-कुकालमें-कुपात्रोंमें-दीजिये है यद्वा सुपात्र को भी असत्कारसे अर्थात् विधि विना दियाजाता हे यद्वा अवज्ञातदान अर्थात् अपमान करके दियाजाताहे सो तामसदान कहाताहे-तामसदान कहनेसे यह सिद्धि पाईगई कि अपात्र को देना भी एक प्रकार का मंददान है किंतु उसकी मंदताके अनुसार फल भी मदहोगा-और यह वात जो कहीगई कि अपात्रको न देनाचाहिये तिसका यह सिद्धांत है कि उत्तम देश उत्तमकाल उत्तमद्रव्य की निकटतामें कदाचित् पूर्वोक्त पात्रदूरहोवे तौभी उसके निमित्तसे संकल्प छोड़े और पीछे भेजदेवै या दान वस्तु स्थावर हो तो पात्रको संबोधन पहले भेजकर पीछेदान उसके नामसेही करे-यद्वादेश काल और पात्रभी उपस्थितहे पर दान वस्तु जंगम या स्थावर हो कहीं दूरहै तौभी उसको संबोधन देकर दानछोड़े-फिरभी अपात्र को न देना चाहिये इसका दूसरायह सिद्धांतहै कि जिसको पात्रजानकर संबोधन किया हो कि अमुकामुक देशकालपरअमुकामुक दान वस्तु आपके नामसें संकल्पितकरी जायगी इसप्रकार से सुपात्रको

प्रतिश्रुत किया हो तिस पीछे उसमें कोईसा पातक आदि संयोग भी प्रत्यक्ष पाया जाय तो उस कहेहुये दान में से किंचित् भी न देवै यह शास्त्रोक्तदानों की प्रतिज्ञाहै-भेद-२ अन्यथा दान शब्द केवल देने के भावार्थ पर आरूढ़ है सो वह देना यथा संभव यथाकाल यथाकार्य के संबंधसे सर्वत्र और सवही मानुपजाति मात्रसे अपेक्षित है उसमें भी पात्रता देखीजाती है किंतु प्रथम तो एक यथा संभव उसमें यहीहै कि किसी को दीनदयालुताकी रीतिसे कुछ देना यद्वा आतिथ्य सत्कार की रीतिसे कुछ देना तहां फिर जाति विद्या आचारतप इनका विवेक नहीं है किंतु कोई जाति हो और विद्या वा आचार आदि उसमेंहों या न हों—सोईदीनकी अपेक्षासे श्रीकृष्णजी ने भगवद्गीतामें यहकहा है कि-(दरिद्रान्भरकौंतेयमाप्रयच्छेश्वरेधनम् । व्याधिनश्चौपधंपश्येन्निरुजस्यकिमौपधम्)-अर्थात्- हे कौंतेय कुंतीपुत्र अर्जुन दरिद्रान्भर किंतु दरिद्रसेपीड़ितोंकाभरणपोपणंकुरु —ईश्वरेधनंमाप्रयच्छ-किंतु समर्थमें धनमत अर्पण करो-क्योंकि-औपधंचव्याधिनःपश्येत्-किंच औपधी भी रोगियों कीही करनी उचित है-निरुजस्यकिंऔपधम्-निरोगी पुरुप को औपधी क्या करना-इस लक्षण से यद्यपि कोईसा पूर्वोक्त नियम शेप नहीं है तथापि यह सिद्धांत है कि देना तो सवही दीनमात्र को चाहे कोई जाति हो परंतु उनमें भी जो कोई दीन जाति या विद्या या आचारया तपस्या से उत्तम हो तो उसे उसकी उत्तमता के अनुसार अपनी शक्तिकेअनुरूप अधिक देना जो न्यून हो उसे न्यून-ऐसेही आतिथ्य सत्कार की रीति में भी जाति आदि का नियम नहींहै (तथाच)(वालोवायदिवावृद्धोयुवावागृहमागतः। तस्यपूजाविधातव्यासर्वस्याभ्यागतोगुरुः) अर्थात् चाहे वालकहो या बूढ़ा हो या युवान् हो जो कोई अपने घरआवे वह अभ्यागत सवकागुरु किंतु सत्कार योग्यहोताहै इसलिये उसकी पूजाकहिये खान पान दान स्थान आसन आदिसे सत्कारकरनाउचितहै-इसकी दृढ़ता मध्ये याज्ञवल्क्यजीने भी जो कुछकहा है सो ११० के श्लोकमें देखलो-भेद-३ इसके सिवाय प्रत्युपकार भी एक प्रकारका दानहै उसमें भी जाति आदिका नियमनहीं होता अर्थात् जिसमनुष्यसे किसीप्रकारका अपना उपकार होताहो किन्तु कोईभाँतिके छोटेमोटे कामसे भी सहारा मिलता हो या केवल वचनसम्बंधीही सहायता मिलतीहो उसको कुछदेना अथवा किसीप्रकारसे उसका बदला पूराकरदेना यहप्रत्युपकार दानहै कदाचित्कोई अपनी कुबुद्धिसे यहकहे कि इसदानसे क्या कुछपुण्यहोगा यहतो लोक व्यवहारहै उसे इसप्रकारसे ध्यान कर सोचना चाहिये कि सभी लोक व्यवहारहैं और सभी लोक व्यवहारों में पुण्य होताहै जो धर्म मर्यादके अनुसार कियेजायँ और इस के समुझनेके लिये एक सीधा मार्गहै कि जिसकाम के न करनेसे पापहोगा उसके करनेसे अवश्य पुण्यहोगा भला जब किसीने अपने साथ कुछ भलाई करी और उस

का बदला अपनेसे न दियागया तब कृतघ्नी आपहुयेया नही किन्तु जब किसीकेकरे को मेट दिया तब निःसंदेह कृतघ्नीहुये फिर कृतघ्नी के लिये क्या २ प्रायश्चित्त लिखे हैं तो इस्से निश्चित हुआ कि कृतघ्नी भी पापीहोताहै फिर जब किसी का प्रत्युपकार हमने करदिया तो कृतघ्न दोष जातारहा और दोषका मिटजाना यही पुण्यका स्वरूप है-हाँ-इतना अंतरहै कि वे शास्त्रोक्तदान संकल्पआदि विधियोंसे होते हैं यहदानदेदेने मात्रसेही होजातेहैं-परन्तु-इसमें पुण्यकेस्वरूपका लक्षण बड़ेसे बड़ा एकयही है कि उनपूर्व उपकारियोंकी योग्यताके अनुरूप प्रत्युपकारकरै अथवा जहांतक बनिआवै अपने पूर्व उपकर्त्ताके साथकमसेकम दूना प्रत्युपकारकरै अथवा निजअशक्तिमेंभी ड्योढ़ेसेभी न्यूनकदाचित्भी न होनेदे क्योंकि उसकेतुल्य उपकारकरनेमेंभी दोषलगा रहताहै और इसप्रत्युपकारके करनेमें बड़ेबड़े योग्यताओंके विचार आवश्यकहैं और यद्यपि उनसबका लिखना तो अब यहां पर अपेक्षित नहीहै तथापि एकछोटासा दृष्टांत लिखेदेतेहैं कि तुल्य प्रत्युपकारमें इसभांतिसे दोषलगताहै जैसे एकमनुष्य इतना प्रतिष्ठितहै कि जो अपने जीविका संबंधी कामको करता तौदोघंटेमें ।।) आठआनेपैदाकरलेता उसीने तुम्हारी किसी आवश्यकता परदोघंटेतक लकड़ीचीरीं कि जिस के बिना तुम्हाराबड़ा अकाजहुआ जाताथा किंतुचीरनेवाला उसबेरा नहींथा अबइस दशामें यद्यपि उसने मैत्रीभावसे या लोकरीतिसेभी तुम्हारा यह उपकारकिया और यद्यपि लकड़फाड़ मिलजाता तो उसे इतनेकामका एकही –) आनादेनापड़ता परन्तु अब उसका प्रत्युपकार न करनेसे तौतुम्हें कृतघ्न और कदर्यदोष लगताहै और तुल्य प्रत्युपकार किंतु एकआना देनेसे अधमज्ञता और कार्पण्य दोपलगताहै इस्से उचितहै कि उसकीयोग्यताके अनुसारकरना तथापि जो वहमनुष्य ऐसासाधारणहो कि प्रत्यक्ष परिश्रमका वेतन लेसक्ताहै तो दामोंपर उसकी योग्यता अनुमानकरनी उसभलाईके अनुसार कि इसने हमारेलिये वहकाम किया कि जिसको यहनहीं करता या अपनेलिये औरोंसे करवाताथा (अथवा) वह मनुष्य ऐसाहै कि प्रत्यक्ष परिश्रमका वेतन नहीं लेसक्ता वरनइस बातके चर्चासेभी चिढ़परैगा तो तुमभी उसकेसाथ कोई ऐसा प्रत्युपकारकरो जिस्से उसकी कोई बड़ीभीर पारहोजाय कुछ इसबातपर ध्यान मतरक्खो कि वहकाम एकआनेकाथा (अथवा) वह मनुष्य ऐसामध्यमहै कि प्रत्यक्षले नहीं सक्ता परहृदयसे कामना रखता है तो केवल दशपांच रोजटालकर किसी और बहानेसे देदो परउसकी योग्यताका विचारबना रक्खो सो यहबातें उसकेलिये नहींहैं कि जो प्रत्यक्ष वेतनको चुकाकर कामकरै किंतु उसकेलिये वहीरीति जो उसकामकेपेशावालेसे अपेक्षितहो-बस इसीप्रकारसे सर्वत्र सबउपकारोंमें नानाभांतिकीयोग्यताओंका अनुमानकरके प्रत्युपकार करो जिस्से पुण्यकी उन्नतिहो और पापनहीं लगने

पावे यहां पर पापकाभी बड़ालक्षण यहीहै कि कोईअपनेमनमें प्रत्युपकारके न मिलने से दुःखमाने और आगेको उपकारमें हानिहो क्योंकि यहसारासंसारही उपकार और प्रत्युपकार रूपदोचक्रोंके सहारेसे चलता फिरताहै येही इसके पैरहैं-यहदोनों पहिये नहीं होते तो यह संसार शकट एक ठिकाने से हिलभी नहींसक्ता और कोई प्राणी मात्र किसी की बात भी न बूझता कि तुम दुखिया हो या सुखिया इसलिये उसप्रभु ने ऐसा जाल बंधनरचा है कि परस्पर एक एक के आधीन हे चाहे राजा हो चाहे प्रजा पर दूसरे की आधीनी सबकेलिये आवश्यकहै इसीलिये उपकार और प्रत्युपकार का परस्पर संबंध है (भेद ४.) वह भी एक दान है जो किसी को वेतन ठहरा कर कामलिये पीछे दियाजाता है उसमें भी अपरिमित पुण्य होताहै जो धर्म मर्यादा के अनुसार दियाजावे अन्यथा जो कुरीति से तो वह भी पापका मूलहै छोटे२ अति स्वल्पकामों का चर्चा है कि जिनकेवेतन का नियम परिनियमित नहीं हो उनमेंपुण्य का यह लक्षण है कि जहां तक बनिआवे वैतनिकों को संतुष्टराखे संतुष्टिकाभी यही बड़ा लक्षण है कि जो उनसे प्रथम ठहरा हो उस्से कुछ अधिक अपनी ओरसे प्रसाद की रीति अनुसार देदेवे तो संतुष्टहोजावेंगे इस देदेने में कुछ बड़ीसी हानिनहीं किंतु मनकी हारिजीति है कि जब एक दीनसे किसी कामके चारपैसे ठहरे और उसने उसकाम को अपेक्षा अनुसार साधनकरदिया तो एक छदाम अधिक देदेने में उसकी परमतुष्टि होजायगी और फिर आगे को वही वैतनिक तुम्हारेकामको दौड़कर अतिश्रद्धासे करैगा-मनकी हारिजीति का यह सिद्धांत है कि अपने मनको यह समझालेना कि अगर पहलेसेही सवाचार पैसेठहरे होते तोभी देने होते इस्से हम यही समझैंगे इसकामके सवाचारठहरेथे-इस्से यह सिद्धांत भी है कि ठहराते समय जितना चाहे उतना खींचकर कमठहरालेवे पर देतीसमय ठहरे हुये से कुछ अधिकदेवे-और इसवार्त्ता में वैसे कदर्यों के आचरण पर ध्यान नहीं लावे कि अमुक मनुष्यने जो पैसे ३७॥ साढ़े सैंतीसटके बिकते हैं वेही अमुक वैतनिक को छत्तीस के भावमें लगाकरदिये इसमें धेलापैसा रगड़कर कमदेनेसेउसे कुछबड़प्पन मिलाहोगा लाओ ऐसा हम भी किया करें यह बात अतिमंदों वा कदर्यों की प्रसिद्ध है (विरले) मंदयही कियाकरते हैं कि प्रत्येक मिहनतीकी मिहनत में काटकपटकरते और उसमें से कुछ पुण्य भी करते हैं वरन वे अपना सिद्धांत यही प्रकट करतेहैं कि नीचसे काटकर ऊँच कोदेवैं जिससेपुण्यहो सो यह उनका या तो पाखंडहै या अज्ञानपनकी छायाहै अर्थात् उनको पुण्य कदाचित् नहीं होसक्ता सिवाय पापके क्योंकि पुण्य अपनी निर्मल कमाईसेही होता अथवा कमाई किसीभांतिकी हो पर प्रथम परिश्रम करनेवाले की तृप्ति रूप पुण्य करलेवै तब उस प्रकार का किया हुआ पुण्य लगता है अन्यथा जो पुण्य

की शक्ति अपने को न हो तौ न करना उत्तमहै पर यह अन्याय नहीं कि परिश्रमकरनेवाले रोतेजायँ और विना परिश्रम के लोगों को मुफ्त में देकर पुण्य हो यह सर्व्वथा धर्म्म से विरुद्ध है-सो इस प्रकारके लोग तौ (मंद) कहलाते और वे लोग (कदर्य) होते हैं जो इस प्रकार से काटकपट भी करते और पुण्यका नाम नहीं जानते परन्तु पापी दोनों होते हैं-तथापि उसदशामें पापी नहीं होसक्के जो कोई मिहनती अपने कर्त्तव्य कामको जान बूझकर या निर्गुणता से बिगाड़े वरन उस दशा में निपट न देने से भी पुण्य है क्योंकि जो विगाड़ू दंड पावेंगे तौ आगेकोभी किसी और को दुःख न देवेंगे किंतु कामके बिगाड़ने पर भी वेतनका पाना यह पाप की वृद्धि है (भेद ५) वह भी दान है जो किसी काम का परिनियमित मूल्य प्रसिद्ध होता है जैसे नापित की मिहनत क्षौर कामके मध्ये किसी नगर में अधेला किसी में पैसा किसीमें दो पैसे जहां जैसी रीति हो ऐसेही धोवी आदि औरों कोभी समझ लेना इसमें यह पुण्य और पाप है कि जिस नगर में जिसकाम का जो कुछ परिनियमित हो उसके ऊपर सब किसी को आरूढ़ बुद्धि होजाना अनुचित है क्योंकिवह नियम न्यूनतरसाधारण मनुष्यों के लिये इस हेतु से प्रसिद्ध किया जाताहै कि इस्से न्यून कोई कंगाल भी न देवे या इस्से अधिक किसी कंगाल से न मांगाजाय जिस्से कहा सुनी का उपद्रव उठे परंतु यह सिद्धांत नहींहै कि इस्से अधिक कोई भी न देवे और पूर्वोक्त नियमके आग्रह से अनीति करै (जैसे) विरले अन्यायी कहीं स्थानांतर में जाकर सिपाही को आज्ञा देदेते हैं कि जाओ किसीनाई को बुलालाओ भला उनके महत्व से नाई भी उपस्थित हुआ दो घड़ी तक उस्से बोलने का भी अवकाश नहीं अपने काममें लगरहे हैं वह उनके प्रताप से कुछकहनहींसक्ता चुपका बैठा है और यह भी अनुमान है कि यह कोई प्रतापी मनुष्य है न जानें प्रसन्न होकर अपने नामरूपी पुण्यके हेतु से क्या कुछ देडाले भला जब अवकाश हुआ तब हुक्महुआ कि औजार धोओ आप शौच को उठभागे अंत्य दशा उसका क्षौर कर्मभी औरोंकी अपेक्षा दूने तिगुने कालमें होसका जब छुट्टीपाई तब आप तो स्नान ध्यान को चल दिये किसी नौकरने उसनगर के नियमानुसार पैसा या दो पैसा हाथरक्खे जब उसने कुछ कहा और सेठतक व्यवस्था पहुँची तब पूंछागया कि यहां क्या दस्तूर है किसी ने कहा दो पैसे तब घुड़की मिली बस और क्या चाहता है जो दस्तूर था सो मिलगया निकाल दो गुलकरता है-भला ऐसे अन्यायियों से बूझै कि वह दस्तूर तुम्हारे लिये है जो दो घंटेतक उसके प्राण और जीविका की हानि करी किंतु ऐसे स्थलपर जो काम उस्से दो आनेका लिया हो तौ ढाई आनेके अनुमान देना चाहिये जिस्से पुण्य और प्रतिष्ठा दोनों बनीरहैं नहीं तौ पाप और अपकीर्त्ति तौ सन्नद्ध खड़ीहोही

रही हैं-पर यह बात उनके लिये नहीं है कि जिनसे सदैव लेता पाता रहे किंतु वे अवसर पर इकट्ठा समझा करते हैं अर्थात् वह तात्कालिक लोगों का चर्चा है-और उन्हीं तात्कालिकों में जो प्रतापी नहीं किन्तु मध्यम आजीवी हों और नापितआदिकी प्रीति द्वारापुण्य और प्रतिष्ठाके अभिलाषीहों तो केवल इतनी बात आवश्यकहै कि जहां अधेलेका नियमहो तहां एकपैसा जहां एकपैसेका नियमहो तहां दोपैसे जहां दोपैसेका नियमहो तहां चार अथवा तीन तो अवश्यहीदेवें चाहे इसके बदलेमें दो चारपैसे मासिक अपने अन्य खर्चोंमें संकोचकरलें पर इसप्रकारके दान द्वारा अपना पुण्य और प्रतिष्ठा संचयकरें तबपीछे शास्त्रोक्त दानोंपर दृष्टिडालें निःसंदेह इतना अधिक देनेसे वे नापितआदि उसपरिमाणसे कुछपरिश्रमभी अधिकदेवेंगे, जो परिनियमित वेतनसे देतेहैं-जो बारम्बारसदा इसरीति से अधिक देनेमें कुबंधन समझे उसकोभी यहउचितहै कि कभी २ मध्यदशाओंमें जब अपनी इच्छा में आजावे तब दोपैसे उठाकर प्रसादकी रीतिसे अधिकदेदेवे या उत्तीर्ण वस्त्रादिक जैसा लोकव्यवहारहो तो वहमनुष्यनिःसंदेह धर्मज्ञ और पुण्यात्मानिश्चितहै अन्यथा जो इनमर्यादोंमेंकृपणताकरके उसप्रकारकेदानकियाचाहै तो पुण्यात्मानहीं वरन पापात्माप्रत्यक्षहै जो किसीकेपरिश्रमको नहींपहिंचाने और दानोंकेफलढूंढ़ताफिरै तो क्या ढूंढ़ेसेमिलसक्तेहैं(भेद६)वहभी एक (दान) है जो सेवाधर्मसे मासिकआदिरीतों अनुसार दिया जाताहै परउसी अवस्थाताईं दान है जो मर्यादिक और श्लाघ्यरीतोंसेही दियाजावे अन्यथा वहीपीड़ादानहोजाताहै-अर्थात जिसप्रतिष्ठाका सेवकहो या जिस प्रतिष्ठा वाला काम उसके आधीनहो या जैसीकामकी अधिकताहो या जैसी श्रद्धासे वह कामका परिसाधन करताहो या जैसीउसके परिवारके निर्वाहमें योग्यतापाईजातीहो या जैसीअपने लाभ और ऐश्वर्यो परसंभावना समझी जातीहो इनसभी बातों को न्यूनाधिक भावाभावकी दृष्टिसे विचारकरके सबकी ऐक्य समताके अनुसार उसके सत्कारसे जोदेवे सोसबदान है फिरचाहै उसके परिनियमित मासिक मध्येहो या उस्से उपरांत किसी और ढंगसे प्रसादआदि रीतोंसेही दियाजावे अथवा किसी अन्यसंबंध द्वारा दिलवाया जावे पर सिद्धांत इस्से इतनाहै कि उसकीसंतुष्टि और योग्यता और परिश्रमका यथावत् इक्कीस बल्कि पच्चीस प्रतिकार और आवश्यक निर्वाह इनमें किंतु नहीं लगने पावै तो सेवादानहै नहीं तो इनकी बिपरीततामें पीड़ाप्राण और अपमानमान है और वहीपापका स्थानहै (भेद७) वहभी (सेवादान) है जो मासिक रीतोंसे नियमित नहीं परसेवाके प्रतिकारमें पालन कियाजाय सो यहसेवा भक्तदासकी संभवितहै और भक्तदासवही है जो मासिकआदि रीतोंसे परिश्रमका मूल्य तो नहीं ठहरावे और न मांगे पर निरंतरसंतोष वृत्तिसे किसीकी सेवामें तत्पर

बनारहताहो ऐसेदासका माहात्म्य पूर्वोक्तसेभी अधिकहै पर जोइच्छाके अनुसारसेवा करसक्ताहो इसका दानमान सत्कारऊर्द्धोक्तसे विशेषकरना उचितहै क्योंकि वहमुखसे कुछकहता या मांगता नहीं यह पात्रता उसमें अधिकहै परन्तु जबइसकी पात्रताके अनुरूप नहींदियागया तभी केवलदुःखदानहै-क्योंकि दानशब्दका अर्थहीदेनेकेसि-वायरक्षण और पालनआदिपर समाश्रितहै सोजवयथार्थ नहींहोसके तवकेवल दुःख दानउसकी सेवाद्वारा निश्चितहुआ-फिरवहीदान शब्द शुद्धिकेभी अर्थपर समाश्रितहै और शुद्धिशोधनमात्रसे अपेक्षितहै अर्थात् अपनेऊपरसे किसीके ऋणभारका शोधन करना या किसीके परिश्रमका प्रतिकार शोधनकरना या पापसंचयका शोधनकरना फिर वहीदानशब्द छेदन अर्थकाभी वाचकहै और इसमेंभी जो भावशोधनार्थसे पायेगये वह सवसंभवितहैं इसकी कहावतभी लोकमें प्रसिद्ध है कि अमुक वातका पाप काटदो छुट्टीहो इत्यादिनानालक्षण रूपअर्थ एकदानशब्दके प्रसिद्धहैं(भेद८)यद्यपिदानशब्द की अर्थलक्षणा इतनीहैं कियहांपर उनसवका लिखाजानाभी कठिनहै इसलियेयथा संभव अपने२स्थलपर जहांतहां सवलिखेजायँगे तथापि केवलदानमात्रका साधारण स्वरूप एकलिखेदेतेहैं कि–(अर्थानामुदितेपात्रेश्रद्धयाप्रतिपादनम्। दानमित्यभिनि र्दिष्टंव्याख्यानंतस्यवक्ष्यते॥दाताप्रतिग्रहीताचश्रद्धादेयंचधर्मयुक्। देशकालौचदाना नामंगान्येतानिषड्विदुः)अर्थात्-पात्रके उदितहोतसंते अर्थोंका श्रद्धासे पतिपादनकरना। यहीदानकालक्षण अभिनिर्दिष्ट है किंतु अभि कहिये सर्वथा कहागया अर्थात् कोई तरहका दानहो परलक्षण सवका यही है उसदानका व्याख्यानभी अगलेश्लोक में कहतेहैं-और पात्रोंका उदितहोना यहकि ऊपरजोछःसात भेदोंसे पात्रोंकेलक्षण कह-चुकेहैं उन्हींमेंसे किसीप्रकारके पात्रको कुछ देनेका समय वर्त्तमान हो कि इससमय इसप्रकारके पात्रको अमुकवस्तु अमुकहेतुसे देनीउचितहै वसयहीउसका उदयहोना कहलाताहै अर्थात् वह अपने लेनेके उचितसमयपर उद्यतहोरहा है उसअवस्थामें अर्थकहिये पदार्थवस्तु जोजो उससमय के देनेयोग्य होतेहों उनका श्रद्धासे प्रतिपा-दनकरना किंतु उससमयपर यहश्रद्धाभी उत्पन्नहो कि अवश्य इसदशा में यहवस्तु इसको देदेनीउचितहै इसप्रकारकी अभिलाषा से प्रतिपादन करे अर्थात् देदेवे सो यह सवतरहके दानोंका अभिलक्षणहै-इसकहनेका यहसिद्धांतहै कि जो इसीरीतिसे दियाजाय सो सवदानमें गिनतीहै चाहे किसीहेतुसे दियागयाहो-अन्यथा वही देना जोसमयटालकर आपहीदिया अथवा अश्रद्धासेदिया किंतु देतेहुयेदुःखमाना अथवा लेनेवालेने मांगनेसे तगादाकरनेसे खुशामदीहर्तासे लिया इत्यादि कोईसीविपरीत-ता जहांउत्पन्न होगई तोफिर वहदाननहीं किंतुदाता प्रतिग्रहीताआदि दोनोंकाप्रत्यक्ष अपमानहै इस्से उसदानका व्याख्यान अगलेश्लोकमें यहकहतेहैंकि–दाता १ प्रति-

ग्रहीता २ श्रद्धा ३ देयवस्तु ४ देश ५ काल ६ यह इतनेछःअंग सर्वप्रकारके दानोंमें कहेहैं परन्तु उसअवस्थामें कियह सबकेसब धर्मयुक्हों किन्तु किसी एकमेंभी कोई सी अधर्मता नहो—सो अधर्मताका स्वरूपयही है कि शास्त्रकी संमति और लोक व्यवहार से कोई विपरीत मर्याद इनमेंनहो—यथा-दाताकी अधर्मता जिसे नदेना चाहिये उसेदेना या कुकर्मके प्रतिकारमेंदेना या सुकर्मके प्रतिकारमें औचित्यसेन्यून देना या समयटालकरदेना या ग्रहीताका जी दुखाकरदेना या अपमानसेदेना अश्रद्धा सेदेना इत्यादि १-प्रतिग्रहीताकी अधर्मता अनौचित्यसेमांगना दाताका जी दुखाकर लेनेकी अपेक्षा करनी या किसीकार्य निजसंबंधीकी अपूर्णता यद्वा समयकी अप्राप्ति में अथवा किसीकार्यका विध्वंसकिये पीछेभी प्रतिकारकी अपेक्षाकरनी या धूर्त्तता से या किसीदूसरेके नामसे व्यर्थनिजभागता दृढ़करनी याखई निन्दकता करनीइत्यादि २-श्रद्धाकी अधर्मता भविष्यकालमें किसीकुकर्मकेहेतुसे श्रद्धाकाउत्पन्नहोना याविश्वास घातकीवांछासे श्रद्धाका उत्पन्नहोना इत्यादि ३-देयधनकी अधर्मता अर्थात् वहधन अपनानहीं किंतु परसंबंधीहो यद्वा देकरकुछप्रतिकार लियेपीछे लौटारलेनेके अभिप्राय वालाहोया उतने का लालच दिखलाकर कुछ अधिकआकर्षण करनेके हेतुवालाहो इत्यादि ४-देशकी अधर्मता अर्थात् जो देश जिस वस्तुके देने अथवालेने के लियेप्रति-नियतहै उस्से अन्य देशमें देनेकहे या मांगे या उस मुख्य देशकेनामसे लेजाकरकिसी अन्य देश अनुचित में उपस्थित करे इत्यादि ५-काल की अधर्मता जो काल जिस वस्तुके देनेअथवालेनेका प्रति नियत अथवा मर्यादके अनुरूप पायाजाताहो उस्से न्यूनाधिक अवस्था में मांगना यद्वा देना इत्यादि ६॥ये सब लक्षण केवल सूत्रमात्र यहां पर दर्शाये गये किंतु इनके दृष्टांत बड़े लंबे चौड़ेहैं इसलिये लिखने से छोड़े गये सो सब यथा संभव यथा स्थान अपनी बुद्धिसे अनुमानकरो २०० ॥

पात्र में देने की विधि और अपात्रमें देनेका निषेध दाता के प्रति कहचुके अब आगे प्रतिग्रहीता से कहते हैं॥

विद्यातपोभ्यांहीनेननतुग्राह्यःप्रतिग्रहः। गृह्णन्प्रदातारमधोनयत्यात्मानमेवच २०१ ॥

ऐ०—विद्या और तप इन दोनों से हीन ऐसे पुरुष को प्रतिग्रह नहीं लेना उचित है क्योंकि ऐसा पुरुष प्रतिग्रह को लेताहुआ प्रदान करनेवाले को और अपने आत्माको भी नरक में पहुँचाता है २०१ ॥

भाषि०—जहां शास्त्रोक्त अकाम्य दानका चर्चाहो तहां शास्त्रादि संबंधी विद्या और ईश्वर संबंधी तपस्याकी योजना है-जहां केवल प्रतिकार दान या सेवादान आदि का चर्चा हो तहां विद्याके निदर्शन से अपनी २ जाति पेशा यद्वा शरीर संबंधी गुणोंका उपलक्षण है और तपस्या के निदर्शन से निज २ गुण संबंधी उपकार परिश्रमसेवा

कार्य साधकता स्वामिभक्ति आदि समुझना और नरक को पहुँचाना उसमें तद्रूप और इसमेंभीहै परन्तु इसमें लोक दृष्टिसे प्रथमनिन्दा दुर्नामता अविश्वासताआदि ये अधिक हैं २०१॥

अब यहांपर पात्रदानमध्ये कुछ विशेषता दाताके प्रति कहते हैं॥

दातव्यंप्रत्यहंपात्रेनिमित्तेतुविशेषतः। याचितेनापिदातव्यंश्रद्धापूतंतुशक्तितः २०२॥

मक्ष०—पात्रमें प्रतिदिन देना और निमित्तमें विशेषतासे याचितहुये करकेभीश्रद्धा पूत और शक्ति से दातव्य है २०२॥

भभि०—पात्रों में नित्यही जो कुछ बनि आवे सो अपनी शक्तिके अनुसार और निज कुटुंब के अविरोधसे देना-और निमित्त कहिये ग्रहण आदि पर्व या पुत्रजन्म विवाह यज्ञया किसीअवसर संबंधी सत्कर्मोंके समाज उत्सवपरोपकार सार्वक कल्याणी प्रक्रिया आदि आपड़ने में विशेषता से अधिक और मांगने पर भी देना-परन्तु जो देना सो श्रद्धापूत करके अर्थात् अनिंदासे पवित्रकरके देना किंतु ऐसी श्रद्धा सहित देना जो किसी प्रकार से देने पर भी निंदा न हो और शक्ति से अधिक भी न देना जिस्से पीछे किसी तरहका दुःख उत्पन्न हो-और निज कुटुंबके अविरोधका यह सिद्धांत है कि जिस वस्तुके देदेने से अपने कुटुंब का कोई भृत्यवर्ग स्त्री पुत्रादि में सेयद्वा गुरुवर्ग में से विरुद्धखड़ा करसक्का हो तो ऐसी वस्तु नहीं देवे या जिस्से अपने कुटुंब के पालन में न्यूनता पड़नेकी संभावना हो उसको भीन देवे-दूसरा ध्वन्यर्थ इसके पहले चरण में मुख्यता से यही है कि पात्रे प्रत्यहंदातव्यं अर्थात् पात्र जो २०० की अधिकोक्ति में छः सात भेदों से भिन्न २ दर्शायेगये उनको तो नित्यही देना उचितहै किंतु उनसे नित्यही देने का संबंध लगारहता है इस्से उनकी पात्रता के अनुसार यथा संभव नित्य देना उचितहै और निमित्ते विशेष तोदातव्यं अर्थात् निमित्त जो अभी ऊपर कहचुके हैं उनमें निमित्त के अनुरूप पात्रों को विशेषतासे अधिक देना अपनी शक्ति आदिके विचार सहित-और मांगनेपर देनेका केवल यही अभिप्राय नहीं है कि कोई भिक्षुकता की रीति से निज स्वार्थ के हेतुसेही आपमांगे किंतु कोई सज्जन किसी परोपकार सार्व कल्याणी प्रक्रिया की सिद्धिके निमित्त से मांगे कि तुम अमुक प्रयोजन में हमारे कहने से कुछ देदो तो ऐसी दशामें देनेसे अधिक पुण्य और प्रतिष्ठा मिलती है २०२॥

भभि०—युगव्यवस्था के अनुरूपभी दानों के भिन्नरूप पराशरजीने कहेहैंकि-(अभिगम्यकृतेदानंत्रेतास्वाहूयदीयते।द्वापरेयाच्यमानंतुकलौदानञ्चसेवया) अर्थात्-कृत युगमें दाता आपजाकर देतेथे-त्रेतायुगमें ग्रहीताको बुलाकर देनेलगे-द्वापरमेंमांगने पर तत्काल दियाजानेलगा-कलियुगमें सेवा किंतु बड़ेपरिश्रम की मांगा तांगी से देना

दियाजाता है॥ इस का यह सिद्धांत नहीं है कि कलियुगमें इसी प्रकार से देना चाहिये-किंतु इस वाक्य में यह अभिप्राय हेतु गर्भित है कि अद्यापिजो कोईदाता जिसे किसी को किसीरीतिसे कुछदेना अंगीकारहे चाहे कोईभांतिका देनाहो वह ग्रहीताके घर आप जाकर दे आवे अथवा किसीरीति से घरवैठे विना मांगेही पहुँचादेवे तो यह कहाजायगाकि उसने सतयुगरूपी दानकिया अर्थात् सतयुगी रीतोंसे देना उद्धारकिया-ऐसेही जो ग्रहीताको विना मांगेही वुलाकरदिया तो यह कहना चाहिये कि उसने त्रेतायुग की रीति अनुसार देनादिया-अथवा जो ग्रहीताने तगादाकिया और करनेसे तत्काल देना दियागया तो यह कहा जायगा कि उसने द्वापर की रीति अनुसार दान किया-जब ग्रहीता उस्से वारम्वार जाने आने या कहने सुन्ने आदि के परिश्रमसे निकाल पावे तब यह जानो कि यह दान कलियुगरूपी हुआ इस परिश्रमके हेतुसेही, इसको सेवा दान कहते हैं (और) एक यह भी सेवा दान है कि कलियुगमें जब कोई किसीको कुछ पुण्य दृष्टि से भी देना कहता है तब उस्से अनेक भांति के निज स्वार्थरूपीकाम धंधे आदि के प्रयोजन पहले सिद्धकरलेताहै तब देताहै बल्कि बहुधा तो यही कुरीति प्रवर्त्तित है कि उपकारीकोही दानदेतेहैं अर्थात् शास्त्रोक्त अकाम्यदानभी उसीकोदेते हैं जिससे अपनाकुछ उपकार निकलतारहताहै इसीलिये श्रीकृष्णजीने गीतामें कहा है कि (दातव्यमितियद्दानंदीयतेऽनुपकारिणे। देशेकालेचपात्रेचतद्दानंसात्त्विकंस्मृतम्) सोयहसात्त्विकदान अकाम्यदशापर कहाहै-अन्यथा जो राजसदानहै वहउपकारीकोही देनाउचितहै-तथाचश्रीकृष्णः(यत्तुप्रत्युपकारार्थंफलमुद्दिश्यवापुनः।दीयतेचपरिक्लिष्टंत द्दानंराजसंस्मृतम्)इसराजसदानके तीनभेद जो इसीश्लोकमें कहेहैं तिनमें पहलाभेद जो प्रत्युपकारार्थ कहा सोवहीहै जिसकेलक्षण २००कीअधिकोक्तिव्यवस्थामें क्रमात भेदोंसे कहचुकेहैं इसलिये यहांपर विशेष लिखनेकी अपेक्षा नहींरही-और ऊपरइसी अधिकोक्तिमें चारोंयुगरूपीदान जो लिखचुकेहैं तिनकेफलभी स्मृत्यन्तरमेंकहे हैं कि (गत्वायद्दीयतेदानंतदनन्तफलंस्मृतम्। सहस्रगुणमाहूययाचितेतुतदर्द्धकम्)-अर्थात् जोदान घरवैठे पहुँचायाजाता उसकाफल अनन्तहै-औरजोवुलाकर दियाजाता उसका फल एकसहस्रगुण रहजाता-औरजोमांगेपर तत्काल दियाजावे तिसकाफल उससे भी आधा किंतु पांचसौगुण रहजाताहै-इसकेपीछे जो कलियुगरूपीदान ऊपरकहचुकेउसमें कुछभी फलशेष नहींरहता किंतु निष्फल होजाताहै-सोई पराशरजीनेभी कहाहै कि सेवा दानंतुनिष्फलम्-अर्थात् सेवारूपी कलियुगदान निष्फलहै-परन्तुयहांपर सेवादानका यहअर्थ नहीं है कि नौकरीआदि काम टहलके वदले दियाहुआ निष्फलहोताहै क्योंकि उससेवाके दानका माहात्म्य २००की अधिकोक्तिमें देखो कैसाउत्तम कहाहै अर्थात् यहां सेवाकासिद्धान्त यहीहै किमांगातांगी आदिकक्लेश देकरउद्धार करे सो सेवादानहै २०२॥

अवयहांपर सब दानोंकेमध्ये प्रथम गोदानकी विशेषता कहतेहैं॥

हैमशृंगीखुरैरौप्यैः सुशीलावस्त्रसंयुता। सकांस्यपात्रादातव्याक्षीरिणीगौःसदक्षिणा २०३॥
दातास्याः स्वर्गमाप्नोतिवत्सरान्रोमसंमितान्। कपिलाचेत्तारयतिभूयश्चासप्तमंकुलम् २०४॥

पे०सद०—(हैमशृंगी) हेमजोसुवर्णतासेमढ़ेहुयेसींगाजिसके(खुरैरौप्यैः)अर्थात् रूपा चाँदके बनेहुये खुरोंसे संयुक्त(सुशीला)कहिये सूधीस्वभावसे किन्तु भरकनीन ीं और वस्त्रमें ओढ़ेहुये (सकांस्यपात्रा)अर्थात् काँसेकापात्र उसकेसाथमें दूधदुहने के लिये उसपात्रका परिमाण यहीहै कि जितना दूध वहदेतीहो उसके भरजानेयोग्य-और(क्षीरिणी)अर्थात् घनादुग्ध देनेवालीहो और (सदक्षिणा) अर्थात् दाताकीशक्ति अनुसारकुछ दक्षिणाभी उसकेसाथहो सोयहदक्षिणा गऊके आहारनिमित्तमें संसूचितहै इसलियेचाहे एकवर्ष मात्रके आहारयोग्य दक्षिणाहो चाहै एकमासकेया जितनेदिनोंतक दूध देसकैगी तब ताईके अनुमानपरहो परन्तु मुख्यसिद्धांत इसकायही है किजितनीवर्षोताईं वहगऊ प्रतिग्रहीताकेपास रहकरजीसके उतनेवर्षों के प्रबन्धयोग्य दक्षिणाहो तब ऐसीगऊ दानकरनेकेयोग्यहै२०३॥ इसगऊका दानकरनेवाला दाता स्वर्गकोपाताहै किंतुस्वर्ग में जाकर वहांके भोगोंको भोगताहै उतनी वर्षोंताईं कि जितनेरोमा उसगऊके शरीरमें होतेहैं—और जो कदाचित् यहीगऊ कपिलाभी हो तौ सातकुल पिछलेभी उसदाता सहित निःसंदेह तारदेतीहै २०४॥

भावि०—निःसंदेह तारदेती है यह निःसंदेहता भूयः शब्दके अर्थसे लीगईहै परन्तु निःसंदेहतारदेना सातकुलका उसीअवस्थामेंसमझना चाहिये कि जो२ लक्षणगऊके ऊपर ऐक्यार्थमें कहेगये वहसभी वातैं यथावत्हों तौ वहकपिला ऐसाफल करसक्ती है किंतुकेवल कपिलावर्णमात्रके होनेसे यहफल नहींकरसक्ती है क्योंकि कपिलवर्ण नील पीतमिश्रित दोनोंआभाको कहतेहैं किजो ऐसेवर्णकी गऊहो वहकपिला है औरकोई आचार्य रोचनाछवि वर्णको कपिलवर्णकहतेहैं प्रथमतौ वर्णकाविनिश्चयहोना दुर्लभ है दूसरे निश्चयहुयेपरभी कपिलाकामिलना दुर्लभहै तीसरेकपिलाचाहे एकयासहस्र भी मिलजायँ परउसवातकाहोना क्यासुगमहै कि उसगऊकेजीवन अवधिपर्यंतका प्रबन्ध आहारमध्ये करदियाजाय-संप्रति वहुधा इसप्रकारसे गोदान करतेहैं किजबदेखा यहगऊबूढ़ीहोगई दूधभी थोड़ादेतीहै इसकागर्भिणीहोनाभी अबअसंभवहै अबइसकाखर्चनहीं उठायाजाता लाओ दान करदेवें तो पुण्यहोगा क्योंकि इसकोबेचैं तौकोई लेतानहीं दूसरे-दुर्नामनाभी होगी इससेयही अच्छा है कि एकहलकीसी घंटी और आधआनेका अँगौछा और ढाईपावअन्न आगेरखकर किसीब्राह्मणके पल्लेबाँधें तौ दोआनारोजकी दस्तकसेछूटैं-हाधिग् यहनहींसमझते कि जो ऐसीगऊ दानकरने से सातकुलतरतेहोते तौनरकोंकी छावनीउजाड होजातीं-हां यहकहो कि ऐसीगऊदेने से

बच्चाकेभीरोमतुल्य युगोंपर्यंत स्वर्गमेंवास करवाती है-युगयहांपर कृतयुग त्रेता आदि से अपेक्षाहै-और यदिपूर्वकहीहुई विधिसे उभयतो मुखी दानकरीजावे तो इसकादाता भी स्वर्गके ऐश्वर्यभोगताहै दोनोंके रोमतुल्य युगोंपर्यंत-उभयतोमुखी अर्थात् जिसका दोनोंओरको मुखहो किन्तु एकओर अपना और एकओर बच्चेका सोईनीचेकेश्लोक में इसके लक्षण कहते हैं २०५॥

यावद्वत्सस्यपादौद्वौमुखंयोन्यांचदृश्यते। तावद्गौ पृथिवीज्ञेयायावद्गर्भंनमुंचति २०६॥

ऐ०—जबताई बच्चाके दोनोंपैर और मुखभी योनिमें निकलताहुआ याउलभादेख पड़ताहै उतनेकालताई वहउभयतोमुखीकहलातीहैक्योंकि दोनोंओरको मुखहोगये-और तबताईगऊ पृथिवीरूपज्ञातव्यहै किजबतकगर्भको नहींछोड़तीहै-अर्थात्इसका दानकरनेसे पृथ्वीदान करनेकाफल होताहै २०६॥

यथाकथंचिद्दत्वागांधेनुंवाऽधेनुमेववा। अरोगामपरिक्लिष्टांदातास्वर्गेमहीयते २०७॥

ऐ०—कथंचित् कहिये अतिप्रयत्नसे जैसे बनिआवे तैसेही अर्थात् हेमशृंग आदि विधिनहोसके तौनहींभीसही परपूर्वोक्तविधिसे धेनुकहिये दूधदेतीहुईगऊ यद्वा अधेनु कहिये विनादूधकीभीसही जो बंध्यानहो परन्तु अरोगिणीहो अपरिक्लिष्टा कहिये अतिदुर्बलानहो इसीउपलक्षणसे अतिवृद्धाभीनहो तो ऐसीगऊको भी दानकरके दाता स्वर्गमें पूज्यहोताहै किन्तु वहांसत्कारसहित रहता है—परन्तु ये सबउत्कर्षा उसीसमयकेलिये कहीथी किन्तुअबकेलिये २०३ और २०४ कीव्यवस्था अनुसार गोदान करना शुभदायक है २०७॥

अब आगेगोदानके अनुकल्प लिखतेहैं॥

श्रांतसंवाहनंरोगिपरिचर्यासुरार्चनम्। पादशौचंद्विजोच्छिष्टमार्जनंगोप्रदानवत् २०८॥

ऐ०—यद्यपि श्रांत संवाहनका अक्षरार्थ तो केवल यही है कि थकेहुये को अपनी पीठपर या अपनी सवारी वा भाड़ेकी सवारीपर चढाकर अपेक्षितस्थानपर पहुंचा देवे परंतु अभिप्राय यहहै कि श्रांत जो कहींसे थकाहुआ आवे उसको आसन शय्या स्थान सेवा आदि आराम देना श्रांतसंवाहन कहलाता है इसमें वह बातें भी सब समझलेना जो अक्षरार्थसे दर्शाई गई—यह श्रांतसंवाहनरूप पुण्यभी गोदानके समान होताहै—ऐसेही रोगीकी सेवा करनी गोदानके समान फल देतीहै—ऐसेही सुरार्चन कहिये देवताकी पूजाभी गोदानके समान फलदेतीहै-ऐसेही महात्माओंके चरण प्रक्षालन करना यहभी गोदानके समान है-ऐसेही द्विजोंकी उच्छिष्ट बुहारनी धोनी मांजनी यह सब गोदानके समान हैं २०८॥

भापि०—देवताका पूजन किंतु हरि हर हिरण्यगर्भादिकोंका गंधमाल्यादिसे आराधन द्विजोंका पादशौच अपने समानोंका और अधिकोंकाभी-रोगीकी सेवा यथा सम्भव

औषधीआदिके देनेसे—यहसब अनुकल्प इसीलिये कहेहैं कि जिसे गोदान करनेकी शक्तिनहो अथवा शक्तिकेहोनेपरभी देशकाल आदिकी विरुद्धता से गोदानकाहोना असंगतहो तहांये अनुकल्पही उसफलको देनेसक्तेहैं २०८॥

" भूदीपांश्चान्नवस्त्रांभस्तिलसर्पिःप्रतिश्रयान्। नैवेशिकंस्वर्णधुर्यंदत्वास्वर्गेमहीयते २०९॥

ऐ०—भूःपृथ्वी जिस्से किसीप्रकारके लाभकाफल मिलसक्ताहो तिसकादान-दीप दीपक जो नित्यंप्रति यद्वा अवसरपाय देवस्थानों वा सत्पुरुषों के स्थानमें पुण्यहेतुसे प्रदीप्त कियेजायँ-अन्नजो असमर्थों वा देवपर अनुयोगियों को दियाजाय-एवं वस्त्रजो समय २ वा ऋतु २ के अनुरूपदियेजायँ-अंभःजल जो प्रपा आदिसे यद्वा साधारण प्रकारसेभी आवश्यक दशाओंपर पानकरायाजाय-तिलजो अपनीऋतुमें दियाजाय-सर्पिः घृत जो सदैव साधारण अवस्थामेंभी दियाजाय(प्रतिश्रय) जो प्रवासियोंको आश्रयदियाजावे(नैवेशिक)जो गार्हस्थ्य धर्मकेलिये कन्यादान दियाजावे-स्वर्ण सुवर्ण जो आभूषणआदि प्रकारोंसे समर्पितकियाजावे(धुर्य)जोयानआदि भारखींचनेके निमित्त से वृषभआदि चतुष्पद दियेजावें—इनपदार्थोंको दानकरनेवाला दातास्वर्गमेंजाकर पूज्य होताहै २०९॥

भधि०—स्वर्गफलहोना यहवाक्य एकसाधारणभाव से मुख्यतात्पर्य पर आरूढ है इस्से स्वर्गफल कहनेसे सभीफल समझेगये अर्थात् इसकथनसे उनफलोंका अभाव नहीं समझनाचाहिये जो कहीं शास्त्रांतरमें भिन्नव्यवस्थासे कहेहों—यथा(यत्किंचित्कुरुतेपापंज्ञानतोऽज्ञानतोऽपिवा।अपिगोचर्ममात्रेणभूमिदानेनशुद्ध्यति-एवं-(वारिदस्तृप्तिमाप्नोतिसुखमक्षय्यमन्नदः।तिलदश्चप्रजामिष्टांदीपदश्चक्षुरुत्तमं॥वासोदश्चन्द्रसालोक्यमश्विसालोक्यमश्वदः)-इत्यादि-अर्थात् भूमिदानका यहभीफल कहाहै कि जो कुछपाप कराजाता है चाहै ज्ञानसे अथवा अज्ञातभावसे सोसब गोचर्ममात्र धरती दानकरनेसे शोधन होजाताहै-किंतु स्वर्गफल कहनेसे उसमें यहभी गिनतीमेंआगया क्योंकि पापके शोधनहुये विनास्वर्गका मिलनाभी असंगत है-एवं-वारिदः जल दान करनेवाला सर्वतृप्तिरूप फलपाताहै सोभीठीकहै स्वर्गमेंनिःसंदेह तृप्तिहुआकरतीहै-अन्नदानकरनेवाला अक्षयसुखपाताहै-तिलकादानी अपेक्षितप्रजापाताहै किन्तुजैसी प्रजापुत्रादि वहचाहै तैसीमिलती है-दीपदानकरनेवाला नेत्रोंकी उत्तमदृष्टि पाता है-वस्त्रदान करनेवाला चंद्रलोकमें निवासपाता है-घोडादेनेवाला अश्विलोकमें निवास पाताहै-इत्यादिफल यहसब स्वर्गफलकहनेसेभी बनेरहे—और गोचर्ममात्रधरतीदान से जोपापोंका परिशोधनकहा सो केवल चर्माभर का अर्थ नहीं है किन्तु गोचर्म का परिमाण वृहस्पतिजीने कहाहै कि-(सप्तहस्तेनदंडेनत्रिंशद्दंडांनिवर्त्तनम्। दशतान्येवगोचर्मदत्वास्वर्गेमहीयते) अर्थात्-सातहाथलंबा बांस एक दंडकहलाता है इसदंडसे

संदेह नरकदेशोंकी वसापतमें संपन्नताहोगी क्योंकि दाता और प्रतिग्रहीताआदि अनेकोंको जाकर वहांवसनाहोगा-भला जो गऊकेहाड़ या नाममात्र दानकरने से कुछपुण्यमें विशेषताहोती तोआचार्योंको यहकहनेसे क्याआवश्यकताथी कि घनेदुग्ध वालीहो और जीवन अवधिके आहारयोग्य दक्षिणासेभीसंयुक्तहो कांस्यपात्रभीसाथ हो ओढ़नेकावस्त्र उसकेसाथहो-इनबातोंसे सर्वथा निश्चितयहीहै कि पुण्यका स्वरूप किसीसज्जनके सुखआरामका लक्षण है किंतु जिसमें कोई सज्जन बहुतसी आराम और सुखभोग आदिपावेगा उसमें बहुतसापुण्यहोगा इससे यहबातपाईगई कि ऐसी रीतिसे गऊदीजावे जो उसगऊके पालने या खवाने आदिका झगड़ा प्रतिग्रहीता को न करनापड़े केवलअनायासका दुग्धपानकरनेको मिले जिससे उसके शरीरकेरोमा २ प्रसन्नहोकर आशीर्वादकरें तो इससे यहभी निश्चितहुआ कि प्रतिग्रहीताकेपास उस गऊकीसेवायोग्य कोईअधिक मनुष्य जो नहो तो एक सेवकभी साथ दियाजावे जैसे कन्याकेसाथमें टहलिनी दीजातीहै जिससे औरभी अधिकपुण्यकी वृद्धिहो सर्वथापुण्य का स्वरूप दूसरेकी आराम निश्चितहै-फिरजबकिसीनेबूढ़ी औरव्यर्थगऊकेहाड़ किसी के पल्लेबांधकर उलटी दोआना रोजकी दस्तक उसकेशिर खड़ीकरी तहां प्रथमतो उसपर जो विपत्तिबढ़ी यही एकबड़ापापहै दूसरेजो वहग्रहीता कुछसमर्थ और विवेकीहुआ तो उसगऊका पालन अपने स्वार्थबिना भी करेगा कदाचित् उसमें समर्थ और विवेकताभी नहुई तोनिःसंदेह यातोबेंचेगा या खड़ी २दुःखपावेगी उदरकीअपूर्तिमें अथवा किसी संबंधीके ग्राममें करदेगा तो वहांभी आधुनिक समयमें निर्वाह बड़ादुर्लभहै ग्रामकी हांकीहुई गौओंकी जो दशाहोजातीहै सो आँखोंदेखनेमेंआती है परअकथनीय है अथवा उसने अपनी ओरसे किसीको पुण्यकर के देदी तो भी क्या निश्चितहै कि वहग्रहीता उसको कैसेरक्खेगा या किसकेहाथ बेंचेगा-बड़ीसे बड़ी यह बातहै कि उसबेंचनेवालेने अपनी ओरसे किसीको हिंदू या सत्पात्र समझकरबेंची पर नहीं निश्चित कि उससे उसकाभार उठायाजाय या नहीं या वह कहांसेकहां पहुंचावै तो सर्वथा यहपापकी शृंखला उसपूर्वदाताकेशिर आरूढ़है कि जिसने पहले दानकरके अपनाभार उताराथा-इससे सर्वथादृढ़विश्वासहै कि यहविकराल समय अबगोदान करनेका निर्विकल्प नहींहै क्योंकि जिसकालमें यहआज्ञा उक्तहुईथी उसकालका प्रभावकुछ औरथा यथार्थ में गोदानसे वहीफलहोताथा कि जो शास्त्रोक्त है-क्योंकि प्राचीन समयोंमें गऊऐसारत्न गिनाजाताथा जैसा संप्रति धरतीका बिस्वा समझाजाताहै इससे कि जैसा अबछोटेमोटे ग्रामका बिस्वा कुटुम्बका पालन करसक्ता है उसमें भी इसीस पहलेगोधनसे प्रतिपालहुआकरताथा इसहेतुसे किबनजंगलोंकीबहुतायतके सिवाय प्रत्येक ग्रामों में कुछधरती केवल गौओंके निमित्त छुटी रहती जिसमें

लाखोंगोधनका प्रतिपाल विनादामोंकेहीहोताथा तबएकगऊका मिलजाना एकत्र.
केसमान समझाजाताथा वरनउसदशामेंवृद्धागऊकाभीलेनादेना इसलिये फलदायक
समझाजाताथा कि अगर इससे दूधकासुख नहीं परएकदोबछादेदेवेगी तोभी दोबचों
पीछे गोधन वा गोरसकी वृद्धिघरमें होजायगी जिसने दोबचोंकी रखवाली करनीकठि-
नसमझी उसनेचाहे तिसग्रामके गोधनमें छोड़दी प्रसन्नपीछे घरलाकरबांधी अबइन
मेंसे एकोबात नहींबनसक्ती कहो किसके गोधन में छोड़आवे घर २ मटियाले चूल्हे
एकसेहोगये ग्रामोंकी व्यवस्था शहरोंसे पचीसहै इनकारणोंसे गोदानकाकाल तो पर-
धामको सिधारगया परन्तुकहीं२गोदानकादेश अबतांईभी बनरहाहै किजैसीव्यवस्था
अभी ऊपर लिखचुकेहैं तैसीउनमें वर्तमानहै जिसकीइच्छाहो उनदेशोंमें पैठकर गो-
दानकरे तो यथोचितफल होसक्ता है परन्तु वहदेश जहांहोंगे तहां तिसकेलिये होंगे
हमको कोधिवदेश यहां नहींआसके हम वहां नहींजासके–अन्यथा जिसको इसदेशमें
गोदानकरनेकी श्रद्धाहो उसकेलिये यहीबात बड़ीउत्तमहै कि जैसी गऊदेनेकी सामर्थ्य
[illegible] किजिसकिसीउत्तमपात्र
[illegible] पूजिकर देदेवे तो कोई
भांतिसे दोषभागीनहींहोसक्ता–या–जोअत्यक्तगऊ दानकरनेको इतनीबड़ी सामर्थ्य उस-
मेंहो कि वहसदैव उसकेदानाघासका प्रबन्धकियेजावे तो कुछचिंतानहीं–अथवा–सदैव
का प्रबन्ध नकरसकनेपरभी एकप्रकारहै परन्तुजब वैसापात्र मिलसके अर्थात्गोदानका
ग्रहीतापात्र ऐसाहो कि प्रथमतो ग्राम आदि कुछवर्तासे संबन्धवानहो ऐश्वर्यवानहो
उदारहो विवेकीहो जिसके गोविक्रयकी निषेधप्रतिज्ञा निर्विकल्पहो उदार यहांतकहोकि
चाहेगऊ बहिलाहोजाय परमयकेतुल्य बांधकरखवावे जिसमें यहलक्षणहों उसको चाहे
तैसीगऊदेदेवे तोभीदोषनहीं परजो ऐसाहोगा वह गोदान लेनेमेभी निषेधकरनाहोगा
किंतुऐसासंयोग बनिपड़ना बड़ादुर्लभ है इस्से यहीसबसेश्रेष्ठहै कि जो गोदान करनेकी
श्रद्धा उत्पन्नहो तो समयको हाथजोड़कर गोदानका ध्यानकरलेवे और जो एकपनि
आवे तो उसका कल्पकरिके देदेवे–यतः–(अस्वर्ग्यंलोकविद्विष्टंधर्ममप्याचरेन्नतु) अ-
र्थात जो बात यथार्थमें शास्त्रोक्तहै औरधर्मरूपभीहै परजिसकेकरनेसे अस्वर्गफलप्राप
प्तनहो किंतु नरककीनिशानी देखपड़तीहो अथवा लोकोंनिन्दाहोतीहो तो उसका
आचरणकरना उचितनहीं–सोइसव्यवस्थामें लोकनिंदासे कुछअपेक्षानहीं है परन्तुस्वर्ग
लक्षणतत्त्वभीहै जैसाऊपरसेवर्णनहोता चलाआया सो समझलेना २०३।२०४॥

अथ गयत्मापारक कहते हैं ॥

[illegible] दिनाशनम् २०५ ॥

[illegible] ते पहले कहींकुछविधिसे यहकरने और

तीस ३० वांस धरतीको एक (निवर्त्तन) कहतेहैं ऐसे दश १० निवर्त्तन परिमाण धरती गोचर्म मात्र कहलातीहै तिसके दान करने से पापों का क्षय होता और पीछे स्वर्गमें पूज्यतामिलतीहै-अतःपरम(अधिकस्य अधिकंफलम्) यहशंकाकरनीबुद्धिकीभ्रमताहै कि २००की अधिकोक्ति व्यवस्थासे इस स्थलमें अंतर देखपड़ता है-किन्तु दोनोंका सिद्धांत एकहै और अंतरकिंचिन्मात्र भी नहींहै पर जबतक बुद्धिमें समावे नहीं२०९॥

गृहधान्याभयोपानच्छत्रमाल्यानुलेपनम्। यानंवृक्षंप्रियंशय्यांदत्वात्यंतंसुखीभवेत् २१० ॥

, ऐ०-(गृह) स्थान घर जो बनाहुआ संसिद्धहो-(धान्य)नाज अन्नमात्रकोईसा-(अभय) अर्थात् भयभीत का भय दूरि करिके उसको निर्भय करदेना-(उपानव) जूता मोजा खड़ाऊ आदि पादत्राण मात्र (छत्र) छाता छत्री आदि कोईवस्तु जोवर्षा वा आतप से रक्षा करसक्ती हो-(माल्य) शब्दसे चमेली आदि सुगंधिमान् पुष्प माला अतर फुलेल आदि इनसबका उपलक्षण है-और (अनुलेपन) शब्दसे चंदन कुंकुम आदि अनेक वस्तु जिनका लेपकरने से शरीर और मनोवृत्ति को शीतलता वा प्रसन्नता प्राप्त होती हो-(यान) सवारीमात्र कोई भांतिकी हो-(वृक्ष) जिनसे किसी प्रकारकाफल या छाया आदि का लाभ सुख मिलसक्ताहो-(प्रिय) अर्थात् जिसवस्तु या जिसप्राणी के मिलने पर लालसा किसी को धर्मानुसार अतिशय अभिलाषासहित रहतीहो और वह वस्तु उसको अलभ्यहो उसका प्राप्तकरदेना सो यह प्रिय दान कहलाता है-(शय्या) शयन करने की कोई वस्तुमात्र हो पलँग आदि चाहे वस्त्रों आदि सब उपकरणोंसे संपन्न हों चाहे अपनी अशक्ति अनुसारकेवल एक दो वस्तु शयनसंबंधी हों तो भी उसका नाम शय्यादान है-इन कहेहुये पदार्थोंको देकर दाता अत्यंतसुखी होता है २१०॥

भाषि०-सिद्धांत निरंतर वही चलाआताहै जो२००की अधिकोक्तिव्यवस्थामें कथन होचुकाहै अर्थात् इन पदार्थोंकोचाहे तिसरीतिसेचाहे तिसको योग्य समझकर देदेने से दानकहलाताहै किन्तु केवल वहीदान नहींहै जो जलकुशके साथदियाजावे अर्थात् अपने संसर्गी और सेवक दासादि को भी पृथ्वी में शयन करते देख दयाभावसेखाट देदेना यह शय्यादान है फिर चाहे पीछे किसी अवधिपर उनसे निवर्त्तनभी करलेनी परे तो भी उतनी अवधिका शय्यादानहोचुका जितनाआराम उनकोदियागया परंतु (उक्त)दोनों का शय्यादान दानकी पूर्णपदवी को नहींपहुँचसक्ता जिसके आधीन संसर्गी या दासादिक कुऋतुमेंभी विकृत धरतीपरलोटतेफिरें और वह धनी किसीकालांतरमेंसोदोसो मुद्राव्ययकरकेसांगोपांग शय्यादान जलकुशकेसाथकरनेबैठे-सत्यंच (धिक्तस्यचोपदेष्टारांधिग्दानंतच्चदानिनम्।धिगीदृग्दानश्रद्धाञ्चयत्रापन्नाहिदुःखभाक्)अर्थात्-आपन्नकहिये संप्राप्तजन आधीन संसर्गी-जहांप्रथम जिसके आपन्नजन-

ही दुःखभागीवनेरहे उसकी ईदृशदान श्रद्धाकोभी धिकारहै कि वह शय्यादान आदि दानोपर‧वहु व्ययकरनेकी श्रद्धाकरे-और ऐसे कुश्रद्धावान्दानीकोभी धिक्कारहै-और उस कुदानकोभी धिकारहै जो उचित पात्रों का भागहरिकैदानहुआ-उसदानी के उपदेष्टाको सबसे अधिक धिकारहै जो ऐसा कुत्सित उपदेशकरे-सबसे अधिक यहभाव मूलपाठमे नहीं परंतु उसकी अधिकताकेहीलिये प्रथम नम्बरपर उच्चारणहुआ किंतु पहलापदसबसे उत्तमप्रसिद्ध है इसलिये पहलेपदपर उच्चारणहोनेसे दर्जेअव्वलकी धिकार उसकोमिली (भेद २) ऊपर अभिप्रायार्थ मे प्रियदान का चर्चाआया और उसका स्वरूप भी वहांपर लिखागया पर उसके स्वरूपका केवल वही लक्षण नहीं है कि कोई ठेठकर अपने शरीरकेही प्रियपदार्थोंको चाहताहो किन्तु धर्म प्रियताभी उसका स्वरूप है दृष्टांत जैसे प्रपा अर्थात् पिआऊका लगाना किसी असमर्थको प्रियहो या विद्यादानादि का प्रबंध करना प्रियहो या दीनोंकी कन्यादान करवानायद्वा कोईसा उपकार करवाना प्रियहो जिसमें सर्व प्रियताके भी लक्षणपायेजातेहो जिसके करवाने में वह आप निष्किंचन है इत्यादि वहुधा लक्षण और भी जानो इसमे यहां तक विशेषता है कि अपना संचित पुण्यभी देदेवे जिस्से प्रियदानकी पदवीसमुझी-जातीहो-सोई स्मृत्यंतरका यह वाक्यहैकि-(देवतानांगुरूणांचमातापित्रोस्तथैवचापुण्यं देयंप्रयत्नेननापुण्यंचोदितंक्वचित्) अर्थात्-देवताओंको और गुरुओंको तथा माता पिताकोभी अपना पूर्वोपार्जित पुण्य किसी आवश्यकता में उनका प्रियसाधनके हेतु से प्रयत्नकरके देदेवे-किंतु ऐसे संकल्पादिक यत्नो से समर्पित करदेवे कि अपनाफलाधिकार उस्से दूरकरलेवे-सो यहवात केवल मनकी आड़ है अर्थात् फलाधिकार दूरकरनेपरभी दूरहोना वड़ीदूरहै क्योंकि यद्यपिउसपुण्यके दाताने फलका अधिकार अपना दूरइसहेतु से किया कि इसकाफल ग्रहीतापावे जिसके पासकुछ भी पुण्यसंचय नहीं था परंतु अबइस तात्कालिक पुण्यका आनंत्यफलकैसेदूरहोगा जो उसने अपना वहुपरिश्रम या वहुकाल से कमायाहुआ पुण्यएकसाथदानकरिकै परोपकार में लगाया-अर्थात् तत्काल उसके फलकी वृद्धि अनंत‧गुणहोजाती है-परंतु-चौथे चरणमें कहते हैं कि (अपुण्यउदितंचनक्वचित्देयं) अर्थात्-अपुण्य जो अपना पापहै सो कहनेपरभी किंतु मांगेसेभी न कहीं देना यद्वा (अपुण्यं चोदितंक्वचित्नदेयंइत्यन्वयः तत्रापिसएवार्थः) अर्थात् इस अन्वयसेभी वही अर्थहै कि प्रेरितहुआभी पाप कभी न देवे-पापकेभी न देने अथवा देनेका वही हेतुहै कि जैसे पुण्य देदेनेसे वढताहै तैसेही पापभी अनन्तगुण वढताहै किन्तु जो वस्तु दानकरीजायगी वही वृद्धिको पहुँचेगी जैसे धरती में बीज तो थोडा परताहै पर उस बीजकी वृद्धि पीछे वहुतरीहो-तीहै-सोई इसका प्रमाण शास्त्रमे यह कहा है कि (य पापमवलंज्ञात्वा प्रतिगृह्णाति

दुर्मतिः। गर्हिताचरणात्तस्य पापंतावत्समाश्रयेत्। समंद्विगुणसाहस्रमाऽऽनन्त्यंचप्रदातृषु) अर्थात्-जो कोईदुर्बुद्धिजन पापको अवलकहिये थोड़ा यद्वा निर्बलजानिकैदूसरे से लेलेताहै तभीवहपाप उसकेइसगर्हितआचरणसे अर्थात् इसीपापिष्टकर्मके प्रभाव से उसकी कर्मरेखामें दोहजार गुणकेसमान वृद्धिपाकर समाश्रित होजाता है चपुनः उसपापके प्रदानकरनेवालोंमें अनन्तगुणा होजाता इस्से पापकादेना और लेनाभी नि संदेह अशुभहोताहै—अनन्तगुणा या दोहजारगुणा उसपरिमाणसे कि जितनावह पाप पहलेथा २१० ॥

सर्वधर्ममयंब्रह्मप्रदानेभ्योधिकंयतः तद्ददत्समवाप्नोतिब्रह्मलोकमविच्युतम् २११॥

अक्ष०—जिस्से ब्रह्म सर्वधर्ममयहोता इसहेतुसे सर्वप्रदानोंसे अधिकहै उसका देनेवाला अविच्युत ब्रह्मलोक पावता है २११ ॥

मनि०—ब्रह्मकहिये वेद उसके निदर्शनसे सभी शुभशास्त्र वा शुभविद्याओंका उपलक्षणहै वहवेद जब सर्वधर्ममय प्रसिद्ध और प्रत्यक्षठहरा क्योंकि वेद वा शास्त्रोंसेही सारेधर्म जानेजातेहैं किन्तु उसकी प्राप्तिसे मनुष्यमें मनुष्यताके लक्षण सर्वथा प्रकट होजाते और सभीपदार्थ धर्म अर्थआदि उसकोसुलभ होजाते हैं तो इसवेदका दान करना सबदानोंसे अधिक फलदायक निश्चितहुआ इसहेतुसे वेदकादान ऐसाप्रबल है कि इसको दानकरनेवाला चाहे और कोईसादान नकरसकाहो परसभीदान धर्मोंकाफल उसकोमिलताहै कि उसफलके प्रभावसे अविच्युत ब्रह्मलोकका निवास वह पाता है-अविच्युत अर्थात् फिरबीचमेंच्युति जिसकी न होसकै—और वेदशास्त्रविद्या आदिका दानकरना कुछयहीनहीं कि पोथीको उठाकर जलकुशकेसाथ देदेवे अर्थात् विद्यार्थियोंको पढ़ाना या पोथीदेना वा किसी से दिलवादेना या उनकेअन्न बस्त्रादि का प्रबन्ध करवादेना या उसप्रकारके प्रबन्धमें सबकेसाथ कुछआपभीदेना या विद्यादान शालाओंका निर्माणकराना किन्तु कोई भांतिसे विद्यासंबंधी कामोंकी सहायता करनी सो सब ब्रह्मदान है २११ ॥

भपि०—इसप्रत्यक्ष सर्वधर्ममय ब्रह्मरूप शास्त्रके ग्राहक आधुनिक जो अपने को यह समुझते होंगे कि हम केवलग्राहक हैं क्योंकि मूल्यभेजा और पत्रमँगवाया सो नहीं किन्तु वेभी ब्रह्मदानके फलभागीहैं इसहेतुसे कि विचारदृष्टिमें जब सौ ग्राहकों के निमित्त से यहकाम आरोपितहुआ या आरंभइसका विच्युत नहीं होनेपाया तौ सर्वथा वेही सौमनुष्य इसके मूलकारण समझेगये क्योंकि वेमूल्यदेतेहैं उनकेनिमित्त से इसकी संसिद्धि होतीहै तिसमेंसे दशवीसपचास ऐसे मनुष्यभी इसकी प्राप्तिकरते हैं कि उनसेमूल्य या तौ किसीहेतुसे नहीलियाजाता या वे देनहींसक्के या संपादक से मैत्रीभावरखते या उसके संबंधीहै या सेवकहैं या भिक्षुकहैं या अभ्यागत महात्मा हैं

या सज्जन वा सहायकहैं-याधूर्त्तहैं कि जोलेतेजाते और पीछे से धोखादेदेते या तस्कर हैं जो आंखबचाकर अधिकारीके पीछे लेभागते या कपटीहैं जो कार्यकी साधकतामें कुछकाटकपट करलेतेहैं अर्थात् नानाभांति,से,अनेक अभिलाषी जो विनामूल्यदिये अपनी अभिलाष-पूरीकरपातेहैं या दशमनुष्य,ऐसेहैं जो इसकार्यकी साधकतामेंसे वा धर्मसे अपनापरिवार पालनकरसक्तेहैं,यह सारापुण्य उन्हींकेहेतुसे होसक्ता है क्योंकि जो वेभी मूल्य नहीं देते,या ग्राहकता नहीं करते तौ,किसके शिरपर यहवरात जोड़ी जाती-यथार्थसे वे सत्पात्रग्राहक इसब्रह्मदानके हेतु,और फलभागीभी निश्चितहैं-उनसेभी अधिक वे लोग सर्व्वशिरोमणि समझे चाहिये,जो ग्राहकों की,वृद्धिद्वारा या सहायताकी दृष्टिसे अपनाधन,अधिक लगाने द्वारा इसकार्यकी सिद्धिमें तत्परहोरहे हैं-इनसबके पीछे सम्पादकभी निजशारीरक आयास वा उद्योग द्वारा भाव इसब्रह्मदानमें कुछ पुण्यभागी होसक्ताहोगा,क्योंकि जो उसने इतना उद्योग बाँधा तौ वेभी सहायतापर उद्यतहुये किन्तु जो,उद्योगमें आयास नहीं करता तौ,सहायताभी किसकी करीजाती २११॥

दानोंके करनेसे फल कहागया अब एकदशा ऐसीहै कि उसमें दानके न करने परभी दानका फल होताहै सो कहते हैं॥

प्रतिग्रहसमर्थोपिनादत्तेयः प्रतिग्रहम्। येलोकादानशीलानांसतानाप्नोतिपुष्कलान् २१२॥

ऐ०-जो मनुष्य प्रतिग्रह कहिये दानलेने,में समर्थ अर्थात् दानलेनेकी योग्यता वाला पात्रभी है और जब कोई दान उसको मिलनेलगै उससमय वह न लेवै किन्तु नकार करदेवै तौ जिस २ दानको मिलतेहुये उसने नहींलिया उसी उस दानके दाताओं को जो लोकफलभागितासे मिलते हैं उन सारेलोकोंको वहभी पाताहै-यथार्थ से यह बात सत्य है और इसी हेतुसे बिरले देश या बिरली जातिके ब्राह्मण आदि प्रतिग्रह नही अंगीकार करते हैं २१२॥

अभि०-ब्राह्मणआदि कहनेसे इस आदि शब्दका यही सिद्धान्त है कि अन्यजातीय लोगभी क्षत्रिय आदि२०० की अधिकोक्ति व्यवस्था अनुसार उस प्रकारके प्रतिग्रह जो उनको किसी प्रत्युपकार के हेतु से लेलेने योग्य हों जिनके लिये वे पात्रभूत कहलासक्तेहैं अपनी इच्छासे न लेवें किन्तु लेनेसे नकारकरदेवें तौ वेभी उसदान केफलभागी होतेहैं जैसा ऊपर ऐक्यार्थमें लिखागया क्योंकि यथार्थसे जोवस्तुउनको लेलेनी योग्यहै तौउनकीहै किंतु उसकेलेनेसे कोईभांतिकादोष उनको नहींलगसक्ता था जब ऐसीवस्तुको उन्होंने मिलतेहुयेभी न लिया तौ प्रत्यक्ष पुण्यहुआ कि उनकी वहवस्तु जिसकिसीने भोगी तौ वहींपुण्यहुआ जो अपनेहाथमें आजाने पीछे किसीको देदेनेमे पुण्यहोता-यहांपरप्रतिग्रह केवल उसदानकाहीनामनहींहै जो जलकुशकेसाथ

कियाजाता किंतु किसीभांतिकादान२००कीव्यवस्थाअनुरूप अपनेकोमिलताहोचाहे अपनाऋण किसीपरआताहो चाहे किसीपरिश्रमका प्रतिकार कोईदेताहो या अपना धरतीआदिका हक किसीपरशेषहो सो सभी प्रतिग्रहरूपहै इसीलिये ऊपर मूलश्लोकमें ब्राह्मण या क्षत्रियआदि कुछनामनहींखोला किन्तु केवल(प्रतिग्रहसमर्थोपि)यह लिखाहै सो इसीलिये हेतुगर्भितपद रक्खागया कि चाहेकोईहो और वह किसीहेतुसे कुछ प्रतिग्रहलेनेका अधिकारी किसीसे हुआहो और उसप्रतिग्रहको मिलतेहुये भी अपनीइच्छासे चाहेसबछोड़दे या उसमेंसे कुछभाग छोड़देवे तौ उसफलकाभागी हो जो उतनाधनअपनेहाथमें आजानेपीछे दानकरनेसे होनासंभाव्यथा-यतः(प्रतिगृह्णातीतिप्रतिग्रहः) सिद्धांत से इसवार्त्तामें इतनाभेद है कि जोवस्तु ठेठकर अपनेहकमें गिनतीथी जिसका लेलेना अपनेको योग्यथा उसके लेलेनेमें कुछदोषनहीं वरनछोड़ देनेमें पुण्यप्रत्यक्षहै (परंतु) जो प्रतिग्रह ऐसाहो कियथार्थमें वस्तुकिसीभांतिसे अपनी नहींथी किन्तु जलकुशकेसाथ दानकरिके कोईदेनेलगा तिसप्रतिग्रहके नकार करदेने में तौ वही पुण्यहोगा जो उसकेदानीकोहोता क्योंकि उसको लेलेनेपरभी दानअपनी ओरसेकरदेते तौभी पुण्यहोता इसहेतुसे वहवस्तु अब अपनीमें गिनतीहोचुकी चाहे ली या न ली कुछइसका नियम नहींहै पर लेलेनेमें यह दोषभागिता निःसंदेह अपने को लगैगी कि उसदाताके पापकाभागीहोनाहोगा इसीसिद्धांतसे उसप्रतिग्रहको हाथ में लेलेनेपीछे दानकरनेसे पुण्यनहींहोगा क्योंकि जितनापुण्यहोगा उस्से अधिक पूर्व दातूकापाप अपनेऊपर आरूढ़हुआ तौ ऊँटमटीलाभी बराबर हुआ और प्रतिग्रह लेने का लांछन अपने को निःसंदेह लगा इस्से पहलेसेही नकारकरदेना यह अपनी ओरसे निर्मलपुण्य ठहरा और उसदाताकोभी पाप नहींलगसक्ता जिसकादान इसने फेरदिया क्योंकि वह इसकेपलटे किसी औरको देवैगा-परन्तु इसआशय से पूर्वोक्त दाताओंको निःसंदेह उसग्रहीताके पापोंका भागीहोना होगा जिसका चर्चा यहां पर अभी पहलेआयाथा कि वह अपनी योग्य वस्तुको भी मिलतेहुये सारी या कुछभाग उसमेंसे छोड़देवे तौ दानका फलभागीहो-पुनिवेभी उसकेपापभागी नहींहोसक्तेहैं उस दशामें कि जितनाभाग उनपर किसी ग्रहीताने लेतेहुये छोड़दिया हो उतना किसी पुण्यकार्य में लगादेवे किन्तु अपने भोगोंमें न लावें २१२॥

अब उन प्रतिग्रहोंका चर्चा करते हैं जिनकालेना किसी दशामेंभी निषिद्ध नहीं और न उनके लेलेनेसे कुछदोष बल्कि नलेनेसे दोष पैदाहोता है॥

कुशाःशाकंपयोमत्स्यागंधाःपुष्पंदधिक्षितिः। मांसंशय्यासनंधानाःप्रत्याख्येयंनवारिच२१३॥

ऐ०-(कुशा) प्रसिद्ध हैं-(शाक)तरकारी फल मूल कंद आदि कोईसी हो(पयः)दूध जो केवल एकदिनके उठावे योग्यहो-(मत्स्याः) प्रसिद्धाः परन्तु जिसको इनसे अपेक्षा हो-

(गंधाः)सुगंधिवस्तु जोकुछदिवसोंके उठावेयोग्यहों-पुष्पं फूलमात्र पूजाआदिकेनिमित्त से-(दधि)दहीथोड़ासा प्रसादयोग्य यद्वा ब्रह्मभोज आदिके हेतुसे अधिकभी कदाचित् (क्षितिः)अर्थात् मृत्तिकामात्र और कुछदिनोंके निवासयोग्य धरती और धरती सदा कोभी(मांस)परजिसको इस्से संबंधहो(शय्या)खाटआदि शयनकी वस्तुचाहे कुछ दिवसोंको आरामयोग्य यद्वासदाकोभी-(आसन)विस्तर जो बैठने बिछानेयोग्य सदाकोभी (धानाः)बहुरीददरी होलेआदि हरितअन्नके बनायेहुये चाहेथोड़े या बहुतभी(वारि)जल यहचीजें जो कोई आपही विनामांगे लाकर उपस्थितकरे और प्रसादकी रीतिसे देने लगे किंतु संकल्पकीरीतिसेनहीं तो इनका लेलेनाउचितहै और फेरना या दुलखनकी रीतिसेकुछकहना अनुचितहै अर्थात्प्रसन्नहोकरअनुग्रहकीदृष्टिसेलेलेनाचाहिये २१३॥

अधि०—मनुजीके कथनसे इनकेसाथमें औरभी कोई२ वस्तु पाईजातीहै-यथा-(गंधोदकंमूलफलमन्नमभ्युद्यतंचयत्।सर्वतःप्रतिग्रहणीयान्मध्वाज्याभयदक्षिणाम्)अर्थात्- गन्धसुगन्ध अपूर्वताकीरीतिसे-उदक जल किसीतीर्थका यद्वा मिष्टादिहेतुसे कूपकाभी या अलभ्यतामें किसीप्रकारकाभी-मूलफलजातिकी कोईवस्तु अलभ्य यद्वा सुलभ्य हो-अन्न जो आतिथ्यादिरीति या अपूर्व और नवीन जानिकर प्रसादकी रीतिसे कोई बिनामांगे देनेलगे-मधुसहत आदि जो सदाही अलभ्यमें गिनतीहै-आज्य घृत गऊ आदि का जो सद्योत्थितादि हेतुसे प्रसादवत् समर्पणकरे किंतु बाजारसे खरीदकर दानादि कल्पनासे नहीं-अभयकर्म जो अपनीभयभीत दशामें कोई दयादृष्टिसे करने लगे-दक्षिणा जो महत्व वा पूज्यतासे सत्कारादिरीतोंद्वारादेवे किंतु दानादि कल्पनासे नहीं- इसप्रकारसे उद्यतकरीहुई यहसारीचीजें प्रतिग्रहण करलेवे तो प्रतिग्रहका दोष नहीं लगसक्ता किंतु यह संसारकी शिष्टाचारी मर्यादहै वरन इनके लेनेसे निषेधकर जानेमें उलटादोष लगताहै-क्योंकि जब कोईसज्जन बड़ेउत्साहसे कोई वस्तु तोफह या अपूर्व या प्रसादसमझकर देनेआया कि अमुकमहात्मा मेराउपहार वा उपायन अंगीकारकरें तो मुझकोभी कुछबड़प्पन शिष्टाचारी मध्येमिले और जब ऐसीदशामें उसने लेनेसे नकारकरके प्रसाद फेरमारा तो देनेवालेकामन कैसा कुम्हिलाकर छोटा सा होगया जानो एकप्रकारकी हत्यासीचढ़गईहो और अपनेमनमें उसने दुःखमानकर यहभीकहा कियहमहात्मानहीं कोईअविवेकी है जोलौकिक शिष्टाचार नहींजानता सो यह इसके चित्तकी दुखमनी और हृदयगत कुवाक्य वा संकोचआदि उसकेपूर्व संचित पुण्यको हरिलेतेहैं जिसनेलेनेसे नकारकियाथा और संचितपुण्यका हरिजानाय हीपापकालक्षणहै-शास्त्रांतरेपि(शय्यांगृहान्कुशान्गन्धानाऽऽपःपुष्पंमणीन्दधिमत्स्यान्धानाःपयोमांसंशाकंचैवननिर्णुदेत्) अर्थात्- शय्या खाट जो साधारणरीतिसे किन्तु शय्यादानकी कल्पनासेनहीं-गृहचाहेंतिसरीतिसे-कुशा गंधवस्तु-आपःजल-पुष्पपूज-

तादिनिमित्त और मालाआदि रीतोंसेभी-मणि जो दूरदेशी अलभ्य अपूर्व आदि लक्षणवाला सौगातके प्रकारसे देवै-दधि दहीप्रसादवत्-मत्स्य जिसके योग्यहों- पयः दुग्ध-मांसजिसके योग्यहो-शाकतरकारीफल मूलआदि इनको नहींत्यागे २१३ ॥

अवआगेइसी २१३ श्लोकमेंकहीहुईमर्यादामध्येकुछत्याज्यविशेषभी कहतेहैं कि सबसे नहींलेलेना ॥

अयाचिताहृतंग्राह्यमपिदुष्कृतकर्मणः। अन्यत्रकुलटाषंढपतितेभ्यस्तथाद्विषः २१४ ॥

ऐ०–अयाचित अर्थात् विनामांगे आहृतकहिये लायाहुआ किसीकरके कोईपदार्थ जिनकीचर्चा ऊपर २१३ में आचुकीहैं वह दुराचारीसेभी लेलेनाचाहिये पूर्वोक्तरीति के अनुसार परन्तु कुलटास्त्री १ षंढकहिये नपुंसकआदि पुरुष २ पतित चांडालआदि या जातिसेभ्रष्ट हुआ चाहे स्त्रीहो यापुरुष ३ तथा अपनाशत्रु पुरुष स्त्री कोईहो ४ इनचारों से अन्यत्र अर्थात् इनकादिया पदार्थ उसरीतिसेभी नहीं लेनाचाहिये जोरीति २१३में कहीथी-नपुंसकआदिइसआदिशब्दसेगुदयोनि पुरुषभीसंग्रहीतहै-तस्य लक्षणंचयथा-(स्वेगुदेऽब्रह्मचर्याद्यःस्त्रीषुपुंवत्प्रवर्त्तते।सकुम्भीकइतिज्ञेयोगुदयोनिस्तुसस्मृतः२१४॥

अभी इसवार्त्तामें औरभी कुछ विशेषता नीचे कहते हैं ॥

देवातिथ्यर्चनकृतेगुरुभृत्यार्थमेवच । सर्वतःप्रतिगृह्णीयादात्मवृत्त्यर्थमेवच २१५ ॥

ऐ०–ऊपर २१४ की कहीहुई मर्यादा अनुसार आईहुई वस्तुको फेरदेने से जिस गृहस्थीके नित्यकर्मधर्मोंमें हानि देखपड़तीहो उसको उनचारोंकाभी दियापदार्थ फेर देना अनुचितहै-अर्थात् देवता अतिथि इनकीपूजा सत्कार के लिये और माता पिता आदि गुरुओं तथा स्त्री पुत्रादि भृत्यवर्गों और निजआत्माकी भी वृत्तिकहिये आजीवनकेलिये सभीतरहका जो कुछ मिलजावै सो प्रतिग्रहणकर लेवै किन्तु केवलपतित चांडाल आदि अतिकुत्सितोंका तौ भी छोड़देवै पर सिद्धांत इस्से यही है कि जो इतने कहेहुये मुख्यकारणोंमेंसे कोईकारण प्रबलहो तौ ऐसाकरना उचित है अन्यथा केवल अपने आत्माकेही निमित्तसे अनुचित है २१५ ॥

इतिदानधर्म प्रकरणम् ॥

अथ श्राद्ध प्रकरणम् ॥

अमावास्याष्टकावृद्धिःकृष्णपक्षोऽयनद्वयम् । द्रव्यंब्राह्मणसंपत्तिर्विषुवत्सूर्यसंक्रमः २१६ ॥
व्यतीपातोगजच्छायाग्रहणंचन्द्रसूर्ययोः । श्राद्धंप्रतिरुचिश्चैवश्राद्धकालाःप्रकीर्त्तिताः २१७ ॥

मक्ष०सह०–अमावास्या अष्टका वृद्धिकाल कृष्णपक्ष दोनों अयन द्रव्यकी प्राप्ति ब्राह्मण यथोक्त का मिलना विषुवती दोसंक्रांतैं सूर्यकीसंक्रांतैं बारह २१६ व्यतीपात योग गजछाया ग्रहणकाल चन्द्रसूर्य दोनोंका श्राद्धकेप्रति रुचिका उत्पन्नहोना यह सब श्राद्धकरनेके काल कहे हैं २१७ ॥

भाषि० सह०—इन दोश्लोकोंसे पार्वणश्राद्ध और वृद्धिश्राद्ध इनके करनेकेकाल निश्चय करते हैं कि कब २ इनको करना चाहिये पुनि इसी प्रसंगसे अन्यश्राद्धोंका भी चर्चा करेंगे-तहां अमावस किन्तु जिसदिन चन्द्रमा नहीं देखपड़ताहै तिसदिनमें भी यह श्राद्ध कियेजाते हैं परन्तु वह अमावास्या जब साठिघड़ीसे अधिक वृद्धिपाकर दोनों दिनमें व्याप्तहो तब दो दिनमेंसे जिस किसीदिन अपराह्लव्यापिनी मिलसक्ती हो तिसदिन करै क्योंकि अपराह्ल पितरोंका प्रसिद्धहै सो उस अपराह्लका यहलक्षणहै कि दिनमानके पांचभाग करिके चौथाभाग मुख्य समझना जैसे तीसघड़ीके दिनमान में दो २ घड़ीके १५ मुहूर्त्तहुये तिनमें तीन २ मुहूर्त्तके पांचभागहुये ऐसे तीनभागोंके उपरांत चौथाभाग जो तीन मुहूर्त्त यद्वा छःघटिकाकाठहरा तिसको अपराह्लकाल कहते हैं इस अपराह्लकालके समयतक जिसदिन अमावसकी प्राप्तिहोसकै तिसमें श्राद्ध करै सो यह अमावस बारहोंमासकी कही हैं जिस्से बनिआवै बारहमास निरन्तरकरो अथवा एकदो अमावसमें अवसरके आधीन१ ॥ (अष्टका) चारप्रसिद्धहैं हेमन्त और शिशिर इन दो ऋतुके चारमासमें कृष्णपक्षकी अष्टमीतिथि अष्टका कहलाती हैं तिनमें आश्वलायनऋषिके मतसे श्राद्धकरने का माहात्म्य अधिकहै २ ॥ (वृद्धिकाल) अर्थात् पुत्रजन्म आदिसमयमें जो श्राद्ध कियाजाय वह वृद्धिश्राद्ध कहलाताहै आदि शब्दसे पुत्रका विवाह या द्विरागमन आदिभी अपेक्षितहै क्योंकि उनमेंभी एकमनुष्य की वृद्धि घरमें होजाती हैं अन्यथा यज्ञोपवीत आदि जिनमें मनुष्यकी वृद्धि नहींहोती पर उनमेंभी संस्कार विशिष्ट जातित्वकर्म धर्मोंकी वृद्धि मंगलकीवृद्धि पुण्यकी वृद्धि हुआ करतीहै इसलिये यह सबकालवृद्धि श्राद्धकेप्रसिद्ध हैं ३ ॥ (कृष्णपक्ष) भी पितरों का पक्षकहलाताहै इसलिये सदैव कृष्णपक्षोंमें चाहै तिसदिन पार्वणश्राद्ध करो यद्वा उसपक्षमें अपने किसी पितर विशेषकी तिथिमें पार्वणकरो चाहै समर्थहो तो रोज २ करो पर संयोग और बानकके आधीन है ४ ॥ (अयनद्वयम्) अर्थात् उत्तरायण दक्षिणायनकेसूर्य जिसदिनपलटतेहैं वहदिन पार्वण यद्वा वृद्धिश्राद्धकेलिये परमपुनीतहै५॥ (द्रव्यम्) अर्थात् जो २ द्रव्य श्राद्धके लिये उत्तम कहलातेहैं उनमेंसे कोई द्रव्य जिस दिन मिलजावै वही दिन श्राद्धकरनेका मुख्यकाल होजाताहै फिर उसमें किसीपर्व या पुनीतकालकी अपेक्षा शेष नहीं रहती (दृष्टांत) जैसे कृष्णसारनाम मृगमांसके पिंड देनेका अनन्तफल शास्त्रोंमें कहाहै और जिसको इसबातकी अपेक्षा किसी मर्यादा से दृढ़हो कि मेरे पितर मांस पिंडोंसे अतिशय तृप्तहोंगे ऐसे पुरुषको जिस किसीदिन वह अलभ्यमांस मिलजावै उसीदिन श्राद्धकरनेका मुख्यकाल है ऐसे अन्यद्रव्योंके भी मिलजाने पर समझलेना ६ ॥ (ब्राह्मणसम्पत्ति) अर्थात् जिसप्रकारके ब्राह्मण श्राद्धमें अपेक्षितहोतेहैं जिनकाचर्चा आगे २१८। २१९ । २२० । इनतीन श्लोकों

में आवेगा ऐसे अलभ्य ब्राह्मण जबकभी मिलजावें या यथोक्त विधिसे करानेवाला आचार्य जबकभी मिलजावे चाहे श्राद्धके कहेहुये काल उसादिन नहींभीहों परउस अवस्थामें वहीकाल मुख्यहोजाताहै ७ ॥ (विषुवत्) अर्थात् विषुवती नामकी दो संक्रांतें प्रसिद्ध हैं उत्तरायण में मेष संक्रांति दक्षिणायन में तुलाकी संक्रांति इनमेंभी श्राद्धका माहात्म्य अधिक उत्तम है ८ ॥ सूर्यकी संक्रांतें जो प्रत्येकमास पीछेआया करती हैं वह भी श्राद्धका उत्तमकाल है-यद्यपि संक्रांति कहनेसे दोनों अयन और दोनों विषुवतीभी आगईं परंतु साधारण संक्रांतोंकी अपेक्षा उनकाफल अधिक प्रकट करनेकेलिये भिन्न कथन है २१६ (व्यतीपात) जो २७ योगोंमें एक योग विशेष प्रसिद्धहै वहभी श्राद्धकालहै ९॥ (गजच्छाया) यद्यपि कोई२ पुरुष हाथीकी छायामेंही श्राद्ध करने को गजच्छाया मानते हैं परंतु यहांपरकालके प्रसंग से वहबात अप्रसंग है किंतु यह योग इसमें यथार्थ घटता है कि-(यदेन्दुःपितृदैवत्येहंसश्चैवकरेस्थितः। याम्यातिथिर्भवेत्साहिगजच्छायाप्रकीर्त्तिता)-अर्थात्-जब चंद्रमा पितृ दैवत्य कहिये मघा नक्षत्रपरहो किंतु मघा जिसदिनहो और हंसजो सूर्यहै सो करनाम हस्तनक्षत्र पर स्थित हो और ऐसी मघाके दिवस याम्यातिथि अर्थात् त्रयोदशीभीहो तो उसदिन गजच्छाया योगजानो परंतु इसमें कृष्णपक्षकीभी अपेक्षा है क्योंकि पितरों का पक्ष वह विख्यात है और यही गजच्छाया योग (कृत्यचिन्तामणि) में भी कहा है तहां प्रत्यक्ष भावसे कृष्णपक्ष कहदियाहै-तथाच-(कृष्णपक्षेत्रयोदश्यांमघास्विन्दुःकरेरविः। यदातदागजच्छायाश्राद्धेपुण्यैरवाप्यते)-अर्थात्- यह गजच्छाया योगश्राद्ध करने के लिये पूर्व पुण्यों के उदयसे मिलसक्ताहै किसी बड़भागी को-इसके सिवाय गजच्छाया योग और भी अनेक प्रकारके शास्त्रों में जहां तहां कहे और वे भी श्राद्धसे संबंधरखते हैं उनकाचर्चा देखो नीचे अधिकोक्तिमें१०॥ (ग्रहणं) अर्थात् चंद्रसूर्यदोनों का उपराग जो राहु करके होताहै वहभी श्राद्धकरने का पर्वरूप एककाल है ११ ॥ इनके सिवाय विनाकालके भी जबकभी श्राद्धकरनेकी श्रद्धाउत्पन्न होनेसेरुचि आजावे तभीकरो किंतु वहभी एक पर्वकालहै १२ ॥ यह सब श्राद्धकाल विशेषता करके कहे हैं इनसे यह सिद्धांत भी अपेक्षित है कि जिसकिसी कर्त्ताको जिसदिन अपने किसी पितर विशेष का श्राद्ध करना आवश्यकथा वह किसी प्रतिबंधके हेतुसे न होसका तो पीछे उक्तकालोंमेंसे जो कोई काल समीप आजावे उसमें करदेना उचित है २१७॥

अधि०—अष्टका यद्यपि इसके अभिप्रायार्थमें दोऋतुओंसे चार अष्टकाकहे हैं और पहले किसी स्थलपर शास्त्रांतरसे पौषादि तीन मासोंकी कृष्णाष्टमी द्वारा तीन अष्टका सिद्धहुयेथे परन्तु वे तीन तो पूपाष्टका १ मांसाष्टका २ शाकाष्टका ३ इनभेदोंकी विशेषविधि परकहेहैं और यहां पर साधारण भावसे श्राद्धकापर्वकाल निश्चितकिया

है-इस्से दोनोंठीकहैं विरुद्ध नहीं-अथअन्यान्यपिगजच्छायालक्षणानितत्रैकंलक्षणं दर्शापराह्णकालएवगजच्छाया अर्थात् एकलक्षण तो अमावास्याके दिवस अपराह्ण कालगजच्छाया कहलाताहै-तद्यथा(द्विगुणाह्यात्मनश्छायादर्शेस्यादापराह्णिकी। गजच्छायेतिसाप्रोक्तापितॄणांतृप्तिकारिणी)अर्थात्-अमावसके दिवसठीक २ जिससमय अपने शरीरकी छाया आतपमें खड़ेहोनेसे दूनी अपने शरीरके परिमाणसे लंबीआजावे वहछाया आपराह्णिकी कहलातीहै पुनिवही गजच्छायाभी कही है और पितरों की तृप्तिकरनेवाली होतीहै॥ अथद्वितीयलक्षणं-यथा(अमावास्यांगतेसोमेछायाया प्राङ्मुखीभवेत्। गजच्छायातुसाप्रोक्तातत्रश्राद्धंप्रकल्पयेत्)अर्थात्-अमावसमेंसोमवार आजानेपर जिससमय अपने शरीरकी छाया आतपमें खड़ेहोनेसे प्राङ्मुखीहो जावे किंतु पूर्वकी ओरको सीधी चलीजावे वहीगजच्छायाभी कहलातीहै उसीसमय श्राद्धकी कल्पनाकरे तो पितरोंकीतृप्तिहो॥ अथवराहोक्ततृतीयलक्षणं-यथा(सैंहिकेयो यदाभानुंग्रसतेपर्वसंधिषु।गजच्छायातुसाप्रोक्ताश्राद्धंतत्रप्रकल्पयेत्)अर्थात्-सैंहिकेय नामराहुजब पर्वकी संधियोंमें सूर्यको ग्रसताहै वहसमयभी गजच्छाया कहलाताहै उससमय श्राद्धकी कल्पनाकरे तोपितरोंकी अधिकतृप्तिहो-यद्यपि चंद्रसूर्यग्रहणे भोजनस्य निषेधस्तथापिभोक्तुर्दोषोदातुरऽभ्युदय इतिमिताक्षराकारः किन्त्वस्मन्मतेभोजनस्यनिर्विकल्पनिषेधान्नतत्रभोजनावसरः भोक्तुरपिदोषापत्तिप्रसंगलक्षणयालोकातिगर्हितत्वाच्चकथंदातुरभ्युदयः यत्रस्वाचारेपिपरस्यपूर्वपुण्यविनाशकत्वावयविदोषापत्तिस्तत्रनकस्यापिद्वयोःश्रेयइतिनिर्विकल्पान्मेवं-किंतुग्रहणकालमें श्राद्धमात्र करना संसूचितहै और भोजन उसके पश्चात निर्दोषता प्रकटहोने पर संभवितहै क्योंकि मूलवाक्योंमें भी कहीं भोजनकी आज्ञा नहीं पाई जातीहै-यद्यपि भोजनभी सिद्धांत से श्राद्धरूप निश्चितहै उसअवस्थामें कि जबयथोक्तविधि अनुसार श्राद्ध कियाजाय परन्तु वहबात असंसाध्यहोनेसे वर्तावमें नहींआरी किंतु कुशाओंके पितर औरब्राह्मणभी बनाकर श्राद्धकरनेका प्रचार अब निर्विकल्पहै इसहेतुसे ब्राह्मण भोजनका कर्म पिंडदान क्रियाओंसे भिन्नवत् समझा जाताहै या मतसमझाओ तथापि देशकाल दोषादोष ग्राह्याग्राह्य प्रयोजनआदिकी व्यवस्था अनुसारसर्वथा अनुचितहै किन्तु ऐसापुण्यभी वृथाहै जिस्से किसीके पुण्य और प्रतिष्ठामें हानिहो ध्यानधरो कि जब अग्रोक्त २१८।२१९।२२० श्लोकोंके अनुसार तो श्राद्धमें ब्राह्मण चाहिये जिन्होंने कैसी २ विद्या वा तपस्या वा त्यागआदिके साधनसे उतनी बड़ी योग्यतापाई फिर वेही जबग्रहणमें परान्नखाने लगेंगे तब क्या पतित नहोजायँगे जोकहो कि होजाओ हमें अपने कामसे कामहै तो निश्चितहुआ कि एकबेरखवाकर फिर उनसे कुछकाम नहीं रक्खोगे किंतु अन्यदशाओंमें और ब्राह्मण ढूंढ़लियेजावेंगे और उनकोभद्दरि-

योंमें मिलादिया जावेगा इस्से अगर मिताक्षराकार यहभी लिखदेते कि ग्रहणमें श्राद्धकरे तौ भड्डरियोंको जिमावे क्योंकि उनकायहकामहे और जैसीदशाका वहकाम है तैसेही वे भोक्तापात्रहैं तौहमभी उनकेइसलेखको मनोज्ञकरसक्ते----श्राद्धनामइस्से है कि श्रद्धारूपीप्रेमसे खानेपीनेकी कोईवस्तु या उसके स्थानकुछरोक द्रव्यकिसीप्रेतके नामसे श्रद्धापूर्वक दियाजाय यह तौ श्राद्धका स्वरूपहे सोयही-श्राद्धदोप्रकारका होताहै एक तौ (पार्वण) जो तीनपुरुषोंके नामसे किंतु बाप दादा परदादा या नाना परनाना सरनाना इनकेनिमित्तसे एकसाथ किसीपर्वमेंकियाजावे इसलिये उसको पार्वण कहतेहैं दूसरा (एकोद्दिष्ट) उसे कहतेहैं जो एकहीकिसी प्रेतकेनामसे उसकी तिथिमें या तिथिकेबदले और किसी शास्त्रोक्तकालमें कियाजावे-फिर येहीदोनोंश्राद्ध तीन२प्रकारके होतेहैं अर्थात् नित्यं १ नैमित्तिकं २ काम्यं ३ क्योंकि जो नियतनिमित्तकी उपाधिसे बारम्बार उसीनियतसमयपर कियेगये तौ (नित्य) कहलाये जैसेहर अमावसको या सदाकी अष्टकाओंमें या प्रतिसंक्रांति या प्रतिवर्ष उसकी तिथिमें इत्यादि नाना लक्षण (नित्य) के जानो-और जो अनियत निमित्तकीउपाधिसे वहसमय आपरनेपर हीकियेजायँ तौ (नैमित्तिक) जानो जैसेपुत्रजन्मआदि दैवयोगमें-और जोफलकामनाकी उपाधिसेकरना कहाहो वहकियाजावे सो (काम्य) जानो जैसेस्वर्गफल आदिकीकामनासे कृत्तिकादि नक्षत्रोंमें करना कहाहै या कियाजावे अथवा घरकी प्रेतबाधाआदि शांतकरनेकी कामनासे या संतानआदि होनेकी कामनासे इत्यादि-फिर येहीश्राद्धपाँचविधिके कहलातेहैं अर्थात् एक तौअहरहःश्राद्ध१ पार्वणश्राद्ध२ वृद्धिश्राद्ध३ एकोद्दिष्टश्राद्ध ४ सपिंडी करणश्राद्ध ५ तहां अहरहः श्राद्ध कहिये रोज २ दिन दिनप्रतिमामूली जो कुछ पितरोंके निमित्तसे कियाजाय जैसा १०४ के श्लोकमें पहलेभ्भ्रद्धा से कहचुकेहैं कि-(अन्नंपितृमनुष्येभ्योदेयमप्यन्वहंजलम्) सोई मनुजीनेभी यहकहा है कि-(दद्यादहरहःश्राद्धमन्नाद्येनोदकेनवा। पयोमूलफलैर्वापिपितृभ्यःप्रीतिमक्षयाम्) अर्थात्-दिनदिन प्रति अन्नादि से वा जलसेही या दूध और मूलफल आदि चीजों सेही श्राद्धदेवे तौ पितरों की अक्षय प्रीतिपावे-शेषनाम सब श्राद्धोंके स्पष्टहैं जिनका चर्चा पहले भी आचुका और इन पांचकी गणनामें फिरआया है २१६। २१७॥

अबआगे तीनश्लोकोंसे श्राद्धकी संपत्ति रूपभोक्ताजनोंका लक्षणकहते हैं कि ऐसे२ ब्राह्मणादि भोक्ताहों सो यहसंपत्ति विशेषकर चारप्रकारके श्राद्धोंमें समझनी अर्थात् श्राद्धोंके पांचप्रकार जो ऊपर कहचुकेहैं तिनमेंसे पहलाजो (अहरहः) श्राद्धकहलाताहै उसमें कुछइसबातकीअपेक्षानहींहै और जो उसमेंभीकिसीदिवस ऐसाबानकबनिआवे तौ अधिक अच्छीबातहैकिंतु-अधिकस्यअधिकंफलम्॥

अग्र्याःसर्वेषुवेदेषुश्रोत्रियोब्रह्मविद्युवा। वेदार्थविज्ज्येष्ठसामात्रिमधुस्त्रिसुपर्णकः २१८॥

ऐ०—सर्वेषुवेदेषु (अग्र्याः) अर्थात् सभीवेदों में अग्रणी हों इसप्रकार से कि एकाग्र मनोवृत्ति सहित निरंतर निर्भंग पाठकरसक्केहों-दूसरे (श्रोत्रिय) अर्थात् श्रुताध्ययन संपन्न किन्तु अध्ययन तो पढ़ना और पढ़े पीछे विद्वानों के वार्त्तालाप द्वारा अति-कालताईं श्रवण करते करते पढ़ेहुये का सिद्धांत और उस्सेभी उपरांत अनेकशास्त्रों वा संसारसागर का तत्त्वसार निज हृदयमें हस्तामलकवत् समाश्रित करलेना यह दोनों वात जिनमेंहों वे श्रोत्रिय यद्वा श्रुताध्ययन संपन्न कहलाते हैं या ऐसे समुझ लेना कि श्रुत कहिये परमज्ञान और अध्ययन पढ़ना इनसे संयुक्त हों सो इन दोनों प्रकारोंसे तात्पर्य एकही है-तीसरे (ब्रह्मवित्) कहिये ब्रह्मके जाननेवाले सो उसब्रह्मका स्वरूप आगे इसी शास्त्रमें यथावत् कहा जायगा-चौथा लक्षण (युवा) अवस्थाहै सो सभी लक्षणवाले के साथमें चाहिये किन्तु पूर्वोक्त यद्वा अग्रोक्त सभीब्राह्मण युवाहों अर्थात् अति बालक या अतिबूढ़े शिथिलेन्द्रिय नहीं-पांचवें किन्तु चौथे (वेदार्थवित्) उन्हें कहते हैं जो वेद के अंगभूत मंत्र और ब्राह्मण प्रसिद्ध हैं तिनके अर्थ जानते या लगासक्के हों-पांचवें (ज्येष्ठसामा) उन्हें कहते हैं कि ज्येष्ठसामा नाम सामविशेष किन्तु सामवेदका एक अंगहै तिसके पढ़ने में जो २ व्रत उसकी सांगता में गिनती हैं उनव्रतों के आचरण सहित उसको जो पढ़ता है वहभी ज्येष्ठसामा कहलाता है-ऐसेही छठें (त्रिमधु) नाम ऋग्वेद का एक स्थल है उसके भी पढ़ने में जो २ व्रत नियम कहे हैं उनव्रतों की साधना सहित जो कोई उसको पढ़े वह त्रिमधु कहलाता है-ऐसेही सातवें (त्रिसुपर्णिक) वे हैं कि जिन्होंने त्रिसुपर्ण नामएक देश यजुर्वेद का उसके व्रताचरणों सहित पढ़ाहो-यह इतनेलक्षणवाले ब्राह्मण श्राद्धकीसंपदामें गिनती हैं यह योजना २२० के श्लोकमें से हुई २१८॥

स्वस्त्रीयऋत्विग्जामातृयाज्यश्वशुरमातुलाः। त्रिणाचिकेतदौहित्रशिष्यसंबंधिबांधवाः २१६॥

ऐ०—(स्वस्त्रीयः) भानूजा-(ऋत्विक्) जिसकेलक्षण पहलेभी किसी२स्थलपर कईबार कहचुकेहैं-(जामातृ) जमाई-(याज्य) जो कोईअपना पूज्यहो-(श्वशुर) ससुरा-(मातुल) मामा-(त्रिणाचिकेत) उसे कहतेहैं जो त्रिणाचिकेत नाम एकस्थल यजुर्वेदका उसके व्रताचरणों सहित अध्ययनकरे-(दौहित्र) धेवता-अपने शिष्य संबंधी बांधव येभीसबश्राद्ध की संपदामें गिनतीहैं २१९॥

कर्मनिष्ठास्तपोनिष्ठाः पंचाग्निर्ब्रह्मचारिणः। पितृमातृपराश्चैवब्राह्मणाः श्राद्धसंपदः २२०॥

ऐ०—(कर्मनिष्ठाः) अर्थात् शास्त्रोंमें कहेहुये कर्मधर्मोंके अनुष्ठानमें तत्परहों-(तपोनिष्ठाः) तपमें शीलरखनेवालेहों-(पंचाग्निः) पांच प्रकारकी अग्निसेवन करनेवाले अर्थात् षट्प्रकारकी अग्निमेंसे एक गार्हपत्य अग्निको छोड़कर शेषपांचोंका सेवनकरें सो पंचाग्नि यद्वा पंचाग्नि विद्याकोही पढ़ाहो-(ब्रह्मचारी) दोप्रकारकेहोतेहैं एकतो उप-

कुर्वाण जोअवधि सहित ब्रह्मचर्य धारणाकरके विद्यासंग्रहकरे दूसरा नैष्ठिकब्रह्मचारी इनदोनोंके लक्षण मर्यादापरिपाटीके आदि खंडमें कहचुके हैं-(पितृमातृपराः) अर्थात् जो माता पिताकी सेवाटहल आराम रक्षा पालन आदिमें व्यसन पूर्वक तत्परहों ये भी सब श्राद्धकी संपदाकही हैं और भी ब्राह्मण शब्द यहां पर फिर कहनेसे पूर्वोक्तों के अभावमें यद्वा उपस्थितिमें भी उनके उपरांत कोरे ब्राह्मणभी दर्शाये गये किंतु यह शब्द किसीका विशेषण नहीं है २२०॥

अब यहां पर जो वर्जितहैं तिनके लक्षण ३ श्लोकोंसे कहतेहैं॥

रोगीहीनातिरिक्तांगःकाणःपौनर्भवस्तथा। अवकीर्णीकुंडगोलौकुनखीश्यावदंतकः २२१॥

ऐ०—(रोगी) जो प्रसिद्ध महारोगोंसे ग्रसितहो-(हीनातिरिक्तांगः) कोई अंग जिसकेदेह में हीनहो यद्वा अधिकहो जैसे छःउंगली या गूमड़ा वतोड़ा आदि-(काणः)काना एकाक्ष (पौनर्भवः) अर्थात् पुनर्भूस्त्री जिसके लक्षण विवाहके प्रकरणमें६७ के श्लोकसे कहचुकेहैं तिसका पुत्र सो पौनर्भव-(अवकीर्णी) उसे कहतेहैं जिसने ब्रह्मचर्यकी धारणामें स्खलन किंतु वीर्यका विध्वंस किया-कुंड १ गोलक २ इन दोनोंके लक्षण परदारामें उत्पन्नहोना प्रसिद्धहै किंतु पतिके जीवतेहुये अन्य पुरुषसेहो सोतोकुंड और पतिकेमरेपीछे गर्भमें आवे सो गोलक-(कुनखी)जिसके नखसंकुचित होकर विगड़जावें-(श्यावदंतक)जिसके दांत जन्मके साथही कालेहों और वहभी कि जोपीड़ा विना मिस्सीआदि से रंगे यह इतने निंदितहैं यहयोजना २२३ में से हुई २२१॥

भृतकाध्यापकःक्लीव कन्यादूष्यभिशस्तकः। मित्रध्रुक्पिशुनःसोमविक्रयीपरिविन्दकः २२२॥

ऐ० —(भृतकाध्यापक)जो वेतन लेकर पढ़ावे-(क्लीव)नपुंसक-(कन्यादूषी)जोभले वुरे दोषोंसे किसी कन्याको कलंकलगावें-(अभिशस्त) उसेकहतेहैं जो ब्रह्महत्याआदिसेयुक्तहो (मित्रध्रुक्) जो मित्रद्रोहीहो-(पिशुन)जो परायेदोष प्रकटकरनेका स्वभावरखताहो-(सोमविक्रयी) जोयज्ञमेंसे सोमवेंचै यद्वाअमृत वेंचनेवाला अर्थात् जोअन्नादि अमृत वस्तु को ब्राह्मण वेंचै तौ अमृतविक्रयी या सोमविक्रयी कहलावे-(परिविन्दकः) परिवेत्ता जो जेठे भाईसे पहले विवाहकरलेवै,या अग्नि'परिग्रह जेठेसे पहले छोटा करलेवै ये भी इतने निषिद्ध हैं २२२॥

अधि०—परिवेत्ता और परिवित्तिदार संग्रहके सिवाय अग्नि परिग्रहसेभी होते हैं सोई मनुजीने यहकहाहै कि (दाराग्निहोत्रसंयोगं यःकरोत्यग्रजेस्थिते। परिवेत्तासविज्ञेयः परिवित्तिस्तुपूर्वजः)अर्थात् दारा या अग्निहोत्रका संयोग जो कोई छोटाहोकर जेठेसे पहले करताहै वहपरिवेत्ता जानना चाहिये और परिवित्ति दोषवाला वहजेठा, कि जिसने अपने होतेहुये ऐसाहोने दिया-ऐसेहीकन्याका दाता जिसने दानकरी वह (परिदायी) दोषवान् कहाताहै और याजक जिसने,फेरेकरवाये वह (परियष्टा) दोषवान्

कहाताहै-और वह कन्या जिसका दान या परिग्रहहुआसो (परिवेदनी)दोषवती कहलाती है ये सभी नरकभागी होतेहैं (तथाच) (परिवित्तिःपरीवेत्तायया च परिविद्यते। सर्वेतेनरकं यांति दातृयाजकपंचमाः)इस्सेइनको श्राद्धमें भोजनकरवानेवालेकोभी अतिदोषहै२२२

मातापितृगुरुत्यागीकुण्डाशीवृषलात्मजः। परपूर्वापतिःस्तेनःकर्मदुष्टाश्चनिंदिताः २२३॥

ऐ०—जो कोई किसी परम बलवान् कारण बिना माता पिता गुरुओंको त्याग देवे वह और (कुंडाशी) जो कुंड या गोलक इनका अन्नखावे और (वृषलात्मज)अर्थात् वृषलकहिये अधर्मी जो अपने जातीधर्मको न मानै या जातीधर्मकी निंदा किसीरीतिसे भी करताहो किन्तु किसीरीतिसे धर्मको पीड़ादेताहो उसकी संतान सो वृषलात्मज और (परपूर्वापतिः) अर्थात् पिछला और पहला ऐसेदोपति जिसस्त्रीकेहों तिसकापति परपूर्वापति कहलाताहै किन्तु उन्हींदोमेंसे कोई एक और (स्तेनः) जोविनादिये किसी की कोईवस्तु किसीरीतिसे हरिलेताहो और (कर्मदुष्टाः) अर्थात् दुष्टकर्मोंके करनेवाले जोशास्त्र विरुद्ध आचरणवान्हों और (च) शब्दके अभिप्रायसे कितव देवलकआदिभी मनुके कथनसे अपेक्षितहैं येभी इतने श्राद्धविषयमें निन्दितहैं २२३॥

भधि०—(कितव) छलियाको खलको द्यूत आदिखेलनेवालेकोभी कहते हैं और (देवलक) जो जीविकादि निमित्तसे प्रतिमाओंका परिचार वा स्थापन या पूजनआदिकरें और औरोंकोभी प्रोत्साहितकरें अर्थात् पुजारीजी इतिभाषा प्रसिद्ध पेशेवाले-सोई मनुजीने यहकहाहै कि(चिकित्सकान्देवलकान्मांसविक्रयिणस्तथा। विपणेनचजीवंतो वर्ज्याःस्युर्हव्यकव्ययोः)अर्थात्-चिकित्सक जोचिकित्सासे जीविकाकरें-देवलक मठोंके पति किन्तु पुजारी-मांसविक्रयी और जो दूकानदारीकी जीविकाकरतेहों ये सर्वप्रकारके ब्राह्मण-हव्यकहियेदेवकर्म और कव्यकहिये पितृकर्म इनदोनोंमें वर्जितहैं-और मांसविक्रयी वह कहलाताहै कि जो ब्राह्मणहोकर कोई ऐसी जीविकाकरे जिसमें मांसबेचनेका अभिप्राय किसी आशयसेभी पाया जाताहो क्योंकि सद्भावसे प्रत्यक्षमांसकाविक्रय कोई तुच्छ ब्राह्मणभी नहीं करताहै जिसकेलिये यहनिषेध लिखाजाता इस्से वहीहेतु मुख्यहै कि किसी लक्षणाकी ध्वनिसे मांस विक्रयका अर्थ जिसपर घटताहो वहमांस विक्रयीहै दृष्टांत जैसे कबूतरोंको पालना और उनके अंडे या बच्चे ऐसे मनुष्योंके हाथ बेंचना जो मांसभक्षीहों तो यही मांसका विक्रयकरना उनपर निश्चित हुआ इसी प्रकार और भी अनेक लक्षण जानो-देवलकोंका निषेध यहमनुजीका कियाहुआहै और वर्त्तमान समयके लोगबहुधा देवलकों कोही अन्य ब्राह्मणोंकी अपेक्षा उत्तमसमुझकर श्राद्धमें ढूंढ़२कर बुलाते हैं इसीलिये याज्ञवल्क्यजीने इनका निषेध नहींलिखा कि जिसबातकी परिपाटी परगई उसकानिषेधभी क्योंकरना किंतु यहबात उसीसमयमें निषिद्ध समुझीजातीथी और यहभी है कि जब आधुनिक समयमें उस

प्रकारके योग्य ब्राह्मण मिलते नहीं फिर देवलकों कोभी नहीं बुलावे तो और कहांसे आसक्तेहैं इसलियेवेही अब ग्राह्योंमें गिनती होगये-शास्त्रवक्ताने २१८ से लेकर तीन श्लोकोंमें ग्राह्य ब्राह्मणोंका चर्चालिखा उसीसे प्रयोजन सिद्धहोचुकाथा फिर २२१ से लेकर तीनश्लोकोंमें निषिद्ध ब्राह्मणोंकाचर्चा जोकिया तिसकी कुछ आवश्यकता नहीं रहीथी परन्तु यह निषेध इसी अपेक्षासे लिखागयाहै कि जब पूर्वोक्त योग्य ब्राह्मणों का मिलना न होसके तब अन्यसाधारण ब्राह्मणभी निमंत्रितकियेजांय तिनमें ऐसाकोई न हो जिनका निषेध यहां पर होचुकाहै तीनश्लोकोंसे-(भेद२) इसव्यवस्थासे आधुनिक समयमें देवलकभी लाचारी अवस्थामें ग्राह्यहुये क्योंकि याज्ञवल्क्यजीने समय का रूपक देखकर उनके लिये ग्राह्यताभी नहीं लिखी और त्याज्यताभी नहीं लिखी केवल बीचके साधारणोंमें रखदिये इस्से श्रेष्ठोंके अभावमें वेही न्योतदियेजातेहैं और मनुजीने जब इनकेलिये निषेध लिखाथा तब उससमयमें श्रेष्ठ ब्राह्मण बहुतसे मिल सक्तेथे और देवलक आदि पाखंडी लोगविरले होतेथे क्योंकि प्राचीनसमयमें माठापत्यकर्मोंकी जीविका निन्द्य और वेदशास्त्रसे विरुद्धभी समुझकर कोई नहींकरताथा अद्यापि अवधिसम्बन्धी देशोंके ब्राह्मण माठापत्य नहींकरते परएतद्देशीय गौड़ादि विप्र उसके विना अपने जन्मकी सुफलता नहीं समुझते वरन जिसकुलमें या जिस घरमें मठपरिचर्य्या नहीं होती उसको अन्यलोग और वह आपभी अपनेको मंदसमुझता इसलिये जिसघरमें पहलेसे शून्यताभीहो उसमें कोई ऐसाउद्योगी पैदाहोजाताहै कि ज्यों त्यों कर छोटामोटा मठमन्दिर अपने आजीवनका हेतुखड़ाकरलेता वही कुलदीपक गिनाजाताहै फिरचाहै वह साक्षरहो वा निरक्षर तथैव आचार सुकर्मों वा कुकर्मोंकाभी रखताहो कुछ इसपरदृष्टि नहीं करीजाती किंतु वह प्रतिष्ठितोंकी श्रेणी में आजाताहै-जिस्से कुछभी नहींवनिआता वह इतना तो अवश्यकरताहै कि अपनेरहने के मकानमेंसे एककोठेमें लीप पोत कुछ सिंहासनआदि उपकरण स्थापितकरके ठाकुरद्वारानाम रखलेताहै अगर मकान नहीं भाड़ेकी दूकानहो तौभी ऐसाकरलेना यह उसकुलमें अहोभाग्यता समुझी जातीहै-इसके सिवाय जिसके पौरोहित्यवृत्तिके दश वीसघरभीहों तो वह परमभाग्यवंतोंमें गिनाजाता और विसैवाला कहलाताहै जिस पौरोहित्यके लिये शास्त्रमें कहाहै कि (पौरोहित्यंकर्मगर्ह्यंचलोके) अर्थात्-(च) शब्दसे शास्त्रके सिवायलोकमेंभी पौरोहित्यकर्मनिंद्यहै-तात्पर्य इसकाकेवल यहीहै कि यह मठ मंदिरादि वृत्ति तीर्थवासियों और योगी वैरागियोंका आचरणहोताहै गृहस्थीके लिये शास्त्रोक्त विधिसे देवाराधन और निर्मलवृत्ति उचितहै क्योंकि जोदेवलक लक्षण संबंधिनी वृत्ति या आचरण उसका द्विजातीको उचितहोता तो आचाराध्यायमें कही तो उसका चर्चाआता बल्कि एकबड़ा लंबाचौड़ा प्रकरण उसका सबसे भिन्नहोनाचाहिये

यहां का शेष पाठ अगले नम्बर में देखो

था जैसे अन्य आचारोंके प्रकरण भिन्नभिन्न क्रमसे कहतेचले आतेहैं और निषेधके लिये यही प्रमाण उसमें यथावत् संभवितहै जोउसकर्मके कर्त्ताओंकोभी श्राद्धविधिके भोक्तृत्वसे वर्जितकरदिया और उसकर्म संबंधी नामका विशेषणभी यथार्थसमुझकर दियागया-किन्तु-पूजायाअरिःपूजारिः तद्भाषायामपभ्रंशेपुजारीयदरिवत्पूजनार्थमागतान्द्रव्यानत्तीति(भेद३)इसीश्लोकमेंसबसेपहलेमातापितृगुरुत्यागी जोनिषिद्ध लिखा था उसके साथमें भार्या वा पुत्रादिकोंका त्यागीभी संग्रहीतहै किन्तु वहभी गुरुत्यागी में गिनतीहै जो भार्या अथवा पुत्रादि भृत्यवर्गोंको विना किसी प्रबलहेतुके त्यागिदेवै-तथाचधर्मः(वृद्धौचमातापितरौसाध्वीभार्यासुतःशिशुःअप्यकार्यशतंकृत्वा भर्त्तव्या मनुरब्रवीत्)अर्थात्-बूढी अवस्थाकेमाता पिता और भार्या साध्वी कहिये सुशीला व्यभिचारहीना और शिशु अवस्थाकापुत्र जो अपने आप अपना पालन करने में असमर्थहो यह इतनेसभी भरनेयोग्यहैं चाहै शतधा अकरणीय कर्मोंसेभी धनलावै पर इनका पालन अवश्यकरै इनको त्यागै नहीं और जो त्यागदेवै वही अधर्मीहै उसको श्राद्धमें जिमानेसे पितरोंकी तृप्तिमें न्यूनता होतीहै २२३ ॥

यहांतक श्राद्ध करने के काल और ब्राह्मणोंकी व्यवस्थाभी कहीगई अबनीचे पार्वणनाम श्राद्धकरनेका प्रकार बतलातेहैं॥

निमंत्रयेतपूर्वेद्युर्ब्राह्मणानात्मवान्शुचिः। तैश्चापिसंयतैर्भाव्यंमनोवाक्कायकर्मभिः २२४॥

ऐ०—श्राद्धकर्त्ता एकदिन पहले शुचिहोकर और आत्मवान् अर्थात् शोक उन्माद आदिसे रहित हो और नियतेंद्रीहोकर पहलेदिवस जाकर पूर्वोक्त लक्षणवाले ब्राह्मणों को निमंत्रितकरै यह कहकर कि कलह्आप श्राद्धका उत्सव अवलोकनकरैं इसप्रार्थना सहित कुछकाल वहां विलंबितभी होजावै किन्तु कहकर भागैनहीं-और उनब्राह्मणों कोभी निमंत्रित होनेपर मनवाणी कर्म आदिसे संयत होनाचाहिये २२४ ॥

अपराह्णेसमभ्यर्च्यस्वागतेनागतांस्तुतान्। पवित्रपाणिराचांतानासनेषूपवेशयेत् २२५॥

ऐ०—अपराह्न अर्थात् मध्याह्नकालमे उन्हीं निमंत्रित ब्राह्मणोंको बुलाकर आवते हुये देखप्रथम समभ्यर्चन करिके अर्थात् स्वागत वचन रूपी पूजासे पूजिकर दृष्टांत यथा आइये विराजिये बड़ा अनुग्रहकिया अहोभाग्य हमारे आपने इसघरको पवित्र किया इत्यादि सत्कार और अभ्युत्थान देकर श्राद्धकर्त्ता पाणि कहिये हाथमें पवित्रा धारण कियेहुये उन्हें पादप्रक्षालन और आचमन कराकर श्राद्धस्थान में विरचेहुये आसनोंपर उपवेशकरावै २२५ ॥

अधि०—यद्यपि मूल श्लोक मे अपराह्न काल सामान्य भावसे कहा है और अपराह्न शब्दके भी अर्थ अनेक होते हे परंतु यहांपर अपराह्न (कुतप) काल से अपेक्षा रखता है किन्तु कुतप कालके प्रारम्भसेही आसनपर बैठारनेका प्रारम्भ करके पांच

मुहूर्त्त अर्थात् १० घटिकामें सारीक्रिया संपूर्णकरै तो सर्वथा श्रेयस्करहोता है-तथाच-(अह्नोमुहूर्त्ताविख्यातादशपंचचसर्वदा। तत्राष्टमोमुहूर्त्तोयंःसकालःकुतपःस्मृतः)-अर्थात् दिनभरके मुहूर्त्त विख्यात हैं सर्वदा दश और पांच१५दो दो घड़ीके-तिनमें जो आठवां मुहूर्त्त किन्तु ठीक मध्याह्नसे एक घड़ी पहले और मध्याह्न से एकघड़ीपीछे ताईं यह दोनों घटिका कुतप काल कहलाताहै-अपिच-(ऊर्ध्वंमुहूर्त्तात्कुतपात्यन्मुहूर्त्त चतुष्टयं। मुहूर्त्तपंचकंह्येतत्स्वधाभवनमिष्यते)-अर्थात्-कुतपनाम मुहूर्त्त से उपरांतके भी चार मुहूर्त्त उसमें जोड़कर यहमुहूर्त्तपंचक स्वधाभवन होताहै इसमें पितरोंके निमित्त से जो कुछ श्राद्ध आदि स्वधाकर्म कियाजावै सो अपने यथोक्त फल को देताहै मुहूर्त्तका परिमाण निर्विकल्प दो घटिकाका परिनियमितहै परंतु दिनके१५मुहूर्त्त कहनेसे केवल ३० घड़ी के दिनमानपर आतेहैं और यद्यपि दिनमान की न्यूनाधिक दशामें दो घटीसे कुछ न्यूनाधिक परिमाण एक मुहूर्त्त का दिनमान के अनुसार करिलेनेसेभी १५ मुहूर्त्त ठीक होसक्ते हैं तथापि श्राद्धकर्मकी व्यवस्थामें कुछ इसबात से अपेक्षा नहीं है अर्थात् केवल यही प्रमाण इसमें लेना संसूचित है कि ठीक २ मध्याह्नके बारह बजे से एकघटी पहले (कुतप) काल का आरम्भ होजाता है उसीसे लेकर दश घटिकाताईं स्वधाकर्मोंका विशेष अधिकारहै फिर दिनमान चाहे तितना हो-श्राद्धकी सुफलता मध्ये जैसा एक यह अघोक्त काल संबंधी कुतप होता तैसेही सात कुतप औरभी होतेहैं-यथा-(मध्याह्नःखड्गपात्रंचतथानेपालकम्बलः। रौप्यंदर्भास्तिलागावोदौहित्रश्चाष्टमःस्मृतः॥ पापंकुत्सितमित्याहुस्तस्यसंतापकारिणः। अष्टावेतेयतस्तस्मात्कुतपाइतिविश्रुताः)-अर्थात्-एक तो वही मध्याह्नकाल जिसका चर्चा ऊपर आचुकाहै १ दूसरा खड्गपात्र कहिये गैंडेका अर्घा२ तीसरा नैपालदेशकाबहुमूल्यवाला कंबल जो पर्वतीबोली में खाचा विख्यातहै३ चौथा रौप्यं रुपया चांदी४ पांचवांदर्भकुशा ५ छठां कुतप तिल और तिलके फूल विशेष कर ६ सातवां कुतप गावः गौवें ७ आठवां कुतप दौहित्र कहिये दुहिता का पुत्र धेवता८ यह आठों इस हेतुसे कुतप कहलातेहैं कि (कु) शब्दका अर्थहै कुत्सित बुरा सो कौनहै अपनेपाप कुत्सित होतेहैं तिनको यह आठों वस्तु (तप) शब्दके अर्थसे संताप करनेवाले हैं किन्तु पापों को पीड़ा देकर नाशकरदेतेहैं इसलिये (कु) और (तप) मिलकर कुतपइनकी संज्ञाहुई इससे श्राद्धमें इनआठों को अवश्य भावसे संग्रहकरै-परंतु इन आठोंमें सातवां कुतप जो गोदानकहाहै सो२२३ और२२४ इनदो श्लोकोंकी उचित मर्यादा अनुसार तो होसकनाअसंभव और दुर्लभहै इस्से उन्हींदोश्लोकोंकीनिषेध व्यवस्था से प्रत्यक्ष गऊ तौनदेना पर उनकीअनुकल्प व्यवस्थासे उसका अनुकल्प स्वर्णमयी कादानकर्त्तव्यहै सोभी गऊकीसांग मूर्त्तिबनवाकर न करना किन्तु केवलस्वर्णपत्र यद्वा

अधिकशक्तिहो तौ स्वर्णमुद्रा अशर्फी आदि कल्पितकरलेना यहश्रेयस्कर समाचारहै क्योंकि यद्यपि कहीं किसी स्वार्थी शास्त्रमें प्रतिमा बनवाकर दान करना लिखाभीहो तथापि परमार्थी शास्त्र मर्यादापरिपाटी समाचार का यह सिद्धांत नहींहै कि यह ऐसे अनर्थ-रूपी भ्रष्टाचार की आज्ञादेसके जिस्से दाता और ग्रहीता आदि अनेकनरक वासी हों किन्तु ऐसी दशामें उपदेष्टाको सबसे आगे बढ़कर वहांकीभी राह दिखलानेको अवश्यजाना होता है पर जिसको यह स्वीकार हो-अन्यथा ध्यानकरना योग्य है कि जो किसीकी प्रतिमाका पूजन करनेसे ठेठ उसको पहुँचसक्ताहोगा जिसके नाम की वह प्रतिमा किन्तु उपमूर्त्ति कल्पितहुई हो तो क्या उसमूर्त्ति का अपकार या चरण प्रहार आदि नहीं पहुँचताहोगा भला मूर्त्तितो साक्षात् उसकारूप समुझाजाता पर किसी के हाथसे पत्थर भी फूटजाने का प्रायश्चित्त कियाजाताहै क्या उसमूर्त्ति को तोड़ फोड़कर बेंचने या सांचे में गलवाने वाले अपराधी नहीं होते या केवल स्वार्थ की साधकताही धर्म की निशानी है संप्रति कोई ब्राह्मण ऐसा नहीं जो मूर्त्तिको ले जाकर घरमें दोदिनभी सत्कारसे रखसक्ता हो किंतु सुनारका हथौड़ा उसकी पूजाहै-स्वार्थलिप्सूकहते हैंकि देवता भाव उसमें तभी तकथा कि जब दानसमय मंत्रसे आवाहन किया पीछे बिसर्जन कालसे देवता भाव जातारहा अच्छा जबमंत्रों को यहशक्तिहै तो आवाहनसे क्या अशर्फी अथवा स्वर्णपत्रमें देवतात्व नहीं आसक्ता-हां-सांगमूर्त्तिमें देवतात्वके न होने परभी उसका खंडनकरना अपराधहै सो भी तत्काल देवताको उसी प्रकार पहुँचेगा जैसामूर्त्तिका पूजन उसको पहुँच सक्ताथा-भलादेवता तो दूरहैं किसीकी मूर्त्तिमें आवाहनसे नहीं आसक्ते पर प्रेमसे दिया अथवा कियाहुआ दूरसेभी अंगीकार करलेतेहैं किसीसे यहनहींकहते कि तुम हमारे नामकी मूर्त्तिकल्पितकरो या न करो केवलश्रद्धा और प्रेमके भूखेहोतेहैं (दृष्टांत मात्रसेमनुष्य परभी ध्यान करनाचाहिये कि तुम किसी प्रतिष्ठित या समर्थ राजाआदि या किसीतपस्वी मनुष्यके नामका एकपुतलाबनाकर अपने द्वार आगेरखकर उसकी पूजा और बहुतसी स्तुति नित्यंप्रति किया करो या पुतलाके बिनाभी नित्यंप्रतिवही आचरण किया करो अथवा नित्यंप्रति उठकर दो चार घड़ी उसको कूटा पीटा करो या पुतला के बिनाही उसका नामलेकर धरतीमें हाथपैर पीटाकरो और स्तुतिके बदले दुर्वाक्य मुखसे काढ़ाकरो-यह वृत्तांत उसको आँखोंसे देखने या कानोंसे सुने परहीदेखो पीछे क्या २ आनन्द उठतेहैं अर्थात् इस उत्तर दशाका करनेवाला अपराधी ठहरकर दंडपावेगा अब कहो कि उसमनुष्यका आवाहन किसने मंत्रों सहित कियाथा जोउसने बुरामाना और दंडदिया वा दिलवाया इसनेतो बिना आवाहनके पुतला या धरती को उसके नामसेही कूटापीटाथा फिर यह अपकार उसको क्योंकर पहुँचगया पुतला

में भी मट्टीथी-घरतेमें भी मट्टी थी-ऐसेही उस सोने या चांदीकीमूर्त्तिमें यद्यपि केवल धातु है क्योंकि देवताका आवाहन जो कियाथा सो विसर्जनकरदिया वतलातेहो पर नाम तो उसका वही वनरहाहै जिसके नामसे तुमने वनवाई या दानमें पाई फिर उसको जवहथौड़ा से तुड़वाई और सांचेमें गलवाई तो वह दंड क्या न देगा जिसके नामसे वनवाकर यह अपकार किया या करवाया इस्से यह निश्चय जानौ कि संसारमें सारे काम केवल नामसेही सिद्धहोते हैं नामकेही लिये किये जातेहैं नामके लिये नामीनर अपने धनप्राण देदेतेहैं नामसे मारेजाते हैं नामसे कुळकमाखाते हैं नामसे लज्जित होजाते हैं नामसे प्रशंसापाते हैं नामसे दुर्नाम होजाते हैं नामविना किसी चीज का पतानहीं लगसक्ता नामसे दुर्लभ वस्तु भी सुलभ होजातीहै जिनको मंत्रकहतेहैं उनमें भी देवताओंके नाम या उनके वीजोंके नाम मात्रहोतेहैं नामके वंधनमें सारा संसार फँसाहुआ खड़ा है-सोई गोसाईंतुलसीदासजीने कहा है कि-(देखियरूपनाम आधीना। रूपज्ञाननहिंनामविहीना)२२५ ॥

युग्मान्दैवेयथाशक्तिपित्र्येऽयुग्मांस्तथैवच। परिस्तृतेशुचौदेशेदक्षिणाप्रवणेतथा २२६॥

भक्ष०-देवश्राद्धमें यथाशक्ति युग्म ब्राह्मणोंको तथैव पित्र्यश्राद्धमें अयुग्मोंकोशुचिदेश तथापरिस्तृत और दक्षिणाप्रवण में-वैठारै यहऊपरसे जुड़ा २२६॥

मि०-शुचिदेश कहिये गोमय आदिसे लिपेपुतेमें वहीदेश अर्थात् स्थानदक्षिणाप्रवणभीहो किंतु दक्षिणओरको अवनत झुँकाहुआहो फिर वही स्थल परिस्तृतकहिये सव ओरसे प्रच्छादित कियाहो तिसमें पूर्व श्लोकमें कहेहुये सूचित आसनोंपर पूर्वोक्त ब्राह्मणोंको वैठावे तिनकी यहसंख्याहै कि जोश्राद्धकर्म देवसंवंधी अर्थात् आभ्युदयिक वृद्धिश्राद्ध कियाहो तो युग्मकहिये समसंख्या ब्राह्मणोंकी अपनी शक्तिअनुसारकरै जैसे पितापक्षमें विश्वेदेवाओंके दोदो और माता दादी परदादी इनके दो दो भिन्न २ एकएकके यद्वा शक्तिअनुसार तीनोंके नामसे दो ब्राह्मण ऐसेही पिता पितामह प्रपितामह इनतीनोंके दो दो भिन्न २ या तीनोंके नामसे दोही और जो इस्से अधिक शक्ति अपनेको हो तो चार २ छः२ आठ२ इत्यादि समसंख्या करिलेवे-(इसी प्रकार)-नाना पक्षमेंभी तीनों वर्ग भिन्न२ समुझलेने समसंख्या द्वारा (औरजो) पितृसंवंधी अर्थात् पार्वण श्राद्ध किया हो तो अयुग्म कहिये विषम संख्या ब्राह्मणोंकी करै दृष्टांत जहां दो दो कहेथे तहां एक २ या तीन२ या पांच २ इत्यादि दोनों पक्षमेंसमुझलेना २२६॥

यहदोनों श्राद्धोंका सामान्यभेद कहा-अवकेवल पार्वणमध्ये दैव औपित्र्यकर्मका विशेष प्रकार कहतेहैं॥

द्वौदैवेप्राक्त्रयःपित्र्येउदगेकैकमेववा। मातामहानामप्येवंतंत्रंवावैश्वदेविकम्२२७॥

भक्ष०–द्वौदैवेप्राक्-त्रयःपित्र्येउदक्-वाएकैकंएव–एवंमातामहानामपि-वैश्व देविकंतंत्रंवा २२७॥

भभि०–(दैवे) नामवैश्वदेवे अर्थात् देवसंबंधी स्थान जो विश्वेदेवाओंका तिसमें दो ब्राह्मण-प्राक् अर्थात् पूर्वमुख बैठारने चाहिये-और-पित्र्येनाम पित्रादिस्थाने अर्थात् पिता पितामह प्रपितामह इनतीनोंके स्थानपर त्रयोब्राह्मणा उदक् किंतुतीन ब्राह्मण उत्तर मुखबैठारे सोई तीनोंकाएकएकहोगया (अथवा) यहभी न होसके तो इसकाविकल्पहै कि सर्वत्र एकैकं अर्थात् सभीजगहएकएकहो किन्तु विश्वेदेवाओंकेस्थानपर भी एक और पिता आदितीनोंके स्थानपरएकही यह निर्वाहकी रीतिहै-ऐसेही नाना आदिकाभी व्योरासमुझलेना किन्तु जोकुछ ऊपर अर्द्धश्लोकके अभिप्रायार्थमें पिता पक्षकावर्णन किया सोईविधि नानापक्षमें भी जानो-और-वैश्वदेविकंतंत्रंवा अर्थात् वैश्वदेवकर्म किन्तु विश्वेदेवाओंके ब्राह्मणसोविकल्पसे तंत्ररूपभीकरलेना अर्थात् जहां ऊर्ध्वोक्त विकल्पभी न होसक्ताहो तहां विश्वेदेवा पितापक्ष और नानापक्ष दोनों के एकत्रकरलेना यहभी एकनिर्वाहकी रीतिहै (तंत्रशब्दसमुदायकावाचकहै) २२७॥

भधि०–जब किसीको दोही ब्राह्मण मिलसकें या दोसे अधिक करनेकी सामर्थ्य न हो तब वैश्वदेवके स्थानपर पत्तल कल्पित करके उन दोनों ब्राह्मणों को पिता और नाना दोनों पक्षोंके स्थान पर बैठारे-सोई वशिष्ठजीने कहाहै कि-(यद्येकंभोजयेच्छ्राद्धे दैवंतत्रकथंभवेत्। अन्नंपात्रेसमुद्धृत्यसर्वस्यप्रकृतस्यच॥ देवतायतनेकृत्वाततःश्राद्धंप्रवर्त्तयेत्। प्रास्येदन्नंतदग्नौतुदद्याद्वाब्रह्मचारिणे)-अर्थात्-जो श्राद्धमें एकहीको जिवांवे तहां दैवश्राद्ध किन्तु विश्वेदेवा सम्बन्धी कर्म कैसे होवे इसलिये उनसबोंके नाम का अन्नपात्रेमें निकालकर उनके और देवताके भी स्थानपर रखकरपीछे श्राद्धका प्रवर्त्तन करे फिर वह अन्न भी या तो अग्निमें जिमादेवे या किसी ब्रह्मचारीको देदेवे-यथार्थ से आभ्युदयिक और पार्वण श्राद्ध में कुछ विशेष अंतर नहींहै क्योंकि आभ्युदयिक उसी को कहते हैं जो वृद्धि श्राद्धके नाम से विख्यात है इसलिये कि वह अभ्युदयके समय पर कियाजाताहै और उसके करनेसे आगेको धनजन आदि अभीष्टकामोंकी वृद्धि अभ्युदय पूर्वक होती है-परंतु उसमें भी श्राद्ध वही पार्वण किया जाता और उसकी विधिमें किंचित् अंतर होताहै-उस विधानांतरके सिवाय (मुख्यपार्वण) विधिसे भी जो श्राद्ध किसी देवकल्प पर्वमें कियाजाय जैसे सूर्य संक्रांति आदि पहले कहचुकेहैं या किसीतीर्थपर्वमें या किसी देवताके नामसे मानकरपीछे कियाजाय या व्यतीपातमें या ग्रहणमें तो वही पार्वण देव संज्ञक होजाताहै या जो पितर संबंधी पर्वमें कियाजाय जैसे अमावास्या गजच्छाया पितृपक्ष अष्टका इत्यादि में यद्वा किसीके क्षयाहमेंकियाजावे तो वही पार्वण श्राद्ध पितृ सम्बन्धी गिनाजाता है सो कर्म उसदैव सम्बन्धी

में भी पित्रोंके नामसे होता है परन्तु वह पितरों की तृप्ति देवताकी प्रीतिके अर्थ आरोपितकरीजाती है २२७॥

पाणिप्रक्षालनंदत्वाविष्टरार्थंकुशानपि। आवाहयेदनुज्ञातोविश्वेदेवासइत्यृचा २२८॥

ऐ०-उनबैठेहुये ब्राह्मणों के हाथमें विश्वेदेवा के निमित्तसे जल हस्तप्रक्षालनके लिये देकर पुनि विस्तरकेलिये कुशाभी अर्थात् युग्म कहिये दो कुशा द्विगुणितकिये हुये उनके आसनके दक्षिणओररक्खे फिर उन्हीं ब्राह्मणोंकी आज्ञापाकर विश्वेदेवोंओं का आवाहनकरे उसऋचासे कि जिसकी आदिमें (विश्वेदेवासआगत) इत्यादिपाठ आताहै-और आज्ञापाकर कहने का यह भावहै कि उनब्राह्मणोंसे आज्ञामांगे कि अब आवाहन करें फिर वे आज्ञादेवें कि अच्छाकरो तव आवाहन करे २२८॥

यवैरन्ववकीर्याथभाजनेसपवित्रके। शन्नोदेव्यापयःक्षिप्त्वायवोसीतियवांस्तथा २२९॥
यादिव्याइतिमंत्रेणहस्तेष्वर्घ्यंविनिक्षिपेत्। दत्वोदकंगंधमाल्यंधूपदानंसदीपकम् २३०॥
तथाच्छादनदानञ्चकरशौचार्थमंबुच। अपसव्यंततःकृत्वापितॄणामप्रदक्षिणम् २३१॥

ऐ० त्रयाणांसह-इसपीछे विश्वेदेवाके निमित्त से ब्राह्मणकेसमीप दाहिनीओर पृथ्वी पर (यव) फैलाकर तिसपीछे चांदीआदि यथा लब्धपात्रसपवित्रमें किन्तु दोकुशाछोड़े हुये में (शन्नोदेवीरभिष्टय) इत्यादिपाठवाली ऋचासे जलछोड़कर और (यवोसि धान्यराजोसि)इत्यादिपाठवाली ऋचासे (यव) छोड़कर गंधपुष्पभी छोड़े तिसते अनंतर उसी अर्घ्यपात्रकेकुशा निकाल ब्राह्मण के हाथोंमें रखकर (यादिव्याआपःपयसा) इत्यादिमंत्रसे (विश्वेदेवाइदंवोर्घ्यं) यह कहकर अर्घ्योदकछोड़े फिर हाथधोने के निमित्त से विनामंत्र के जलदेकर यथाक्रम से गंध पुष्प धूप दीप दानं कुर्यात् तथा आच्छादनवस्त्रदानभी करे और फिर भी हाथ धोनेकेनिमित्त से जलदेवे यह अढ़ाई श्लोकों से विश्वेदेवा का पूजनकहा-अब शेष आधे श्लोकसे कहतेहैं कि ततः अपसव्यंकृत्वा अर्थात् ऊपर का कर्म तो सव्य में हुआथा तिसपीछे यज्ञोपवीत वा अँगोछासे अपसव्य होकर पितरोंके अप्रदक्षिण कहिये बाईंओर-अबआसन आदि जो कुछ कहेंगे सो अगले श्लोकोंमें देखना २२९।२३०।२३१॥

अधि० त्रयाणांसह-गंधादि वस्तु जिनका चर्चा ऊपर आयाथा तिनमें स्मृत्यंतर से विशेषताज्ञातव्यहै-तथाचविष्णुः-(चंदनकुंकुमकर्पूरागुरुपद्मकान्युपलेपनार्थम्)-अर्थात्-चंदन सुपेद कुंकुमकहिये केसर कपूर अगुरुपद्माख यह सब गंधकेस्थान उपलेपनके योग्य हैं-ऐसेही पुष्पों कोभी कहा है कि-(श्राद्धेऽत्याज्याःप्रशस्ताःस्युर्मल्लिकाश्वेतयूथिका)-अर्थात्-श्राद्धमें जो अत्याज्य पुष्प किंतु जिनका नाम लेकर निषेधनहीं लिखा वे सभी प्रशस्त होतेहैं और मल्लिका तथा श्वेत जूहीकाफूलभी और जो फूल जलमें होतेहैं वे सभी और चंपाभीश्रेष्ठहैं-तथावर्ज्यपुष्पाणि-(उग्रगंधीन्यगंधीनिचैत्य

वृक्षोद्भवानिच। पुष्पाणिवर्जनीयानिरक्तवर्णानियानिच)-अर्थात्-उग्रगंधवाले-निगंध भी चैत्यवृक्ष से उत्पन्न हुये भी चैत्यवृक्ष वें कहलाते हैं जो बड़े ऊँचे वृक्ष सीमा या देवस्थानों आदिपर होतेहैं येसारे पुष्पवर्जित हैं और रक्तवर्ण के होतेहों वे अन्यवृक्षों के भी वर्जितहैं और कांटेवालेवृक्ष काभी वर्जितहै पर विरला पुष्प जो आपकँटीला न हो तौ नहींभी वर्जित है-रक्त पुष्प वर्जित हैं परंतु कुंकुम लालहोता है वह वर्जित नहीं और जलसे उत्पन्नहुये पुष्पजो लालहों तो वे भी वर्जित नहीं इत्यादि-धूप विषय में भी कुछ विशेषता विष्णुजीनेकहीहै कि-(प्राण्यंगंसर्वंधूपार्थेनदद्यात्)-अर्थात्-प्राणीके अंगसे उत्पन्न हुई सारी वस्तु धूपमें नहीं लगावे-किन्तु-(घृतमधुसंयुक्तंगुग्गुलुंश्रीखंडागुरुदेवदारुसरलादिदद्यात्)अर्थात्-घृत सहत मिलाहुआ गूगुल सुपेद चंदन अगुरु देवदारु राल आदि यह सब देवैदीपके विषयमें कुछ विशेषता शंखजी ने कही है कि-(घृतेनदीपोदातव्यस्तिलतैलेनवापुनः। वसामेदोद्भवंदीपंप्रयत्नेनविवर्जयेत्)-अर्थात्-दीपकघीसेदेना चाहिये अथवा घी नहीं तौ तिलके तैलसे भी परंतु बसा मेदा इत्यादि चीजोंसे बनायाहुआ दीपकनहीं बारे किंतु यत्न सहित इन्हेंबचावे-ऐसेही आच्छादन वस्त्रको भी कहाहै कि शुभ्रकहिये उज्ज्वलहो नवीन हो-फटा कटा नहीं हो-सदश अर्थात् दशासहित किंतु किनारे वालाहो यहसव वैश्वदेवका अनुष्ठान काण्ड (कर्त्ता) उत्तरमुख बैठकर करै-और पित्र्यकांड जहांतक हो वह सव दक्षिणमुख बैठकरकरै-सोई वृद्धशातातपने यह कहाहै कि-(उदङ्मुखस्तुदेवानांपितॄणांदक्षिणामुखः। प्रदद्यात्पार्वणेसर्वंदैवपूर्वंविधानतः) अर्थात्-पार्वण श्राद्धमें सब जो कुछ करै सो दैव पूर्व किंतु भाग पूर्व यथा विभाग सहित विधानसे देवताओंको उत्तरमुखहोकरदेवे और पितरोंकोदक्षिण मुखहोकर २२९। २३०। २३१॥

द्विगुणांस्तुकुशान्दत्वाह्युशंतस्त्वेत्यृचापितॄन्। आवाह्यतदनुज्ञातोजपेदायंतुनस्ततः २३२॥

ऐ०—इसपित्र्य कांडका आधा श्लोक जो २३१ में पीछे गया तहां से ध्यानकरना चाहिये कि अपसव्य होकर पितृसंबंधी तीनों ब्राह्मणोंके आसनों पर बाईंओर विपमउकुशा जो द्विगुणभुग्नकिये किंतु मिरोड़ीदियेहुये विष्टरके निमित्त उदक पूर्वकदेकर फिरभी उदकदेवे तिसपीछे ब्राह्मणोंसे आज्ञामांगे कि हमपित्रादि तीनोंका आवाहन करैं फिर उनकी आज्ञामिले पीछे (उशंतस्त्वानिधीमही) इत्यादि ऋचासे आवाहन करिके (आयंतुनःपितर) इत्यादि मंत्रसे बैठारे अपने बुलायेहुये पितरोंको २३२॥

भधि०—उदकपूर्वक देकर फिरभी उदकदेवे यहभाव यद्यपि मूलश्लोकमें नहीहै पर आश्वलायन ऋषिने यहकहाहै कि(अपःप्रदायद्विगुणभुग्नकुशान्दत्वापःप्रदाय)इत्यादि-अर्थात्-जलदेकर फिर द्विगुणभुग्नकुशाओंको आसनकल्प देकर फिरभी जलदेकर इसके आगे और बिधिकही है-आदि और अंतमें भी जो उदकदान कहा सोयह

प्रकार पित्र्यकर्म और वैश्वदेवकर्म दोनोंमें समझलेना यथास्थलके अनुसार २३२॥

अपहताइतितिलान्विकीर्यचसमंततः। यवार्थास्तुतिलैःकार्याःकुर्यादर्घ्यादिपूर्ववत् २३३॥
दत्वार्घ्यंसंस्रवांस्तेषांपात्रेकृत्वाविधानतः। पितृभ्यःस्थानमसीतिन्युब्जंपात्रंकरोत्यधः २३४॥

ऐ०—सद्दयोः—(यवार्थाः) अर्थात् यवोंसे करनेवाले कर्म जो २ पहले विश्वेदेवाओं के कांडमेंकहचुके हैं पृथ्वी पर फैलानाआदि सो सबकाम तिलोंसे इसमेंकरे और अर्घ्यादिकर्म अर्थात् पात्रासादन से आच्छादन पर्यंत जो २ कुछपहले कियाथा उसी समान इसमेंभी करे परन्तु-इसमें इतना कर्म और भी विशेषहै कि (अपहतासुरारक्षांसि) इत्यादि ऋचासे तिलोंको ब्राह्मणोंके सबओर प्रदक्षिण मार्गसे रक्षाकल्पवत् बिथोरिफैलाकर तिसपीछे चांदीआदि यथालब्ध तीनों पात्रोंमें तीन तीन कुशारखकर उनमें (शन्नोदेवी) इत्यादि ऋचा पढ़कर जलछोड़े फिर (तिलोसिसोमदेवत्य) इत्यादि मंत्रसे तिलपुष्पगंध,ये सबछोड़कर (स्वधार्घ्या) यह उच्चारण करिके ब्राह्मणोंके आगे अर्घ्यपात्र भिन्न २ स्थापितकरे पुनि (यादिव्या) इत्यादि मंत्रको उच्चारण किये पीछे अंतमें (पितरिदंतेर्घ्यं) १ (पितामहेदंतेर्घ्यं) २ (प्रपितामहेदंतेर्घ्यं) ३ यह जोड़२ कर तीनों ब्राह्मणोंके हाथोंमें अर्घ्य समर्पणकरै फिर उनकोदियेहुये अर्घ्योंके (संस्रव) अर्थात् ब्राह्मणोंके हाथोंसे गिरेहुये जलोंको पितृपात्रमें लेकर एकलंबा कुशा का स्तंब सीधा दक्षिणको अग्रभाग करिके भूमिमेंधरे तिसके ऊपर वहपात्र जलसमेत (पितृभ्यःस्थानमसी) इत्यादि मंत्रसे (न्युब्ज) कहिये औंधाकरिदेवै तिसके ऊपर अर्घ्य पात्रमेंसे पवित्रा निकालकर रखदेवै तिसते अनंतर गंध पुष्पधूपदीप आच्छादन यह सब (पितरयंतेगंधः) (पितरिदंतेपुष्पं) इत्यादि कल्पित मंत्रोंसे चढ़ावे-इससे आगे और जोकुछ विधिविशेषहो सोसबश्राद्धकर्मकी पद्धतिसे समझलो २३३।२३४॥

भवि०—ऊपर ऐक्यार्थके वर्णनमें पिताआदि तीनोंके निमित्तसे तीन ब्राह्मणोंके आगे भिन्न २ तीनों अर्घ्यपात्र कहेगये परन्तु जहां तीनोंके निमित्तसे एकही ब्राह्मण कियाहो तहांभी अर्घ्यपात्र जुदे तीनकल्पित करिलेना और उसी एकब्राह्मणके द्वारा सारी क्रिया भिन्नवत् आचरणकरनी यहसिद्धांतहै २३३।२३४॥

अग्नौकरिष्यन्नादायपृच्छत्यन्नंघृतप्लुतं। कुरुष्वेत्यभ्यनुज्ञातोहुत्वाग्नौपितृयज्ञवत् २३५॥
हुतशेषंप्रदद्यात्तुभाजनेषुसमाहितः। यथालाभोपपन्नेषुरौप्येषुचविशेषतः २३६॥

भक्ष०सद्दयोः—(अग्नौ) करनेकीइच्छाकरतेहुये घृतप्लुत अन्नकोलेकर पूंछताहै करौ यह आज्ञापायाहुआ अग्निमें पितृयज्ञवत् होमिकर-फिर हुतशेषको प्रदानकरै समाहितहुआ यथा लाभसेउपपन्नहुयेभाजनोंमेंविशेषतासेरौप्यपात्रोंमेंदेवै २३५।२३६॥

भाभि० सद्दयोः—पहले कहेहुये कर्मके अनंतर अग्नौ कर्मका प्रारम्भ करने की इच्छाकरता हुआ श्राद्ध कर्त्ता घृतप्लुत कहिये घृताक्त अर्थात् घीसे मिलाहुआ अन्न

पात्रस्थहाथमें लेकर ब्राह्मणोंसे पूँछे कि अग्नौकर्म करूँ फिर उनसे (कुरुष्व) इसप्रकार आज्ञापायाहुआ प्राचीनावीती किंतु अपसव्य होकर (सोमायपितृमतेस्वधानमः। अग्नयेकव्यवाहनायस्वधानमः) इनमंत्रों से अग्निमें यथाभागपूर्वक पिंड पितृयज्ञके विधानसेहोमिकर२३५फिरहुतशेष कहिये होमसे बचाहुआ अन्न थोड़ा २ उनपात्रों में समाहित कहिये सावधान होकर परोसे जो ब्राह्मणोंके आगे प्रथम तो विशेषतासे चांदी के चाहिये अथवा जिसकिसी के हों किंतु ढाक आदिपत्तों केभी जैसे लाभहो- सकें और उपस्थित कियेगये हों परंतु मट्टी के पात्र इसमें वर्जित हैं २३६॥

दत्वान्नंपृथिवीपात्रमितिपात्राभिमंत्रणम्। कृत्वेदंविष्णुरित्यन्नेद्विजांगुष्ठंनिवेशयेत् २३७॥
सव्याहृतिकांगायत्रींमधुवाताइतितृचम्। जप्त्वायथासुखंवाच्यंभुंजीरंस्तेपिवाग्यताः२३८॥

ऐ०सहद्वयोः--अन्न जो कुछ भोजनके निमित्त सिद्धकियाहो वह उक्त पात्रों में देकर (पृथिवीतेपात्रं) इत्यादि मंत्रसे पात्रों का अभिमंत्रण करिके (इदंविष्णुर्विचक्रमे) इत्यादि ऋचा से अन्नपर ब्राह्मणों से हाथ का अँगूठा रखवावे तहां वैश्वदेव कर्म में यज्ञोपवीती अर्थात् सव्यहोकर (विष्णोहव्यंरक्ष) यह मंत्रकहै और पित्र्यकर्ममेंप्रा- चीनावीती अर्थात् अपसव्यहोकर (विष्णोकव्यंरक्ष) यह मंत्रकहै-तिसके अनंतर सव्यहोकर (विश्वेदेवेभ्यइदमन्नंपरिविष्टंपरिवेश्यमाणंचातृप्तेः) इसमंत्र करके यव और उदक से वह अन्न विश्वेदेवाओं को निवेदन करिके-तथा-अपसव्यहोकर पिता के निमित्त में (पित्रेअमुकगोत्राय अमुकशर्मणेइदमन्नंपरिष्टंपरिवेश्यमाणंचातृप्तेः) इसमंत्र करके तिल और उदक दानसे वह अन्न पिता को निवेदन करिके (इसी) प्र- कार इसमंत्र की योजना में (पितामहाय) (प्रपितामहाय) यहसंयुक्त करिके उनदोनों कोभी उक्तविधिसे निवेदनकरै तिसके अनंतर आपोशान देकर पूर्वोक्त व्याहृतियोंस- हित गायत्रीको और (मधुवाताइतितृचं) अर्थात् मधुवाताआदि ऋचाओंका तीया किंतु वे तीनों ऋचा और मधुमधुमधुयहभी तीनबारजपिके (यथासुखंजुषध्वं) अर्थात् इच्छा पूर्वक भोजनकरो यहउच्चारणकरै फिर वे ब्राह्मणभी मौनीभूत होकर भो- जनकरैं २३७। २३८॥

अधि०--ऊपर (हव्य)(कव्य) यह मूलसे विशेष कथन जो ऐक्यार्थमें आया तिसका प्रमाण मनुजीका वाक्य-यथा-(विष्णोहव्यंचकव्यंचब्रूयाद्रक्षेतिवैक्रमात्)२३७ आपो शानादि शब्द जो मूलसे अधिकआये तिनका प्रमाण पारस्करादि बचनों से-यथा- (संकल्प्यपितृदेवेभ्यःसावित्रीमधुमज्जपः। श्राद्धंनिवेद्यापोशानंजुपप्रैषोथभोजनम) तथा-(गायत्रींत्रिःसकृद्वापिजपेद्व्याहृतिपूर्विकाम्। मधुवाताइतितृचंमध्वित्येतत्त्रिकं तथा) २३८॥

अन्नमिष्टंहविष्यंचदद्यादक्रोधनोऽत्वरः । आतृप्तेस्तुपवित्राणिजप्त्वापूर्वजपंतथा२३९॥
अन्नमादायतृप्ताःस्थशेषंचैवानुमान्यच । तदन्नंविकिरेद्भूमौदद्याच्चापःसकृत्सकृत्-२४०॥

ऐ०सहृदयोः—अन्नं अर्थात् भक्ष्य१ भोज्य२ लेह्य ३ चोष्य ४ पेयात्मक ५ यह पांच प्रकारकी वस्तु और-इष्टं अर्थात् प्रियवस्तु जो ब्राह्मणको या प्रेतको या कर्त्ताको भी जो कुछरुचताहो सोभी-हविष्यं अर्थात् श्राद्ध हविके योग्य जोकुछहोताहो सोभी दद्यात्नाम परोसै किन्तु जिनचीजोंका निषेधहो वे हविष्यमें गिनती नहीं हैं परन्तु अक्रोधनहोकर परोसै अर्थात् क्रोधकरनेका कोईसा हेतुभी उत्पन्नहोजावै तौ भी क्रोधको बचाकर और अत्वर होकर परोसै अर्थात् घवराहटसे अव्यग्रहोकर शीघ्र२ नहींफेंकै किन्तु सावधानी साथ जैसीरुचिसे वे भोजनकरैं उसीकेअनुसार (आतृप्तेः)अर्थात् तृप्ति पर्यंत और (तु) शब्दके अभिप्रायसे वारम्वार बूझ२ करपरोसै-तथा उनकी तृप्तिपर्यंत (पवित्राणि) अर्थात् पुरुषसूक्त पावमानी आदि जपिकर जव उनको तृप्तहुये जानै तव पहला जपभी जपै जिसकाचर्चा २३८ के श्लोकमें आयाथा कि व्याहृतियों सहित गायत्री और (मधुवाताइतितृचं) और मधुमधुमधु तीनबार यहभीजपै२३९तिसकेअनंतरवचाहुआ सारा अन्नहाथमें लेकर या उसपर उद्देशकरिकै ब्राह्मणोंसेपूछै कि आपतृप्तहुये खूबछके वहकहैं कि (तृप्ताःस्म) हमतृप्तहोगये तवयह बूझै कि अभी अन्न औरभी शेषहै क्याकरैं इसपर वे कहें कि (इष्टैःसहोपभुज्यतां) अर्थात् अपने प्रियपरिवारआदि सहित भोजनकरना चाहिये यहआज्ञालेकर उसअन्नको पिताके स्थानीय ब्राह्मणके आगे उच्छिष्टके समीप दक्षिणाग्रदर्भांतरितभूमि पर तिलोदक छोड़कर (ये अग्निदग्धाश्च) इसऋचासे उसअन्नको छोड़कर फिरभी तिलोदक ऊपरसे छोड़ैतिस पीछे ब्राह्मणोंके हाथमें गंडूपके निमित्तसे एकएकवार जलदेवै २४० ॥

भधि०—यद्यपि परोसनेका प्रकार तौ ऊपरके-ऐक्यार्थोंमें सवकहचुके और यहभी कहा कि (तु) शब्दके अभिप्रायसे वारम्वार परोसै परन्तु उसी (तु) शब्दके अभिप्रायसे वारम्वार परोसनेका यह सिद्धांतभीहै कि यहां तक वारम्वार परोसै जो थोड़ाबहुतकुछ आगे उनके वचिभीरहै क्योंकि वह आगेकी जूठउनकी दासवर्गोंका भागहोताहै-(दासवर्ग) अर्थात् वारी या भंगीआदि जो कोई उसकेलेने खानेके अधिकारीहों और पितरोंके अपने योग्यकाम धंधामें सौम्यतासे तत्परहों-सोई मनुजीनेकहाहै कि-(उच्छेषणंभूमिगतमजिह्मस्याशठस्यच।दासवर्गस्यतत्पित्र्येभागधेयंप्रचक्षते)अर्थात्-पित्र्ययज्ञकेवीचमें उच्छेषणकहिये उच्छिष्टजो भूमिगतहो किंतु जूठलेकर पृथ्वीपरडालीजाय सो वह दासवर्गका भागधेय कहतेहैं परंतु वे दासभी कैसेहों कि (अजिह्म) अर्थात्-अकुटिल किंतु अपने योग्यकामोंमें कुटिलता नहीं करतेहों-ऐसेही (अशठ) कहिये शठताभी न करतेहों तो वह उनका भागहै अन्यथा जो कुटिल या शठहों तो वह उन

का भाग नहीं किंतु और जो कोई उनके योग्यकामोंको सौम्यतासे साधनकरें वे उस जूठके भागीहों २३९।२४० ॥

सर्वमन्नमुपादायसतिलंदक्षिणामुखः। उच्छिष्टसन्निधौपिंटान्दद्याद्वैपितृयज्ञवत् २४१ ॥

अक्ष०—सब अन्नलेकर तिलसहित-दक्षिण मुखहोकर उच्छिष्टके समीप पितृयज्ञ की विधिवत् पिंडोंकोदेवे (वै) अर्थात् सावधानीसे २४१ ॥

अभि०—पूर्वोक्तरीतिसे केवल एकएकवार जलगंडूपको दियेपीछे-सर्वं अन्नंसतिलं उपादाय अर्थात् सारे अन्न जो २ संपादन कियेहों उनको किंचित्२ अग्नौकरण से बचेहुये चरुसमेतलेकर उसमें तिल मिलाकर उसी पूर्वोक्त अग्नौकरणकी अग्निके सन्निधि दक्षिण मुखबैठाहुआ पितृयज्ञके (वत्) कहिये कल्पनाअनुसार किन्तु जैसी उसकीविधि श्राद्धपद्धतिमें कहीहो उसीरीतिसे पिंडोंका दानकरै-अथवा जिसनेअग्नौकरण न कियाहो पुनि इसीहेतुसे उसका शेषचरुभी न हो तब अग्नि और चरुइनदोनोंके अभाव कहिये न होनेमें (वह) अन्न जो ब्राह्मणोंके निमित्तसे बनायाहो जिसमेंसे जिमाचुके उसीके सर्वशेषमेंसे किंचित् किंचित्लेकर उसमें तिल मिश्रितकरिकै आप दक्षिण मुखबैठकर ब्राह्मणोंकी उच्छिष्टके समीप पिंडदेवै क्योंकि अग्नि तौहै नही इस लिये-परन्तु (वै) शब्दके अभिप्रायसे सावधानी और (वत्) शब्दकी अंत्ययोजनासे यथोक्त विधि जो (पिंडपितृयज्ञ) के विधानोंमें होतीहै सबकरनी चाहिये २४१ ॥

अधि०—ऊपरके अभिप्रायार्थमें मूलश्लोकसे अधिक वार्त्ता अर्थात् अग्निके समीप पिण्डदेना कहा और अग्नौकरणका शेषचरुभी अन्नके साथमेंलेना कहा तिसका यह हेतुहै कि याज्ञवल्क्यजीने मूलमें मुख्यविस्तरको उलांघकर निर्वाहविधि कहदीहै इस लिये कि जोवात घंटाघोपवत् प्रसिद्धहै वह नकहनेसेभी नष्टनहींहोती और यथार्थसे जबउन्होंने(पितृयज्ञवत्)यहकहातौ सभीकुछ कहदिया क्योंकि पितृयज्ञकी कल्पविधि जोश्राद्धपद्धतिहै उसमें अग्नौकरणकाहोना मुख्यहै फिर जहां अग्नौकरणहोगा तहां (चरु)भी अवश्यभावसेहोगा सोईयाज्ञवल्क्यजी अग्नौकरणको यथाक्रमसे उचितस्थलपर २३५ के श्लोकमें प्रतीतकरचुकेहैं इसहेतुसे यद्यपि यहांपरभी कथनकी प्राप्ति थी परन्तु पिष्टपेपणदृष्टिसे प्रत्यक्षभावमें नकहा किंतु(पितृयज्ञवत्) यहकहकर उसवात को गोल २ दर्शादिया-सो-यह इसप्रकारके हेतु गर्भितस्थल(अतिदेशधर्म)कहलातेहैं कि जोवात धर्मसम्बन्धी किसीस्थलपर देखी अथवा सुनीहो वहीवात किसी अन्यस्थल पर उचित जानिकर योजना करीजाय-तद्यथा-(अन्यत्रैवप्रतीतायाःकृत्स्नायाधर्मसंततेः। अन्यत्रकार्यतःप्राप्तिरतिदेशोऽभिधीयतेप्रकृतात्कर्मणोयस्मात्तत्समानेपुकर्मसुधर्मप्रवेशोयेनस्यात्सोऽतिदेशइतिस्मृतः) (भेद २)वर्त्तमानसमयमें अत्रत्यदेशीलोग तो निर्विकल्पही अग्नौकर्मको(निरग्नि) किन्तु उपकल्पकीरीतिसे विनाअग्निकेही करलेते

हैं और वे उपकल्पभी सवशास्त्रोक्तहैं-परन्तु दाक्षिणात्यादि ब्राह्मण अद्यापि(साग्निक) अग्नौकर्म करतेहैं वल्कि ब्राह्मणोंका निमंत्रण और भोजनआदिभी सर्वविधि जैसी कुछपूर्वश्लोकोंसे कहते चलेआतेहैं उसीप्रकार साक्षात्ब्राह्मणोंको वैठारकर अर्घ्यादि उनकेहाथमें देतेहैं और अत्रत्यदेशी ब्राह्मणोंके स्थानपर कुशाओंके ब्राह्मण कल्पित करके साराकर्म निपटाय पीछे ब्राह्मणोंको भोजनसमय वैठारते हैं सो यथार्थ से जो ऐसा नहींकरैं तौ इसदेशमें श्राद्धकाहोनाभी दुर्लभहोजाय इस्से आचार्योंने सौगम्य निर्वाहके निमित्तसे प्रत्येक वार्त्ताके अनुकल्प नियतकरादिये हैं और पहलीवातें तौ पहले समयके साथगईं २४१॥

मातामहानामप्येवंदद्यादाचमनंततः। स्वस्तिवाच्यंततःकुर्यादक्षय्योदकमेवच २४२॥
दत्वातुदक्षिणांशक्त्यास्वधाकारमुदाहरेत्। वाच्यतामित्यनुज्ञातःप्रकृतेभ्य स्वधोच्यतां २४३॥
ब्रूयुरस्तुस्वधेत्युक्तेभूमौसिंचेत्ततोजलम्। विश्वेदेवाश्चप्रीयंतांविप्रैश्चोक्तमिदंजपेत् २४४॥

ऐ०सहत्र०-(एवंमातामहानां) अपि अर्थात् जैसे पिता पितामह प्रपितामह इनतीनों ... कर्म वर्णनकिया ऐसेही नानाओंकाभी तीनपुरुषके उद्देशते विश्वेदेवा आवाहन अर्घ्यआदि पिण्डदान पर्यंत सब यथोक्तविधिसे कर्त्तव्यहै तिसपीछे किन्तु पिंडदानके अनन्तरब्राह्मणोंकोआचमनदेवै-(ततःस्वस्तिवाच्यंकुर्यात्)अर्थात्ब्राह्मणोंसेस्वस्तिउच्चारणकरनेकोकहे पुनिवेभी स्वस्तिवाचन उच्चारणकरैं फिर ब्राह्मणोंकेहाथमें(अक्षय्योदक) अर्थात् कमंडलु आदि पात्रसे जलदेकर अक्षय्य उच्चारण करनेको कहे फिरि ब्राह्मण उच्चारणकरैं कि(अक्षय्यमस्तु) २४२तिसपीछे अपनीशक्ति अनुसार सोनेचांदी आदि की दक्षिणा देकर यहकहे कि(स्वधाकार)उच्चारण करवावेंगे पुनि ब्राह्मणकहैं कि(वाच्यताम्) अर्थात् करवाइये यह अनुज्ञापायाहुआ फिर कहे कि (प्रकृतेभ्यःस्वधोच्यताम्) अर्थात् पितादिकोंकेलिये और मातामहादिकोंके लियेभी स्वधाकार कहना चाहिये २४३ फिर (अस्तुस्वधा) यहशब्द ब्राह्मण उच्चारण करैं यह किये पीछे लोटालेकर पृथ्वी में जल की धारदेवे और यहकहे कि (विश्वेदेवाःप्रीयंतां) फिर ब्राह्मणोंने भी कहा कि (विश्वेदेवाःप्रीयंतां) तिसपीछे (इदंजपेत्) अर्थात् यह जो अगलेश्लोकमें अव कहेंगे सो जपे २४४॥

दातारोनोभिवर्द्धंतांवेदाःसंततिरेवच। श्रद्धाचनोमाव्यगमद्बहुदेयंचनोस्त्विति २४५॥
इत्युक्त्वोक्त्वाप्रियावाचःप्रणिपत्यविसर्जयेत्। वाजेवाजइतिप्रीतःपितृपूर्वंविसर्जनम् २४६॥
यस्मिंस्तेसंश्रवाःपूर्वमर्घ्यपात्रेनिवेशिताः। पितृपात्रंतदुत्तानंकृत्वाविप्रान्विसर्जयेत् २४७॥

ऐ०सहत्र०—यह पढ़े कि (नोदातारःअभिवर्द्धंतां)अर्थात् हमारेकुल में दातालोग वहुत से होवें-(वेदाश्चवर्द्धंतां)अर्थात् वेदभी दृद्धिपावें किंतु हमारेकुलमें अध्ययन या अध्यापन और उसके अर्थोंके अनुमनन और कर्मोंके अनुष्ठान द्वारा वेदादि सर्वशास्त्रोंका

सत्कार होवे-(संततिश्चवर्द्धतां)अर्थात् पुत्रपौत्रादि परंपरासे वंशकीवृद्धि बनीरहे-(नःश्रद्धाचमाव्यगमत्)अर्थात् हमारी या हमारेकुलकी श्रद्धाभी मतजावो-(नोवहुदेयंचास्तु)अर्थात् हमारेघर और कुलमेंभी देयवस्तुकहिये सोनाचांदीआदि वहुतसा अत्यन्तहोउ (एवच)अर्थात् औरभी जोकुछ पशु यान दास दासी आदि संसारयोग्य होताहो सो भीबढ़ो(इति)अर्थात् यहजपै जिसकाचर्चा२४४के अन्तमें आयाथा२४५॥ इसप्रकार प्रार्थना मंत्रपढ़ाहुआ.प्रियवचनोंको कहकर और(प्रणिपत्य)अर्थात् प्रदक्षिणपूर्व नमस्कार देकर बिसर्जनकरै-भलाकैसे विसर्जनकरै सो कहतेहैं कि (वाजेवाजेवतवाजिनो न)इत्यादि ऋचासे(प्रीतः)कहिये प्रसन्नमन होताहुआ कर्ता (पितृपूर्वंविसर्जयेत्) अर्थात् पहले पिताकेस्थानी ब्राह्मणरूप जो कुश कल्परक्खागयाथा उसकोउठावे फिर पितामहका फिर प्रपितामहका फिर विश्वेदेवाओं का इसक्रमसे ऊर्ध्वोक्त ऋचाकोपढ़कर (उत्तिष्ठपितर) इत्यादि यथोक्त विधिसे विसर्जनकरै २४६॥ परन्तु इसमें इतनी बात औरभी शेषरहीहै कि जिस अर्घ्यपात्रमें वे(संश्रव)कहिये ब्राह्मणोंके हाथसे गिरेहुये अर्घ्यजल पहले स्थापित कियेगयेथे जिनकाचर्चा २३४ के श्लोकमें आयाथा वही पितृपात्र जो (न्युब्ज)कहिये औंधाकियागया था उसको उत्तानकहिये चितकरिकै तब उनब्राह्मणोंके कुशकल्प विसर्जनकरै जिनकाचर्चा अभीऊपर(वाजेवाजे)इसऋचा के साथमें आयाथा अर्थात् इसऋचासे पहले और २४५ वाले प्रार्थनामंत्रसे पीछेवह पात्र चितकर लियाजावे तव बिसर्जन कर्महो तिसपीछे ब्राह्मण अपने स्थान को सिधारैं २४७॥

भाषि०—ऊपर २४६ के श्लोकमें प्रियवचनोंकाचर्चा आयाथा तिनकास्वरूप(धन्या वयंभवच्चरणयुगलरजः पवित्रीकृतमस्मन्मंदिरंशाकाद्यशनक्लेशमविगण्य्यभवद्भिरनुगृहीतावयमित्येवंरूपावाचः)अर्थात्-हमधन्यहुये जो आपके चरणोंकी रजने हमारा मंदिर पवित्रकिया और सागपात आदि कुभोजनके क्लेशको गिनतीमें न लाकर आप लोगोंकरके हम अनुगृहीतहुये इत्यादि वाणीकोप्रियवचनकहतेहैं२४५।२४६।२४७॥

प्रदक्षिणमनुव्रज्यभुंजीतपितृसेवितम्। ब्रह्मचारीभवेत्तांतुरजनींब्राह्मणैःसह २४८॥

ऐ०—फिर उनब्राह्मणोंके साथ (सीमांत) अर्थात् अपने ग्राम या मुहल्ला या स्थान आदिकी यथा संभवसीमा पर्यंत पीछे या उन्हें दाहनेदियेजावे-वे उच्चारणकरें कि जाओ वैठो भोजनकरो इत्यादि आज्ञापायाहुआ उन्हें प्रदक्षिण देकरलौटे फिर (पितृसेवित) कहिये श्राद्धसे वचाहुआ अन्न अपने प्रियपरिवार आदि सहित भोजनकरै और (तांरजनींब्रह्मचारीभवेत्) अर्थात् उसरात्रिमें ब्रह्मचर्यसे रहे ब्राह्मणों सहित किंतु वे ब्राह्मणभी ब्रह्मचर्यसेरहें जिन्होंने श्राद्धका अन्नखायाहो और (तु) शब्दके अभिप्रायसे पुनर्भोजनादि से बचैउसदिन २४८॥

अधि०—श्राद्धकरनेवाले और भोजनकरनेवाले ब्राह्मणोंकोभी जो कुछ वर्जितहैं सो यथा(दंतधावनतांबूलंस्निग्धस्नानमभोजनम्रत्यौपधपरान्नानिश्राद्धकृत्सप्तवर्जयेत्) अर्थात्-काष्ठसे दंतधावन १ तांबूलभक्षण २ तैलादि मर्दन सहितस्नान ३ अभोजन किंतुलंघन ४ रतिकहिये स्त्रीप्रसंग ५ औषधी भक्षण६ पराया अन्न ७ श्राद्धकरनेवाला यह सातकाम वर्जितकरै॥ अपिच(पुनर्भोजनमध्वानंभाराध्ययनमैथुनं। दानंप्रतिग्रहंहोमंश्राद्धभोक्ताष्टवर्जयेत्)अर्थात्-दुसराकरभोजन करना१ मार्गचलना२ भारका उठाना ३ विशेषतर अध्ययन ४ मैथुन ५ दानकर्म ६ प्रतिग्रहकालेना ७ होमकर्म अपनेलिये या बिरानेलिये ८ यह आठबातें श्राद्धभोक्ताभी वर्जितकरै २४८॥

यहांतकपार्वणश्राद्धकीविधिवर्णनहोचुकी-अबआगेवृद्धिश्राद्धकाप्रकारकहतेहैं॥

एवंप्रदक्षिणावृत्कोवृद्धौनान्दीमुखान्पितृन्। यजेतदधिकर्कंधुमिश्रान्पिंडान्यवैःक्रियाः २४९॥

मक्ष०—इसीप्रकार वृद्धिमें (प्रदक्षिणावृत्कयजमान) नांदीमुख पितरोंके प्रतिदधि और कर्कंधु मिश्रित पिंडोंको यजनकरे यवोंसे क्रियायें,साधै २४९॥

अभि०—एवंकहिये जैसे पार्वणश्राद्धकी विधिकही तैसेही किंतु त्रिपुरुषके उद्देशते पुत्रजन्म आदि वृद्धिमें जोश्राद्धकरै तौभी उसीरीतिसे पितरोंका यजनकरै परन्तु इसमें इतना विशेषहै कि वह यजमान प्रदक्षिणावृत्क होकर यजनकरै अर्थात् प्रदक्षिण मार्गके प्रचारवाली अनुष्ठान पद्धतिसे श्राद्धकरै क्योंकि पार्वण विधिकी अपेक्षा उसमें कुछ२ अंतरहै इसीसे उसकी संज्ञाभी (प्रदक्षिणाआवृत्) हुई तहां पितरोंका विशेषण (नांदीमुखान्) कहनेसे औरभी यह विशेषताप्रकट हुई कि आवाहनआदि प्रकारोंमें ऐसे उच्चारणकरै कि (नांदीमुखान्पितृन्आवाहयिष्ये) (नांदीमुखान्पितामहान्) इत्यादि प्रयोग उसपद्धतिमेंआतेहैं औरभी यह विशेषताहै कि दही और कर्कंधु नाम बनबेरोंकाचूर्ण मिलाकर तिसके पिंडदेवै औरभी यहविशेषताहै कि (यवैःक्रियाः) अर्थात् जो २ क्रियायें तिलोंसे करनी कहीथीं वे भी सबयवोंसे साधै २४९॥

अधि०—इसवृद्धि श्राद्धके ब्राह्मणोंकी संख्याभी पार्वण प्रारंभसाथ उसी २२६ के श्लोकमें पहलेचरणसे कहचुकेहैं कि(युग्मान्दैवेयथाशक्ति) अर्थात् दैवनाम आभ्युदयिक जिसे वृद्धिश्राद्ध कहतेहैं तिसमें यथाशक्तिके अनुसार (युग्म) कहिये समसंख्यावाले ब्राह्मण बैठारै वा निमंत्रितकरै किंतु इसके वैश्वदेवके सिवायपितरोंकेस्थानमेंभी युग्मसंख्याकरै-इसमें प्रदक्षिणा वृत्कत्वजो कहाथा उसके प्रमाणमध्ये अन्य स्मृतियोंकाभी संमतपाया जाताहै (जैसा) आश्वलायन ऋषिने कहाहै कि(अथाभ्युदयिके युग्माब्राह्मणः अमूलादर्भाःप्राङ्मुखोयज्ञोपवीतीस्यात्प्रदक्षिणमुपचारोयवैस्तिलार्थोगंधादिदानंद्विर्द्विः ऋजुदर्भानासनेदद्यात्)अर्थात्-आभ्युदयिकनामवृद्धिश्राद्धके अधिकारमें(युग्मा)कहिये दो चार छः आदि समसंख्यावाले ब्राह्मण-विनाजड़के कुशा

पूर्वाभिमुखयजमानका बैठना-यज्ञोपवीती अर्थात् सव्यहोकर कर्मकाकरना किंतु पार्वणवत् अपसव्य नहीं-प्रदक्षिणमार्गसे कर्मका उपचार अर्थात् आसनका देना या यवोंका फेंकनाआदि दाहनीओरसे यवैस्तिलार्थो किंतु तिलोंकेप्रयोजन यवोंसेसाधै-गंधआदि चीजोंका चढ़ानादोदोवार-आसनकेलिये सूधेकुशादेवै किंतु पार्वणके समान द्विगुणभुग्न नहीं-(अन्यत्र)-यवोंका फैलानाइसमंत्रसे कि (यवोसिसोमदैवत्योगोसवोदेवनिर्मितःप्रत्नवद्भिःप्रत्तःपुष्ट्यानांदीमुखान्पितॄनिमांल्लोकान्प्रीणयाहिनःस्वाहा) अर्घ्यदेनेके मंत्रयथा (विश्वेदेवाइदं [illegible]) [illegible] यथा लिंगभेदके अनुसार अर्घ्यदानके [illegible] ग्निमें होमकहाथा यहां ब्राह्मणके (हाथ) में ही होमहोताहै-वहां होमकेमंत्रांतमें स्वधानमःउच्चारण कियागयाथा इसमें (अग्नयेकव्यवाहनायस्वाहा) (सोमायपितृमतेस्वाहा) उच्चारणहुआ-वहां तो (मधुवाताऋतायते) इत्यादि तीनऋचाका उच्चारणहुआथा यहां इनके बदले (उपास्मैगायते) इत्यादि पंचमधुमती सुनावे (अक्षन्नमीमदंत) छठी यह भी-औरभी ब्राह्मणोंको आचमन करवाये पीछे भोजनके स्थानोंको गोमयसेलीपकर पूर्वओरको अग्रभाग कियेहुये कुशाओं को बिछाकर उनपर उसअन्नसे जो पितृब्राह्मणोंको जिमानेसे बचाहो किंचित् घी मिलाकर एकएकके नामसे दोदो पिंडदेवै इत्यादि बहुधा बातोंकाभेद उसपद्धतिमें होताहै-औरभी इसकेमूलश्लोक इसी २४९ में यद्यपि (पितॄन्यजेत) यह वाक्यसामान्यतासे कहाहै किंतु इस्से कोईसाक्रम अथवा नियम नहीं पाया जाता परन्तु इसवृद्धि श्राद्धमें तीनिश्राद्धहोतेहैं सोई (शातातप) ऋषिने यथायोग उनकाक्रमभी कहदियाहै कि (मातृश्राद्धंतुपूर्वंस्यात्पितॄणांतदनंतरम्। ततोमातामहानांचवृद्धौश्राद्धत्रयंस्मृतम्) अर्थात्-पहले मातुःश्राद्ध किंतु माताआदि का होवै तदनन्तर पिताआदि तीनोंका फिरसपत्नीक नानाआदि का इसप्रकारवृद्धि कालमें श्राद्धत्रय कहेहैं २४९॥

यह वृद्धिश्राद्धका वर्णन होचुका-अब आगे एकोद्दिष्ट नाम श्राद्धका प्रकारकहतेहैं॥

एकोद्दिष्टंदैवहीनमेकार्घ्यैकपवित्रकम्। आवाहनाग्नौकरणरहितंह्यपसव्यवत् २५०॥

भक्ष०—एकोद्दिष्टश्राद्धदैवहीन-एकअर्घ्य और एकपवित्रवाला-आवाहन और अग्नौकरणसे रहित-अपसव्यवत् होताहै २५०॥

भाभि०—एकोद्दिष्ट यह नामकर्म नामधेय इसहेतुसे कहलाया कि इसमेंएकहीपुरुष का उद्देश कियाजाताहै किंतु त्रिपुरुषनहीं-क्योंकि त्रिपुरुषकर्म पार्वण और वृद्धिश्राद्धों में होताहै-यद्यपि कर्म इसमेंभी पार्वणकीहीरीति अनुसारहोताहै परन्तु बहुधाबातोंमें कुछ २ अन्तर होताहै सो उसअन्तरको प्रकटकरते हैं कि एकोद्दिष्टं (दैवहीनं) अर्थात् एकोद्दिष्टश्राद्धमें देवकर्म कहिये विश्वेदेवाओंका आवाहन पूजन आदि सो न करना

चाहिये-और एकही अर्घ्यपात्रभी करनाचाहिये तथा एकही दर्भपवित्रक उसमें छोड़े औरभी इसएकोदिष्टनामश्राद्धमें आवाहनकाविधानभीनहींहोता और अग्नौकरणभी नहींहोता परन्तु(अपसव्यवत्)अर्थात् यज्ञोपवीत और अँगोछासे प्राचीनावीती किन्तु अपसव्यहोकर कर्मकरे(हि) अर्थात् इसमेंसंदेह नहीं—अब ध्यानकरो कि इसकथनसे अनन्तरोक्त वृद्धिश्राद्धमें(सव्य)होकर कर्मकरनेकी सूचनाहोगई अर्थात् २४९केश्लोक में जहां वृद्धिश्राद्धका प्रकारदर्शाया तहां उसके मूलपाठमें(सव्य)या(अपसव्य) काचर्चा नहींआया और यद्यपि उसकी अधिकोक्तिमें आश्वलायनऋषिके वाक्यसे सिद्धिभी करदीगई तथापि कोई यहकहे कि वह द्वितीय ग्रंथकी बातहै किंतु याज्ञवल्क्यजी ने अपनेमुखसे कुछनहींकहा सो यहसंदेह व्यर्थहै क्योंकि उन्होंने पार्वणको अपसव्य से करना कहाथा बीचमें वृद्धिश्राद्धके स्थान(सव्य)या(अपसव्य)कुछभी नहींकहा फिरइस एकोदिष्टमें आकार अपसव्यकहदिया इस्सेप्रत्यक्ष उनकाकहनाभी संसूचितहोगया कि मध्योक्त वृद्धिश्राद्धको सव्यहोकर करना चाहिये २५० ॥

उपतिष्ठतामक्षय्यस्थानेविप्रविसर्जने। अभिरम्यतामितिवदेद्ब्रूयुस्तेऽभिरताःस्मह २५१ ॥

भक्ष०—अक्षय्यस्थानमें उपतिष्ठतां यहकहे विप्रविसर्जनमें अभिरम्यतां यहकहे वे विप्र यहकहें कि अभिरताःस्म(ह)प्रसिद्ध अर्थमें २५१ ॥

भभि०—इसमें औरभी विशेपता कहतेहैं कि २४२ के चौथेचरणसे पार्वण श्राद्धमें (अक्षय्योदक)अर्थात् यहकहाथा कि ब्राह्मणोंके हाथमें जलदेवे और ब्राह्मण उसको लेकर(अक्षय्यमस्तु)यहवाक्य उच्चारणकरें-इसविधिके स्थानपर यहांयहउच्चारणकिया जावे कि(उपतिष्ठतां)औरभी ब्राह्मणोंके विसर्जनमध्ये जहां २४६ के श्लोकमें (वाजे वाजे) इत्यादि जपकियेपीछे(उत्तिष्ठपितर)इत्यादि कहकर कुशाकलपका उठानाकहाथा इसकेबदले यहां कुशकल्पके उठातेसमय(अभिरम्यतां)यह उच्चारणकरे फिरवेब्राह्मण अपने मुखसे यह उच्चारणकरें कि(अभिरताःस्म)—श्लोकान्तमें एक (ह) यहअक्षरजो अधिकहै सो प्रसिद्धअर्थको देताहै अर्थात् यह विशेपता जो एकोदिष्टमध्येदोश्लोकों से वर्णनकरीगई सो सर्वत्र प्रसिद्धहै श्राद्धकी पद्धतोंमें किंतु कुछ नवीनबात नहींहै- यह अर्थ(ह)शब्दसे प्रकट होताहै २५१ ॥

भधि०—आगे २५३ के श्लोकमें सपिंडी करणकी विशेपता कहकर यहकहेंगे कि (शेपंपूर्ववदाचरेत्)अर्थात् कहीहुई विशेपताके सिवाय जोकुछ विधिकहनी रहगईहो सो सबपूर्ववत् आचरणकरे किंतु जैसा २ पहलेपार्वणमें कहचुकेहैं उसीकेअनुसारकरे सो यही अनुकर्ष इसएकोदिष्टमें भी लगता है अर्थात् इसमें भी यहसमुझलेना कि (शेपंपूर्ववदाचरेत्)इस एकोदिष्टनाम श्राद्धका प्रारंभ मध्याह्नकालमें कर्तव्य है—सोई (देवल)ऋषिने यह कहाहै कि (पूर्वाह्णेदैविकंकर्म अपराह्णेतुपैतृकम्। एकोदिष्टंतुमध्याह्ने

प्रातर्वृद्धिनिमित्तकम्) अर्थात्-देवसंबन्धीकर्म तो दुपहरसे पहले और पितरों संबंधीकर्म दुपहरसे पीछे परन्तु एकोद्दिष्टश्राद्ध मध्याह्न किन्तु ठीकदुपहरकेबीचमें और वृद्धिश्राद्ध प्रातःकाल करनाचाहिये–यह ठीकदुपहर या मध्याह्न जो कहा सो कुतपकालका उपलक्षण है जिसकीचर्चा २२५ में आचुकीहै देखलो-इसीएकोद्दिष्टकी औरभीविशेषता कहते हैं कि २४८के श्लोकमें पार्वणविधिमध्ये यहकहाथा कि (भुंजीतपितृसेवितम्) अर्थात् श्राद्धसे बचाहुआ अन्न भोजनकरै सो यहीवाक्य सवश्राद्धोंपर संबंधित है-इसीहेतुसे यद्यपि एकोद्दिष्टनामश्राद्धका बचाहुआ अन्न भोजनकरना उचितहै परंतु उसअवस्थामें कि जब एकोद्दिष्ट वार्षिकहो-किंतु एकोद्दिष्ट(नवसंज्ञक)हो तौ उसका बचाअन्न भोजनकरना नहीं चाहिये-तथाच(नवश्राद्धेपुयच्छिष्टंगृहेपर्युपितंचयत्। दंपत्योर्भुक्तशिष्टंचनभुंजीतकदाचन) अर्थात्-नवश्राद्धोंमें जो बचाहो (या) जोअन्नगृहस्थी के घरमें बचाहुआ रक्खे २ पर्युपित होगयाहो(और)वहभी किजो दंपत्यदोनोंके भोजन पीछे बचाहो ऐसे अन्नको कदाचित् नहींभोजनकरै-(दंपत्य) अर्थात् स्त्री पुरुप दोनोंजो घरके स्वामीहों वे जबतक नहींभोजनकरैं तबतक चाहे कितनेही मनुष्य भोजन कर जावें वहरसोई शुद्धबनीरहतीहै परन्तु जबघरधनी दोनोंनेभोजनकरलिया तबरसोई उच्छिष्टमें गिनती होजातीहै ऐसाअन्न विवेकीके भोजनयोग्य नहीरहता-इसीलियेघर के धनीकायहधर्म गार्हस्थ्यप्रकरणमें कहचुके हैं कि वहसबको भोजनकरवाकर पीछे भोजनकरै-यद्यपि उसघरके बहूबेटा आदिकेलिये उनके भोजनकरलेनेसे रसोईउच्छिष्ट नहीं कहलासक्ती परन्तु बड़ोंका यहसनातनधर्म है और इसलिये है कि नजानै कोई अभ्यागत या संबंधी आदि विवेकी बीचमें आजावे तो उसकेयोग्य वह रसोई नही रहेगी–नवश्राद्धोंका चर्चा ऊपरआयाहै तिनकेलक्षण कहतेहैं कि (प्रथमेह्नितृतीयेह्नि पंचमेसप्तमेतथा। नवमैकादशेचैवतन्नवश्राद्धमुच्यते) अर्थात्-मनुष्यके मरनेमें पहले दिवस जो एकोद्दिष्ट कियाजाता अर्थात् घरसे लेचलनेके समयसे चिताकेअन्ततांई जोपांच या छः पिंडदियेजातेहैं तिसपीछे चाहो दशग्यारहदिनतांई रोजरोज अथवा तीसरे पांचवें-सातवें-नववें-ग्यारहवें दिवसोंमें जोएकोद्दिष्टकियेजाते हैं उनकोनवश्राद्ध कहतेहैं क्योंकि वहमरनेके प्रारंभमें सबसे पहलेकियेगये इस्सेनवीनहैं इसीसे नवश्राद्ध उनका नामहुआ तिनकाबचा हुआ अन्नखानेका निपेधहै इस्सेपीछे जो वर्प वर्प प्रति एकोद्दिष्ट होताहै उसमेंनिपेध नही २५१ ॥ यहविधिएकोद्दिष्टकीकही सो यहएकोद्दिष्ट स्त्रियोंकाभी उनके क्षयाहके दिनमें जुदा केवल उनके नामसेही होताहै ॥

अत्र आगे सपिंडी करण श्राद्ध कहतेहैं ॥

गंधोदकतिलैर्युक्तंकुर्यात्पात्रचतुष्टयम्। अर्घ्यार्थंपितृपात्रेपुप्रेतपात्रंप्रसिंचयेत् २५२ ॥
येसमानाइतिद्वाभ्यांशेपंपूर्ववदाचरेत्। एतत्सपिंडीकरणमेकोद्दिष्टंस्त्रियाम्पि २५३ ॥

मक्ष०सहृदयोः—गंध उदक तिलोंकरके युक्त अर्घ्यार्थ पात्र चतुष्टयकरै-पितृपात्रोंमें प्रेतपात्रको प्रसिंचनकरे २५२ (येसमाना) इन दोमंत्रों से—शेष पूर्ववत् आचरे-यह सपिण्डीकरण-एकोद्दिष्ट-स्त्रीकाभीहै २५३ ॥

भभि०सहृदयोः—सपिंडी करण श्राद्धमें जो कुछ विशेषताहै सो कहतेहैं कि (अर्घ्यार्थ) कहिये अर्घ्य विधिउद्धार करनेकेलिये चार पात्र ऐसेकल्पितकरै जोपूर्वोक्त विधिके अनुसार गंधउदक तिलोंसे संयुक्तहों सो इन चार पात्रोंके कथनसे याज्ञवल्क्यजीने यहां पितृपक्षके चार ब्राह्मण दर्शायेहैं क्योंकि पात्र ब्राह्मणोंकेही निमित्तहोतेहैं और विश्वेदेवाके पक्षमें पार्वणके अनुसार दोहीबनेरहे क्योंकि नीचेके श्लोकमें कहाहै कि जो कुछ न कहाहो सो पूर्ववत् आचरे पर यहां पर इतना विशेष औरभीहै कि प्रेतपात्रमें से उसप्रेतको अर्घ्यादिये पीछे बचेहुये जलको उनतीनों पात्रोंमें थोड़ा २ भाग पूर्वक सींचदेवे सो इन मंत्रोंसे सींचे कि (ये समानाःसमनसः) इत्यादि-इसके सिवाय जो कुछ कहना शेषरहाहो सोसब विश्वेदेवा आवाहनआदि विसर्जन पर्यंत पूर्ववत् कहिये पार्वणके अनुसार विधि आचरणकरै परन्तु इतनी विशेषता औरभी है कि प्रेत पात्रके जलसे प्रेतस्थानी ब्राह्मणके हाथमें अर्घ्यदेकर और बचेहुयेको उनतीनों पात्रोंमें सींचकर पीछे उसप्रेतका साराकर्म भिन्नएकोद्दिष्टवत् समाप्तिकरै (और)पित्र्यपात्रों यद्वा पित्र्य ब्राह्मण तीनोंके स्थानशेषविधि पार्वणवत् आचरै-यह वर्णन किया हुआ सपिंडीकरण और इससे पहले कहाहुआ एकोद्दिष्ट ये दोनों श्राद्धस्त्रीके भी अर्थात् माताकेभी करने चाहिये सो इसकथनसे यहसिद्धांतभी पायागया कि पार्वण विधिमें मातृश्राद्धजुदा नहीं करना चाहिये किन्तु पिताआदि तीनोंका सपत्नीक आवाहन करनेसे मातृश्राद्धभी उनकेसाथमेंहोगये (परन्तु)वृद्धिश्राद्धमें सपत्नीक आवाहनसे नहीं होता किन्तु मातृश्राद्ध पहले जुदाकरलिया जाता है जिसमें मातादादी परदादी इनतीनोंका आवाहनहोताहै तिसपछि पितृश्राद्धकिया जाताहै जिसमें पिता आदि तीनोंका आवाहन भिन्नहुआ करताहै सोई नीचे अधिकोक्तिमें सबसे पहलेदेखो और यहभी यादरक्खो कि २२६ के अभिप्रायार्थमें नीचे जाकर यहबात जोलिखीहै कि इसीप्रकार नानापक्षमें भी तीनोंवर्ग भिन्न २ समुझलेने-तिसका यहसिद्धांत नहीं है कि नानापक्षमेंभी तीसरामातृश्राद्ध भिन्नकरै किन्तु वहां परनानापक्षमें दोही वर्गहोंगे एक विश्वेदेवाओंका दूसरा सपत्नीक नाना परनाना सरनानाका और पिता पक्षमें वहांभी तीनवर्ग जैसे भिन्नलिखे हैं उसी प्रकारहोंगे अर्थात् सबजोड़कर पांच वर्गहुये परन्तु वहां परतीनोंवर्ग नानाकेभी इसलियेलिखेहैं कि ब्राह्मणोंकी संख्याका विभाग शीघ्रसमुझमें आजावै २५२ । २५३ ॥

अधि०सहृदयोः—(अन्वष्टकासुवृद्धौचगयायांचक्षयेहनि। मातुःश्राद्धंपृथक्कुर्यादन्यत्रप

तिनासह) अर्थात्-माताकी सपिंडताहोचुके पीछेभी जो अन्वष्टका पर्वमें श्राद्धकरै या वृद्धिकालमें नांदीमुख श्राद्धकरै अथवा गयाजीमें करै या क्षयाहके दिन एकोद्दिष्टकरै तब तो माताका श्राद्धपृथक् कहिये जुदाकरै सो जुदाकरनेकीभी यहपरिपाटी है कि जो क्षयाहके दिनका एकोद्दिष्टहोवै तब तो केवलमाताकेही नामसे एकपिण्डदेवै शेष और जो तीनिभेद इसमें कहेगये उनमें जुदा इसरीतिसे करै कि जैसे पिता पितामह प्रपितामह तीनोंका पार्वण एक साथहोताहै तैसेही मातादादी परदादी तीनोंका एक साथ पार्वण विधिसे करै-(अन्यत्रपतिनासह) अर्थात् इनप्रकारोंके सिवाय और२ दशाओंमें जो पार्वण श्राद्धकरै पतिके साथ सपत्नीक आवाहन करलेवै किंतु जुदाश्राद्ध नहीं करै-सपत्नीक श्राद्धके करनेमें कुछ औरभी निर्णयकरना शेषहै अर्थात् जिसस्त्री की पतिके साथ सपिंडता करीगईहो उसका तो पतिके साथ आवाहन करिकै सपत्नीकश्राद्धकरै क्योंकि वह उसीकी अंशभागिनीहुई परन्तु जिसस्त्रीकी सपिंडता उसके पिताके साथकरी गईहो उसका श्राद्धभी पिताकेही साथकियाजावै किंतु उसका पुत्र जब अपने नानाका श्राद्धकरै तभी अपने नानाके साथमें अपनी माताकाभी एकसाथ आवाहनकरै क्योंकि उसकी सपिंडता उसके साथहुईथी इस्से वह उसीकी अंशभागिनीहोचुकी इसहेतुसे उसके श्राद्धका अधिकार सदैवकेलिये अपनेपिताके साथहो चुका किंतु पतिके साथका अधिकार नहींरहा-सोई शातातपऋषिने यहकहाहै कि-(एकमूर्त्तित्वमायाति सपिंडीकरणेकृते। पत्नीपतिपितृणांचतस्मादंशेनभागिनी)-अर्थात्-सपिंडीकरण श्राद्धके करचुकने पीछेपत्नी अपने पतिके साथ यद्वा अपने पितृयोंकेसाथएक मूर्त्तित्वमें आजातीहै किन्तु जिसके साथसपिण्डताहुई तिसमें और उसमें कुछ अंतरनहीं रहता तिसहेतुसे उसीकी अंशभागिनीहुआ करती है-इसनिर्णयसे अब एक और वार्त्ता यह उत्पन्नभई कि जिस पुत्रने अपनी माताकी सपिण्डता अपने नानाके साथकरीहो उसको सदैव अपने नानाका श्राद्ध उसमुख्यतासे करना चाहिये कि जैसे पिताके श्राद्धमें पुत्रको नित्यअधिकारहै परन्तु इसमुख्यतामेंभी कुछपिताके श्राद्धका अधिकार नहीं नष्टहोताहै (और) जो उसने अपनी माताकी सपिण्डतापति के साथ या सासूके साथ अर्थात् अपने पिता या अपनी दादीके साथकरीहो तो फिर नानाके श्राद्धमें कुछसदैवकी मुख्यता नहीं आवश्यकहै-हां-केवल इतनीबात कि जो अपनेसे बनिआवै तो अपना अभ्युदय उस्से निःसंदेह होगा पर न बनिपरनेसे दोष भागी नहीं होसक्ता-यहवार्त्ता तोसर्वथा निश्चितहोगई पर इस्से एक नवीनसंदेह और भी उत्पन्नभया कि सपिण्डताभी कई प्रकारकी होतीहै और किस२ के साथमें होतीहै और न जानै वह किस२ दशामें किस२ के साथ करनी चाहिये या चाहै तिस के साथ जबचाहै तबअनायसनाय करदेवै-इसलिये अब शास्त्रांतरवाक्यभी प्रमाण

देकर लिखनेपरे जिनमें कई२ भांतिकी रीतें देखनेमें आतीहैं-तहां प्रथम तौ यही एक रीति पैठीनसिऋषिने निर्विशेष कहीहै कि-(पितामह्यादिभिःसार्द्धंसपिंडीकरणंस्मृतं। तथाभर्त्रापिभार्यायाःस्वमात्रादिभिरेवच) अर्थात्-माताका सपिंडीकरण पुत्रकी दादी आदि तीनोंके साथ करना कहाहै तथैव जहां कर्मकर्त्ता पति होवै तहां वह भर्त्ता अपनी भार्याका सपिंडीकरण अपनी माता आदि तीनोंके साथकरै यहवात दोनों भांतिसे एकही रही-अब इसवातके देखनेसे कर्त्तामेंभी यह संदेहउठा कि भर्त्ताको किस दशा में कर्त्ता होना चाहिये और पुत्रको किस दशामें इसलिये कहते हैं कि-(अपुत्रायांमृतायांतुपतिःकुर्यात्सपिंडताम्। श्वश्र्वादिभिःसहैवास्याःसपिण्डीकरणंभवेत्) अर्थात्-पुत्रकी विद्यमानतामें भर्त्ताके होतेहुयेभी पुत्रही कर्त्ताहोवै परंतु अपुत्राके मरनेमें भर्त्ताही सपिण्डताकरै और इसका सपिंडीकरणभी सासू आदिके साथहोवै-जैसा ऊपरले वाक्यमेंभी कहचुके हैं-अपुत्राके निदर्शनसे सपुत्राकेभी मरनेमें भर्त्ता कर्त्ता होगा कि जब पुत्र उस स्थानपर उपस्थित नहीं है १-अब दूसरी रीतिसे पतिके साथ सपिंडता कहते हैं जैसा (यमआचार्य) ने कहा है कि-(पत्याचैकेनकर्त्तव्यंसपिंडीकरणं स्त्रियाः। सामृतापिहितेनैक्यंगतामंत्राहुतिव्रतैः) अर्थात्-पतिसे एकल्लेकेही साथ स्त्रीका सपिंडीकरण कर्त्तव्यहै क्योंकि वह मरीहुईभी मंत्राहुति नियमोंसे उसकेही साथ ऐक्यभावको पहुँची २-अब तीसरी रीतिसे नानाके साथ किन्तु उसीके पिताके साथ सपिंडता कहते हैं जैसा (उशनाआचार्य) ने कहाहै कि-(पितुःपितामहेयद्वत्पूर्णेसंवत्सरेसुतैः। मातुर्मातामहेतद्वदेषाकार्यासपिंडता)-अपिच-(पितापितामहेयोज्यःपूर्णेसंवत्सरेसुतैः। मातामातामहेतद्वदित्याहभगवान्शिवः)-अर्थात्-उशनाने यह कहा कि-जैसे मरनेके दिनसे लेकर संवत्सरके पूर्णहोनेमें पुत्रों करके पिताकी सपिंडता पितामहके साथ किन्तु दादा आदि तीनोंके साथ करनी उचितहै उसीके समान माताकी यह सपिंडता मातामहके साथ किन्तु नाना आदि तीनोंके साथ करनी चाहिये-सोई भगवान् शिवजीनेभी कहाहै कि-संवत्सरके पूर्ण होनेपर पुत्रोंकरके पिता तौ पितामह के बीचमें जोड़ना उचित है तैसेही माता मातामहके बीच ३-इत्यादि अनेक भांति की रीतोंके प्रमाणवाक्य मिलनेपरभी परस्पर एकसेएक विरुद्ध देखपड़तीहै कि किस रीतिको ठीकमानें या किस दशामें किस रीतिका वर्त्तावाकरैं इस दृष्टिसे अब इनका विरोध शांत कियाजाताहै कि-जिस पुरुषकी भार्या निपूतीमरै वहपति आपही कर्त्ता होकर निजभार्याकी सपिंडता अपनी माताकेही साथकरै १-और जहां दैवगतिसे यह संयोग होजावै कि पति और पत्नी दोनोंका एकसाथ मरण होजाय तहां उसके पुत्र अपनी माताकी सपिंडता उस पिताकेही साथकरैं सो इस भेदमें पुत्रोंका कुछ नियम नहीं है कि किस प्रकारके विवाहसे उत्पन्न हुयेहों २-परंतु जहां पुत्र तौ (आसुर)

आदि निन्द्य विवाहों से उत्पन्न हों और वह निन्द्य बिवाह करनेवाला पिता उनका चाहे विद्यमानहो चाहे पूर्वकाल में मरचुकाहो अर्थात् वह निन्द्य विवाहिता माता उनकी मरे तौ उन पुत्रो को उसमाताकी सपिण्डता अपने नानाकेही साथ करनी चाहिये और उस पुत्र को भी नानाके साथ सपिण्डता करनीचाहिये जो पुत्रिका सुत अर्थात् पुत्रकेस्थान गोदलियाहुआ बेटीका पुत्र धेवता प्रसिद्धहै ३-और जो (ब्राह्म) आदि शुभ विवाहोंसे उत्पन्नहुये पुत्रहों उनको तीनोंभांतिकी रीतोंमें (विकल्प) से स्वाधीनताहै अर्थात् अपनीमाताकी सपिंडता चाहै अपने पिताके साथ या अपनेनाना केसाथ या अपनी दादीकेसाथकरैं तो कोईरीतिसेभी यद्यपि दोषनहींहै तथापि जैसा उनकेवंशमें नियतसमाचार चलाआताहो उसीके अनुसारकरैं अर्थात् यातौ उनके देशकी परिपाटीसे या ग्रामकी मर्यादासे या ठेठ अपने कुलकी परंपरासे यह नियम चलाआताहो कि सासूकेसिवाय और किसीकेसाथ नहींहोती या नानाआदि जैसी जहांकी व्यवस्थाहो उसके अनुसारकरैं-अथवा-जिसके वंशमें इसवार्त्तामध्ये कोईसा नियम परिनियमित नही था जिसको अपनेवंशका समाचार जो पहलेकभी था वह अब किसीहेतुसे मालूम नहींरहा तो ऐसे कर्मकर्त्ता को सर्वथा अपनी रुचिके ऊपर स्वाधीनताहै कि वह तीनोंरीतिमेंसे कोईएक मनोज्ञसमुझै जैसा सबसेपहले उपोद्घात प्रकरणमें सातवें श्लोकमें यह कहाहै कि (स्वस्यचप्रियमात्मनः) इसकाअर्थ विस्तारभी उसीजगह लिखचुकेहैं देखलो (भेद२) अब माताके सपिंडीआदि कर्मोंमें गोत्रके उच्चारणमध्ये निर्णय करतेहैं कि-भर्त्ताकेगोत्र या पिताकेही गोत्रसे उच्चारण करिके पिण्डदानआदि कर्मकरै क्योंकि दोनोंकाप्रमाण शास्त्रवाक्यों से पायाजाताहै-यथा (स्वगोत्राद्भ्रश्यतेनारीविवाहात्सप्तमेपदे। स्वामिगोत्रेणकर्त्तव्यातस्या.पिण्डोदकक्रिया) अर्थात्-नारीकहिये स्त्रीमात्र विवाहके सातवेंपदसे उपरांत अपने पितागोत्र से च्युत होजावैहै इसहेतुसे उसके पतिके गोत्रसे करनी चाहिये उसकी पिण्डोदक दानक्रिया इत्यादि अनेकवाक्य तो पतिगोत्रका प्रमाण करतेहैं-और पितापक्षमेंभी यहकहाहै कि (पितृगोत्रंसमुत्सृज्यनकुर्याद्भर्तृगोत्रतः। जन्मन्येवविपत्तौचनारीणांपैतृकं कुलम्) अर्थात्-पितृगोत्र को छोड़कर भर्तृगोत्रसे न करै क्योंकि जन्मके मध्ये और बिपत्ति कहिये मरणमेंभी स्त्रियोंका पैतृककुल अंगीकार है किन्तु पिताकेही गोत्र से जन्म और मरणमे भी उनकी सारीक्रिया करवावै इत्यादि अनेकवाक्य पिताके भी गोत्रका प्रमाण देतेहैं तो इसमेंभी वहीसंदेह फिर उत्पन्नभया जैसा सपिंडीके स्थल में हुआथा कि किसका प्रमाण मुख्यसमझाजाय इसलिये अब इनका भी विरोध शांत कियाजाताहै कि-आसुरादि निन्द्य विवाहों वाली स्त्री तथा पुत्रिका करणवाली स्त्री किन्तु जिसकापुत्र अपने नानाकी गोद बैठाहो इनस्त्रियोंकी क्रियातो पितृगोत्र

सेही करनी चाहिये-और (ग्राह्य) विवाहादि शुभ विवाहों वाली स्त्रीकी क्रियामध्ये (विकल्प) अंगीकार है अर्थात् चाहै पितृगोत्र से करो चाहै भर्तृगोत्र से परन्तु इस विकल्प में भी यहबात मुख्य है कि जिसके वंशमें जैसी परंपरा चली आतीहो उसको उसीके अनुसार चलना चाहिये सोई इसमें यहवाक्यभी प्रमाण है कि (ये नास्यपितरोयातायेनयाताःपितामहाः।तेनयायात्सतांमार्गेतेनगच्छन्नदुष्यति)अर्थात् जिसमार्गसे इसमनुष्यके पितरकहिये पिता काका चाचा ताऊआदि गयेहों किन्तु जिसरीतिमें चलतेरहेहों-या-जिसमार्गसे पितामह कहिये दादा परदादा सरदादाआदि वर्त्तावाकरिगयेहों उसीमार्गसे यहआपभी जावे क्योंकि उसमार्गमें चलनेसे इसको दोप नहीं लगताहै पर इसमें इतना लक्ष्य और भी विशेषहै कि (सतांमार्गयायात्) अर्थात् वह उनके वड़ोंका चलायाहुआ मार्ग जो सत्पुरुषोंके वर्त्तावे या प्रमाण योग्यहोवे तो निःसंदेह उसपर चलें अन्यथा जो सत्पुरुषोंके वर्त्तावे या प्रमाण योग्य नहीं होवे जिसमें कोई प्रकारका (किंतु) लगसक्ताहो या कोई प्रकारके दुःखों वा निरादरोंकी संभावना देखपड़तीहो तो उसमार्गका प्रतिरोधकरिके निजप्रभावसे प्रशंस्य वा सुखदायी मार्ग आरोपणकरें या इनवातोंके न होनेपरभी शंसितमार्गमें कठिनता से चलसक्ताहो तो निःसंदेह उसकी कंटकिता वा नतोन्नतभावका परिशोधनकरे जिस्से सौगम्य और सरलताकी प्रवृत्तिसे कठिनताका प्रतिबंध जातारहै (प्रथच) (यत्र शास्त्र तोनव्यवस्थानाप्याचारतस्तत्राप्यात्मनस्तुष्टिरेवेतिवचनादात्मनस्तुष्टिरेवव्यवस्थापिका)अर्थात्-जहां शास्त्रसेभी कुछव्यवस्थानियत न होवे और न आचार कहिये वंशपरंपरासे तहांभी निजआत्मा कहिये मन बुद्धि आदि इनकी प्रीतिके अनुसारकरै किन्तु दोरीतोंमेंसे जैसा अपने मन बुद्धिमें समावै तैसाकरे सो यहआत्मतुष्टिही व्यवस्थाहो जातीहै जैसापहले संस्कार प्रकरणमें १४ के श्लोकसे यहकहाथा कि (गर्भाष्टमेऽष्टमेवाब्दे) अर्थात् जनेऊचाहै गर्भसे आठवें चहाजन्मसे आठवें सालकरै तो भी दोप नहीं (भेद३) इसव्यवस्थामें (प्रेत) शब्दका चर्चा मूलमेंभी २५२ के श्लोक में आया तथा अर्थोंमेंभी वहुधा आचुका और अभीनीचेके वर्णनमें विशेषतर प्रेत का चर्चा आवेगा इसलिये प्रकाशकरना योग्यहै कि प्रेत शब्दके अर्थ तो यद्यपिकई प्रकारसे होतेहैं इसीहेतुसे प्रेतशब्दके ऊपर एकवडा लंबा चौड़ा शास्त्रार्थहै जिसमें नानाप्रकारके वाक्य अन्यशास्त्रोंके भी संग्रहीत और प्रमाणीभूतहैं कि जिनके अर्थांशभी शास्त्रयुक्तिके अनुसार दोदोपक्षमें यथार्थ घटजातेहैं (तद्दा) एक पक्षमें तो (वृद्ध प्रपितामहका)वोध होताहै किन्तु पूर्वकी चौथी पीढीपर सरदादा प्रेतनिश्चितहोजाताहै क्योंकि प्रथम तो उसके अक्षरोंसेही यहअर्थ प्रकटहोताहै कि (प्र-इतः) प्रेतः (किन्तुय (प्रकर्षेण)(इतः)गतः)सःप्रेतः(अर्थात्जो निपटतीनोंपीढ़ीको छोड़कर ऊपरको

चलागया सो प्रेतकहलाया) इसप्रकार अर्थकी सिद्धिहुये पीछे औरभी अनेकवाक्य इसकी दृढ़तामें प्रमाणदेतेहैं यहांतक कि (उदक) (पिंड) दान आदिमें जो २ उलटा पुलटीहुई जातीहै उसकोभी सिद्धकरदेतेहैं पुनि वही सिद्धिमूलश्लोकपरभी यथार्थ घटजातीहै दृष्टांत जैसे २५२ के श्लोकमूलमें कहाहै कि (पितृपात्रेषुप्रेतपात्रंप्रासिंचयेत्) इसका भाव यह निश्चयहुआ कि चार अर्घपात्र जो कल्पित कियेहैं तिनमें पिताकी मुख्यता अनुसार तीन तौ पितृपात्रहुये अर्थात् पिता दादा परदादा इनके सो इन्हीं तीनोंपितृपात्रोंमें वहचौथे सरदादेका जोप्रेतपात्रहै तिसका जलसींचदेवै-इत्यादि अनेक वाक्य इसीपक्षको दृढकरते चलेजातेहैं-सो उनसमस्त वाक्योंका लिखना तौ यहांपर अतिविस्तारकी भीति और वृथातुपकंडनकी दृष्टिसे अनुचितसमुझा-परंतु अव अपने मुख्य प्रयोजनपर दृष्टिकरनेकेलिये यहसमुझौ कि इसतीसरे भेदका सारालेख यहां ताईं व्यर्थ है क्योंकि प्रथम तौ वेही वहुधा वाक्य जो उसपहले पक्षकी दृढताकरतेथे यथार्थसे इसपक्षमेंभी सवके सवघटते और साक्षीदेकर प्रमाणकरतेहैं किन्तु उनमें दोदो अर्थोंकी ध्वनिभरीहै दूसरेयहकारणहै कि सर्वत्र अक्षरोंकेध्वन्यर्थसे प्रयोजनमें अनर्थ नहीं कियाजासक्ता-भला जो अक्षरार्थकी सिद्धिसे वैद्यको गदहा कहनेलगै तौ क्योंकर उचितहोसक्ताहै क्योंकि यद्यपि (गदंरोगंहंतीतिगदहा) अर्थात् गदनामहै रोगका तिसे जो कोई दूरकरै वहगदहा ठीक२है परन्तु यहवातलोकाचारमें प्रत्यक्ष विरुद्धहोनेसे अनर्थरूपहुई जातीहै किंतु जव अपने कल्याणकेहेतुसे वैद्यको वुलानेगये और चलौ गदहाजी यों पुकारकर संवोधन किया तवतत्काल द्वंद्वरूप अनर्थहोने लगैगा क्योंकि यहवात उस्से सही न जायगी फिरकल्याण कहां-इस्से-यह निश्चय जानौ कि (प्रेत) नाम उसीका होताहै जोसवसे पीछे हालमें माराहो सो यह प्रेत संज्ञा उसकी (रुढ़ि) भावसे होतीहै और केवल एकवर्ष पर्यंत मानीजातीहै जवतक सपिंडता नहीं होवै-सोई मार्कंडेयमुनि ने यह कहाहै कि(प्रेतलोकेतुवसतिर्नृणांवर्षप्रकीर्त्तिता। क्षुत्तृष्णेप्रत्यहंतत्रभवेतांभृगुनंदन)अर्थात्-हे भृगुनंदनमनुष्योंकीवसति कहिये निवासमरजानेपीछे एकवर्षताईं प्रेतलोकमें विख्यात है जहां क्षुधा और तृष्णायह दोनों नित्यंप्रति वनीरहतीहैं-उसप्रेतलोकमें जवतक प्रेतरहताहै तव तकभूंख और प्यास इनदोनोंसे अत्यंतदुःखी होताहै और तवतक उसकी नामसंज्ञा भी पितर या पितृ शब्दके विशेषणसे नहीं वोलीजाती किंतु सपिंडी ताईं जो २ श्राद्ध उसकेहोतेहैं उनमें (प्रेत) के उद्देशसेही पिंडदानआदि होताहै-परन्तु सपिंडीके उपरांतसे उसका (प्रेतत्व) दूरहोकर (पितृत्व) प्राप्तहोताहै-यह प्रेतत्व उसका कुछएकदिन में नहीं दूरहोजाता किन्तु ३६० दिनमें सोलहश्राद्धोंके द्वाराक्रम २ से दूरहोतारहता है शेषरहा सहा वरसवेंदिन एकोद्दिष्ट सहित सपिंडी करणहोनेसे सवदूरहोजाता और

पितृभाव उसको मिलताहै इसलिये उनषोडश श्राद्धोंका करना आवश्यकहै-तथाच (यस्यैतानिनदत्तानिप्रेतश्राद्धानिषोडश।प्रेतत्वंचस्थिरंतस्यदत्तैःश्राद्धशतैरपि) अर्थात् जिसके यह सोलह प्रेत श्राद्ध नहीं दियेगये तिसका प्रेतत्वपीछे सैकरों श्राद्धदेनेसेभी वनारहताहै ॥ सोलहश्राद्धोंकी गणनायथा(द्वादशाहेत्रिपक्षेचषण्मासेमासिचाब्दिके। श्राद्धानिषोडशैतानिसंस्मृतानिमनीषिभिः)अर्थात्-एक तौ द्वादशाहका श्राद्धजोएकादशाके भोरहोताहै-दूसरा त्रिपक्षी श्राद्ध जिसे त्रिपखी कहतेहैं-तीसरा षड्मासिक जो छमाहीसे पहले साढ़ेपांचमासपर होताहै-चौथा वार्षिक जो ऊनाब्दिक साढ़े ग्यारह मासपर होताहै चारयह और बारह प्रतिमासकेयह इतने षोड़शश्राद्धनामसे मनीषियों करके कहेहैं(भेद४)यहसपिंडीकरणभी जिसकाचर्चा ऊपरदूरसे चलाआताहै सो जिस कोअपनेपिताकाकरनाहो तौ उसीअवस्थामें करसकताहै किजबदादा परदादा सरदादा तीनों मरचुकेहों क्योंकि पितातौ प्रेतरूप निश्चितहै इसहेतुसे इसके अर्घ्यपात्रकाजल उन्हींतीनों पितरोंके पात्रोंमें सींचाजावेगा तथैव इसकापिंडभी उनतीनोंके पिण्डोंमें मिलायाजावेगा-इस्से यहभी निश्चितहुआ कि जिसका पिता प्रेत होजावै और दादा या परदादा दोमें कोई एकभी जीताबैठाहो तौ सपिण्डीकरण श्राद्धका अधिकारनहींहै-सोई यह वाक्यभी प्रमाण पायागया कि(व्युत्क्रमाच्चप्रमीतानांनैवकार्य्यासपिण्डता) अर्थात् व्युत्क्रमकहिये उलटापुलटीसे मरेहुयोंकी सपिण्डता नहींकरनी चाहिये—और मनुजी ने जो यहकहाहै कि (पितायस्यतुवृत्तस्याज्जीवेच्चापिपितामहः। पितुःसनामसंकीर्त्यकीर्त्तयेत्प्रपितामहम्) अर्थात्-जिसका पितामराहोवे और निश्चय जो पितामह कहिये दादा जीताहो वह कर्त्ता पहले पिताकाहीनाम उच्चारणकरिके फिर प्रपितामह कहिये परदादे को उच्चारण करै-किंतु वीचमें पितामह जो जीताहै तिसके नामको छोड़देवै-परन्तु इसवातमें यह सिद्धांत नहींहै कि पिता और परदादा इन दोहीका उद्देश करै या दोहीपिण्डदेवै या परदादा आदि पूर्वकेतीन अंगीकारकरिके उनकेसाथ पिताका भी सापिंड्यकरदेवै सो नहीं क्योंकि यहवात केवलनामोंके मंत्रप्रयोग जतलानेके निमित्तसे कहीहै—इसलिये अब सपिण्डीकेस्थान यद्वा उस्सेपीछेभी जबकभी पार्वण की आवश्यकताहो उसके नियमों को कहते हैं कि इसरीतिसे उद्धारकरै-तथाहि (ध्रियमाणेतुपितरिपूर्वेषामेवनिर्वपेत्। पितायस्यतुवृत्तःस्याज्जीवेच्चापिपितामहः) अर्थात्-यह सिद्धांतहै कि-पिताकेजीतेहुये उस्सेपहले तीनोंकेनामसे पिण्डदेवै और जिसकापिता मराहोवै और पितामह जीताहोवै सोभी उसजीतेहुये पितामहसेपहले तीनोंके नाम पिण्डदेवै अर्थात् इसदशामें पिताका भिन्नश्राद्ध एकोदिष्टकीरीतिसे पहलेही करालिया जावेगा तिसपीछे उनतीनोंके पिंडएकसाथ दियेजावेंगे क्योंकि सपिण्डता तौ होहीनहीं सक्ती और श्राद्धकाकरना आवश्यकहै,-सोई इसमें विष्णुजीका वाक्यभी प्रमाणहैकि-

(यस्यंपिताप्रेतःस्यात्सपितृपिण्डंनिधायपितामहात्पराभ्यांद्वाभ्यांदद्यात्) अर्थात्-जिसका पिता तौ प्रेतहोजावे और पितामह जीताहो वहकर्त्ता पहले पिताकेनामसे एकहीपिण्ड एकोद्दिष्टके विधानसे जुदासमर्पणकरिके तिसपीछे(पितामहात्पराभ्यांद्वाभ्यां) अर्थात् अपने पिताके पितामहको और उस्से परे दो औरोंकोभी इसहिसाबसे अपनेपरदादा आदि पूर्वके तीनों पितरों को पिण्डदेवें पार्वणके प्रकारसे यह सर्वोपरि सिद्धान्त है परन्तु इससिद्धांतसे यहबात पाईजातीहै कि जिसकिसीकी सपिंडी इसनिर्णयके अनुकूलकरनेसे छोड़ीगईहो उसकी फिर उसके मरनेपर होगी जिसके हेतुसे छोड़ीगईथी इस्से आगे जिसके कुलका आचार जैसाहोताहो वहअपना२जानलो॥(भेद५)अबइनके नामोंके मंत्रप्रयोगभी जिस२अवस्थामें जिसरीतिसे उच्चारणकरने उचितहों सो कहने चाहिये क्योंकि सीधेक्रमके मरणमें तो सर्वत्र (पितृभ्यःपितामहेभ्यःप्रपितामहेभ्यः) यहमंत्र प्रयोग बोलाजाताहै और सर्वत्रपद्धतियोंमेंभी इसीक्रमसे लिखाहोताहै परंतु व्युत्क्रमके मरणवाला किसप्रकारसे उच्चारणकरै इसलिये यहनियम कहतेहैं कि जिसका पिताजीताहो वह (पितुःपितृभ्यःपितामहेभ्यःप्रपितामहेभ्यः) इसयुक्तिसे उच्चारणकरै-और जिसका दादा जीताहो वह (पितामहस्य पितृभ्यःपितामहेभ्यः प्रपितामहेभ्यः) इसप्रकारसे कहै-ऐसेही मातृश्राद्धोंमें माता दादी परदादी आदिके व्युत्क्रम मरण मध्ये यहनामोंका प्रयोग और इस्से पहले चौथे भेदमें वर्णनकरी सपिंडताका भी निर्णय अपनीबुद्धिसे अनुमानकरलेना॥ (भेद६) उसचौथेभेदमें वर्णनकरी सपिंडताके निर्णयमें इतनीबात औरभी विशेषहै कि गोब्राह्मणआदिसे मृत्युपाये पिताकी भी सपिंडता नहीं होतीहै-सोई कात्यायन ऋषिका यहवाक्यभी प्रमाणहै कि(ब्राह्मणादिहतेताते पतितेसंगवर्जिते। व्युत्क्रमाच्चमृतेदेयंयेभ्यएवददात्यसौ)अर्थात्-ब्राह्मणगऊ आदिसे पिताके मारेजाने या पतित कहिये वैधर्म्य किंतु जातिच्युतहो जाने या संग वर्जित कहिये संन्यासीहोजाने अथवा व्युत्क्रमकीमृत्युपाजाने परभी उनको पिंडदेने चाहिये कि जिनको यह आपदियाकरताथा-अर्थात् इसप्रकारकी मृत्युवालोंकी सपिंडता तौ नहीं करनी परइनसे पहलेतीनों पितरोंकेनामसे पार्वण विधिकरदेनी चाहिये-और भी यहविशेषताहै कि जो व्युत्क्रममृत्युके हेतुकरके सपिंडीकर्मसे वर्जितरहे हों तिनका यह सपिंडीकर्म उसदशामें फिर कियाजावेगा किजबकभी व्युत्क्रमसेजी तारहनेवाला मरे इसका चर्चा ऊपरभी चौथे भेदके अन्तमें आचुकाहै परन्तु यहां पर और जो गोब्राह्मणादि हतगिनायेगये उनकी पीछेभी न होगी किंतु उनकीगया श्राद्धहोनासंभवितहै और संग वर्जित जो संन्यासी इनकेसाथमें गिनतीहुआ तिसका चर्चा फिरभी आगे २५४की अधिकोक्तिके चौथेभेदमें आवेगा वहां इसका विधिपूर्वकनिर्णय देखलेना-इस्से आगे जिसके कुलमें जैसाजैसा शिष्टसमाचार चलाआताहो वहअपना२जानलेना २५२।२५३॥

अब इस्से आगेसालभरके मासिकश्राद्धसंयुक्तसोलह श्राद्धोंका निर्णय करतेहैं ॥

अर्वाक्सपिंडीकरणंयस्यसंवत्सराद्भवेत्। तस्याप्यन्नंसोदकुंभंदद्यात्संवत्सरंद्विजे २५४ ॥

पद०–जिसका सपिंडीकरण संवत्सरसे पहले होवे तिसके अर्थभी संवत्सरताईं अन्न और जल सहित कुंभ द्विजको देवै २५४ ॥

भ०भि०–सपिंडीकरण श्राद्ध जिसप्रेतका वर्षभीतर करलियाहो तिसकेलियेभी निजशक्ति अनुसार अन्न और जलकाभरा घट यह रोजरोज या मास२ प्रतिउसके नामके उद्देशसे सालभरतक ब्राह्मणको दिये जावे २५४ ॥

भ०वि०–इसऊपरके कथनसे दोबातें प्रकटहुईं-एक तो यह कि सपिंडीकरणकी अवधि जो याज्ञवल्क्यजीने अनन्तरोक्त मूलश्लोकोंमें नहीं कहीथी सो यहां परदर्शाईहै कि होना,तो सालपूरेमेंही उचितहै परकहीं किसीहेतुसे सालके भीतरभी करलेना उचितहै और दूसरी यहबात कि पूरेसालकी सपिंडी ताईं प्रेतको अन्न और जलकुंभदेना होताहै कदाचित् कोई सालभीतर करलेनेसे आग्रहकरे कि सपिंडी तो होहीगई अब उसबातसे क्याकामहै जो अन्न और जलकुंभका झगड़ा शेषरक्खें सो नहीं किंतु सालभीतर करलेने परभी वहकाम सालपूरे ताईं कियेजावें-वर्षभीतर सपिंडी होजानेके मध्ये (आश्वलायन) ऋषिनेभी यहकहा है कि(अथसपिंडीकरणंसंवत्सरांतेद्वादशाहेवा)अर्थात्-अब सपिंडीकरणका होना संवत्सरके अन्तमें अथवा द्वादशाहके दिनमें-(कात्यायनजी) ने यह कहाहै कि(ततःसंवत्सरेपूर्णेसपिंडीकरणंभवेत्। त्रिपक्षेवा यदावावृद्धिरापद्यतेतदा)अर्थात्-तिसपीछे संवत्सरपूराहोनेपर सपिंडी करणहोवे या जबसंवत्सरके भीतरहो तब या तो त्रिपक्षकहिये तीन पखवाड़े पूरेहोने पर या जब कभी वृद्धिप्राप्तहोवे किंतु पिताके मरे पीछे सपिंडीका समयआनेसे पहलेही किसी के उसघरमें पुत्रजन्महोजावे तो फिर उसीसमय सपिण्डी करदेवे किन्तु वर्ष या त्रिपक्षपूराहोनेकी आवश्यकता नहींहै-इनसभी आचार्योंके कथनसे द्वादशाह १ त्रिपक्ष २ वृद्धिकाल ३ संवत्सरका अन्त ४ यहचार पक्षसपिण्डीके निश्चितहुये तिनमेंसे द्वादशाहमें तो पिताका सपिंडीकरण साग्निक द्विजको करना चाहिये क्योंकि उसको नित्यंप्रति पितृयज्ञकीभी आवश्यकता बनीरहतीहै और सपिंडी बिना पिंड या पितृयज्ञ आदि कर्मोंकी सिद्धिनहीं होतीहै इस्सेवहशीघ्र निपटजावे-सोई यहवाक्यभी प्रमाण है कि (साग्निकस्तुयदाकर्ताप्रेतोवाप्यग्निमान्भवेत्। द्वादशाहेतदाकार्यंसपिंडीकरणं पितुः) अर्थात्-जहां कर्मकाकर्त्तासाग्निकहोवे या प्रेतही अग्निवान् हो तब द्वादशाहमेंही पिताका सपिंडी करणकर देना चाहिये-और जो मनुष्य निरग्निकहो वहचाहै त्रिपक्षमें करे या वृद्धिकालमें करे यासंवत्सरके पूरेहोनेमें करे ॥ (भेद२) यहवार्त्ता तो इसप्रकारसे निश्चय होगई (परन्तु) अब यह एकबड़ाभारी संदेहदेख पड़ताहै कि जब

संवत्सरके भीतर कोई सपिंडी करनाचाहे तब सोलहश्राद्ध कैसेहोंगे किंतु षोडशश्राद्धोंको पहलेदेकर पीछे सपिंडीकरे या सपिंडी पहलेकरलेवे और षोडशश्राद्धोंको अपने२ आगंतासमयों परपीछे करतारहे क्योंकि वे सोलहश्राद्ध तो सालभरमें पूरेहोतेहैं (और) इसवार्त्तामें पूर्वापरके मध्ये दोनों भांतिके वाक्य पायेजातेहैं-यथा-एकपक्षवाला तौ यहवाक्यहै कि(श्राद्धानिषोडशादत्वानतुकुर्यात्सपिंडनम् । श्राद्धानिषोडशापाद्य विदधीतसपिण्डताम्) अर्थात्–सोलह श्राद्धों के दिये विना सपिण्डन श्राद्धको नहीं करैं किन्तु सोलह श्राद्धों को करलिये पीछेही सपिण्डी करे-और दूसरा पक्ष यह कहता है कि (यस्यापिवत्सरादर्वाक्सपिण्डीकरणंभवेत् । मासिकंचोदकुंभंचदेयंतस्यापिवत्सरम्) अर्थात्–जिसकी किसीहेतुसे वर्ष भीतर भी सपिण्डी होवे तिसकाभी मासिक श्राद्ध और जलकुंभआदि जो कुछहोताहे सो वर्षताईं दिये जावे-अब इनदो पक्षोंकी विरोधतामें शांति वर्णन करतेहैं कि-जबसपिण्डी वर्षभीतर करनीपड़े तहां (उत्तमकल्प) तौ यहीहै कि सपिण्डीकोही पहलेकरे और सोलहश्राद्धोंको पीछे अपने२ सूचितकालोंमें करतारहे क्योंकि सूचितकालकी अप्राप्तिमें करनेका अधिकार नहीं होताहे और सपिण्डीका तौ वर्ष भीतरभी कालसंसूचितहे इस्से उसको करनेमें दोष नहीं (और) वहबात जो कहीथी कि सोलहश्राद्धों के किये विना सपिण्डी नहीं करनी तिसका यहभावार्थहे कि उनश्राद्धोंकाकरनाअतिशय आवश्यकहे किन्तु करनेमेंउपेक्षा नहीं करनी चाहिये और आगापीछा तौ यथाक्रमसे संभवितहोगा सोई होसक्ताहे-और दूसरे पक्षमें यहवाक्य जो प्रमाणहे कि सोलहश्राद्धोंको पहले एकसाथ इकट्ठे करिके पीछे संवत्सरके भीतरभी सपिण्डीकरे सो यह (आपत्कल्प) गौणकहलाताहे अर्थात् जिसको कोई ऐसीही आपत्ति देख पड़तीहो कि जानें पीछे मुझ से इसबातका निर्वाहहोगा या नहीं तौ ऐसापुरुष एकसाथसोलह श्राद्धोंकोउद्धारकरिके फिर सपिंडी करे-(परन्तु) इसदशामें औरभी कुछ विशेषता चिंतनीयहै कि जबसपिंडीसे पहलेही (आपत्कल्प) की रीतिसे सोलहश्राद्ध एकसाथ निपटावे तब उनश्राद्धोंको केवल एकोद्दिष्टकेही विधानसेकरे अन्यथा नहीं-और जो (उत्तमकल्प) की रीतिसे सपिंडीको पहलेकरलेवें तौ उस्से उपरांतके बचेहुये षोडशश्राद्धोंमें कर्त्ताको साधारण भावसे भी अपनी शक्ति और श्रद्धाके अनुकूल स्वाधीनताहे तथा अपनेकुलाचार या देशाचार सेभी यहस्वाधीनताहे कि चाहे एकोद्दिष्ट विधिसेकरे चाहे पार्वण विधिकरे परन्तु इस (विकल्प) का सिद्धांत केवल इतनाहे किवर्षकेउपरांत हरसालके वार्षिक श्राद्धोंमें जिसको जेसा अधिकार अपने अपने कुलाचारके अनुसारहो वैसीही स्वाधीनतावर्ष भीतर सपिंडीके उपरांत सोलहश्राद्धोंके शेषमेंभी उचितहे कि चाहे पार्वणकरे चाहे एकोद्दिष्टकरे-सोई इसविशेषता मध्ये यहस्मृतिभी प्रमाणहे कि (सपिंडीकरणादर्वाक्कुर्वन्

श्राद्धानिपोडश।एकोद्दिष्टविधानेनकुर्यात्सर्वाणितानितु॥सपिंडीकरणादूर्ध्वंयदाकुर्यात्त दापुनः।प्रत्यब्दंयोयथाकुर्यात्तथाकुर्यात्सतान्यपि) अर्थात्-सपिंडीकरणसे अर्वाक्कहिये इधर किन्तु भीतर२ पोडश श्राद्धकरताहुआ एकोद्दिष्ट विधानसे उनसबोंको करे (तु) शब्दके अभिप्रायसे निर्विकल्प यहबातसमभनी-ओर जबसपिंडीकरणसे उपरांतकरे तब उनकोभी वहकर्त्ता उसभांतिकरे जो जिसभांति प्रत्यब्दकरे या करनेका अधिकारीहो॥(भेद३)यहपूर्वोक्त प्रेतश्राद्ध सहित सपिंडी करणभी अनेक भाइयोंकेहोने ओर धनबांटकर जुदे२होजाने परभी एकहीको कर्त्तव्यहै किन्तु सबके सबजुदा २ श्राद्धभी उसप्रकारसें न करनेलगें जैसे देवकर्म या दानकर्म ओर तीज त्योहार अपने२ घर सबजुदा करतेहैं-तथाच(नवश्राद्धंसपिंडत्वंश्राद्धान्यपिचपोडश।एकेनैवतुकार्याणिसंविभक्तधनेष्वपि) अर्थात्-नवश्राद्ध जो द्वादशाहसे पहले२ किये जातेहैं ओर सपिंडीश्राद्धओर षोड़शश्राद्धभी यहसब एकही करके कर्त्तव्यहैं धनोंके बँटजानेमेंभी-परन्तु यह बात निर्विकल्प आवश्यकहै कि जोकोई एकभ्राता कर्म करनेका अधिकारीहो उसको थोड़ा२धनसभी मिलकर कामकी अपेक्षा ओर अपनी शक्ति या प्रभुता अनुसारदेवें जिस्से कर्मफलके भागीहों ओर विभागमें पायेहुये पैतृकधनके ऋणभारसे उद्धारहों॥ (भेद४) यह प्रेतश्राद्ध सहित सपिंडी करण पुत्रादिकों करके उनमनुष्योंका अवश्य भाव नियमसे करनाचाहिये जो संन्यासी न होगयेहों किन्तु जो संन्यासीहुयेहों उनका नहीं-तथाचउशनाः (एकोद्दिष्टंनकुर्वीतयतीनांचैवसर्वदा।अहन्येकादशेप्राप्तेपार्वणंतुविधीयते॥सपिंडीकरणंतेषांनकर्त्तव्यंसुतादिभिः।त्रिदंडग्रहणादेवप्रेतत्वंनैवजायते) अर्थात्-यतियोंका सदैव प्रतिवर्ष एकोद्दिष्टभीनकरे ओर पुत्रादिकों करके सपिंडी करणभी न करना चाहिये क्योंकि (त्रिदंडग्रहण) करनेसेही उनकोप्रेतत्वनहीं होताहै परन्तु ग्यारहवाँ दिवसप्राप्त होनेमें उनकाभी पार्वण कियाजाताहै-इसमें भी चित्तकी स्थिरता या विचारकी लघुतासे संदेहहोसक्ताहै कि जबसपिंडीके होने विना पार्वणका निषेधही करते चलेआतेहो फिर संन्यासियोंका क्योंकर पार्वणहोगा जिनकी सपिण्डीका निषेधभी इन्हीं श्लोकोंमें कहाहै-समुझो यहकेवल चित्तकीभ्रमताहै किन्तु जोसपिण्डीका निषेध उनको किया पर इन्हीं श्लोकोंमें यहभी तो कहाहै कि उनको त्रिदंडके लेनेसे प्रेतत्व नहीं लगताहै फिर सपिण्डीकी या प्रेतश्राद्धकी क्या आवश्यकतारही क्योंकि सपिण्डी यद्वा प्रेतश्राद्धभी केवल इसनिमित्तसेहोताहै कि उनका प्रेतत्वछूटजावे ओर अपने पूर्व पितरों में मिलजावें भला यहभी सबठीक है परसंदेहकी प्रबलता अभी जाती नहीं क्योंकि प्रेतत्व तो लगता नहीं इसहेतुसे सपिण्डी ओर प्रेतश्राद्ध इनका नहीं किया परन्तु सपिण्डी विना किसके साथ इसका उच्चारणकरें जो क्रमसे तीनों पिण्डदिये जावें सोकहो-समुझो इसीलिये २५३ की अधिकोक्ति व्यवस्थाके छठे

में कात्यायन ऋषिका वाक्यलिखचुकेहैं सो देखो उसमें यहकहाहै कि (संगवर्जित) अर्थात् जो संन्यासी होगयाहो उसके मरेपर पार्वण श्राद्ध उनके नामसेदेना चाहिये कि जिनतीनोंको यहसंन्यासी आपदेताथा किन्तु संन्यासीके बापदादे परदादे इनतीनों का पार्वणकरै क्योंकि पार्वणमें तीनही पिण्डहोतेहैं इसलिये तीनसे न्यून या अधिक पितरोंका उद्देश नहीं होता अगर तीसरा पिण्ड इसका होता तौ चौथा परदादाका छूटजाता परन्तु इसका तौ सपिण्डी बिनाहोता नहीं इसलिये उन्हीं तीनोंकी तृप्तिद्वारा इसकी परमतृप्तिहोवेगी अन्यथा वहसिद्धांतसे किसीके पिण्डोंका भूंखानहीं किन्तु करनेवालेके वंशका साक्षात् अभ्युदयरूपहै जिसके हेतुसे पूर्वपितरोंका उत्सव आरोपितहुआ-इसवार्ता में त्रिदंडकाचर्चा आयाथा सो संन्यासियोंका त्रिदंडनाम एकप्रकारकादंड विशेष यद्यपि वस्तुरूपसे होता किन्तु चतुरंगुल गो वालोंकी त्रिवलीगूँथ कर कृत्रिम कियाजाता और उसके धारणकरनेवाला त्रिदंडी कहलातावरन उसकापंथभी उसके नामसे भिन्न विख्यातहो जाताहै (परन्तु) यहांपर ठेठकरउसकाचर्चा नहींहै क्योंकि प्रथम तौ उसकृत्रिम दंडके धारणकरनेसेही प्रेतत्वका अभाव संभवितनहीं यद्वा संभवित होने परभी दूसरा यहदोष लगताहै कि उसकेवल त्रिदंडीकोही प्रेतत्व नहीं लगसक्ता किन्तु अन्यसंन्यासियों को प्रेतत्व लगताहोगा क्योंकि इसभेदके लिखेहुये दो श्लोकोंमें त्रिदंडग्रहणका विशेषण आयाहै (इसलिये) यहां पर संन्यासीमात्रकाचर्चा है क्योंकि (त्रिदंड) संन्यासके आश्रममात्रकी संज्ञाहै इसहेतुसे कि उस आश्रमके सामान्यलक्षण यहप्रसिद्धहैं कि मन१ वाणी२ शरीर३ इनतीनोंको अपने आप दंडदेवै सो (त्रिदंडी) अर्थात् यती और इनतीनोंको दंडदेना यहीहै कि असत्संकल्प १ और असद्वाक्य२ और असद्व्यापार३ इनसेहोने नहीदेवै-सोई मनुजीने यहकहाहै कि (वाग्दंडोऽथमनोदंडःकायदंडस्तथैवच।यस्यैतेनिहिताबुद्धौत्रिदंडीतिसउच्यते)अर्थात् वाग्दंड१ मनोदंड२ कायदंड३ जिसकी बुद्धिमें यहतीनोंदंड उपस्थितहों वह (त्रिदंडी) कहाजाताहै-और उसीको प्रेतत्व नहीं लगताहै (अन्यथा) केवल गैरिक वस्त्रोंकोहीपीड़ा देनेसे प्रेतत्व दूरहोना तौ दूरहै वरन वहकहावतभी सद्भावहोजाती है कि ढोलहूसेखालगई क्योंकि यहत्रिदंड कुछऐसा महानहीं विकताहै जो हरकिसी संन्यासीके भण्में लुटताहो ॥ (भेद५) यहां ताईं सारीकिया केवलपुत्रोंद्वारा बतलाई इस्से कहते हैं कि पुत्रोंकी अनुपस्थितिमें सगोत्री आदि जिसकिसीने आवश्यकतासे स्वर्यातकी दाह क्रियाकरीहो उसीको दशदिन ताईंका साराकर्मकरना योग्यहै-तथाच(असगोत्रःसगोत्रोवास्त्रीदद्याद्यदिवापुमान्। प्रथमेहनियोदद्यात्सदशाहंसमापयेत्)अर्थात्-असगोत्री चाहे अपनासगोत्रीही और स्त्री यद्वा पुरुषदाहदेवै परइनमें जो कोई पहले दिवस देवै सोई दशदिनभर सारा कर्म समापनकरै-तिसपीछे जो कुछहोताहो सो उसकेअनु-

परस्थित पुत्रादिक आकरकरैं यद्वा किसीहेतुसे पीछेभी उसीको करनाहो तबसपिंडी ताईं तो आवश्यकहे किन्तु सपिण्डीसे उपरांत जो वार्षिकपार्वणादि कियेजाते हैं उनमें पुत्रोंका अधिकार तो निर्विकल्प नियमसेही निश्चितहे परसगोत्री आदि जिसने दाह कियाहो उसकेलिये विकल्पहे अर्थात् वहअपनी इच्छा और श्रद्धाके अनुसार चाहे करो या मतकरो ॥ (भेद६) इसीप्रकार पूर्वोक्तरीतोंके अनुसार यहसपिण्डी कर्म शूद्रोंकाभी बारहवें दिवसकरना योग्यहे पर मंत्रोंविना-तथाच विष्णुस्मरणम्-एवंसपिण्डीकरणंमंत्रवर्ज्यंशूद्राणांद्वादशेह्नि २५४ ॥

अबनीचेकेश्लोकमें एकोद्दिष्ट श्राद्धकरनेके कालबतलाते हैं ॥

मृतेऽहनितुकर्तव्यंप्रतिमासंतुवत्सरम्। प्रतिसंवत्सरञ्चैवमाद्यमेकादशेऽहनि १५५ ॥

मक्ष०—एकवत्सर-प्रतिमास मरे दिनमें फिर२कर्तव्यहै-और प्रतिसंवत्सरभी फिरफिरकर्त्तव्यहै-आद्यश्राद्ध ग्यारहवें दिनमें २५५ ॥

मभि०—एकसाल मर ताईं प्रतिमास उसके क्षयाह दिनमें एकोद्दिष्ट करना चाहिये पुनिसपिण्डीहुयेपीछे हरसालभी एकोद्दिष्ट उसके मरेदिनमें करनाचाहिये-(आद्य) कहिये सबसे पहला श्राद्ध जिसको लोकमें एकादशाहभी कहते हैं सो ग्यारहवें दिनमें करे २५५ ॥

मधि०—यहां पर सावधानहोकर ध्यान धरना चाहिये कि योगीश्वर याज्ञवल्क्य जीको जो कुछ कहना था सो कहचुके जैसा कि अभिप्रायार्थ में लिखागया है और मुख्य प्रयोजन भी यही अंत में भी सिद्धकिया जावेगा (परंतु) संसारकी प्रकृति अनुसार इसके निर्णय मध्ये जो अगाध सागर सम शास्त्रार्थ है जिसको इसी अधिकोक्ति के दूसरे भेदसे लिखनाप्रारम्भ करेंगे और चौथे भेदमें समाप्ति पावेगा-यद्यपि उसके लिखने की बडीसी आवश्यकता नहीं है क्योंकि (कार्य) कीसाधकता तो मुख्य सिद्धांत केही ध्रुवा से अपेक्षा रखती है-तथापि जिज्ञासु लोगों को यथावत् उसके पूर्वापर का बोध और उस्से न्यूनाधिक या विपरीत दृष्टिका सिद्धांत यद्वा सार्वदेशिक आचार की परिपाटी समझलेनेके हेतुसे लिखनाभी आवश्यक है इसलिये उक्तभेदोंमें जाकरदेखो-परअभी इसमें एक व्यवस्था औरभी कहनी शेषहै जिसका लिखना इसीजगह आवश्यकहे तिसके मध्ये यह अयोक्त स्मृति कुछ विशेष कहतीहै कि-(अपरिज्ञातमृतेऽहन्यमावास्यायांश्रवणादिवसेवा) अर्थात्-मरणका दिवस जिसका नहीं जानाजाय तब उसका श्राद्ध अमावास्यामें करे या उसदिन करे जिसदिन उसके मरनेकी बात सुनीगईहो-सो-इन दोनों में यह सिद्धांत है कि जिसका दिन तो निश्चय नहीं पर मरण का महीनामात्र मालूम हो तिसकातो उसीमासकी अमावसमें करै और जिसका मासभी निश्चित नहीं होवे उसकेलिये अमावस नहीं किंतु जिस

दिन मरनेकी वातसुनीगई तिसदिनकरै-इसके सिवाय जिस किसीका महीना या दिन भी नहीं मालूम और मरने की वातभी सुनिवेमें न आईहो अर्थात् जबसे कभी विदेशगया तवसे कोई भांति की खवर उसकी नहीं पाई और इसी हेतुसे शास्त्रोक्त अवधिवीति जानेपर उसका मरना निश्चय करिकै देहांत क्रिया तो करनीचाही पर किसदिन करै इस अपेक्षा में यह व्यवस्था है कि जिसदिन घरसे निकसा हो तिसदिन करै अथवा वह दिन भी याद नहीं है कि वह किसदिन घरसे गयाथा क्योंकि वारह वर्षोंकी वात हर कोई नहीं यादरखसक्ता है तव ऐसी दशामें उस महीना की अमावस के दिन करै कि जिस महीना में वह घरसेगयाथा सोई इसवार्त्ता में यह स्मृति भी प्रमाणहै कि-(प्रवासदिवसेदेयंतन्मासेन्दुक्षयेपिवा)अर्थात्-प्रवासकहिये परस्थानके दिन श्राद्ध विधिदेयहै यद्वा उसी महीनाकी इन्दुक्षयनाम अमावसके रोज देवै-यह तो मूलवाक्यहै और इसकी व्यवस्था ऊपर स्पष्ट होहीचुकी-परंतु यहांपरशास्त्रोक्त अवधिका चर्चा आयाथा उसका ज्ञानहोनाभी आवश्यकहैकि वह कितनी अवधिहोती है सो वह अवधियद्यपि कई भांति से होतीहै और जहां तहां अनेक शास्त्रोंमें उसका चर्चाआयाकरताहै और विधि उसकी पुत्तलविधानद्वारा प्रसिद्धहै परंतु मुख्य अवधि उसकी वारहवर्षकी होतीहै और वही प्रमाण के योग्य है सोई महादेवजीने पार्वती से महा निर्वाण तंत्रमें यह कहाहै कि-(नृणामुद्देशहीनानांपरिवारान्धनानपि।पालयेद्रक्षयेद्राजायावद्द्वादशवत्सरम् ॥ द्वादशाब्देगतेतेषांदर्भदेहानाविदाहयेत् । त्रिरात्रांते तत्सुताद्यैःप्रेतत्वंपरिमोचयेत् ॥ ततस्तत्परिवारेभ्यःपुत्रादिक्रमतोधनम्। विभज्यनृपतिर्दद्यादन्यथापातकीभवेत् ॥ यद्यागच्छेदनुद्दिष्टोविभागांतेपिकालिके। तस्यैवदाराः पुत्राश्चधनंतस्यैवनान्यथा)अर्थात्- जो कोई प्रवासी लोग ऐसे कहीं विदेशमें रमिजावैं जो मनुष्योंके(उद्देश)कहिये ढूँढ़ने या पतालगानेसे हीनहों किन्तु कोई उनको ढूँढ़ न सक्ताहो उनके परिवारोंको औरधनोंको वारह वर्षोंपर्यंत राजापाले तथा रक्षाकरै इसप्रकार वारहवां वर्षभी पूराहोजानेपर न आवैं तो उनका मरजाना निश्चय करिकै उनके(दर्भदेह) कहिये पुत्तलविधानसे दाहकरवावे और उन्हींके पुत्रादिकोंद्वारा तीनरात्रि पीछे उनका प्रेतत्वभी छुड़वादेवै तिसपीछे उनके परिवारोंमेंसे पुत्रादि जोकोई धनके अधिकारीहों या जोकोई वृथाके अधिकारी वनकर दावसक्तेहों इत्यादि अधिकारियों को दायभागकी रीति से वांटकर राजा आप देवै इससे विपरीत करनेमें वह राजाभी पातकीहोवै-हे कालिके यदिकदाचित् धनका विभागहोजाने पीछेभी वह (अनुद्दिष्ट) कहिये वेपतेवाला आजावे तो उसीकी स्त्रियांहैं उसीके पुत्रभी और यह वँटाहुआ धनभी फेर उसीका है किन्तु इसमें कुछ अन्यथा नहीं-अर्थात् जो स्त्रियां यह कहनेलगें कि इसका तो दाह कर्मभीहोचुका अवहमारे कामकायह नहीं सो यह कहना उनका वृथा

है ऐसेही पुत्र या जिस किसीने विभाग में धन पाया हो वह कहनेलगें कि हमने तो बांट में पाया यह धन अवश्यमाराहीहोचुका सो सब झूंठ है किन्तु ऐसी दशामेंराजा फिर उसधनको लौटारकर धनीको दिलवावै और सारा घरबार उसीको स्त्रियोंसहित सौंपदेवै और जो राजाके विनाही यह सारीबात शुभरीतिसेहोजावें तो राजाकी आवश्यकता नहींहै॥ (भेद २[1]) वह शास्त्रार्थ जिसकी चर्चा अधिकोक्ति के प्रारम्भ में हुई थी सो अब यहांसे लेकर चौथे भेद पर्यन्त भिन्न २ देखो मरण दिवस और दाह दिवस इनदोनों की अपेक्षामें (जातूकर्ण) के मतसे कुछ विशेष उक्ति है यथा (ऊर्ध्वंत्रिपक्षाद्यच्छ्राद्धंमृतेऽहन्येवतद्भवेत्। अधस्तुकारयेद्दाहादाहिताग्नेर्द्विजन्मनः)अर्थात्-जो द्विजाती (आहिताग्नि) कहिये अग्निमान् हो उसका जो २ कर्म मासिकश्राद्ध आदि त्रिपक्षके उपरांतहो सो तो मरने की तिथिमें होवे और तीन पक्षके भीतर जो कुछ प्रेतकर्म आदि होताहै सो दाहके दिनसे गिनतीकरे-इस्से यह सिद्धांत निकला कि जो द्विजाती अनाहिताग्नि किन्तु निरग्निकहो उसका त्रिपक्षसे उपरांत और भीतरभी साराकर्म मरणकेही दिवसमें करै दाहसे कुछ अपेक्षा नहींहै॥ (भेद ३) इसके सिवाय(आद्यमेकादशेहनीत्याशौचोपलक्षणमितिकेचित्)अर्थात्-मूलश्लोकमेंयहबात जो कही है कि सबसे पहला श्राद्ध ग्यारहवें दिवसकरै इसबात को कोई २ आचार्य अपने मतसे या किसी और सिद्धांत से यह कहतेहैं कि यह ग्यारहवेंदिन का श्राद्ध शौच श्राद्धमें गिनती है क्योंकि ग्यारहवेंदिन का श्राद्धभी नव श्राद्धों में गिनती आचुकाहै-तथाच-(प्रथमेह्नितृतीयेह्निपंचमेसप्तमेन्तथा। नवमैकादशेचैवतन्नवश्राद्धमुच्यते) किंतु ये नव श्राद्धभी मलिन षोडशीमें गिनतेहैं और पहले जिन सोलहश्राद्धोंका चर्चा २५३ अधिकोक्तिके तीसरेभेदके अंतमें आयाथा वह उत्तम षोडशी कहलातीहै इस्से यह ग्यारहवेंदिन का श्राद्ध नि.संदेह शौच श्राद्धका उपलक्षण देखपड़ता है-दूसरे यहबात जो शास्त्रोंमें प्रसिद्धहै कि (शुचिनाकर्मकर्त्तव्यं) अर्थात् शुद्धहुये मनुष्य करके कर्म कर्तव्यहै-किन्तु अशुद्धशरीरसे कर्म कोन करना चाहिये-इसलिये योगीश्वर याज्ञवल्क्यने यह कहाहोगा कि (आद्यं) नाम शौचश्राद्ध ग्यारहवें दिनमेंकरे तिसपीछे बारहवें दिनमें उत्तम षोडशी संबंधी पहला श्राद्धहोगा-तथाच(द्वादशाहेत्रिपक्षेचषण्मासेमासिचाब्दिके।श्राद्धानिषोडशैतानिसंस्मृतानिमनीषिभि.)इस्से वह ग्यारहवेंदिनका श्राद्ध शौचश्राद्धका उपलक्षणदेख पड़ताहै-पुनि इसहेतुसे भी निश्चित होता है कि (विष्णुऋषिने) भी ग्यारहवें दिनमें सामान्य रीतिसे चारोंवर्णोंकी मृतकशुद्धि और एकोद्दिष्ट करना कहाहै-परन्तु-इसबातको मिताक्षराकार अपने निर्मलविचारसे अयुक्तबतलातेहैं किन्तु वे कहतेहैं कि इसबातमें अयोक्त (पैठीनसि) ऋषिके वाक्यसे निरोध आताहै-तथाच(एकादशेह्नियच्छ्राद्धंतत्सामान्यमुदाहृतम्।चतुर्णामपि वर्णानांसूत

कंचपृथक्पृथक्)अर्थात्-पैठीनसिने यहकहाहै कि ग्यारहवेंदिनमें जो श्राद्धकियाजाता वह सामान्य भावसे चारों वर्णको उसीदिन कर्त्तव्यहै और सूतक चारों वर्णोंका जुदा२ होताहै-उसमें शूद्रको महीना ताईं सूतकरहताहै ऐसेही अपनी २जाति अनुसार सूतकदूरहोताहै तभी उस जातिवालेका शौचश्राद्धभी होना उचितहै फिर ग्यारहवें दिनके श्राद्धको कैसे शौच श्राद्धकहसकैं-अब इसमें जो यहबात कहना चाहो कि फिर शौच कर्मके होने विना वह (आद्यं) श्राद्ध क्योंकर होसक्ताहै क्योंकि कर्मतो शुचिहोकर करना कहा और शुचिका होना किसी २ को मासपर्यंतमें संभवितहै तो यह विरोधकैसे शांतहो सो कहो-तहां-(शंखऋषि) का यहवाक्य प्रमाणमें अच्छीरीतिसे घटताहै कि(आद्यंश्राद्धमशुद्धोपिकुर्यादेकादशेऽहनि। कर्तुस्तात्कालिकीशुद्धिरशुद्धः पुनरेवसः) अर्थात्-शंखजीने यहकहाहै कि-आद्यश्राद्धको अशुद्धमनुष्यभी ग्यारहवें दिनमें करे क्योंकि इस (आद्य) श्राद्धके करनेमें कर्ता पुरुषको तात्कालिक शुद्धिहो जातीहै किंतु जितनी देर उस (आद्य) श्राद्धको करताहै उतनीदेर तक शुद्धसमझाजाता है उस्से पीछे फिर ज्योंकात्यों अशुद्धहोजाता है उतनेदिनकेलिये कि जितनी अवधि उसके सूतकमध्ये उचितहो-अशुद्ध मनुष्यभी करे इसबातका यहआशयहै कि जो कोई अपने वर्णजाति अनुसार उसदिन ताईं शुद्ध होचुकाहो सो तो शुद्धहुये पीछे करे और जिसका सूतक अभी कुछ दिनको शेपरहाहो वह अशुद्धभीकरे अर्थात् यह आद्यश्राद्ध कोईभी ग्यारहवें दिनकरनेसे न छोड़े क्योंकि यहश्राद्ध किसीभी पोडशी में गिनती नहीं है किंतु उत्तम मध्यम मलिन इनतीनों पोडशियोंसे भिन्न है-इसका (आद्यश्राद्ध) जुदानाम है इसीको लौकिकमें एकादशाहभी कहतेहैं यद्यपि एकादशाह के दिन और भी अनेक श्राद्ध मध्यम पोडशी आदि खीरिपाकसे होते हैं परन्तु यह सबसे भिन्न कियाजाता इसलिये योगीश्वरने ग्यारहवाँ दिवस इसका बतलाया है तथैव संवत्सर मात्रके प्रतिमास या रोज२ और प्रति संवत्सरके जुदेकहेहैं मूलश्लोकमें कुछ असंभव नहीं है (परंतु) विष्णु आचार्यका वाक्य अभी विरुद्धदेख परताहै क्योंकि उन्होंने चारोंवर्णका अशौच दूरहोना और एकोद्दिष्टका करना कहाहै ग्यारहवेंदिनमें तहां यद्यपि सभीवाक्योंका प्रमाण यहां परलिखनेसे विस्तारहुआ जाताहै इसलियेयथाक्रमसे अपने २ स्थलपर लिखेजावेंगे पर उसकाभी यह सिद्धांत है कि चारोंवर्णोंका सूतक यद्यपि विशेपतासे अपनी २ अवधि अनुसारहोता है परन्तु सामान्यनिर्वाहकी मर्यादासे चारोंवर्णोंकी दशाहिकशुद्धिभीहोतीहै इसलिये(विष्णुजी)के दोनोंकथन दशाहिक शुद्धिपर यथार्थभावसे घटतेहैं क्योंकि जब दशवेंदिवसमें शुद्ध क्रियाकरीगई तो वहदिन शरीरकी शुद्धतामें गिनती नहींआसक्ता किन्तु उसदिनतो शुद्धक्रियाके करनेमेंरहे उसकेभोर ग्यारहवेंदिनसे शरीरकी शुचिता समझीगई सोई

ग्यारहवेंदिनमें एकोद्दिष्ट कियागया जो उन्होंने चारोंवर्णोंको करनाकहाहै सो यथार्थ से वही(आद्य)श्राद्धहै जिसको(योगीश्वर)नेभी सामान्यभावसे चारोंवर्णों को करनाकहा पुनिउसीकीदृढ़ता(पैठीनसि)केभीवाक्यसेऊपरहोचुकीहैउसीका(शंखजी)केवाक्यसेप्रमाण ऊपर होचुकाहै अर्थात् याज्ञवल्क्यजीका सिद्धांत किसीकेभी वाक्यसे विरुद्धनहीहोसक्ता यह सर्वथा और सभीस्थलपर निश्चितहै॥(भेद ४)यहांपर मूलमें योगीश्वरने प्रति संवत्सरके लियेभी एकोद्दिष्टका उपदेशकिया और२५०के श्लोकमें एकोद्दिष्टकाविधान जो वतलायाथा उसमें दैवकर्मका निषेधकहाहै सोई स्मृत्यन्तरसेभी प्रमाणपाताहै तद्यथा-(वर्षेवर्षेतुकर्त्तव्यामातापित्रोस्तुसत्क्रिया । अदैवंभोजयेच्छ्राद्धंपिंडमेकंचनिर्वपेत्)-अर्थात्-वर्षवर्षमें सदैव माता और पिताकीभी भिन्न २ (सत्क्रिया)कहियेश्राद्धसंबंधी कियाकरनी योग्यहै तिसमें (अदैव)कहिये देवकर्मसेहीनश्राद्ध भोजनकरवावे और पिंडभी एकहीदेवै-ऐसेही-(यमआचार्य)केभीवाक्यसे प्रमाण मिलता है-तद्यथा-(सपिंडीकरणादूर्ध्वंप्रतिसंवत्सरंसुतः । मातापित्रोःपृथक्कुर्यादेकोद्दिष्टंमृतेहनि) अर्थात् सपिंडी के उपरांत पुत्र प्रतिसंवत्सर मातापिता दोनोंका एकोद्दिष्ट उनकेमरे दिनमें भिन्नकरे-(व्यासजी)के कथनसेभी एकोद्दिष्टकाकरना निश्चित होताहै किन्तु वे वार्षिक तिथिमें पार्वणकेकरनेसे उलटा दोषवतलातेहैं -तद्यथा-(एकोद्दिष्टंपरित्यज्यपार्वणंकुरुतेनरः । अकृतंतद्विजानीयाद्भवेच्चपितृघातकः)-अर्थात्-व्यासजी यहकहते हैं कि जो मनुष्य माता पिताके दिनमें एकोद्दिष्टको छोड़कर पार्वणकरैहै वह उसका कियाहुआभी न करनेमें गिनतीसमझै और जो ऐसाकरै सो पितृघातकभी होवै-और (यमदग्नि) ऋषि साक्षात् पार्वण काही करना वतलातेहैं-तद्यथा-(आपाद्यसपिंडत्वतौरन्तोविधिवत्सुतः । कुर्वीतदर्श वच्छ्राद्धंमातापित्रोःक्षयेहनि) अर्थात्-और सपुत्र माता पिताओं का सपिंडत्व विधिवत् करचुकनेपीछे उनके क्षयाहके दिनमेंभी दर्शवच्छ्राद्ध करै अर्थात् जैसे अमावसमें पार्वण कियाकरते हैं तैसेही प्रतिवर्ष उनके मरेदिनमें भी पार्वणकरे-(शातातप) ऋषिभी यहीवात कहतेहैं तद्यथा(सपिंडीकरणंकृत्वाकुर्यात्पार्वणवत्सदा । प्रतिसंवत्सरंविद्वांश्छागलेयोदितोविधिः)अर्थात्-ज्ञानीपुरुष सपिण्डीकरणकरिके फिर सदा प्रतिसंवत्सर पार्वण विधिसेही कियाकरे क्योंकि यहविधि उन (छागलेय) मुनिकी कही है जो आत्रेयगोत्रमें छगलकी संतान प्रसिद्धहै-इत्यादि वहुधा वाक्य दोनों पक्ष में प्रमाण मिलनेपर दाक्षिणात्यलोग यहव्यवस्था निश्चयकरतेहैं कि औरस पुत्र तथा क्षेत्रजपुत्र यहदोनों तोमाता पिताके क्षयाहमें पार्वणही करें (और) दत्तकआदि शेष दशपुत्रों करके एकोद्दिष्ट करना चाहिये-सो यहवात दाक्षिणात्यलोग (जातूकर्ण) नाम एकऋषि विशेषके मतसे कहतेहैं-तथाच जातूकर्ण-(प्रत्यब्दंपार्वणेनैवविधिनाक्षेत्रजौरसौ।कुर्यातामितरेकुर्युरेकोद्दिष्टंसुतादश)अर्थात्-जातूकर्णमुनिने यहकहाहै कि औरस

और क्षेत्रजदोनोंप्रतिवर्ष पार्वणकीहीविधिसेकरें पर इतरदशपुत्र एकोद्दिष्टकरें-(परन्तु) मिताक्षराकार अपने निर्मल विचारसे इसव्यवस्थाको असत् बतलाते हैं किन्तु वे कहतेहैं कि इस जातूकर्णके वाक्यमें कुछ विशेषकर क्षयाहकाचर्चा नहींहै और (प्रत्यब्द) यह शब्द जो इसवाक्यमें आयाहै तो प्रत्यब्द श्राद्ध क्षयाहसे भिन्न औरभी अनेक होतेहैं कुछ मेरेदिनकेही शिरटीका नहीं है क्योंकि अक्षयतृतीया माघी वैशाखी आदि अनेक श्राद्ध प्रतिवर्ष करनेयोग्य शास्त्रोंमें कहेहैं तिनकेलिये औरस औरक्षेत्रजको करना कहाहोगा-इसहेतुसे क्षयाह संबंधी एकोद्दिष्ट और पार्वणकी यहव्यवस्था नहीं है-और जो (पराशर) स्मृतिका यहवाक्यहै कि(पितुर्गतस्यदेवत्वमौरसस्यत्रिपौरुषं सर्वत्रानेकगोत्राणामेकस्यैवमृतेऽहनि)इस्सेभी यहव्यवस्थानही सच्चीहोसक्तीहै क्योंकि इसकाभी यहअर्थहै कि-देवत्वको पहुँचेहुये पिताका अर्थात् जिसकी सपिंडीहोचुकी हो तिसपिताका औरस पुत्रकरके (सर्वत्रत्रिपौरुष) कहिये पार्वण श्राद्ध कर्त्तव्यहै-यहां (सर्वत्र) कहनेसे यह विशेषता पाईगई कि क्षयाहमेंभी सपिण्डीके पीछे पार्वण करसक्ताहै पर इसविशेषतासे कुछ एकोद्दिष्टका निषेध नहीं पायागया और (अनेक गोत्राणां) अर्थात् अपने पितासे भिन्नगोत्रवाले मातुलादिकोंका (मृतेहनि) कहिये उनकेमरे दिनमें जो करनाचाहे तो (एकस्यैवकुर्यात) किन्तु उसएकहीके नामसे एकोद्दिष्ट मात्र करे-परन्तु (मृतेहनि) इसकथन से केवल मरे दिनमें भिन्नगोत्रियों के पार्वणका निषेध पायागया अन्यत्रइनकेभी पार्वणका निषेध नहीपायागया इसीसंवर्णित पराशरवाक्य में औरसको सपिण्डीपीछे क्षयाहमेंभी पार्वण करनेका अधिकार निश्चितहुआ जैसा अभी ऊपर लिखचुकेहैं उसके साथमें यहभी लिखाहै कि इसविशेषतासे एकोद्दिष्ट का निषेध नहीं पायागया तिसकी दृढ़ताके लिये (पैठीनसि) ऋषिके वाक्य प्रमाणसे औरसको सपिण्डीके उपरांत प्रतिवर्ष अपने पिताके क्षयाहमें एकोद्दिष्टकाभी अधिकारपाया जाताहै-तद्यथा(एकोद्दिष्टंहिकर्त्तव्यमौरसेनमृतेऽहनि।सपिण्डीकरणादूर्ध्वंमातापित्रोर्नपार्वणम्)अर्थात्-पैठीनसिने यहकहाहै कि औरसको माता पिताके मरेदिन में एकोद्दिष्टही कर्त्तव्यहै क्योंकि सपिण्डी करलेनेके उपरांत माता पिताके क्षयाहमें पार्वण नहीं होता किन्तु अमावसआदि अन्यपर्वोंमें पार्वणकरे फिर इसीव्यवस्थाको उदीच्यलोग पहाड़ी आदि इसप्रकार निश्चयकरतेहैं कि(अमावास्यांक्षयोयस्यप्रेतपक्षेऽथवापुनः।पार्वणंतत्रकर्त्तव्यंनैकोद्दिष्टंकदाचन)अर्थात्-अमावास्याके दिवसजिसके प्राणछूटेहों अथवा प्रेतपक्षमें छूटेहों तिसके मरेदिनमें पार्वणकर्त्तव्य है कदाचनभी उसके मरेदिनमें एकोद्दिष्टनकरे-इसवाक्यसे सिद्धांत यह पायागया कि अमावास्या और प्रेतपक्षके सिवाय और किसी दिनमराहो उसके मरेदिनमें प्रतिवर्ष एकोद्दिष्टही करे किंतु उसदिन पार्वणका अधिकार नहीं और पार्वण अन्य पर्वोंमें निःसंदेहकरे-

वरनवे उदीच्य लोग वर्तावाभी इसीप्रकारकरते हैं (परन्तु) मिताक्षराकार यहकहतेहैं कि वृद्धलोग जो अनेकशास्त्रोंके अधिकारीहैं वे इसवचनका भावार्थ मात्र अंगीकार करतेहैं किंतु इसके सिद्धांतका आदर नहीं करते इसहेतुसे कि प्रथम तो इसवचन का उत्पत्तिमूल किसीको निश्चित नहीं कि यहकौनसी स्मृतिमेंसे लियागयादूसरे यह बात कि जो अनेकवाक्यप्रसिद्ध मुनीश्वरोंके कहेहुये मरेदिनमें पार्वण करनेकाप्रमाण देते हैं उनका प्रतिपक्षी इसका सिद्धांतहुआ जाता है क्योंकि यहवाक्यकेवल अमावस और प्रेतपक्षके मरेदिनमें पार्वणकरनेको कहताहै सो तो प्रमाणके योग्यहै पर इसका सिद्धांत जो औरोंको निषेधबतलाताहै तिससे उनप्रसिद्ध मुनीश्वरोंके वाक्य झूंठेहुये जातेहैं इसलिये इसवचनका केवल अक्षरार्थमात्रस्वीकार होसक्ताहै-क्योंकि क्षयाहके निर्णयमध्ये माता पिता पुत्र इनतीनोंकी लक्षणासहित पार्वण और एकोद्दिष्ट दोनोंका अधिकार सिद्धहोताहै सोई दोनोंकी सिद्धि विषयिक अनेकवाक्यपहले भी इसी चौथेभेदके प्रारम्भमें लिखचुके हैं और यहांभी फिर लिखतेहैं-तथाच (सपिण्डीकरणादूर्ध्वंप्रतिसंवत्सरंसुतैः। मातापित्रोःपृथक्कार्यमेकोद्दिष्टंमृतेऽहनि) इस्से तो एकोद्दिष्टका अधिकार निश्चित है और पार्वणका अधिकार इसअग्रोक्तसे निश्चितहै-यथा(आपाद्यसहपिण्डत्वमौरसोविधिवत्सुतः। कुर्वीतदर्शवच्छ्राद्धंमातापित्रोः क्षयेऽहनि)और कोई कोई जो (सुमंतु) के कथनानुसार यहकहते हैं कि माता पिताके क्षयाहमें(साग्निक) द्विजाती पार्वणकरै और (निरग्निक) द्विजाती एकोद्दिष्टकरै-तद्यथासुमंतुः(वर्षेवर्षेसुतःकुर्यात्पार्वणंयोग्निमान्द्विजः।पित्रोरनग्निमान्धीरएकोद्दिष्टंमृतेऽहनि) अर्थ इसका ऊपर होहीचुका-(परन्तु)मिताक्षराकारयहकहतेहैंकियह वाक्यभी उपेक्षा करने योग्यहै क्योंकि एक तो अच्छे सत्समाचारमें प्रतिपक्षी होताहै दूसरे यहस्मृति भी प्रमाणहै कि (बह्वग्नयस्तुयेविप्रायेचैकाग्नयएवच। तेषांसपिंडनादूर्ध्वमेकोद्दिष्टंन पार्वणम्)अर्थात्-जो बहुत अग्नियोंवाले विप्रहैं औरजो एकअग्निवाले विप्रहैं उनके भी सपिंडनके उपरांत एकोद्दिष्ट होताहै पार्वण नहीं (एवच)इसके अभिप्रायसे विप्रों के सिवायअन्य साधारण द्विजातीभी संग्रहीतहैं किन्तु केवल विप्रही नहीं इसप्रकार के-फिर उस (सुमंतु) वचनकी विशेषता क्योंकर प्रमाण मानीजाय-इसलिये अबइस चौथेभेद मात्रके समस्त वाक्योंका पूर्वापर आलोचन किये पीछे विरोध शांतिपूर्वक निर्णयरूप (सिद्धांत) लिखतेहैं कि इसप्रकारसे बर्तावा करना चाहिये-तहां-अमावस के मरेदिनमें और प्रेतपक्ष जो करणागत प्रसिद्धहै उसमें जो कोई मराहो तिसके मरे दिनमें पार्वण कर्तव्यहै-क्योंकि ऊपर उदीच्यलोगोंके प्रमाणदियेहुये वचनके सिद्धांत का निरादर करके उसका अक्षरार्थमात्र स्वीकारकरचुके हैं १ ॥ और संन्यासियोंका भी उनके मरेदिममें पुत्रोंकरके पार्वण कर्तव्यहै एकोद्दिष्ट नहीं चाहै वे किसी पक्ष या

किसी दिनमें मरेहों इसमें कुछभेद नहीं-क्योंकि (प्रचेतस) स्मृतिका यहवचन इसमें प्रमाणहै कि(एकोद्दिष्टंयतेर्नास्तित्रिदंडग्रहणादिहासपिण्डीकरणाभावात्पार्वणंतस्यस र्वदा)अर्थात्-(इह) संसारमें-(त्रिदंड) लेनेके हेतुसे (यती) का एकोद्दिष्ट नहीं होता किन्तु उसका सपिण्डी करणके अभावसे सर्वदा कहिये प्रतिवर्षभी पार्वण कर्तव्यहै-उसरीति से कि जैसा चर्चा २५३ की अधिकोक्तिके छठे भेदमें कात्यायन ऋषिके वाक्य अनुसार आचुकाहै पुनि वहीचर्चा २५४की अधिकोक्तिके पांचवेंभेदमें आयाहै जहां चाहो तहां देखलो २ इसके सिवाय और सर्वत्रसाधारणभावसे चाहे साग्निकहो चाहे निरग्निकहो किन्तु सभी द्विजातीमात्र को पिता माताके क्षयाह दिनमें प्रतिसंवत्सर के लियेभी (विकल्प) अंगीकारहै अर्थात् चाहे पार्वण करो चाहे एकोद्दिष्टकरो दोष किसी मेंभी नहीं है और फलकी सिद्धिदोनोंमें संभावितहै-तथापि इसविकल्पमें अपने२वंश के आचारपर दृष्टिकरनी उचितहै किन्तु जिसके वंशमें जैसाहोताहो सो समझलो३ ये तीन प्रकारके सिद्धांत इसमें अनिर्वचनीय निश्चितहुये-(शंका) क्योंजी अनिर्वचनीय कैसेहुये इसीजगह ऊपर यहकहतेहो कि दोष किसीमेंभी नहींहै और इसीचौथे भेदके प्रारंभस्थलमें (व्यासजी) का यहवाक्य जो लिखचुकेहो कि(एकोद्दिष्टंपरित्यज्य पार्वणंकुरुतेनरः।अकृतंतद्विजानीयाद्भवेच्चपितृघातकः)इसके साथमें यहभी लिखचुके हो कि व्यासजी पार्वणके करनेमें उलटादोष बतलातेहैं सो प्रत्यक्ष इसवाक्यसे पार्वणकरनेमें (पितृघातकत्व) और (अकृत) शब्दसे फलाभाव दोदोषहैं फिर कैसे दोष नहीं और क्योंकर अनिर्वचनीय तीनों सिद्धांतहुये सो कहो (समाधान) सुनो व्यासजीके वाक्यसे जो भावार्थ तुमने समझा या पूर्वस्थलमें लिखागया तिसका आशयबड़ी दूरहै किन्तु व्यासजीने यहकहाहै किजो कोई एकोद्दिष्टको इसप्रकारसे परित्यागकिये पीछे पार्वण करताहै कि आजहमारे पिताका वार्षिक क्षयाहका दिनआयाहै जिसमें में पार्वण कियाकरताहूं पर अबकीबार पार्वण करनेकी या उसकी लागति लगानेकी मेरी सामर्थ्य नहीं यद्यपि एकोद्दिष्ट करसक्ताहूं क्योंकिउसमें थोड़ीलागति और थोड़ा कामहै परन्तु मैंने कभी एकोद्दिष्ट नहीं किया किन्तुमेरा नियमहै कि करों तो पार्वण करों नहीं तोनकरों इस्से अबकीबार जानेदो अगलेसाल अच्छी लागतिसे पार्वण करोंगा-बसऐसे पुरुषने जबएकसाल इसआग्रहसे एकोद्दिष्टका परित्याग किया और अगले सालबड़े धडिल्लेसेभी पार्वण किया तब उसका वहपार्वण न करनेकी गिनती में आया और पहले सालमें उसको निपट न करनेसे (पितृघातकत्व) दोष निःसंदेह लगा-इसीलिये योगीश्वरने समयकी सामर्थ्यका अनुमान करिके क्षयाहमें केवल एकोद्दिष्टका आदेश किया है जिस्से किसीको (पितृघातक) न होनापरै किन्तु योगीश्वरने सभीबातोंमें सीधी२ निर्वाह विधिकहीहै सोई व्यासजीका आशय उसवाक्यसे पाया

गया कि उसप्रकारके पार्वणसे एकोद्दिष्ट काही करनाश्रेष्ठहै और जिस्से वनिआवे सो पार्वणकरो यहअधिक अच्छीवातहै-अन्यथा कुछ व्यासजी अज्ञानी नहींथे जो एक अतिउत्तम कर्मके करनेको उलटा दोष वतलाते जोअनेक ऋषियोंके द्वारा घंटा घोषवत् प्रसिद्धहोचुकी या कुछपहले ऋषीश्वरोंसे व्यासजीका वैरभावनहींथा जो उनके सिद्धवाक्यों पर वज्रसा दे मारते-परन्तु ऋषीश्वरोंके स्वल्पोक्तिरूप और अनंतार्थहेतुगर्भित वाक्योंका आशय समुझिपाना वज्रहै किंतु देखनेमें वडेसीधे २ अन्वयवान् प्रतीत होतेहैं पर विचारनेमें भूलभुलैयाका अजायवघर होजातेहैं इस्से शंकाकरने का अवसर नहीं है॥ (भेद ५) दृष्टिकरो उर्ध्वोक्त चौथे भेदका सारा शास्त्रार्थ जो वड़े २ चारपृष्ठोंपर आया सोमूलमें केवल (प्रतिसंवत्सरञ्चैव) इतने पदके ऊपर लिखागया ऐसेही इस्से पहले तीसरेभेदका शास्त्रार्थ जो डोपौनेदो पृष्ठोंपरआया सोमूलमें केवल (आद्यमेकादशेऽहनि) इसपदके ऊपरलिखाहै-पुनि उस्से पहले दूसरे भेदका शास्त्रार्थ मूलमें (मृतेऽहनितुकर्तव्यं) इसपदके मध्येलिखाहै-पुनि उस्सेभी सवसे पहलेभेदमें अधिकोक्तिके प्रारंभसे लेकर दोडेढ़पृष्ठोंमें जोआया सोमूलमें (मृतेहनितुकर्तव्यं) (प्रतिमासंतुवत्सरं) इनदोनों पदोंपर मरेहुयेका दिन और महीनाआदिके निर्णय मध्ये लिखागया-इसलिये उनपूर्व संवर्णित चारोंभेदका सिद्धांत यहांसे लेकरसातवें भेदतक स्पष्टकरतेहैं॥ (भेद ६) (सिद्धांत) पहलेभी इसवातका चर्चाहोचुकाहै कि इतनाविस्तार करनेकी कुछ वड़ीसी आवश्यकता नहींथी क्योंकि योगीश्वरने जोमुख्य सिद्धांतका ध्रुवाथा सोमूलमें कहदिया और इसनिर्णयसेभी उसीकी सिद्धिकरीगई-हां-इतनीवात अधिक निकसी कि माता पिताके क्षयाहमें पार्वणकाभी अधिकारहै किंतु केवल एकोद्दिष्टकाही नहीं पर योगीश्वरने एकही इसलिये वतलाया कि इसमें थोड़ा आयास और थोड़ा व्यय अपेक्षितहै (तथैव) समयकी शक्ति और श्रद्धाके अनुरूप योगीश्वरने सारीवातों में निर्वाहविधि आदेशकरी है कि जिसका भार उठाने में साधारणों को अरुचि नहींहोवे-तथापि-इस निर्णयरूप शास्त्रार्थका विस्तार लिखनेसे वड़े २ अद्भुत लाभसमुझे गयेहैं कि एक तौ शक्ति और श्रद्धा सर्वत्र सवजनोंकी एकसी नहीं होती किंतु न जानें कोई किसवातके करने या समुझने मात्रकी अपेक्षारखताहो और मर्यादापरिपाटी के आलोकनकरने परभी उसको संदेहशेषरहजावे तौइतने वड़े ग्रंथका विचारनाभी वृथाहुआ-दूसरे यहवात कि वहुधाशुभ आचारके वर्णाव करनेवाले मनुष्य तो थोड़े मिलते पर वाद विवाद की कचरियां वेंचनेवाले संप्रतिभी वहुतेरे धूर्त्तखड़ेहोजाते उनका मुख भंजन करने को वाणगुल्ला वहुतेरे इसमें मौजूद हैं अर्थात् वहुधा अपक्व मनुष्यों की यह प्रकृतिहुआ करतीहै कि जव कोई सज्जन किसी वार्त्ता के निर्णय मध्ये वह सिद्धांत उच्चारण करताहै कि जो उचित है और सिद्धरूप

निर्णय कियाहुआ उपस्थितहै ऐसे समयपर वे धूर्त्तलोग जो शास्त्रमें तो निपुणनहीं पर वृथा कुतर्कवादमें अभ्यासरखतेहैं उन्होंने एक ऐसा संक्षिप्त ग्रंथोंका वाक्य उसमें पत्थरसा उछालकरमारा जिस्से प्रत्यक्षमें उसमुख्य सिद्धांतपर न्यूनताका लांछनसा प्रतीतहोनेलगा यथार्थ से वह लांछन उसमें लगने योग्य नहींहै क्योंकि उसपत्थराकार वाक्यमेंभी अर्थांश कुछ और है और सिद्धांत कुछ और है परंतु अब तत्काल उस लांछन की शांतिकरनेको दशपांच अन्यशास्त्रोंके वाक्यभी उपस्थित होनेचाहिये फिर ऐसाहरकोई नहींहोता जो दशपांचग्रंथोंके अनेकवाक्योंको प्रत्येक छोटीमोटीवातपर उपस्थितकिये फिरताहो जिस्से तत्कालउसदुर्जनका मुख भंजनकियाजावे-हां-जिसको कोईपरिहार उसकायाद आया उसनेतो यथोचित प्रतिपादनकिया और धूर्त्तकोपरास्त किया नहीं तो वृथाही तत्कालसच्चे को झूंठाहोनापड़ा (और) यद्यपि बहुधा सज्जन प्राचीन ग्रथोंका संग्रह रखते हैं परंतु वहसंग्रह भी तत्काल काम नहीं आता क्योंकि उनमें बड़े २ क्लिष्टस्थल संस्कृतमें जिनके एकएकमूल वाक्यपर दो चार पत्रोंकाटीका और ग्रंथांतर अनेक वाक्योंकी प्रमाण योजना जिसमें जितने वाक्य हैं उतनेही मत भिन्न २ प्रतीत होतेहैं यथार्थ से सिद्धांत सबका एक है पर ऐसेग्रंथ अतिकाल पीछे देखने में पढेहुये भी विस्मृतहोजाते हैं फिर विनापढ़ा केवल विचारसे उत्तर क्योंकर तत्काल देसक्ताहै-इसहेतुसे निर्णय विस्तारका लिखनाही सर्वथा उचित समझागया जिसमें इसएकही ग्रंथके पढ़ने से अनेक ऋषीश्वरों का संमत वा अनेक शास्त्रोंका अभ्यन्तर विरोध शांतिके सिद्धांत सहित जानाजाय और तत्काल सारीवातों के मनोरथ पूरेहों-तीसरे यह कैसा उत्तमलाभ है कि जो कोई सोत्साह विद्याके अनुरागी होकर अन्यस्मृतियोंको उल्था द्वारा प्रकाश करनाचाहैं या प्रथमारभ से भापानुवाद की रीति सीखाचाहैं उनकेलिये यह एक परम निदर्शन विद्यमान है कि दीपकसे दीपक जोड़ैं-चौथालाभ उनसेभी अपेक्षा रखताहै कि जिनको इसके आचारसे तो कुछ सम्बन्ध नहीं पर शास्त्रोंके विचारमें निपुणता और बुद्धिकी सुगमता इच्छा करते हों उनको इसप्रकारके स्थल इसके पारसकी पथरी होजायँगे किन्तु यथार्थ रीतिसे जो इसकोपढ़ि समुझिलेवेंगे उनको विनागुरुकेभी अन्यविषयोंकेनिर्णयमध्ये बुद्धिप्रवेश करना सुगम होजावेगा-इस्से निज प्रयोजनकी संपत्तिपरभी इन स्थलोंका छोड़ना उचित नहीं समुझा-तिसपरभी कदाचित् कोई यह संदेह कुतर्क वा सुतर्कसेहीकरना चाहै कि ऐसीझगड़ालू वातोंसे क्या अपेक्षाथी जो ऋषीश्वरलोग सीधी २ एकवात या एकहीमार्ग नहीं बोले किंतु अपनी २ ओरको खींचाखांची होतीरही तिसका क्या हेतुहै तहां-सद्भाव यह सिद्धांतहै कि वे ऋषीश्वरभी कुछ एकहीकाल याएकही भूमिभागमें नहीं हुये अर्थात् अपने२ देशविभागोंमें अवतरे पुनि उसीमंडलके विशेप धर्माचारोंको अपने

ज्ञान और उसकालके अनुरूप तथा उसमंडलके मनुष्योंकी प्रकृति और प्रसन्नता और कल्याण कुशलक्षेमके अनुसार उसीसमयके कालात्माजगदीशकी इच्छा और प्रेरणासे परिकल्पनकिया इसप्रकारसे अनेक देशोंमें अनेकलक्षणके आचारहुये-तिस पीछे उनसवोंका संघात इसहेतुसे होतागया कि संसारी मनुष्यभी जहां उत्पन्नहोतेहैं सवके सब उसीमंडलमें नहीं बनेरहते किंतु अन्यदेशीने जाकर अन्यदेशी ऋषियोंसे विद्यापढ़ी उन्होंके आचारसीखे पुनि वहांसे आकरयातो अपने या किसी दूसरेदेश के निवासीहुये वहां अपने शास्त्रके सीखेधर्मोंका आचार प्रचारितकिया और आचार्य कहलाये तथा जो वहांकेभी कुछ आचार जिनमें कुछ भिन्नरीतेंथीं अंगीकारकिये इस्से आगे जो लोग इनके आश्रयभूतहुये या अन्यदेशी आचार्योंके अनुगतहुये उन्होंने परस्पर जहां तहांके निवासोंसे कुछ आचार अपने वहां सँचारे और वहांके जो उत्तम समझे कुछ२ अंगीकारकिये इसीप्रकार कालांतरोंमें क्रम२ से अनेकवाक्य वा अनेकरीतें प्रतीत होनेलगीं और यथार्थमें सभीश्रेष्ठ और सभीजगदीशकी इच्छा के आश्रयभूत परंतु मनुष्योंके निवासभेद वा स्थानांतर और उन्हींकी प्रकृति और समझ और आत्मप्रियता परोपेक्षा आदि परस्पर विरोध दृष्टिसे वाद विवाद को देखकर किसीमहात्मा परोपकारीने कोई ऐसाशास्त्रनिर्माणकिया जिसमें सबकेआचार और सबकीरीतें और सबके वाक्योंका प्रमाण देकर सबकी विरोध शांति और सब की एकता सबके निर्वाह अपनी इच्छा और निज२ देशाचारोंके अनुसार संग्रहकिये जिस्से कोईभी किसीसे(विरुद्ध) नहींमाने किंतु अपने २ योग्य अपना विचार करिके समझले जब यह ढंगचला और इसमें कुछ कल्याणदृष्टिआया तब उसीप्रकार के अनेक शास्त्र उसकी देखादेखी निर्माण होनेलगे परंतु जो२ हुये सो केवल संस्कृतमें जिनको पहले समयके लोग तो संस्कृत बहुधा पढ़तेथे और खूब समझतेथे पीछे२ संस्कृत की न्यूनतामें उनका लोपसा होनेलगा इसलिये समयके राजा आदि-प्रता-पियोंने भाषाके प्रचारपर दृष्टिकरी जिस्से कल्याणमें हानि नहीं होनेपावे ॥ (भेद७)

ऊपरकी व्यवस्था जो देशभेदोंसे बतलाई इसमें कोई यह कहे कि उनदेशों का क्या परिमाण या अवधिहै-सो कुछ परिनियमितनहीं क्योंकि देशोंकेअनुसार जो व्यवहार या मर्यादें और बोली आदि बदलतेहैं उनकी अत्यन्त भिन्नता तो द्वीपांतरसेही हो-तीहै और यह व्यवस्था केवल एक जंबूद्वीपके भीतरभी विशेषकर भरतखण्ड संबंधी आर्यावर्त्त से अपेक्षा रखती है तिसमेंभी चातुर्वर्ण्यादि लोगोंपर मुख्यता है-तथापि-एकआर्यावर्त्तकेभी अनेकदेशविभाग और उनमें निज२ मंडलके कुछभिन्न२ आचार और बोली आदि भूम्यन्तर और जात्यन्तरसे प्रत्यक्षहैं यद्यपि जात्यन्तर तो सर्वथा अकथनीयहै परंतु भूम्यन्तरकी साधारणभावसे यहव्यवस्थाहै कि भूम्यन्तर एकपग

धरतीकोभी कहसक्तेहैं अपनेअपेक्षित स्थानसेचाहे तिसओरको मापलो पर इस्सेकुछ प्रयोजनकी सिद्धिनहीं यहकेवल बीजांकुरहे किंतु अपनेचाहे तिस अपेक्षित स्थानसे बारहपग परभी भूम्यंतर होताहे ऐसेही बारहदंडका भूम्यंतर फिर बारहक्षेत्रका भूम्यं-तर होताहे परन्तु बारहखेतके भूम्यंतर पर जो मनुष्य बसतेहोंगे उनमें और अपनेमें कुछ अंतरबोली आदिका निःसंदेहहोगा किन्तु वहअंतर ऐसा नहींहे कि जिसको हर कोई पहिंचानसके क्योंकि एकग्राम मात्रका साराचालचलन बोली वाणी एकसीहोती हे तथापि जोग्राम बड़ा नगरहोगा तो निःसंदेह उसके मुहल्लोंके अनुसार कुछअंतरहो जायगा ऐसेही बारह छोटेग्राम या बारह कोशके भूम्यंतरके जो निवासीहोंगे उनकी बोली आदिमें इतना अंतर होजायगा कि जिसको अनारी मनुष्यभी समझलेगा त-थापि वहअंतर ऐसा नहींहे कि जिस्से वहांके मनुष्योंमें कुछभिन्नता समझीजाय परंतु जबबारह योजनका अंतर होजायगा तब अनेक बातों में इतना बड़ाभेदहोजायगा कि उनमनुष्योंमें अपनेसे कुछ२भिन्नता प्रतीत होजायगी इसके उपरान्त मनुष्यकी बारहकोसी मंजिलसे बारहदिनकी राहका भूम्यंतर जबहोजायगा तब औरही कुछ बोली औरही खानपान चाल व्यवहार आदिसारी बातें ऐसीनिकलेंगी जो एकदूसरे की कठिनतासे पहिंचानसकैगा और एकदूसरेकी प्रवृत्तिको मनोज्ञनहीं जानकर शीघ्र अंगीकारभी न करेगा और एक दूसरेसे चौकन्ना होजायगा-परन्तु-मिलनेके समयसे पल घड़ी मुहूर्त्त प्रहरआदि बारह२ काल व्यतीत होतेहोते क्रम२से बारहदिनमें पर-स्पर जानपहिंचानसी होनेलगेगी फिर बारहसप्ताह,१२ पखवाड़े आदि क्रम२से,बढ़-ती२ वह पहिंचान १२ मासमें परस्पर प्रीतिभाव होजायगा और एक दूसरेकी प्रवृत्तिको थोड़ा बहुत अंगीकार करने लगताहे पुनि बारहवर्ष परस्पर सहवास पूर्वकरहते२उन में केवल जाति आदिका अंतरशेष रहजाताहे बहुधा प्रवृत्ति उनकी२ एकसी होजा-तीहे ऐसेही बारहयुग उपरांत जो उनकी संतानें होजातीहैं वे परस्पर ऐक्यभाव जा-नाकरतेहैं-और जाति आदिका अंतर जो शेषरह जाता कहा तिसमें एकबड़ी लंबी चौड़ी व्यवस्था जो निपट लिखनेसे छोड़ीहे किंतु उसमेंभी बड़े२भेदहैं कि जो उनजा-तोंमें कुछ थोड़ाभेद देशमात्रकाही हुआ अन्यथा वर्णमात्र दोनोंका एकहो तो फिर एकताभी यहांतकहोजातीहे कि परस्पर खानपान संबंधआदिभी होजानेलगते इत्या-दि नाना भेदहैं कुछ एकहीनियम नहींहे सो सब लिखनेसे छोड़ेगये-बस इसीप्रकारके वर्त्तावेको मनुष्योंका प्रकृति व्यवहार कहतेहैं और इन्हींकारणोंसे व्यवहारोंमें नाना लक्षणसे भिन्न२और मिलेभी प्रतीतहोनेलगते हैं इस्से कोई भांति संदेह करनेका स्थल नहींहे कि ऋषीश्वरोंने यह क्याकिया क्योंकि इस,(प्रकृतिव्यवहार) में कुछ ऋषी-श्वरोंकोभी स्वाधीनता नहींहे किंतु यह प्रकृति व्यवहार यहां आचार यद्यपि मनुष्यों

जो कोई उन्हींपूर्वोक्त चीजोंसे वर्षा त्रयोदशी कहिये वर्षाऋतुमें,भाद्रपद कृष्णा त्रयोदशीमें विशेषकर मघानक्षत्रसेभी संयुक्त उसीत्रयोदशीमें श्राद्ध करताहै,वह अधिक तर आनंत्यफल भोगताहै २६० ॥ भाद्र०कृष्ण पितृपक्षका नामहै ॥

भाषि०सहृदयोः—(वार्ध्रीणस) उसेकहतेहैं,जोवहुत बडावकरा श्वेतवर्णका खस्सीकिसी देश विशेषका,होताहै उसका नाम (त्रिपिवन्) या (त्रिपिव)भी कहतेहैं-तद्यथा(त्रिपिवन्त्विंद्रियक्षीणंश्वेतंवृद्धमजापतिम्।वार्ध्रीणसंतुतंप्राहुर्याज्ञिकाःश्राद्धकर्माणि-इतियाज्ञिक प्रसिद्धःत्रिपिवःपिवतःकर्णौजिह्वाचयस्यजलंस्पृशंतिसत्रिभिःपिवतीतित्रिपिवः)अर्थात् इसलिये उसको त्रिपिव कहतेहैं कि जलपीतेहुये उसके दोनों कानभी जलमें छूजाते हैं अतिलंबे होनेसे और तीसरी जीभ जिस्से पीताहै-(च)शब्दकी लक्षणासे गंगाद्वारादिका प्रमाण-यथा(गंगाद्वारेप्रयागेचनैमिषेपुष्करेऽर्बुदे।संनिहत्यांगयायांचश्राद्धमक्षय्यतांव्रजेत्) २५७ के श्लोकसे लेकर यहां ताईं जोमुन्यन्न,और मांसआदि सारीवस्तुसाधारण भावसे कहीहैं कुछ वर्णभेद इसमें नहींकहा तथापि पुलस्त्य मुनिकी कही हुई व्यवस्थासे कुछ विशेषतापाई जातीहै-सायथा(मुन्यन्नंब्राह्मणस्योक्तंमांसंक्षत्रियवैश्ययोःमधुप्रदानंशूद्रस्यसर्वेषांचाविरोधियत्)अर्थात्-पुलस्त्यजीने यहकहाथा किनीवार आदि मुन्यन्न,जोश्राद्ध योग्यवतलाया सोतो ब्राह्मण मात्रकेलिये प्रधानहै,और यथोक्तफलका देनेवालाहै जैसाकुछ गयाआदिमें जहां२का फलकहाहो-और मांसकाजो अधिक फलकहा सोक्षत्री औरवैश्य इनदोनोंको,यथोक्त फलका देनेवालाहै-और सहत जोकहाहै सो विशेषकर शूद्रजातीको यथोक्तफलका देनेवालाहै-इसके सिवाय(सर्वेषां चाविरोधियत्)अर्थात् जो वस्तु अविरोधीहो किंतु चाहै शास्त्रमें कहीहो जैसे कालशाक आदि चाहै विना कहीहुईभी जैसे वास्तूक आदि या कोई वस्तुहो,परजिसकेकुल आचार आदिसे विरुद्धतानहीं रखतीहो वहवस्तु सबकेलिये उचितहै-परन्तु अबयथार्थ दृष्टिसे समयके अनुकूल यह पुलस्त्यजीका वाक्यभी कुछ२विरुद्धहै जिससमय में उन्होंने यह व्यवस्था कहीथी तब तो किसी समयमें विरुद्धनहीथा-परअब निःसंदेह विरुद्धहै किंतु मांसादिके व्यवहारसे अब कोई भांति श्राद्ध नहीं होसक्ता क्योंकि यद्यपि-और सबको,छोड़कर केवल क्षत्रीमात्र पर अंगीकार करो,उनके जातीधर्मके हेतुसे तथापि श्राद्धभोक्ता तो ब्राह्मणके सिवाय,और,कोईनही होसक्ता फिर वहक्षत्री क्योंकर करसक्ताहै-हां-उसदशामें करसक्ताहै कि जब श्राद्धभोक्ता ब्राह्मणभी पहले समयकेसे समर्थ ऋषिलोगहों सो यहबातभी असंगत है-कदाचित् कोईकहे कि अद्यापि कान्यकुब्जों या मैथिलोंमें बहुत ऐसेविद्यमानहैं सोभी असंगतहै क्योंकि कान्यकुब्ज या मैथिल मात्र निमंत्रणके भोजनसेही,संबंध पक्वान्नसेभी नहींरखते फिरमांस को तो कच्चीरोटीमें गिनतेहैं दूसरे वैश्योंकाभी चर्चा इसमेंआया सो वैश्यजातिमें अधिक

तर इसबातकी उपेक्षा और निरादरहै इससेवर्ण या जातिमात्रके अनुसार यहव्यवस्थाकोई रीतिसेभी सचीनहीं होसक्तीहै फिरव्यवस्थाके झूंठीहोजानेसे पुलस्त्य और योगीश्वर याज्ञवल्क्य दोनों झूंठेहुये जातेहैं क्याऐसे अज्ञानीथे जिनको आगापीछा कुछनहीं सूझपरा जो चाहे सोमुँह आया सोईवकडारा-भला इनदोनोंका समयप्राचीनथा इस्से इनको कुछनहीं कहसक्ते पर सबसे अधिक लांछन श्रीमद्विज्ञानेश्वरमिताक्षराकार पर आरोपित होताहे जिन्होंने पुलस्त्यजीका वाक्यवर्ण जातिकी व्यवस्था परप्रमाण किया क्योंकि मिताक्षरा अभीहाल कालिहपरसोंकी संग्रहकरी है क्याउन्होंने लोकाचारपर दृष्टिनहीं करी जोपुलस्त्यजीका विरुद्ध वाक्यभी प्रमाणमेंलेलिया-परन्तु-अब अपने मुख्य प्रयोजनपर दृष्टि करनी चाहिये जिस्से यह विरोध भी शान्तहो और वे महानुभावऋषिभी सच्चे बनेरहें-यद्यपि मिताक्षराकारकी इतनी भूल निर्विकल्प है कि उन्होंने इसबातपर कुछ निर्णय नहीं किया तिसकाभी यह हेतु अनुमान से प्रतीत होता है कि भाव उन्होंने बंगालेमें बैठकर मिताक्षरा संग्रह करीहो-तथापियह व्यवस्था वर्ण और देश दोनोंके संयोग से सिद्ध होतीहै क्योंकि ऋषिलोग कदाचित् भी असम्भव नहीं कहते-इसलिये मुन्यन्न और दूध पायस कालशाक आदिसे श्राद्ध जो फलदायक या परम तृप्तिकारक बतलाये सो तो उन जातों और देशोंके लिये बतलाये जिनमें मांसका त्याग और निरादरहै चाहे कोई वर्णहो इस्से कुछ तर्कणा नहीं है-दूसरे जो मांसके अधिकारवाले श्राद्ध फलदायक या परम तृप्तिकारक वर्णन किये सो उन्हीं जातों और उन्हीं देशोंके लिये बतलाये हैं जिनमें सर्वथा मांस का आदर और सत्कारहै जैसे बंगाला काश्मीर पहाड़ आदि देशों में जहां श्राद्ध के कर्ता और भोक्ता दोनों मांस खाते हैं चाहे कोई वर्णहो कुछ इस बातपर तर्कणा नहीं है-तीसरे जो सहतके अधिकारवाले श्राद्ध फलदायक या परमतृप्तिकारक बतलाये और पुलस्त्यजीने शूद्रोंके शिरथापे सो यहएक ओछी बातहै और शूद्र एक उपलक्षण मात्र इसलिये कहदियाहै कि पहाड़ोंमें बहुधा डोम आदि जातोंके शूद्र विख्यात होते हैं उनको इन देशोंके समान और कोई उत्तम पदार्थ नहीं हाथ आते हैं किन्तु बनमेंसे मनों सहतले आतेहैं और वहींके पहाड़ी ब्राह्मण उनके श्राद्धभोक्ता होते हैं जिनको दो २ सेर सहत पीजाना एक सहजसी बातहै क्योंकि और कोई देशी मिठाई तो वहां होती नहीं और देशोंसे जाती है तो वंशलोचनके भाव बिकती है इस्से वे उसीको अमृत समझा करते हैं-यद्यपि-सहतके गुण और स्वादुभी अमृतकेही तुल्य यथार्थ होतेहैं परन्तु इसलिये नहीं होते कि केवल वही पीकर पेटभरलेवें तथापि उन ब्राह्मणों को इसबातका अभ्यास होताहै दूसरे उन डोम आदि शूद्रोंके हाथका अन्न तो खाते नहीं फिर कोई रीतिसे उनका उद्धार करें या न करें इसलिये पुलस्त्यजीने शूद्रोंके उ-

की प्रकृतिमेंसे उत्पन्नहोताहै परन्तु वह प्रकृतिभी विशेपकर मनुष्योंकेही वशकी नहीं अर्थात् उसप्रकृतिकी प्रेरणाकरनेवाला वहीएक जगदीशहै जिसकीमाया वा शक्ति प्रकृतिरूपहोकर सारेसंसारमें विस्तरितहोरहीहै वहीजगदीश नानाप्रकारकेदेशवनाता और वही उनदेशोंमें नानाजातिके मनुष्य पैदा करता और उनकी भिन्न प्रकृतीभी कल्पित करता और परिणामको पहुँचाता रहताहै इन्हींतरंगोंकी अगाधतासे संसार सागर इसका नामहै २५५॥

अव यहां से आगे केवल नित्य श्राद्धको छोड़कर अन्य सव श्राद्धोंका शेषव्यवहारवर्णन करते हैं॥

पिंडांस्तुगोऽजविप्रेभ्योदद्यादग्नौजलेपिवा। प्रक्षिपेत्सत्सुविप्रेषुद्विजोच्छिष्टंनमार्जयेत् २५६॥

ऐ०—पूर्वोक्त श्राद्धोंमें दियेहुये पिंडोंको (गऊ) यद्वा गऊके न होनेमें (भज) कहिये वकरीहीकोदेदेवे अथवा कोई ब्राह्मण जोलेसके या मांगनेलगे तिसको देदेवे या यहभी नहीं तो अग्निमें छोड़देवे पर अग्नि ऐसीहो जिसमें भस्महोजाय अथवा गहिरेजल में छोड़देवे-और (सत्सुविप्रेषु) अर्थात् होतेहुये किंतु बैठेहुये ब्राह्मणोंके भोजनके स्थान पर द्विजोंकी उच्छिष्ट न मार्जनकरै किन्तु बुहारैनहीं २५६॥

भषि०—इसका सिद्धांत केवल यहीहै कि ब्राह्मण चलेजावें या भोजनपंक्तिसे उठे पीछे किसी द्वितीय स्थानमें जावैं तवजूठ बुहारै किंतु उनके सन्मुख नहीं परन्तु यह सिद्धांत नहींहै कि उनके चलेजाने परभी जूठकोनिपट वुहारै नहीं २५६॥

हविष्यान्नेनवैमासंपायसेनतुवत्सरम्। मात्स्यहारिणकौरभ्रशाकुनच्छागपार्षतैः २५७॥
एणरौरववाराहशाशैर्मांसैर्यथाक्रमम्। मासवृद्ध्याभितृप्यंतिदत्तैरिहपितामहाः २५८॥

मक्ष०तहद्वयोः—नि.संदेहहविष्यान्नसेमासमात्र-औरखीरिसेएकवत्सर-मात्स्य-हारिणक-औरभ्र-शाकुन-छाग-पार्षत-इन्होंसे २५७॥ एण-रौरव-वाराह-शाश-दियेहुयेइन मांसोंसे मासवृद्धि पूर्वक यथाक्रमसे इससंसारमें पितामह अभितृप्त होते हैं २५८॥

भभि०तहद्वयोः—यहां पर भोज्य विशेष वस्तुसेफल विशेपवर्णन करतेहैं कि-निःसंदेह इससंसारमें (पितामह) कहिये वाप दादा परदादा यहतीनों हविष्यान्नसे श्राद्धके एक दिन करनेसेभी एकमास पर्यंत तृप्तवने रहते हैं (और) पायस कहिये दूधकी खीरिसे श्राद्ध भोजनकरवानेसे एकवर्षमात्र अभिकहिये भलीभांति तृप्तरहते हैं इसके सिवाय जिनमांसोंकी चर्चा अवकरतेहैं तिनसे उत्तरोत्तर यथाक्रमसे एकएकमास अधिकतृप्ति होतीजातीहै अर्थात् जैसे हविष्यान्नके श्राद्धसे एकमास तृप्तिऊपर वतलाईथी परंतु जो पाठीनआदि भक्ष्यमत्स्योंसे श्राद्ध भोजनकरवावे तो(मात्स्यश्राद्ध)कहलाताहै उस्से दोमासतक अच्छी तृप्तिरहती है-जब ताम्रमृगकहिये लालहरिणके मांसका श्राद्धकरे तब (हारिणकश्राद्ध) कहलाताहै उस्से तीनिमास तृप्तिरहती है-जब(उरभ्र) नाममेप किंतु

मेढ़ाके मांसकाकरे तब (औरभ्रश्राद्ध) कहलाताहै उस्से चार मासतृप्तिरहती है-जब (शकुन) कहिये पक्षीमात्र जो भक्षोंमें गिनतीहों उनके मांसकाकरे तब (शाकुनश्राद्ध) कहलाताहै उस्से पांचमास तृप्तिरहतीहै-जब (छाग) नाम वर्करमांसकाकरे तब (छागश्राद्ध) कहलाताहै उस्से षड्मासिकतृप्तिरहती है-जब (पृषत्) नाम चित्रमृग जिसे चीताकहतेहैं उसकाकरे तब (पार्षतश्राद्ध) कहलाताहै इस्से सात मास तृप्तिरहती है जब (एण) कहिये काले हिरनकाकरे तब (ऐणश्राद्ध) कहलाताहै उस्से आठमास तृप्तिरहती है-जब रुरुनाम बनमृग जिसको शंवर यद्वा भाषामें शावरभी कहतेहैं तिसकाकरे तब (रौरवश्राद्ध) कहलाताहै उस्से नवमास तक तृप्तिरहती है-जब वराहनाम वनसूकरसेकरे तब (वाराहश्राद्ध) कहलाताहै उस्से दशमास तृप्तिरहती है-जब शशनामखरहा या खरगोशकाकरे तब (शाशश्राद्ध) कहलाताहै उस्से ग्यारहमास तृप्तिरहतीहै २५७। २५८॥

मधि०—ऊपर हविष्यान्नका चर्चा आयाथा-हविष्यान्न तिलव्रीहि आदिको कहतेहैं सोई मनुजीने सबके नामभीस्पष्टकहदियेहैं-यथा(तिलैर्व्रीहियवैर्माषैरद्भिर्मूलफलेनवा। दत्तेनमासंप्रीयंतेविधिवत्पितरोनृणाम्)अर्थात्-तिलोंसे-व्रीहिनामधानचावलोंसे-यवोंसे-माषनाम उड़दोंसे-जलोंसे-यद्वा मूलसे फलसेही विधिवत् दियेहुये श्राद्धकरके मनुष्योंके पितर एकमास तृप्तरहतेहैं-यहसारी वस्तु हविष्यान्नमें गिनतीहैं सोई याज्ञवल्क्यजीने एक शब्दसे कहदियाथा-पायसके उपलक्षणसे दुग्धभी संबंधितहै सोई यह स्मृतिभी स्पष्ट भावसे कहतीहै कि (संवत्सरंतुगव्येनपयसापायसेनच)अर्थात्-गव्येन पयसा किंतु गऊके दूधसे तथा पायसेन कहिये खीरिसेभी संवत्सर मात्रकी तृप्तिहोती है-इस्से निश्चित हुआ खीरिसवसे उत्तमहै क्योंकि पूरे संवत्सरकी तृप्ति और किसी वस्तुसे नहीं बतलाई २५७। २५८॥

खड्गामिषंमहाशल्कंमधुमुन्यन्नमेवच। लोहामिषंमहाशाकंमांसंवार्ध्रीणसस्यच २५९॥
यद्ददातिगयास्थश्चसर्वमानंत्यमश्नुते। तथावर्षात्रयोदश्यांमघासुचविशेषतः २६०॥

ऐ०सहदपोः—औरभी कुछविशेषता कहतेहैं कि (खड्गामिषं) अर्थात् खड्गनाम गेंडा तिसका आमिष कहिये मांस१ (महाशल्क) एक प्रकारका उत्तमजातीमत्स्य विशेषहोताहै२ मधु सहत३ (मुन्यन्नं) मुनिलोगोंका अन्न नीवार आदि सभी प्रकारका जोवनमें होताहो४ (लोहामिषं) अर्थात् लोहकहिये लालबकरा तिसकामांस५ (महाशाकं) अर्थात् कालशाकभी इसको कहतेहैं श्राद्धशाकभी कहतेहैं वास्तवमें नाड़ीशाक प्रसिद्धहै जो वर्षा ऋतुमें तालावोंके किनारे होताहै६ और (वार्ध्रीणस) काभी मांस७। २५९॥ (यद्ददातिगयास्थश्च) अर्थात् इनमेंसे किसी वस्तुकरके गयामें बैठाहुआ जो कोई श्राद्धदेताहै यद्वा (च) शब्दकी लक्षणासे गंगाद्वारादि तीर्थोंमें बैठकरदेताहै वह मनुष्यआनंत्यफल भोगताहै अर्थात् जो२ फलभोगनेको उसेमिलतेहैं तिनकाअंत नहींहै तथा

पलक्षणसे कहदियाहै-भला इसपर भी कोई यह (शंका) करे कि यह व्यवस्था तो सच्ची है पर पुलस्त्यजीने पूर्वोक्त वाक्यमें क्षत्री और वैश्य दोनोंको मांसका अधिकार श्राद्ध में वतलाया सो तो अवतकभी असंगत वनारहा सो यह शंका केवल वुद्धिकी भ्रमता है किन्तु सावधानीसे ध्यान लगाकर सोचो कि जव देश व्यवस्था कल्पित होचुकी इस वातमें फिर संदेहका क्या अवसर है देखो सरस्वती सम्बन्धी पश्चिम देशों में सारस्वत ब्राह्मण और सारस्वत क्षत्री जिनको वहुधा खत्री कहते हैं और सारस्वत वैश्य जो वहुधा उन्हीं खत्रियोंके भेदमें कोई २ खत्री वहांके वैश्यों में गिनती होते हैं यह सभीलोग निर्विकल्प मांसाहारी होते हैं उन क्षत्री वैश्योंके लिये पुलस्त्यजीने कहा है कुछ सभी वैश्योंके लिये नही क्योंकि उन्होंने उसी वाक्यके चौथेचरणमें सव झगड़ा निपटादिया यह कहकर कि (सर्वेषांचाविरोधियत्) अर्थात् जो २ वस्तु जिसके निकट अविरुद्धहो किन्तु जिस्से जिसको ग्लानि नहींहो वह सभीके लिये अपने २ कुलदेश जातिके अनुसार श्रेष्ठहै फिर किसलिये (शंका) करतेहो ॥ (भेद २) काश्मीरी लोगों वा सारस्वत वैश्य और सारस्वत क्षत्री और सारस्वत ब्राह्मणोंका चर्चा जो मांसके अधिकार मध्ये कहागया सो इसलिये कि काश्मीरियोंकी परिपाटी तो इस देशमें आ-वसनेपरभी वनिरही है कि वहुधा काश्मीरी लोग पिंडभी मांसकेही प्रत्यक्षभावसे देते हैं वरन वे अपने पितरोंकी तृप्तिही विना मांसके अधिकार नहीं समझते क्योंकि उनके पितर जीवतेहुये भी मांस विना तृप्त नहीं होतेथे किन्तु एक दिनभी मांस विना भोजन नहीं करसक्तेथे फिर मरेहुये क्योंकर सूखे अन्नसे तृप्ति उनकी होसकै सिद्धांतसे भी यह वात ठीकहै क्योंकि इस देशमेंभी यह परिपाटी अपने लोगोंकी प्रत्यक्ष है कि जो वस्तु प्रेतको जीवतेहुये वहुत प्रिय लगतीहो वह वस्तु अवश्यंभावसे उसके श्राद्धोंमें दीजाती है-इसीलिये काश्मीरी लोग जव कभी ऐसी दशामें श्राद्ध करते हैं कि जिस स्थानपर मांस नहीं मिलसक्ताहै या और कोई प्रवल हेतु आरूढ हुआ जिस्से मांस की असम्भवता हुई तव खोया मावा पेड़ा आदिमें किंचित् साँभरिनोन मिलाकर पिंड वनाते हैं कि मांसके अभावमें वहभी मांसका अनुकल्प होजाता है यहां तक उनको अपने पितरोंकी तृप्ति करनेमें श्रद्धा और विश्वासहै-दूसरे सारस्वतोंकी यह व्यवस्था है कि यद्यपि अपने सरस्वती तट सम्बन्धी देशोंमें तो सर्वथा मांसके अधिकारी होते हैं यह वात निर्विकल्प निश्चितहै परन्तु जो २ सारस्वत अपना देश छोड़कर इन देशों में आवसेहैं उनमें अनेक भांति होगई हैं किन्तु वहुतेरे प्रत्यक्ष खाते हैं वहुतेरे छिपकर वहुतेरे इस देशकी लज्जासे निपट त्यागी होगये हैं तथापि अपने देश या कुल मर्याद पर इतनी श्रद्धा रखतेहैं कि श्राद्धकर्मको विना मांसके संसर्ग नहीं होनेदेते वहुतथोड़े ऐसे होंगे कि जो इस देशकी मर्यादा अनुसार श्राद्ध करतेहों अन्यथा वहुधा तो यही

प्रथा चलीआतीहै कि जोलोग उनमें यहांकी देखादेखी त्यागी बनिरहेहैं वेभी गुप्त भावसे श्राद्धमें मांसमिश्रित पकान्नकी गोलियां घीमें पूरियोंकेसाथ पकवालेतेहैं वेही गोलियां पित्रोंको अर्पितकियेपीछे पितृब्राह्मणोंको जिमादेतेहैं तब अपने पितरोंकी तृप्तिमें विश्वास लातेहैं इसीलिये बहुधा तो अपनेदेशी और सजातियोंकोहीन्योता देतेहैं परन्तु जबयह संयोग आबनताहै कि स्वदेशी और सजाती नहीं मिलसक्तेतब औरोंकोहीन्योतदेतेहैं और वहगुप्तभेद प्रकटनहींकरते हैं क्योंकि प्रकटकरें तो अन्य जाती ब्राह्मण उनगोलियोंका खाना अगीकार नहीकरें औरजोलोगअन्यजाती ब्राह्मण इसबातकेभेदू होतेहैं वे सारस्वतोंका निमंत्रण श्राद्धविषयका अंगीकारनहींकरते-इसी प्रकार पहाड़ी और बंगाली आदि ब्राह्मण वा क्षत्री और वैश्योंकी भिन्न २ अनेक भांतिकी व्यवस्था हैं तिनकेलिये ऋषीश्वरोंने मांसका श्राद्धकरना फलदायक लिखा है किंतु सबकेलिये नहीं और उन्हींकेलिये जहां २ मांसकी चर्चा या प्रशंसा धर्मशास्त्रोंमें भक्ष्याभक्ष्य विवेकसे या और किसीरीतिसे आईहो सब संभवितहै(दृष्टांत)जैसे इसीशास्त्रमें-१७६–१७७ इन दोश्लोकोंसे पंचनखादि जीवोंकामांस भक्ष्यवर्णनकर चुकेहैं सोभी उक्तलोगोंका व्यवहार बतलायाथा फिर १७८ के श्लोकमें जो मांसखान कीविधि वर्णनकरीथी सोभी उक्तलोगोंका व्यवहारथा फिर १७९ में जो चर्चाकिया था सोभी उक्तलोगोंका व्यवहारहै फिर द्रव्यशुद्धिके प्रकरणमें आकर १९१ के उत्तरार्द्धश्लोकमें जोकुछ कहा सोभी उक्तदेशोंका व्यवहारहै अन्यथा और सबसाधारण अन्नत्य संबंधीदेशों वा मनुष्योंकेलिये १८०के श्लोकमें प्रत्यक्षभावसे मांसकानिषेध कियाहै इसकेसिवाय जहांकहीं एकशब्दसेभी मांसका प्रसंग आयाहो सो सबइसी व्यवस्थाके अनुकूल है-इनदेशोंमें विशेपतर कायस्थजाती लोग मांसके व्यवहारमें प्रसिद्ध हैं उनमेंभी सहस्रों ऐसेत्यागीहैं कि ब्राह्मणोंकोभी मातकरते हैं किन्तु वड़े २ विवेकी शास्त्रविद्याके अनुरागी सत्संगी और मांसखानेवालेके संसर्गसेभी बचते हैं और जो कि उनकेकुलमें मांसका व्यवहार अधिक प्रसिद्धहै सो केवल क्षात्रधर्म के हेतुसे विदितहै किन्तु क्षत्रीवर्णमें मांसकीप्रवृत्तिहै और येभी एकप्रकारके उपक्षत्री वर्णमें गिनतीहैं अर्थात् कायस्थनाम गोणक्षत्री कहलातेहै इस्से वहमांसकाव्यवहार उनमें विदितहै- इनकेसिवाय कान्यकुब्ज ब्राह्मणभी इसदेशमें मांसके व्यवहारमध्ये विख्यातहैं तिनकी यहअद्भुत व्यवस्थाहै कि प्रथम तो समस्तोंमेंसे चतुर्थांश मांस के अधिकारी हैं शेषतीनभाग मांसकेत्यागी हैं-हां-इतनीबात अधिकहै कि उनदोनों भांतिके परस्पर विवाहसंबंध होतेहैं इसबातमें कुछत्याग और संग्रहका विचार नहीं है परन्तु इसबातकी प्रतिज्ञा उनदोनोंभांतिमें निर्विकल्पहै कि विवाहादि मंगलकार्यों के समाज बरातआदि या श्राद्धकर्म या अन्यप्रतिष्ठा यज्ञादि कामोंमें किसीके भी

मांसका संचार नहींहोता किंतु केवल एक दुर्गोत्सव यज्ञमें निःसंदेह उसका संचार उनलोगोंके घरहोताहै जो दुर्गाकेउपासक उसरीतिसे प्रसिद्धहैं यद्या कुछलोग ऐसेभी हैं कि वे कभी २ साधारणभी विनादुर्गोत्सवके अपनेघर संचारवान् होतेहैं परन्तु जब अपनेघरके सिवाय कभी निजगोत्रके दोचारघरकाभी भोजनएकत्र किसीहेतु से होगा उसमें उसकासंचार कदाचित् नहीं होनेदेंगे जैसे अन्यदेशी या अन्यजाती लोगोंमें प्रत्यक्ष विवाहादि यज्ञोंमेंभी धूमधाम से उसवातका संचार कियाजाता है सो इसहेतुसे ऐसानहींकरते कि उनचारघरमें कोईघर निपटत्यागीहै या किसीघरमें एकदोमनुष्य त्यागीहोतेहैं तिनकी अप्रीतिहोजावे इसकेसिवाय जोलोग इसकेत्यागी नहींहैं तिनकीभी कुछ विरादरीमें प्रशंसानहीं किन्तु परस्परभी इसवातसे निन्दाभाव समझा करते हैं परन्तु अन्यदेशी और अन्यजाती लोगोंमें कि जिनके इसवातका अधिकारहै उनमेंकुछ परस्पर उपेक्षा वा निरादरनहीं वरनइसवात का बड़ा उत्साह और बड़प्पन समझाकरते हैं क्योंकि उनके कुलमें सभी एकसेहोतेहैं फिर निन्दा वा निरादर किसकाकौनकरे-और कान्यकुब्जोंमें जोकुछ थोड़ावहुत इसकाप्रचारचलगया सो इसहेतुसे कि उनमें पहले समय दुर्गाके उपासक वड़े २ शक्तिमान् तेजस्वी होतेरहे जिनकी अद्यापि वहुधा ऐसीवातें प्रसिद्धहैं कि अमुकमहात्माकी धोती आकाशमें सूखती थी किन्तु स्नान कियेपीछे निचोड़कर ऊपरको उछालदी वह उनके शक्तिप्रभावसे ऊँचीचलीगई और सूखकर हाथों में आपड़ी अमुक महात्मा पूजन समय गंगाजीको गँगियानामसे पुकारकर आवाहन करते तभीतत्काल उनकेसन्मुख थोड़ासाकार्यमात्र जलप्रवाह आजाता जिसमें वलिवैश्वदेव किया और फिर उसी नामसे विसर्जनकिया इत्यादि अनेकोंकी प्रसिद्ध ऐतिह्यपूर्वक चलीआतीहै उनमें से किसी २ महात्माने भगवती को पशुवलिदानदेना अंगीकारकिया उनसे उसवातकी परिपाटी चली परन्तु उन्होंने अपनी किसी चैतन्यशक्तिके अनुकूल अंगीकारकिया था फिर पीछे २ समयके प्रभावसे वहशक्तिनरही परकेवल पशुदानकीलीकसी पीटने लगे-संपादक ठठ निजकुलाचारकी व्यवस्था दृष्टांतमात्रसे कहताहै कि उसनेयद्यपि अपने प्रपितामहके दर्शन नहींपाये पर उनका यहआचार निःसंदेह सुनतेचलेआतेहैं कि वे सिंहवाहिनीके परमउपासक अनन्यगतिसेहुये और वलिदान षड्मासिक नवरात्रोंमें तथा अपने वंशमें किसीके पुत्रजन्म और पुत्र विवाहके होनेमेंभी केवल अपनीजिह्वाकी नोकलेकरचढ़ातेथे और तत्काल वहजिह्वाकाक्षतपूराहोजाताथा परंतु जव उन्होंने अपने देहांतसमय अपने पुत्रसे यहकहा कि यह कुलदेवकी पूजा अव तुमलो हम चलतेहैं तव अस्मत्पितामहने यहकहा कि मुझसे जीभ नहीं चढ़ाईजायगी-उन्होंने प्रसन्नहोकर यह कहा कि अच्छा जो तुम्हारी इच्छा और समर्थहो सो

कहो इन्होंने कहा कि मैं मेष पशुका बलिदान दिया करौंगा उन्होंने कहा एवमस्तु इस प्रकारसे पितामहने बीचमें अपनी जीवन अवधि ताईं मेष बलिदान किया और उसका प्रसाद भी अंगीकार किया और कुलदेवकी प्रीति इसप्रकारसे भी अधिक पाई गई क्योंकि यह बात उन्हों ने समर्थकी आज्ञालेकर करीथी परन्तु उनके सर्वसम्पन्न तीनों पुत्रोंने निज विज्ञान वशहोकर हिंसा विषयकी दृष्टिसे उसबातकी उपेक्षा करके अहिंस्य अनुकल्प नियतकिये और उस बातके त्यागीहुये पर इन अनुकल्पोंसे कुछ देवताकी अप्रीतिभी प्रकटहुई तथापि उस अप्रीतिको गिनतीमें न लाकर अनुकल्पों को ऐसा समझा कि हाथीके दांत निकसे सो निकसचुके-ऐसे २ असंख्य घरोंके नाना विधि लक्षण देखनेसे सर्वथा निश्चित होताहै कि इनमें और मैथिलोंमेंभी यह संचार कुछ देश अथवा कुल रीतिसेभी सनातनका नहीं है किन्तु जो सनातनका होता या देश वा कुलके आचारमें गिनती होता तो सारे देशमात्र या जातिमात्रके लोगोंकी एकसी परिपाटी होती और श्राद्धादि यज्ञ प्रतिष्ठा रामादि यज्ञोंमेंभी इसबातका कुछ संचार होता जैसा अन्य देशों वा जातोंमें प्रत्यक्ष है-परन्तु यह व्यवस्था उन कान्यकुब्जों वा मैथिलोंकी नहीं है जो पहाड़ देशोंमें जावसे किन्तु केवल उनके निजदेश मात्रका चर्चा कियाहै क्योंकि पहाड़ देशोंमें दशोंप्रकारके ब्राह्मण मिलकर सब एक रंग होरहे हैं इस्से वहांपर सबकी रीति भांति एक तुल्यहै बरन उनके सम्बन्धभी परस्पर ब्राह्मणत्वमात्रकी अपेक्षासे होते हैं फिर अन्य व्यवहारोमें भिन्नता क्योंकर कहीजाय २६० ॥

इति द्रव्यविशेष श्राद्धफलम् ॥

अब आगे तिथि विशेषमें श्राद्ध करनेका फल विशेष वर्णन करते हैं॥ सो यहां से लेकर आगे २६९ श्लोक तक (काम्यविधि) का चर्चाहोगा ॥

कन्यांकन्यावेदिनश्चपशून्वैसत्सुतानपि । द्यूतकृषिंचवाणिज्यंद्विशफैकशफंतथा २६१ ॥
ब्रह्मवर्चस्विनःपुत्रान्स्वर्णरूप्येसकुप्यके । ज्ञातिश्रैष्ठ्यंसर्वकामानाप्नोतिश्राद्धदःसदा २६२ ॥
प्रतिपत्प्रभृतिष्वेकांवर्जयित्वाचतुर्दशीम् । शस्त्रेणतुहतायेवैतेभ्यस्तत्रप्रदीयते २६३ ॥

ऐ० त्रयाणांसह—एक चतुर्दशी को वर्जित करिके अन्यसारी तिथो पड़वा आदि में क्रमसे सदा कहिये नियम सहित निरंतर श्राद्ध देनेवाला यहां पर कहेहुये सर्वकामों को प्राप्त होताहै-अर्थात् जो कोई रूप लक्षणवती (कन्या) मिलनेकी कामना रखता हो वह सदैव प्रतिपदामें निरन्तर पार्वण कियाकरै तो निःसंदेह वैसी कन्या पावै किंतु कुभार्या नहीं पावै १ (कन्यावेदिनश्च) अर्थात् जो कोई कन्या वेदी कहिये जमाई अच्छे रूप लक्षण सम्पन्न बुद्धिमंत अपनी कन्याओंके निमित्तमें चाहताहो वह द्वितीयामें श्राद्ध कियाकरै तो कुत्सित जामातृ उसके नहींहों २ (पशून्) किन्तु जो कोई बकरी

आदि पशुओंकी सम्पत्ति चाहै वह तृतीयामें श्राद्ध कियाकरै ३ (सत्सुतान्) किन्तु जो कोई सन्मार्गवर्त्ती पुत्रोंकी कामना रखताहो वह चतुर्थीमें कियाकरै ४ (द्यूतं) जो कोई द्यूतकर्मकी विजय चाहताहो वह पंचमीमें ५ (कृषिं) जो कोई खेती मात्रकी फल सिद्धि चाहै वह षष्ठी तिथिमें ६ (वाणिज्यं) जो वणिज व्यापारसे बहुलाभ चाहै वह सप्तमीमें ७ (द्विशफं) अर्थात् दो खुरोंवाले गाय भैंस आदि पशु चाहै वह अष्टमीमें ८ तथा (एकशफं) अर्थात् घोड़ा आदि एक सुमवाले पशुचाहै वह नवमी में ९ (ब्रह्मवर्चस्विनःपुत्रान्) किन्तु वेदादि विद्याका अध्ययन पुनि उसके आचारसे उत्पन्नहुआ तेज सोई ब्रह्मवर्चस तिस करके संयुक्त ऐसे ब्रह्मवर्चस्वी पुत्रोंकी कामनावाला दशमी तिथिमें १० (स्वर्णं) किंतु सोनेकी बहुताइत चाहै वह एकादशीमें ११ (रूप्यं) किन्तु चांदीकी बहुताइत चाहै वह द्वादशीमें १२ (कुप्यं) किन्तु सीसा तांबा आदि धातोंसे जो लाभ चाहै वह त्रयोदशीमें १३ (जातिश्रैष्ठ्यं) किन्तु अपनी जाति बिरादरीमें उत्कर्षा आदि श्रेष्ठता चाहै वह अमावसमें निरन्तर श्राद्ध कियाकरै ३० और चतुर्दशी जो छोड़ीगई सो इस हेतुसे कि जो कोई जिसके कुल में शस्त्रसे मारेगये हों तिनके लिये उस दिन श्राद्ध कियाजाता है २६१।२६२।२६३॥

भा०त्रयाणांसह–यद्यपि इसमें तिथि कहने से पक्षकी विशेषता नहीं पाईगई परन्तु पितरोंके अधिकारमें कृष्णपक्ष परिनियमितहै इस्से कृष्णपक्षकी तिथें समझीजाती हैं तथापि केवल कृष्णपक्षका सिद्धांत नहीं निश्चित होता किंतु यह तिथों सम्बन्धी श्राद्ध कुछ (नैत्तिक) या (नैमित्तिक) में गिनती नहीं अर्थात् यह प्रयोग (काम्य) विषय पर आरूढ़है इस्से आगे नक्षत्रोंपर कहेंगे वहभी (काम्य) विषयपर आरूढ़है इस हेतु से दोनों पक्ष पायेजाते हैं क्योंकि जो निपट कृष्णपक्षसे अपेक्षा पितरोंके अधिकार से स्वीकार करीजावे तो अग्रोक्त सत्ताईस नक्षत्रोंमेंभी कृष्णपक्षकी अपेक्षा होनी चाहिये सो असंगतहै किंतु सत्ताईस नक्षत्र दोनों पक्षमें आवेंगे इसलिये कर्त्ता पुरुषको अधिकारहै कि वह जिस किसी तिथिका नियम साधे उसको चाहे कृष्णपक्षसेही निरन्तर नियम अंगीकार करै चाहे केवल शुक्लपक्षसे अथवा दोनों पक्षसे निरन्तर नियम साधै तो अधिकश्रेयस्करहो–अर्थात् कृष्णपक्षमें पितरोंका अधिकार प्रसिद्ध होने से इस (काम्य) विधिमें शुक्लपक्षका निषेध नहीं पाया जाता किंतु कृष्णपक्षका अधिकार जो प्रसिद्धहै वह केवल (नैत्तिक) विधिसे अपेक्षा रखता है उस्से सिवाय (नैमित्तिक) में भी कृष्णपक्षसे अपेक्षा नहीं है अर्थात् पुत्र जन्मादिक समयपर नैमित्तिक श्राद्ध अवश्य भावसे तत्काल कियाजाताहै फिर उसदिन चाहे कृष्णपक्षहो चाहे शुक्लहो इस पर कुछ तर्कणा नहीं होती ऐसेही इस (काम्य) विधिमें भी केवल तिथि यद्वा नक्षत्र मात्रसे अपेक्षा अंगीकारहै कुछ कृष्ण यद्वा शुक्लपक्षपर तर्कणा नहीं है॥ (भेद२) च-

तुर्दशीभी केवल इसी हेतुसे वर्जित करी है कि यह विधि काम्य विषयसें अपेक्षा रखती है,इसको शुभकार्यमें गिनते हैं और चतुर्दशी शस्त्रहतोंकी तिथिहै इस्से उसमें काम्य विधि वाला न करै यद्यपि काम्य विधिवालेको निरंतर सब तिथोंसे अपेक्षा बारहमास में होती है और शस्त्रहतोंकी चतुर्दशी केवल पितृपक्षमें होती है तथापि नाम दूषित भाव अंगीकार कियाहै-और शस्त्रहतका श्राद्ध उस चतुर्दशीमें भी पार्वणके स्थान एकोदिष्ट कियाजाताहै-तथाच (समत्वमागतस्यापिपितुःशस्त्रहतस्यवै । एकोद्दिष्टंसुतैःकार्यंचतुर्दश्यांमहालये); अर्थात् (समत्वमागतस्य) कहिये सपिंडीकरणको पहुँचेहुये शस्त्र हत पिताका एकोद्दिष्ट पुत्रों करके महालयमें अर्थात् पितृपक्षमें कर्त्तव्यहै-यद्यपि एकोद्दिष्टमें देवकर्मका निषेधहै तथापि यह पार्वण स्थानी एकोद्दिष्ट जो शस्त्रहतोंका चतुर्दशीमें करना कहा तिसमें देवकर्म भी होताहै-तद्यथा-(विश्वेदेवांश्चतत्रापिपूजयित्वा ततोऽमलान् । येवैशस्त्रहतास्तेषांश्राद्धंकुर्यादतंद्रितः)-अर्थात्-उसमें निरालस्य हुआ विश्वेदेवाओंको भी पहले पूजिकर तब शस्त्रहतोंका श्राद्धकरे-अन्यञ्च-प्रयोगपारिजाते (तच्छ्राद्धंदैवहीनंचेत्पुत्रदारधनक्षयः। प्रेतपक्षेचतुर्दश्यामेकोद्दिष्टविधानतः॥दैवयुक्तंतु तच्छ्राद्धंपितृणामक्षयंभवेत्)-अर्थात्-प्रेतपक्षकी चतुर्दशीमें जो श्राद्ध शस्त्रहतोंका होता है सो एकोदिष्टके विधानमें निषेध कियेहुये हेतुसे जो कोई देवहीन करै तो पुत्र दार धन इनके क्षय करनेवाला वह श्राद्ध होताहै इसलिये वह श्राद्ध दैवकर्म संयुक्त किया जावै तो पितृयोंको अक्षय तृप्तिकरै और उस्से फलभी अक्षय हो-जिसके कुलमें दो मनुष्य शस्त्रहत हुयेहों वह दोनोंका भिन्न २ एकोद्दिष्ट चतुर्दशी में करै-परन्तु जिसके कुलमें निरन्तर बाप दादा परदादा तीनों शस्त्रहत हुयेहों वह तीनोंका एक साथ पार्वण करै उस चतुर्दशी में-तथाच-बृहत्पराशरः-(पित्रादयस्त्रयोयस्यशस्त्रैर्यातास्त्वनुक्रमात्।सभूतेपार्वणंकुर्यादाब्दिकानिपृथक्पृथक्)-अर्थात् बृहत्पराशर स्मृतिमें यहकहाहै कि जिसके पिताआदि तीनोंपितर शस्त्रमृत्युसेगयेहों वहकर्त्तापुरुष(भूत)नाम चतुर्दशी तिथिमें तीनोंका पार्वणकरै (और) आब्दिक जो बर्सोडी श्राद्ध प्रति संवत्सर एकोद्दिष्ट कियेजाते हैं सो जुदे२उनकेक्षयाहकोदिनजिस२महीनामें होतेहों तिनमेंकरै-इस्से यहभी निश्चितहुआ कि शस्त्रहतका वार्षिकश्राद्ध उसके क्षयाहकेही दिन होगा किन्तु यहांपर चतुर्दशीसे कुछ अपेक्षा नहीं है-इसके सिवाय जिसके कुलमें एक पुरुष शस्त्रहत हुआ हो जिसके एकोद्दिष्टका चर्चा ऊपरसे चला आता है उसका भी चतुर्दशी में अवश्य करना है,और दूसरा कोई ऐसाहै कि शस्त्रहतनही पर चतुर्दशी उसका क्षयाहका दिन है-इस्से उसका भी उसी दिन होना चाहिये,तब उन दोनोका भिन्न २ उसी चतुर्दशी में होगा ऊपर कहेहुये प्रकारोंसे अर्थात् यह सिद्धान्त नहीं है कि शस्त्रहतके कारणसे क्षयाहवालेको चतुर्दशीमें नहो-और केवल एक शस्त्रहतके निदर्शनसे, अन्यभी अप

मृत्युवाले संग्रहीत हैं-यथा पृथ्वीचंद्रोदयेप्रेचेताः-(वृक्षरोपणलोहाद्यैर्विद्युज्जलविषाग्निभिः। नखिदंष्ट्रिविपन्नायेतेषांशस्ताचतुर्दशी)-अर्थात्-वृक्षादिकोंके लगाने आदि समयोंपर किसी वृक्षके गिरने आदि हेतुसे मराहो या शस्त्र आदि किसी लोहेसे या विजली गिरने आदि उत्पातोंसे या जलसे डूवाहो या विषसे मराहो या अग्निसे जलिगयाहो या नखवाले मृगोंसे मारागयाहो या दाढ़वालोंसे ऐसे २ सभी शस्त्रहत कहलाते हैं तिनके लिये चतुर्दशी श्रेष्ठहै-ध्यानकरना चाहिये कि इस दूसरे भेदका चर्चा केवल चतुर्दशी के प्रसंगसे करनापड़ा अन्यथा यह चर्चा (नैत्तिक) विधिमें गिनती है इस्से यहां पर इसके लिखने की अपेक्षा नहीं थी-क्योंकि-याज्ञवल्क्यीय मूल श्लोक तीनों जिनमें सब तिथोंका चर्चा है वह (काम्य) विधिका प्रसंगहै और पितृपक्षका विशेष वर्णन इसमें नहीं किया क्योंकि वह प्रेतपक्षभी सामान्यभावसे (नैत्तिक) विधिमें गिनती है॥ (भेद ३) और तिथि क्रमके मध्ये (कन्या) शब्दसे यद्यपि शुभ लक्षण सुताका भी भाव निश्चितहै पर विशेष भाव कन्या शब्दसे शुभ लक्षण भार्याकी अभिलाषा पर आरूढ़हैं तिसका यह सिद्धांतहै कि जिसकी भार्या मरजातीहो या वारम्वार दुःशीला कर्कशा आदि कुभार्या मिलतीहो या जिसको निपट न मिलती हो वह इस बातका नियम साधे कुछ सबके लिये नहीं-और पशु या सोना चांदी आदि धातोंकी अपेक्षा से जो तिथें वतलाईं तिनका यह सिद्धांतहै कि उन चीजोंकी वृद्धि चाहै अथवा जो कोई उन चीजोंमेंसे जिस किसी वस्तुका व्यापार करताहै उसके द्वारा अधिक लाभ चाहे जैसे सीसा तांवा रांगा आदिकी भरती करताहै उसमें वारम्वार टोटा देखपड़ता है यह उसके पूर्वकाल या पूर्वजन्मके पापोंका उदय प्रत्यक्ष है तब ऐसी दशामें यह नियम कर्त्तव्यहै किन्तु साधारण दशामें नहीं २६१।२६२।२६३॥

अब इस्से आगे इसी प्रकार नक्षत्र विशेषमेंभी श्राद्धकरनेका फल विशेषकहतेहैं॥

स्वर्गंह्यपत्यमोजश्चशौर्यंक्षेत्रंबलंतथा। पुत्रंश्रैष्ठ्यंससौभाग्यंसमृद्धिंमुख्यतांशुभम् २६४॥
प्रवृत्तचक्रताचैववाणिज्यप्रभृतीनपि। अरोगित्वंयशोवीतशोकतांपरमांगतिम् २६५॥
धनंवेदान्भिषक्सिद्धिंकुप्यंगाअप्यजाविकाम्। अश्वानायुश्चविधिवद्यःश्राद्धंसंप्रयच्छति २६६॥
कृत्तिकादिभरण्यंतंसकामानाप्नुयादिमान्। आस्तिकःश्रद्दधानश्चव्यपेतमदमत्सरः २६७॥

ऐं०—चतुर्णांसह—पहले २६६ के उपरांतसे दृष्टिकरो-कृत्तिकाको आदिलेकर भरणी के अन्तताईं २७ नक्षत्रोंमें जोकोई सम्यक्विधिसे श्राद्धदेताहै सो वहपुरुष इनश्लोकोंमें कहेहुये कामोंको पावैहैपरन्तुजो(आस्तिक)होकरकरै अर्थात् निजहृदयसे उत्पन्न हुये विश्वासपूर्वक-और(श्रद्धान)भी हो किन्तु जोकुछकरै सोअतिशय आदरसहित-और(व्यपेतमदमत्सर)भीहो किन्तु मदकहियेगर्व और मत्सरकहिये ईर्प्या इनसे व्यपेत कहिये रहित होकरकरै तो यथोक्त भिन्न २नक्षत्रोंमें करनेसे जैसा २ फलकहा है सो

तद्रूप मिलै तिसका वर्णन २६४ के प्रारम्भ से,देखो-(कृत्तिका) नक्षत्रमें करनेसे (स्वर्ग) फल अर्थात् स्वर्गके समान इसी देहसे इसी संसारमे निरतिशय सुखपावे १-(रोहिणी) नक्षत्रमें करनेसे (अपत्य) फल अर्थात् पुत्र पौत्र प्रपौत्र कन्या आदि सब तरहकी संतान वृद्धिहो २-(मृगशिर) में करनेसे (ओजस) फल अर्थात् आत्मशक्तिकी अतिशयता किन्तु निज शरीरमें अत्यन्त पराक्रमका होना ३-(आर्द्रा) में करनेसे (शौर्य) फल अर्थात् निर्भयत्व सब ओरसे ४-(पुनर्वसु) में करनेसे (क्षेत्र) फल अर्थात् खेती आदिमें संपन्नता की वृद्धि ५-(पुष्य) में करनेसे (बल) का फल अर्थात् शरीर सम्बन्धी पराक्रम और अनुगामी मनुष्योंकी सहायता ६-(श्लेषा) में करनेसे (पुत्र) फल अर्थात् गुणवान् और आज्ञाकारीपुत्रहों ७-(मघा) में करनेसे (श्रैष्ठ्य) फल अर्थात् अपनी जातिमें वड़प्पनका मिलना ८-(पूर्वाफाल्गुनी) में करने से (सौभाग्य) फल अर्थात् सर्वत्र सर्वजनोमें अविरोध पूर्वक प्रियता और दर्शनीयताहो ९-(उत्तराफाल्गुनी) में करने से (समृद्धि) फल अर्थात् धन जन आदिकी संपन्नता उन्नति पूर्वकहो १०-(हस्त) में करने से (मुख्यता) फल अर्थात् अग्रणी होना किन्तु प्रत्येक व्यवहारोमें मुखिया कहलाना ११-(चित्रा) में करने से (शुभं) फल अर्थात् सभी प्रकारके मंगलोंकी वृद्धि किन्तु कोई भांतिसे अमंगल नहीं १२।२६४-(स्वाति) में करने से (प्रवृत्तचक्रता) फल अर्थात् सर्वत्र अप्रतिहत आज्ञाका होना किन्तु जिसकी उचित आज्ञामें विघ्न प्रतिवन्ध नहीं होने पावे १३-(विशाखा) में करनेसे (वाणिज्य) आदि फल अर्थात् वाणिज्य तो सर्व वस्तुका क्रयविक्रय और आदि शब्दसे कृषी और कुसीद कहिये व्याज वट्टेका देनलेन और गोरक्षकर्म कहिये पशुओं को व्यापारकी रीतिसे पालना यह वातेंभी समझलेनी किन्तु इन सारी वातोकी सिद्धि का होना १४-(अनुराधा) में करनेसे (अरोगित्व) फल अर्थात् शरीर और कुटुम्बमे निरोगताका होना १५-(ज्येष्ठा) में करनेसे (यश) फल अर्थात् संसारमें प्रख्यातिका होना १६-(मूल) नक्षत्रमें करनेसे (वीतशोकता) फल अर्थात् सर्व शोकोंका नाश किन्तु प्रिय वियोग आदि शोकोंका न होना १७-(पूर्वाषाढ़) में करनेसे (परमागति) फल अर्थात् ब्रह्म लोकोंकी प्राप्ति १८।२६५-(उत्तराषाढ़) में करनेसे (धन) अर्थात् सुवर्णादि द्रव्योंकी प्राप्ति १९-(श्रवण) मे करनेसे (वेद) फल अर्थात् वेदादि धर्मशास्त्रादि सर्वशास्त्रोंकी संपन्नता होना २०-(धनिष्ठा) में करनेसे (भिषक्सिद्धि) फल अर्थात् जो वैद्यक शास्त्रकी विद्या सीखे या जो रसादिक औषध बनावे या सीखीहुईके द्वारा किसीपर हाथ डारे तौ तत्काल उसके हाथसे आरामकी सिद्धिहो और यश मिलै २१-(शतभिषा) मे करने से(कुप्यं)फल अर्थात् सोना चांदीसे भिन्नताम्रादि सबधातोके व्यापार आदि फलकी सिद्धि २२-(पूर्वाभाद्रपद)में करनेसे(गाव)फल किन्तु गा.गौवें और अपिशब्दकीलक्षणा से औरभी वैल भैंसआदि सवकामोकी सिद्धि २३-(उत्तराभाद्रपद) में करनेसे(अजा)फल

किन्तु बकरी संबन्धी कामोंकीसिद्धि २४-(रेवती) में करनेसे (आविक)फल अर्थात् भेड़ों संबंधी कामोंकी सिद्धि २५-(अश्विनी)में करनेसे(अश्व)फल अर्थात् घोड़ासंबन्धी कामों कीसिद्धि २६-(भरणी,)में करनेसे(आयुः)फल अर्थात् पूर्णायुभर जीवै २७-इसमें भी सिद्धांत वही समुझना जैसा तिथोंके फलकथनमें लिखाथा किंतु जिसवस्तुकी पीड़ा वा अपेक्षा जिसकोहो वहउसीवस्तुके संबंधी नक्षत्रमें निरंतर पार्वणविधिसे श्राद्धकियाकरे तो निःसंदेह उसकीवह पीड़ा दूरहोवै और कामनापूरीहो २६६। २६७॥

१ अभि०-(समुत्थितसंदेहानामत्रनिर्णयश्च)-यहांपर यहसंदेह निर्णय करतेहैं कि २५७ और २५८ इनके पिछले अद्धमें जो कहाथा कि हविष्यान्न आदि उक्तवस्तुओं के श्राद्धदेनेसे इससंसारमें पितामहसंबंधी तीनोंपितर मासमासकी वृद्धिपूर्वक अभितृप्त होतेहैं सो यहकथन(अनुपपन्न)अर्थात् ठीक नहींहै क्योंकि अपने २ शुभ अशुभ कर्मोंके वशहोकर स्वर्ग अथवा नरकमें पहुँचेहुये मनुष्योंकी पुत्रादिकों करके दियेहुये अन्नपानादिसे तृप्तिहोनी असंभव है किन्तु न जानिये उन्होंने कहां २ उत्तमलोकों में जन्मपायेहों या किस २ योनिमें अपनेपापोंके फल भोगतेहों फिर इनकीतृप्ति अबके दियेहुये अन्नपानादिसे क्योंकर होसक्ती है-भलायहभीमाना कि भावतृप्ति होतीहोगी क्योंकि अबका दियाहुआ उनको उस पापिष्ठयोनिमें पहुँचकर सहायता करताहोगा जिसमें उन्होंने जन्मपाया और क्लेशितहोरहेहों किन्तु उसयोनिमेंभी अबकेदियेसे कुछ क्लेशकीशांति होतीहोगी अथवा पुण्ययोनिमें जन्मपायाहोगा तो यद्यपि उसमें सुखी होंगे पर अबकेदियेकी सहायतासे कुछअधिकसुख मिलताहोगा(तथापि)शंकाहोती है कि जब आपही पराधीन और असमर्थहैं कि पुत्रादिकोंके दियेहुयेकी सहायता और तृप्तिमें आकांक्षा वा लालसा रखतेहैं फिर पुत्रादिकोंको क्योंकर स्वर्गादिफल देसक्ते हैं जो नानाप्रकारके फल वर्णनकरते चलेआतेहो क्योंकि दूसरेको कुछदेना यह अपनी शक्तिबिना कदाचित् नहींहोसक्ता(फिर)उन पराधीनोंमें ऐसीकौनसी वहशक्तिहै जिस्से वे पुत्रादिकोंको सबसंसारी वा असंसारी सुखदेसक्तेहैं-इसी शंकाकी शान्तिमें नीचे दोश्लोक वर्णनकियेजातेहैं सो देखो २६४।२६५।२६६।२६७॥

वसुरुद्रादितिसुताः पितरःश्राद्धदेवताः । प्रीणयंतिमनुष्याणांपितॄन्श्राद्धेनतर्पिताः २६८॥
आयुः प्रजांधनंविद्यांस्वर्गंमोक्षंसुखानिच । प्रयच्छंतितथाराज्यंप्रीतानॄणांपितामहाः २६९॥

मक्ष०सहद्वयो-वसु १ रुद्र २ अदितिकेपुत्र ३, यहतीनों पितर और येही श्राद्धके देवताहैं श्राद्धद्वारा तर्पितहुये मनुष्योंके पितृनको प्रीणन करतेहैं २६८ तथा येही पितामह प्रीतहोतेहुये मनुष्यों को-आयु-प्रजा-धन-विद्या-स्वर्ग-मोक्ष-सर्वसुख-राज्य-यह सबदेतेहैं २६९ ॥ यहांपर पहले श्लोकमें (पितर) और दूसरेमें(पितामह) यह दोनों शब्द देवताओंके वाचकहैं सो इसकाभाव अभिप्रायार्थमें समझलो ॥

भाभि०सहृद्यो:—इनदोनों से पहले चार श्लोकोंकी अधिकोक्तिवाली शंकामें समाधान करतेहैं कि यद्यपि देवदत्त १ कृष्णदत्त २ विष्णुदत्त ३ इत्यादि पिता १ पितामह २ प्रपितामह ३ तीनोंके नामगोत्र उच्चारणकरिके श्राद्ध कियाजाता है तथापि श्राद्ध कर्मकीव्यवस्थामध्ये देवदत्तआदि तीनों बाप दादा परदादाही श्राद्धके(संप्रदानभूत) नहीं अर्थात् जिनकानामलेकर श्राद्धकियाजाताहै यथार्थमें केवलउनकोही नहींदिया जाता किन्तु कुछ वेही श्राद्धके भोक्ता या फलदाता नहीं हैं क्योंकि उनके नतो पहलेसे देहमात्रहैं न आत्मामात्रहैं केवलदेवदत्तआदि नाममात्र उच्चारणकियेजातेहैं सो इस नाममात्रके उच्चारणसे उनके एकभिन्न प्रकारके शरीरविशेषोंका उद्देश कियाजाता है (तथापि) केवल देवदत्त आदि इन्हींनामोंसे उद्देश नहींकियाजाता किन्तु उनके साथ वसु १ रुद्र २ आदित्य ३ इनकाभी उच्चारण कियाजाता है (उदाहरण) जैसे अमुक गोत्र अस्मत्पिता देवदत्तशर्मा वसुस्वरूप.(एवं)अस्मत्पितामहः कृष्णदत्तशर्मा रुद्र स्वरूप (एवं)अस्मत्प्रपितामहो विष्णुदत्तशर्मा आदित्यस्वरूपः-अथवा-तीनोंका एक साथ उच्चारण करनाहुआ तो इसरीतिसे कि-पितृपितामहप्रपितामहाः वसुरुद्रादित्य स्वरूपाः-सो यथार्थमें वसु रुद्र आदित्य येही तीनों पितामह शब्दवाच्यहैं किन्तु पितामह येहीकहलातेहैं और येहीतीनों श्राद्धके अधिष्ठातृ देवताहैं इसलिये इनतीनों का और देवदत्त आदि तीनोंका एकसाथ आवाहन कियाजाताहै-इसीहेतुसे देवदत्त आदि तीनों बाप दादा परदादाभी तीनों अधिष्ठातृ देवताओंकरके सहित पित्रादि शब्दोंसे विख्यातहैं-इसीकारणसे पुत्रादिकों करके दियेहुये अन्नादि वस्तुसे प्रथम वसु आदि तीनों देवता भोक्ताहोकर तृप्तहोतेहैं फिर वे आप तृप्तहुये देवदत्त आदि मनुष्योंके पितृन्कोभी तृप्तकरतेहैं और वेहीदेवता अपने ज्ञान १ शक्ति २ अतिशय योग ३ इनतीनों उपकरणोंसे श्राद्ध कर्त्ता लोगोंकोभी कहेहुये फलोंसे संयुक्त करतेहैं-इसभांति पितरोंके श्राद्धसे मनुष्योंको फलमिलताहै किन्तु उनके अधिष्ठाता देवता संपूर्ण फलदेते हैं सो वह उन्हींकादेना कहलाता है इसलिये शंकाकरने का अवसर नहींहै २६८। २६९॥

अपि०सहृद्यो:—यह उपशंकाभी निर्मूलहै कि वेही पितरोंकोभी तृप्तकरते और वेही श्राद्धकर्त्ताको फलदेतेहैं क्या एकसे दोकामहोना संभवहै-इसमें(दृष्टांत)दियाजाता है कि जैसे सगर्भास्त्रीको बहुभांति अन्नोंकी लालसा पूरीकरने तथा शरीर पोषणके भी लिये पति आदि करके अन्नदियेजातेहैं वह सगर्भा उन्ही अन्नोंसे प्रथम आपभोजन करके तृप्तहोती है पुनि आप संतर्पितहुई गर्भगत संतानकोभी संतर्पित करती किंतु गर्भगत बालक अपनी माताकेही आहारसे पलताहै-पुनि वही सगर्भा संतर्पित हुई संतानको तर्पित कियेपीछे पुत्रादिफल उत्पत्तिद्वारा अन्नदाता पतिआदिको भी फल

संयुक्त करतीहै फिर देवताओंको ऐसाकरना क्याअसंभवहै क्योंकि वसु रुद्र आदित्य जो तीनोंकहे सो केवल एक२नही किन्तु वसुभी आठ८हैं सो पितापक्षके अधिष्ठाता तथा ग्यारह११रुद्रहैं सो दादापक्षके अधिष्ठाता औरबारह१२आदित्यहैं सो परदादा पक्षके अधिष्ठाता पुनि येही नानापक्षमें तीनोंपुरुषके अधिष्ठाता इसीक्रमसेहोतेहैं फिर इतनोंको मिलकर श्राद्धकर्त्ताको फलदेना क्याअसंभवहै इस्से कोईभांति शंका करने का अवकाश नहींहै २६८।२६९॥

॥ इतिसर्वश्राद्धप्रकरणम् ॥

ज्ञातव्यहै कि २१६ और २१७श्लोकसे श्राद्धप्रकरण का प्रारम्भ हुआथा और २५३ के श्लोकतक इसप्रकरणका पूर्वार्द्ध पूराहोगयाथा वहांपर पूर्वार्द्धकी समस्या लिखनी रहगई सो अबकीबार छपने में लिखीजायगी इनपुस्तकों में अपनी बुद्धिसे समझलेना और २५४ से उत्तरार्द्धका प्रारंभहोकर यहांतक पूराहुआ ॥

अथ सर्वविघ्नादिशांति प्रकरणम् ॥

विनायकःकर्मविघ्नसिद्ध्यर्थंविनयोजितः। गणानामाधिपत्येचरुद्रेणब्रह्मणातथा २७० ॥

भक्ष०—कर्मोंकी विघ्नसिद्धिके लिये ब्रह्माकरके तथा रुद्रकरकेगणोंके आधिपत्यमें विनायक विनयोजित कियाहै २७० ॥

भभि०—(विनायक)कहिये विघ्नेश्वर किन्तु महागणपति गणोंके(आधिपत्य)में अर्थात् पुष्पदन्त आदि भयंकरगण समूहोंके सेनापतित्वमें नायकरूप(विनयोजित)किया अर्थात् उस धंधेमें लगायाहै-किसने ब्रह्माने तथा रुद्रने और चकारके आशयसे विष्णु ने भी-सो किसलिये कि संसारी फल साधकरूप कर्मोंमें(विघ्नसिद्धि)केलिये अर्थात् भयंकर गणोकेद्वारा यथोचित विघ्नपूर्वक उनकर्मोंकी फलसिद्धिका विघात करने के लिये-यद्वा-(गौणपक्ष)से यहअर्थभी होसक्ताहै कि कर्मोंमें विघ्न और सिद्धिकेलिये किंतु विघ्न कियेपीछे अपनी मान्यता वा पूज्यताहोनेपर कर्मकी सिद्धिकेअर्थ परन्तु यह अर्थ श्रेष्ठनहींहै किंतु मुख्यअर्थ वहीहै जो पहलेकहा २७० ॥

भधि०—इसकथनसे यह तात्पर्य है कि जो मनुष्य किसीप्रकारकी फल साधकताके लिये पूर्वोक्त उत्तम कर्मोंको बारम्बार करताहै और उसमें विघ्नोंकी उत्पत्ति बारम्बार होती यद्वा उनकर्मोंसे यथोक्तफलकी प्राप्तिनहींदेखपरती तिसका यहीकारणहै कि विघ्नोंकेकारकहेतु असंख्यगण जगत्के अधिष्ठाता ब्रह्मा विष्णु रुद्रों करके नियुक्त किये हुये फिरते हैं-यद्यपि वेभी प्रारब्धों के अनुकूलही विघ्नकरते किन्तु उत्तम प्रारब्धी को नहीं छेड़सक्ते परकदाचित् यहभ्रांतिहो कि जगत्के अधिष्ठाताओंका रक्षा और पालन आदि कामहै कि बनतेको बिगाड़ते फिरना यहक्याउनकी शोभाहै सोयहबातनहीं किंतु ये विघ्नकारक हेतुभी केवल जगत्की रक्षाकेही लिये नियुक्त किये हैं अर्थात् प्रजाको

यह एक प्रकारका भय दिखलाना केवल सुमार्गताके निमित्त से ब्रह्मा रुद्रने निरूपित कियाहै क्योंकि भयके विना प्रीतिभी नहीं होती और जब उसके बनायेहुये संसारी मनुष्य राजा आदि अपने आतंक या प्रजाकी सुमार्गताके लिये नाना भांतिकी भय कल्पना करते हैं कि जिस्से प्रबन्धमें दृढ़ता बनी रहै और प्रजा हमसे विमुख नहीं होनेपावे फिर सारे जगत्के अधिष्ठाता ऐसा नहीं करैं तो जगत् उनके वशमें कैसे रहै २७०॥

तेनोपसृष्टोयस्तस्यलक्षणानिनिबोधत । स्वप्नेऽवगाहतेऽत्यर्थंजलंमुंडांश्चपश्यति २७१ ॥
कापायवाससश्चैवक्रव्यादांश्चाधिरोहति। अंत्यजैर्गर्दभैरुष्ट्रैःसहैकत्रावतिष्ठते २७२ ॥
व्रजन्नपितथात्मानंमन्यतेऽनुगतंपरैः २७३ ॥

ऐ० सार्द्धद्वयोःसह-(हेमुनयःतस्यलक्षणानिनिबोधत) इस प्रकार योगीश्वर याज्ञवल्क्य फेर उन मुनियोंको संबोधित करते हैं जिनसे सबसे पहले प्रश्न करनेपर द्वितीय श्लोकमें यह कहाथा कि-(यस्मिन्देशेमृगःकृष्णःतस्मिन्धर्मान्निबोधत) हे मुनयः जो कोई पुरुष (तेन-उपसृष्टः) कहिये तिस पूर्वोक्त विनायकसे पकड़ाहुआ होवै तिसके लक्षण समझो कि वह विनायकसे पकड़ाहुआ स्वप्नमें (अत्यर्थंजलावगाह) करैहै अर्थात् अत्यंतही अगाध जलमें गोतेसे खावै है और (मुंडान्पश्यति) किन्तु मुड़ेहुये शिरों के मनुष्योंको देखताहै २७१ (कापायवाससश्च) किन्तु गेरुआ और नीले खाकी आदि वस्त्रवालोंको भी देखताहै (एव) निश्चय जानो (क्रव्यादांश्चाधिरोहति) किन्तु क्रव्याद नाम मांस भक्षी व्याघ्र आदि या गृध्र आदि पक्षीभी तिनपर आप आरोहण करता है या उनके साथ घिरा फिरताहै ऐसेही (अंत्यज) चांडाल और गर्दभ और ऊँट इन करके सहित एकत्र बैठताहै या इनपर भी चढ़ता है २७२ तैसेही (व्रजन्) अर्थात् जाताहुआ मार्गमें (आत्मानं) कहिये अपनेको (परैः) अर्थात् शत्रुओं यद्वा राजदूतों अथवा बटमारों आदि करके (अनुगतं-मन्यते) किन्तु घेराहुआ मानै है अर्थात् जैसे यह लोग पीछेसे दौड़ेहुये पकड़ने या मारनेको झुके चलेआते हैं तैसी अति खिन्न दशा स्वप्नमें भोगताहै ॥ यहां तक अढ़ाई श्लोकों से अतिभयानक स्वप्नरूप विघ्न ज्ञापक हेतु कहे अर्थात् इन लक्षणों से जानाजाता है कि यह पुरुष विघ्नविनायकसे गृहीत है २७३ ॥

अब नीचेके अढ़ाई श्लोकोंसे साक्षात् जाग्रत् अवस्थामें विघ्न
ज्ञापक हेतुओं के स्वरूप लक्षण कहते हैं ॥

विमनाविफलारंभःसंसीदत्यनिमित्ततः २७३ ॥
तेनोपसृष्टोलभतेनराज्यंराजनन्दनः। कुमारीचनभर्तारमपत्यंगर्भमंगना २७४ ॥
आचार्यत्वंश्रोत्रियश्चनशिष्योऽध्ययनंतथा । वणिग्लाभंनचाप्नोतिकृषिंचापिकृषीवलः २७५ ॥

ऐ०सार्द्धद्वयोःसह-(विमना) कहिये बिगड़ा हुआ मन किन्तु विकृत चित्त विक्षिप्तसा

मनुष्य होजाता है और (विफलारम्भः) किन्तु जो कुछ आरम्भ उद्योग आदि करता है सो विफल होजाता अर्थात् कियाहुआ कर्म संसिद्ध नही होता जिस्से फल पावै औरभी (अनिमित्त –संसीदति) अर्थात् विना कारणकेही अकस्मात् खिन्नमन खिन्न शरीर होकर दीनसा होजाता और मुखकी कांति जाती रहती है २७३ उस विघ्नविनायकसे पकड़ाहुआ राजनन्दनभी राज्य नहीं पाता अर्थात् राजकुलमें जन्म पाकर और श्रुत शौर्य धैर्य आदि गुण संयुक्त होकर भी राज्यका अधिकार नहीं पाता-(कुमारीच–नभर्त्तारं) अर्थात् कन्याभी रूप लक्षण अभिजन आदि सम्पन्न होने पर भी यथेप्सित वरढूंढे नहीं पाती-और (अंगना-अपत्यं) अर्थात् स्त्री गर्भवती होकर भी संतान नहींपाती-और (गर्भं) ऋतुमती अर्थात् मासिक धर्म होनेपर भी गर्भनही पातीहै २७४ (आचार्यत्वं-श्रोत्रियश्च) अर्थात् श्रुत अध्ययन तदर्थ ज्ञान इनके होने परभी आचार्यत्व की पदवी वा अधिकार श्रोत्रिय नहीपाताहै-तथैव (शिष्य) भी विनय आचारादि युक्त होने परभी (अध्ययन) अर्थात् पढ़ना या तो प्राप्त नहीं करसक्ता यद्वा पढ़ाहुआ याद वा स्पष्ट नहीं करसक्ता-(वणिग्लाभंनचाप्नोति) अर्थात् वाणिज्यवाला अपने व्यापारसे लाभनही करसक्ता और (कृषिंचापि-कृषीवलः) अर्थात् कृषीवल कहिये कृषाण सो खेती से फल नहीपाता-तब इनकेहेहुये लक्षणों से जानाजाताहै कि यहमनुष्य विघ्नविनायकसे ग्रहीतहै २७५ ॥

इसप्रकार विघ्नोंकेकारकहेतु और ज्ञापकहेतुभी कहे-अब आगे इनकी शांतिका विधान कहते हैं ॥

स्नपनंतस्यकर्त्तव्यंपुण्येह्निविधिपूर्वकम् । गौरसर्षपकल्केनसाज्येनोत्सादितस्यच २७६ ॥
सर्वौषधैः सर्वगन्धैर्विलिप्तशिरसस्तथा । भद्रासनोपविष्टस्यस्वस्तिवाच्याद्विजा शुभाः २७७ ॥

ऐ० सहृदयो'–पुण्यदिवसमेंउसकाविधिपूर्वक(स्नपन)कर्त्तव्यहै अर्थात्पुण्यदिनकाहिये अपनी राशिआदिके अनुकूल चन्द्रनक्षत्रादिसे दिनदेखकर यथोक्त पद्धति आदिकी विधिसे(स्नपन,कहिये अभिषेक करै उसका कि जो पुरुष विनायक से उपसृष्टहो-अथवा-उपसृष्ट तो नहींहै पर किसी उत्तमकार्यके प्रारम्भसे पहले विनायक से उपसृष्ट नहोनेकी वांछासे अर्थात् निर्विघ्न परिसमाप्तिके हेतुसे विनायकसे न पकड़ाहुआ भी अभिषेचन कर्मकरे सो यह अभिषेक दिनमेंकरै किंतु रात्रिमेंनहीं सो इसविधिसे कर्त्तव्य है कि पहले पीली सरसों छिलका उतारीहुईका कल्क अर्थात् लुगदी या लुगदीघुटी हुई घृतसहित गाढ़ लेपकेअनुमान बनाकर उस्से(उत्सादित)कहिये उद्वर्त्तित किंतु उबटना कियेहुयेका अभिषेककरै जैसा २८० ।,२८१ । २८२ इन तीनों मंत्रसे कहेंगे तिसकीविधि आगे कहतेहैं २७६ , सर्वौषधी, जिनके नामनीचे अधिकोक्ति में,कहे हैं और सर्वगन्धभी जिनकेनाम अधिकोक्तिमें कहेहैं सब मिलाकर शिरमें लेपकियेहुये

और भद्रासन पर बैठेहुयेके प्रति पहले शुभ ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचनहो-ब्राह्मण शुभशब्दके विशेषणासे श्रुताध्ययन आचारादि संपन्नहों और अयोक्त चार कलशोंके उपलक्षणसे संख्यामेंभी ब्राह्मण चारहों पर गुरु यद्वा आचार्य इनसे पांचवांहो और (स्वस्तिवाच्याः)इसविशेषणसे(स्वस्तिभवंतोब्रुवंतु-इतिवाच्याः) अर्थात्उससमयब्राह्मणोंसे कर्त्तापुरुष कहे कि आप स्वस्तिवाचनबोलें तब अभिषेचनकेसाथहीगृह्यशास्त्र के मार्ग से पुण्याहवाचन कियाजावे-भद्रासनका स्वरूप अगले श्लोकों से जाना जायगा २७७ ॥

मधि०सहृदयोः—(कुष्टंमांसीहरिद्रेद्वेमुराशैलेयचन्दनम् ।वचाकचोरकंमुस्तासर्वौषध्यः प्रकीर्त्तिताः)-अर्थात्-कूट-जटामांसी-दोनोंहरिद्रा किंतु हरिद्रा १ दारुहरिद्रा २ मुरामांसी शैलेय-अर्थात् बालछड़ा या छारछबीला जिसे कहतेहैं-चन्दनसुपेद-वच-कचूर-मुस्ता दोनोंप्रकारके यहां मुस्ता नागरमोथा,को कहते हैं-इनकानाम सर्वौषधी कहाहै परन्तु इनके सिवाय औरभी प्रियंगु नागकेसर आदिजो प्रसिद्ध हैं वेभी इनमें संयोज्यहैं—ऐसेही सर्वगंधोंमें भी चन्दन अगुरु कस्तूरी आदिवस्तु प्रसिद्धहैं सो सबलेनीचाहिये इनसबको मिलाकर लेपकरे उसकेशिरमें तब पीछे स्नानको बैठारे २७६ । २७७ ॥-

अश्वस्थानाद्गजस्थानाद्वल्मीकात्संगमाद्ध्रदात् । मृत्तिकांरोचनांगंधान्गुग्गुलुंचाप्सुनिक्षिपेत् २७८ ॥
याआहृताह्येकवर्णैश्चतुर्भिः कलशैर्हृदात् । चर्मण्यानडुहेरक्तेस्थाप्यंभद्रासनंततः २७९ ॥

ऐ०सहृदयोः—अब स्नानकेजलकीविधिकहते हैं कि-घोड़ाके स्थानकी मृत्तिका-हाथीके स्थानकी-सर्पकी बांबीमेंकी मृत्तिका-(संगमात्) अर्थात् दोआदि नदियोंके मिलापस्थानसे-(ह्रदात्)अर्थात् जिसतालावकाजल कभी सूखतानहींहो तिसकी-यह पांचप्रकारकी मँगाईहुई मृत्तिका और रोचनाकहिये गोरोचन और गन्धकहिये सुपेद चन्दन अच्छी सुगन्धिवाला और कुंकुम अगुरु आदि जो प्रसिद्धहैं तिनको और गुग्गुलकोभी यह सबचीजें कूटकर उन जलों में छोड़े २७८ किनमें-कि-जौनसे जल इसी कार्यके नामसे मँगायेहुये एकवर्णवाले चारकलशों करके अशोष्यह्रदमेंसे उपस्थित कियेहों-अशोष्य (ह्रद) अर्थात् जिसतड़ागका जलकभी सूखतानहो अथवा ऐसातडागनहींमिले तोनदी संगमसेभी मँगवाना उचितहै और चारोंकलश अर्थात् कुम्भ एकवर्णके इसलियेकहे कि चाहेपीतवर्णहों चाहे रक्तवर्ण यद्वा श्वेतभी पर सभी एकरंगकेहों और कालेवर्णके नहों औरफूटेनहों छिद्रवाले न हो टेढ़ेमेढे कूबरे नहों स्वरूपमें अतिसुन्दरहों तिनमें ऊर्ध्वोक्तमृत्तिका और गंधादि वस्तुछोड़कर फिर तिसके अनन्तरलाल अनडुहके चर्म पर भद्रासन स्थाप्य है अर्थात् आड़ वृषभका लाल चमड़ा संपूर्ण अखंड जिसकी उत्तरको पूँछ और पूर्वको ग्रीवाकरके बिछाया तिसपर भद्रासन अर्थात् भद्रकहिये अतिसुन्दर मनोरम-आसन जो श्रीपर्णीसे निर्मित किया हुआ और श्वेतवस्त्र से

प्रच्छादित कियाहो सो स्थापित करे तथापि भद्रासन संज्ञा इसकी यथार्थ उस दशामें होगी कि जब लिपेहुये शुद्धस्थानमें पँचरंगा आदि से रचेहुये स्थंडिलवेदी पर स्वस्तिवाचन पूर्वक उक्तचर्मसमेत स्थापितकरे और वेदीके चारों दिशामें पूर्वोक्त जलके चारोंकलश आम्रादि पंच पल्लवोंसे शोभित किये हुये अनेक भांतिके पुष्प माला गन्धादिसे चर्चित कियेहुये अतिउत्तम नवीनवस्त्रोंसे विभूषित कियेहुये स्थापितकरे इसभांति सारीरचना होचुकनेपर उसकीसंज्ञा भद्रासन होतीहै तिसभद्रासन पर वेदीके वीचमें उसमनुष्यको बैठारकर तब उससमय(स्वस्तिवाच्याः-द्विजाः)यह संबंध पूर्वोक्त २७७ के पिछले पदसे लियागया-अर्थात् इस विधिसे बैठारे हुयेका स्वस्तिवाचनहोवै जैसा अगले तीनश्लोकों में कहते हैं २७९॥

सहस्राक्षंशतधारमृषिभिःपावनंकृतम् । तेनत्वामभिषिंचामिपावमान्यःपुनन्तुते २८०॥
भगंतेवरुणोराजाभगंसूर्योबृहस्पतिः । भगमिंद्रश्चवायुश्चभगंसप्तर्षयोददुः २८१॥
यत्तेकेशेषुदौर्भाग्यंसीमंतेयच्चमूर्द्धनि । ललाटेकर्णयोरक्ष्णोरापस्तद्घ्नंतुसर्वदा २८२॥

ऐ०त्रयाणांसह-(सहस्राक्षं) यहजलका विशेषणहै अर्थात् अनेक शक्तिसम्पन्नजल-शतधारं अर्थात् वहु प्रवाहवाला (ऋषिभिः)अर्थात् मन्वादि ऋषियोंकरके यद्वा वेदों करके(पावनं कृतं)अर्थात् पवित्र कियागया पूर्वकालमें अथवा इसीसमय घटोंमें रक्खा हुआ वेदमंत्रोंसे ब्राह्मणोंने पवित्रकिया यह दूसरा अर्थहै परन्तु पहलाअर्थ मुख्यहै (तेन)कहिये तिसीजल से(त्वां)अर्थात् तुम्हें विनायकसे पकड़ेहुयेको उपसर्ग शांतिके लिये(अभिषिंचामि)अभिषेचन करूंहूं (पावमान्यः पुनंतुते) ये पावमान्यजल तुम्हेंपवित्र करें-यह पहलामंत्रहुआ २८० अव दूसरा कहते हैं कि- (भग) अर्थात् कल्याण यद्वा ऐश्वर्य(ते) तुम्हें वरुण राजादेवै-(फेर)भग नाम कल्याण तुम्हें सूर्य देवै-फेर(भग) नाम ऐश्वर्य तुम्हे वृहस्पति देवै-फेर (भग) नाम सौख्य तुम्हें इन्द्रभीदेवै-वायुभी देवै-और (भग)तुम्हेंसप्तऋषिभी देवें २८१अव तीसरामंत्र कहते हैं कि जो तुम्हारे वालोंमें या सीमंत में या मूड़में या ललाटमें या कानोंमें या आंखोंमें (दौर्भाग्य) कहिये अकल्याण वर्त्तमानहो तिसको ये पवित्रकियेहुये जल सर्वदा नाशकरें २८२॥

मधि० त्रयाणांसह-इनमंत्रोंसे पहलेजो स्वस्तिवाचन वतलायाथा तिसके कियेपीछे अभिषेक करनेका यह प्रकारहै कि सौभाग्यवती स्त्रियां जिनकेपति और पुत्र दोनों विद्यमानहों पुनि वेस्त्रियांभी रूपवती गुणवती शीलवती पतिव्रता इन लक्षणोंवाली हों जो इस मंगलकार्यके वुलावेमें घरकी या वाहरकी उपस्थितहों दिव्य वस्त्राभरणों से सुवेषवालीहों ऐसी स्त्रियोंके हाथसे वे पूर्वोक्त घट संस्कार मंगल कियेहों उनमेंसे पूर्वदिशामें स्थापित कियाहुआ कुंभ गुरु अथवा आचार्य अपने हाथसे उठावे तब उठाते हुये वेही स्त्रियां गान वाद्य आदि मंगल उच्चारणकरें इसप्रकार उसघटके जल

से स्नान गुरु करवावे इन तीनमेंसे पहले मंत्रको पढ़तेहुये-पुनि इसी विधिसे दक्षिण दिशाका कलश लेकर दूसरे मंत्रसे अभिषेक करे-पुनि इसी विधिसे पश्चिमदिशाका कलश लेकर तीसरे मंत्रसे अभिषेककरे-पुनि इसी विधिसे उत्तर दिशाका चौथा कुंभ लेकर इन तीनों मंत्रसे स्नान करावे २८० । २८१ । २८२ ॥

स्नातस्यसार्षपंतैलंस्रुवेणौदुंबरेणतु। जुहुयान्मूर्द्धनिकुशान्सव्येनपरिगृह्यतु २८३ ॥

प्रक्ष०—स्नान किये हुयेके मूड़पर कुशाओंको सव्य हाथसे थांभकर गूलरके स्रुवा करके सरसों पीलीके तैलको (जुहुयात्)-अर्थात् अग्रोक्त मंत्रोंको पढ़कर आचार्य अपने दाहने हाथसे तेल छोड़े क्योंकि वायें हाथसे कुशा थांभे है २८३ ॥

मितश्चसंमितश्चैवतथाशालकटंकटौ। कूष्मांडोराजपुत्रश्चेत्यंतेस्वाहासमन्वितैः २८४ ॥
नामभिर्बलिमंत्रैश्चनमस्कारसमन्वितैः। दद्याच्चतुष्पथेशूर्पेकुशानास्तीर्य्यसर्वतः २८५ ॥

ऐ०सहद्वयोः—मित१ सम्मित२शाल३कटंकट४कूष्मांड५राजपुत्र६ यह छःनाम विनायकके कहे इनके ॐकार आदि में और स्वाहा अन्तमें जोड़ेहुये इन्ही छः मंत्रोंसे उर्ध्वोक्त सार्षपतैल होमै-सो इसप्रकारसे जानो-ॐमितायस्वाहा१ ॐसंमितायस्वाहा२ ॐशालायस्वाहा३ ॐकटंकटायस्वाहा४ ॐकूष्मांडायस्वाहा५ ॐराजपुत्रायस्वाहा६ इस पीछे लौकिक अग्निमें स्थालीपाक विधिसे पकायेहुये (चरु) को अग्रोक्त इन्हीं छः मंत्रोंसे उसी अग्निमें होमिकर (उसमेंसे) वचीहुई खीरिका बलिदान बलिके मंत्रों से अर्थात् चतुर्थ्यंत दशदिग्पाल नामोंके नमस्कार अन्तमें जोड़ेहुये बलिदान के मंत्रों से-इन्द्र१ अग्नि२ यम३ निऋति४ वरुण५ वायु ६ कुबेर ७ ईशान ८ ब्रह्मा ९ अनन्त १० इनको उसी कर्मशालाके भीतर दशोंदिशामें यथाक्रमसे दद्यात् यह दो सौ पचासीके उत्तरार्द्ध प्रारम्भ तक सम्बन्ध रहा-पुनि इस्से आगे निचले श्लोकोंमें कहीहुई सामग्रीका उपहार लेकर (शूर्पे-सर्वतः कुशान्-आस्तीर्य-चतुष्पथे) (निदध्यात्) इत्यधिकायोजना-अर्थात् सूपमें सब ओर कुशा बिछाकर उसमें नीचे कहीहुई सामग्री का उपहार रखकर चौराहे में रख देवे-किन्तु वहां जाकर उसके रखने का प्रकारभी नीचेके श्लोकोंसे प्रकट होगा (और) यह भी प्रकट होगा कि यह उपहार वस्तु पहले विनायक और अम्बिका उसकी जननीको भी अर्पण किये पीछे उसका शेष सूपमें रक्खाजावे सो अब कहते हैं २८४ । २८५ ॥

कृताकृतांस्तन्दुलांश्चपललौदनमेवच। मत्स्यान्पक्कांस्तथैवामान्मांसमेतावदेवतु २८६ ॥
[illegible] । मूलकंपूरिकापूपंतथैवोंडेरकस्रजः २८७ ॥
[illegible] तान्सर्वान्समाहृत्यभूमौकृत्वाततःशिरः २८८ ॥
विनायकस्यजननीमुपतिष्ठेत्ततोम्बिकाम्। दूर्वासर्षपपुष्पाणांदत्वार्घ्यंपूर्णमञ्जलिम् २८९ ॥

ऐ०चतुर्णांसह—यहां पर सबसे पहले २८८ और २८९ के श्लोक पर दृष्टि करो कि

इन्हीं श्लोकोंमें अढ़ाई श्लोकसे सब सामग्रीका उपहार विनायक और उसकी जननी अम्बिकाके आगे रखकर और भूमिमें शिर झुकाकर दोनोंके समीप स्थित होवे इस कर्मको (उपस्थान) कहते हैं उपस्थानकी विधिका मंत्र भी २९० श्लोकमें कहेंगे परंतु उपस्थान पीछे करे किन्तु पहले उपहार देकर तिसके अनन्तर दूर्वा सरसों पीली और पुष्प सुगंधिमान् और चन्दन इनसे भरीहुई जल सहित अंजलीका अर्घ्य दोनोंको देकर तब पीछे उपस्थान करे पुनि उपहारसे बचीहुई सामग्रीको पूर्वोक्त विधिसे सूप में लेजाकर चौराहे में धरै यह सम्बन्ध २८५ से चलाआता है-अब ऊपरके अढ़ाई श्लोकोंकी सामग्री समझो-(कृताकृतांस्तंडुलान्) अर्थात् कुछेक उसिजेहुये अधकच्चे चावर १ (पललौदनं) अर्थात् पलल कहिये तिलकुटा तिसमें मिलाया हुआ ओदन कहिये भात २ (मत्स्य) मछरी पकी कच्ची दोनों भांतिकी ३ (मांसमेतावदेवतु) अर्थात् मांसभी कच्चापक्का दोनों तरहका ४ (पुष्पंचित्रं) अर्थात् पीले काले लाल सुपेद आदि सब तरहके फूल ५ (सुगंधंच) चन्दनआदि नानाभांतिकी सुगन्धवस्तु ६ (सुरांचत्रिविधामपि) तीनों भांतिकी मदिरा किन्तु एक तौ (गौडी) जो गुड़से बनती है दूसरी माध्वी जो सहत आदिसे बनती है तीसरी (पैष्टी) जो पिष्टादि वस्तुसे बनती है ७ (मूलकं) मूली मूरी इतिच भाषा विख्याता ८ (पूरिका) पूरी इति प्रसिद्धा ९ (अपूपः) अर्थात् गोधूम चूर्णका कसार और पुआ भी १० (उंडेरकस्रजः) अर्थात् चूनकी कच्ची और घृतपक्व गोलियोंकी पोहीहुई मालावत् सूधी लड़ी ११ (दध्यन्नं) अर्थात् दही मिलाहुआ उड़द का चूर्ण भूनाहुआ यद्वा कचा भी १२ (पायसं) दूधकी खीरि १३ (गुडपिष्टं) गुड़ मिला हुआ धान आदिका चूर्ण १४ (मोदक) लडुआ लड्डू कई प्रकारके १५ यह सारी वस्तु उपहार मध्ये कहीगई २८६।२८७।२८८।२८९॥

भधि०चतुर्णांसह—यहकहीहुई सामग्रीकाउपहार भिन्नभिन्नविनायकके आगे और उन की जननीकेभी आगेरखकर और पृथ्वीमेंशिरझुकाकर भिन्न२उपहारसंबंधी मंत्रउच्चारणकरै-यथा-(तत्पुरुषायविद्महेवक्रतुण्डायधीमहितन्नोदन्तीप्रचोदयात्)-यह गणपति केआगे-और-(सुभगायैविद्महेकाममालिन्यैधीमहितन्नोगौरीप्रचोदयात्)-यह जननी केउपहारमध्येमंत्र है-इन मंत्रों को शिरझुकाते समय उच्चारण करिके नमस्कार करे तिसपीछे पूर्वोक्तरीतिसे अंजली देवे तिसपीछे अग्रोक्त २९० के मूलश्लोकी मंत्र से उपस्थान करे तिसपीछे उपहार शेषवस्तु सूपमें पूर्वोक्तविधिसे लेजाकर चौराहे में धरै तहांपर इनमंत्रोंको शिरझुकातेहुये बोले-यथा-(वलिंगृह्णंत्विमेदेवाआदित्याव सवस्तथा १ मरुतश्चाश्विनौरुद्राःसुपर्णःपन्नगाग्रहाः २ असुरायातुधानाश्चपिशाचो रगमातरः ३ शाकिन्योयक्षवेतालायोगिन्यःपूतनाःशिवाः ४ जृंभकाःसिद्धगंधर्वामाया विद्याधरानराः ५ दिक्पालालोकपालाश्चयेचविघ्नविनायकाः ६ जगतांशांतिकर्त्तारो

ब्रह्माद्याश्चमहर्षयः ७ माविघ्नंमाचमेपापंमासंतुपरिपंथिनः ८ सौम्याभवंतुतृप्ताश्चभूतप्रेताःसुखावहाः ९-अवनीचे उपस्थान का मंत्रदेखो जिसकी चर्चा ऊपर कईवार आचुकीहै २८६। २८७। २८८। २८९॥

रूपंदेहियशोदेहिभगंभवतिदेहिमे। पुत्रान्देहिधनंदेहिसर्वकामांश्चदेहिमे २९०॥

भक्ष०-हेभवति अंबिके मुझेरूपदेहि यशदेहि(भग)ऐश्वर्य और कल्याणदे अनेक पुत्रदे धनदेहि और मुझे सर्व अपेक्षित कामोंके फल देहि २९०॥

भभि०-यद्यपि मूलश्लोकी मंत्र और उसका अक्षरार्थ जो ऊपर लिखागया सो केवल एकपक्षमें कहा अर्थात् भगवती अंबिका के उपस्थान पर घटता है परन्तु अभिप्राय इसका दोनोंके उपस्थान पर निश्चितहै क्योंकि मुख्यभावसे गणपतिका यहविधानहै इसलिये गणपति के सन्मुख उपस्थानकी प्रार्थनामें इसप्रकारसे उच्चारण करना चाहिये-यथा-(रूपंदेहियशोदेहिभगंभगवन्देहिमे । पुत्रान्देहिधनंदेहिसर्वकामांश्चदेहिमे २९० अर्थइसका जो अक्षरार्थमें ऊपर लिखागया वहीठीकहै पर इसमें संबोधन (हे भगवन् गणपते) इसप्रकारसे हुआ २९०॥

ततःशुक्लाम्बरधरःशुक्लमाल्यानुलेपनः। ब्राह्मणान्भोजयेद्दद्याद्वस्त्रयुग्मंगुरोरपि २९१॥

ऐ०- तिसपीछे वह अभिषेकवान् यजमान शुक्लाम्बर धारण कियेहुये और शुक्ल माल्य अनुलेपन आभूषण आदिसे संयुक्तहुआ ब्राह्मणोंको भोजनकरवावै और यथा शक्ति संभवके अनुसार विनायक के निमित्तकी दक्षिणा देवै और गुरुको यथाशक्ति दक्षिणाके सिवाय उत्तम दो वस्त्रभी देवै-यहांपर गुरुशब्दसे कुछमंत्र वा विद्यादाता वा कुलगुरु आदि गुरुओंसे अपेक्षानहींहै किंतु जो श्रुताध्ययन वृत्तआदिसे संपन्न हो और विनायक स्नपन विधिका जाननेवाला निश्चित करिके इस कार्यमात्रमें गुरु हुआहो-और (अपि)शब्दकी लक्षणासे अपनेपूर्वोक्त गुरुओंकोभी पूज्यताकी रीतिसे जो बनिआवै सो देवै और इसी (अपि)शब्दकी लक्षणासे कर्मकर्तृत्वका परिश्रम उन ब्राह्मणोंको जुदादेवै उसमें कुछ गणपति का उद्देश अपेक्षित नहीं है २९१॥

भधि०-इस अधिकोक्तिमें प्रकृत वर्णन मात्रका संक्षेप अनुक्रम कथन करतेहैं इसलिये कि कोईबात प्रकृत वर्णनमें व्यतिक्रम से आगेपीछेभी कहीगईहो तो अग्रोक्त अनुक्रमकेअनुसार यथोचित समुझलीजावे-(अथ प्रयोगक्रमः)-प्रथम चारोंब्राह्मणों सहित उक्तलक्षण वाला गुरुमंत्रों पूर्वक भद्रासन की रचनाकरै-फिर उसभद्रासन के समीप विनायक और अंबिका उसकी जननीको कहेहुये दोनोंके मंत्रोंसे गंध पुष्पादि से पूजिकर-फिर चरुपकावै-फिर भद्रासन पर बैठेहुये यजमान प्रति पुण्याह वाचन करै-फिर चारोंकलशोंसे उक्त विधिपूर्वक अभिषेक करै-फिर सरसोंका तेल शिरपर होमै-फिर चरुसे अग्निमें होमकरै-फिर अभिषेकशालामें दशदिक्पालोंको इसमेंकही

हुई विधिसे वा पंचलोकपालोंकोभी अन्यग्रंथोक्त विधिसे बलिदान करै-और यजमानभी स्नानके अनन्तर शुक्लवस्त्र शुक्लमाल्यादि धारण कियेहुये गुरुके साथहोकर विनायक और अंबिका को उपहारदेकर भूमिमें शिरसे झुकै पुनि पुष्पोदकसे अर्घ्य देवै फिर दूर्वा सरसों और फूलोंसे अंजलिभरिके चढ़ावै-फिर विनायक और अंबिका के सन्मुख उपस्थानकरै-तिसपीछे उपहार शेषवस्तुओंको सूपमें गुरुलेजाकर चौराहेमें रक्खे और शिरझुकाकर पृथ्वी में प्रणाम पूर्वक अर्पणकरै पूर्वोक्त विधि से-फिर वहांसे गुरुके लौटिआनेपर ब्राह्मण भोजन-फिर पहले गुरुको दक्षिणा और दोवस्त्र फिर अन्यब्राह्मणों को दक्षिणादान-इस्सेआगे अपने कुलका आचार जोकुछ उचित हो किंतु अपने निजगुरु कुलगुरु आदिका सत्कार वा मान्यता इसक्रम के अनुकूल एकप्रयोग पद्धति विद्वानोंको उचित है कि जो प्राचीन पद्धति नहीं हाथ आवै तो अपनी बुद्धि और विद्यावलसे सम्पादन करलेवें जिस्से औरोंका और उनका भी कल्याणहो परन्तु यह स्मृतरहे कि इसविधिमें कोई प्रकारका अनुकल्प श्रेयस्कर नहींहै किंतु इसकी यथोक्त विधि तद्रूप फलसाधक निश्चित है जो किसीसे वनिपरै इसमें केवल एक दिनका प्रयोग है और जिस्से हरसाल होसकै तो अधिक अहोभाग्य हैं २९१ ॥

इति विनायक स्नपनविधिः ॥

अथ ग्रहशांतिकरणापेक्षा कथनम् ॥

एवंविनायकंपूज्यग्रहांश्चैवविधानतः। कर्मणांफलमाप्नोतिश्रियंचाप्नोत्यनुत्तमाम् २९२ ॥

भक्ष०—इस विधान से विनायक को पूजि कर ग्रहोंकोभी पूजिकर कर्मोंका फल पावताहै और अनुत्तमा लक्ष्मी कोभी पाताहै २९२ ॥

भमि०—विनायक के कहेहुये विधानके उपसंहारसे संयोगांतर दिखलानेके लिये यह श्लोक कहाहै-अर्थात् पूर्वकहेहुये विधानसे विनायकको सम्यक् पूजिकर प्रारंभित कर्मोंकाफल निर्विघ्न पावताहै यह तो पूर्ववर्णन कियेहुयेका उपसंहारहै (अबइसी से संयोगांतर कहते हैं कि) केवल कर्मोंकाही फल नहीं किन्तु उत्तम लक्ष्मी भी पावता है जो हरसाल इसी प्रकार एक दिन कियाकरै-अर्थात् केवल कर्म विघ्नोंकी शांति चाहै उसको तो एकही दिवसके प्रयोगसे कर्म सिद्धि मिलती है परन्तु जो लक्ष्मी मिलने की कामना रक्खे वह प्रतिवर्ष नियमसे किया करै (इसी प्रकार) सूर्यादि ग्रह पीडा की शांति अथवा लक्ष्मी की कामना करने वालेके लिये ग्रहपूजादि कल्पका प्रारम्भ करतेहुये ग्रहपूजाकाभी उपक्षेप इसीश्लोकसेकरतेहैं किन्तु(ग्रहांश्चैवविधानतः) सूर्य आदि ग्रहोंकोभी अग्रोक्त विधिसे सम्यक् पूजिकर कर्मोंकी निर्विघ्न सिद्धिपाता है तथैव प्रतिवर्ष एकवार नियमसे करनेवाला अनुत्तमा लक्ष्मीभी पावताहै २९२ ॥

यहांपर वक्ष्यमाण नवग्रहशांति से पहले नित्य काम्य संयोगों को कहते हैं दोसौतिरानवे के श्लोक द्वारा॥

॥ अथ महागणपत्यादिकल्पफल कथनम्॥

आदित्यस्यसदापूजांतिलकंस्वामिनस्तथा। महागणपतेश्चैवकुर्वन्सिद्धिमवाप्नुयात् २९३॥

भक्ष०—सदा आदित्य की पूजा वा तिलकभी तथा स्वामिकार्त्तिक और महागणपतिकीभी करताहुआ सिद्धिको पावै २९३॥

अभि०—सूर्यरूपी आदित्य भगवान् की पूजा सदा कहिये प्रतिदिवस रक्त चन्दन कुंकुम कुसुमादि वस्तुसे तथैव(स्वामिनः)स्वामिकार्त्तिक और महागणपतिकीभी पूजा यथा योग्यवस्तुओं से नित्यंप्रति करताहुआ सिद्धि आत्मज्ञानादि और नित्यसंबंधी कामोंकीभी सिद्धिपावै है-यद्वा-पूजाकी असंभवता में आदित्य १ स्वामिकार्त्तिक २ महागणपति ३ इनतीनोंके (या) इनमेंसे किसी एक दोके (तिलक) अर्थात् सोना चांदी आदिसे वनाईहुई तदाकार तिलक मुद्रासे तिलक छापामात्र भी करताहुआ पूर्वोक्त अभिलपित सिद्धिपावै है-यह नित्यकाम्य संयोग है २९३॥

इतिमहागणपत्यादिकल्पः॥

अब यहांसे आगे २९२में दर्शाईहुई ग्रहपूजाका प्रकार वर्णन करतेहैं॥

अथनवग्रहशांति विधानफलकथन प्रकरणम्॥

श्रीकामःशांतिकामोवाग्रहयज्ञंसमाचरेत्। वृष्ट्यायुःपुष्टिकामोवातथैवाभिचरन्नपि २९४॥
सूर्यःसोमोमहीपुत्रःसोमपुत्रोवृहस्पतिः। शुक्रःशनैश्चरोराहुःकेतुश्चेतिग्रहाःस्मृताः २९५॥
ताम्रकात्स्फटिकाद्रक्तचन्दनात्स्वर्णकादुभौ।राजतादयसःसीसात्कांस्यात्कार्याग्रहाःक्रमात्२९६॥
स्ववर्णैर्वापटेलेख्यागंधैर्मंडलकेषुवा। यथावर्णप्रदेयानिवासांसिकुसुमानिच २९७॥
गंधाश्चवलयश्चैवधूपोदेयश्चगुग्गुलुः। कर्त्तव्यामंत्रवंतश्चचरवःप्रतिदैवतम् २९८॥

ऐ० सर्वेषांपंचानांसह—(श्रीकामः) लक्ष्मी आदि धन संपत्ति की कामनावाला-यद्वा-(शांतिकामः)अर्थात् ग्रहपीड़ा आदिकी शांति चाहैसोभी (ग्रहयज्ञ)कहिये नवग्रह शांति होमादि विधिसे सम्यक् आचरे-यद्वा-(वृष्टि) वर्षा अनावृष्टिसमय पर-(आयु)किंतु अपमृत्यु को जीतिकर दीर्घ कालजीवन-(पुष्टि) कहिये शरीर सौख्य निरोगता से-इन वातोंका चाहनेवाला भी ग्रहयज्ञकरे-तथैव-(अभिचरन्नपि)अर्थात् अदृष्टोपायपूर्वकनिज निष्कारण शत्रुको पीड़ादान की वांछा करता हुआ भी ग्रहयज्ञ करे-२९४-इस ग्रहयज्ञमें ये नवग्रह देवता प्रधान हैं-सूर्य-सोम-महीपुत्र-सोमपुत्र-वृहस्पति-शुक्र-शनैश्चर-राहु-केतु-२९५-इनकहेहुये नवग्रहोंकी प्रतिमा यथाक्रमसे इनवस्तुओंसे करे-अर्थात् सूर्यकी तांवेसे-चन्द्रकी स्फटिकसे-भौमकी रक्तचन्दनसेबुधकीसुवर्णसे-वृहस्पतिकीभी सुवर्णसे-शुक्रकी चांदीसे-शनैश्चरकी लोहेसे-राहुकी सीसेकरके-केतुओंकीकांस्य

करके-२९६-अथवा यह नहोसके तो इसका अनुकल्प कहतेहैं कि पट्टेपर अपने २ वर्णोंसे जैसा जिसका वर्णहे उसीवर्णकी वस्तु रक्तचन्दन आदि गंधोंसे लिखलेवे-या पट्टेपरभी नहीं तो(मंडलकेषु)वा अर्थात् पृथ्वीपर बनायेहुये मंडलों किंतु कोष्ठोंमें तंदुल आदिसे तदाकार बनाकर उनमें अपने २ वर्णभर देवे यह तो स्थापन विधिकही-तथैव पूजाविधिमेंभी-वस्त्र और पुष्पभी(यथावर्ण)अर्थात् जैसा जिसकावर्णहो तिसको उसीप्रकारके देनेचाहिये-२९७ गन्धभी उसीप्रकारके वलिदानभी उसीप्रकारके और धूप सभीको गुगुलकी देनी चाहिये-प्रतिदैवत कहिये भिन्न २ अपने २ मंत्रोंसे चरु भी अर्पण कर्त्तव्य हैं २९८॥

यदि०सर्वेषांसह —यद्यपि इस विधानमें नवग्रहों की प्रतिमा सामान्यभावसे कही है किन्तु कोई प्रकारका आकार विशेष नहीं कहा औरभी यद्यपि आकार विशेष के लक्षण कईप्रकारसे जहांतहां अन्य शास्त्रोंमें या ज्योतिषमें या हवनकी पद्धतिमें जो२ पायेजातेहैं तिनमें परस्परकुछ अन्तर देखपरताहै तथापि(यादृशीभावनायत्रासिद्धिर्भवतितादृशी)इत्यादि प्रमाणोंसे और विशेषकर इस विधानमें कामना विषय होनेसे भी-मत्स्य पुराणका कहाहुआ प्रकार इसमेंसंभवहै-तद्यथा-(पद्मासनःपद्मकरःपद्मगर्भसमद्युतिः। सप्ताश्वरथसंस्थश्चद्विभुजःस्यात्सदारविः१)अर्थात्-सूर्यकी प्रतिमा सदा-ही द्विभुजी करनी चाहिये(और)ऐसा ध्यान यद्वा संभवहो तो प्रतिमाभी ऐसी करनी चाहिये कि सातघोड़ोंके रथपर पद्माकार बनेहुये आसन किंतु सिंहासन पर बैठेहुये और पद्म जिनके हाथमें और पद्मकीसी आभावाली किरणोंसे संयुक्त और पद्मराग मणिके गर्भस्थ झलझलाहट चमचमाहटके समानहै द्युतिकांति शोभा जिनकी यद्वा पद्मगर्भ कहिये कमलके किंजल्कवत् आभा जिनकी १-अथ चन्द्रस्य-(श्वेतःश्वेतांबरधरोदशाश्वःश्वेतभूषणः। गदापाणिर्द्विबाहुश्चकर्त्तव्योवरदःशशी१)अर्थात्-शशीनाम चद्रमा जब कदाचित् वरका देनेवाला कर्त्तव्य हो किंतु काम्यविधिमें उसकी प्रतिमा करनी हो तब दोभुजी कर्त्तव्य है गदा जिसके हाथमें श्वेत जिसका वर्णहो श्वेतवस्त्र धारीहो दशघोड़ोंकेरथपर और श्वेतही आभूषण जिसका ऐसाध्यान या ऐसीप्रतिमा करे २-अथ भौमस्य-(रक्तमाल्यांवरधरःशक्तिशूलगदाधरः। चतुर्भुजोमेषगमोवरदःस्याद्धरासुतः ३)-अर्थात्-धरासुत मंगल जब ऐसाहो तब वरका देनेवाला हो किंतु रक्तमाल्य रक्तअम्बर धारणकिये और इसीसंकेतसे रक्तवर्ण देहभी शक्ति बरछी शूल माला यह धारणकिये चारभुजावाला-मेषमेढ़ापर चलनेवाला ३-अथ बुधस्य-(पीतमाल्यांवरधरःकर्णिकारसमद्युतिः। खड्गचर्मगदापाणिःसिंहस्थोवरदोबुधः४)-अर्थात्-पीतमाल्य पीत अम्बरधारणकिये और (कर्णिकार) के पुष्पोंकीसी कांतिवालावर्ण जिसका खड्ग और ढालकोबांधेहुये गदा हाथमेंलियेहुये सिंहपरसवार ऐसेआकारवाला बुध

वरदायकहोताहे-बुधकीभुजाओंका चर्चा नहींकिया इस्सेहिभुजमूर्त्ति समुभ्कीजाती हे (तथापि)अग्रोक्त श्लोकमें वृहस्पति और शुक्रकेसाथ इसकासादृश्यपदकरनेसे चतुर्भुज निश्चितहुआ-कर्णिकार नाम एकवृक्ष जिसे छोटाधनवहेड़ा या कणिआर या कनियारी-किरियारीभी कहतेहैं जिसकीफलीमेंसे अमिलतास औषध निकलती है उसके पुष्प अतिपीतसुनहरे और विना गूँथेहुयेभी दूरसेमालाकीसीलड़ीप्रतीत होतीहैं इसीलिये संस्कृतमें कृतमालभी कहते हैं यद्यपि अमिलतास इस्से वड़ा और फलीभी उसकी वड़ी होती हे पर यहभी उसकी जातमें छोटा कहलाता है ४-अथवृहस्पतेः-शुक्रस्य च-द्वयोःसह (देवदैत्यगुरूतद्वत्पीतश्वेतौचतुर्भुजौ । दंडिनौवरदौकार्यौसाक्षसूत्रकमंडलू ५।६)अर्थात्-देवगुरु-वृहस्पति और दैत्यगुरु शुक्र यहदोनों चतुर्भुजकहिये चारभुजा वाले तद्वत कहिये बुधके समान पीतवर्ण पीतमाल्य पीताम्वरधारी वृहस्पति (और) श्वेतवर्ण श्वेतमाल्य श्वेतअम्वरधारी शुक्र और दंडधारी दोनों और (अक्षसूत्र) नाम जप मालाको लियेहुये दोनों और कमंडलुको लियेहुये दोनों वरके देनेवाले कर्तव्य हैं-(तद्वत्) यह वुधका सादृश्य पद करने से इन दोनोंका भी सिंहवाहन और खड्ग चर्म गदा यह शस्त्रप्रतीत हुये ५। ६-अथ शनैश्चरस्य-(इन्द्रनीलद्युतिःशूलीवरदोगृ ध्रवाहनः । वाणवाणाशनधरःकर्तव्योऽर्कसुत-सदा ७)अर्थात्-अर्कसुतशनैश्चर सदा-ही इन्द्रनील नाममणिके समान कांतिवाला शूल धारण किये गृध्रपर सवार हुआ वाण और वाणाशन कहिये धनुष वांधेहुये वरका देनेवाला कर्तव्यहे-इसकी भुजाओं का चर्चा नहीं किया इस्से दोही समझलेनी ७-अथराहोः-(करालवदनःखड्गचर्म शूलीवरप्रदः । नीलःसिंहासनस्थश्चराहुरत्रप्रशस्यते ८)-अर्थात्-(अत्रच) कहिये इस काम्य विधिमें भी राहु करालवदन नीलवर्ण और खड्ग ढाल शूल वांधेहुये सिंहासन किन्तु सिंहवाहन पर वेठा हुआ ऐसे आकारवाला वरप्रद श्रेष्ठ कहलाता हे-इसकी भी दो भुजा समझनी ८-अथकेतूनां-(धूम्राद्विबाहवःसर्वेगदिनोविकृताननाः । गृध्रा सनगतानित्यकेतवःस्युर्वरप्रदाः ९)-अर्थात्-केतुके जितने आकार वनावे यह सभी गदाधारीहों दो २ भुजा वालेहों विकृतानन किंतु भयानक मुखवालेहों गृध्रकी सवारी पर वैठेहों नित्य कहिये सदाही ऐसे आकारवाले केतु वरप्रद होवें-केतुका वहुवचन केवल इस हेतुसे कहाहे कि यह नानारूप धारी होताहे इसलिये इसका ध्यान और आवाहन मात्र तो वहुतों के उद्देश और उच्चारणसे करलेना परंतु प्रतिमा केवल एक हो ९-अथ सर्वेषांप्रकृतनवग्रहाणांपरिमाणविशेषमाह-तद्यथा-(सर्वेकिरीटिनःकार्या ग्रहालोकहितावहाः । स्वांगुलेनोच्छ्रिताःसर्वेशतमष्टोत्तरंसदा)-अर्थात्-सभी नवग्रह लोक हितके देनेवाले किरीटी किन्तु मुकुटवाले करनेचाहिये (और) कर्ता अपनेअं-गुलसे एकसौ आठ अंगुल ऊंची मूर्त्ते सवकी करे तव लोक हितके देनेवालेहों-अथ

स्थापनदेशः-(मध्येतुभास्करंविद्याल्लोहितंदक्षिणेनतु। उत्तरेणगुरुंविद्याद्बुधंपूर्वोत्तरेण तु॥पूर्वेणभार्गवंविद्यात्सोमंदक्षिणपूर्वकेपश्चिमेनशनिंविद्याद्राहुंपश्चिमदक्षिणे॥पश्चिमोत्तरतःकेतुंस्थाप्यावैशुक्लतंडुलैः)-अर्थात्-सबकेमध्यमें सूर्यकोस्थापै-मंगलको दक्षिणदिशामें-बृहस्पतिकोउत्तरमें-बुधको ईशानकोणमें-शुक्रको पूर्वओर-चन्द्रमाकोअग्निकोणमें-शनिको पश्चिमओर-राहुको निर्ऋतिकोणमें-केतुको वायव्यकोण में-यह सब सुपेद तंडुलोंसे स्थापनकरिकै पूर्वोक्त निजरवर्णभर देवे उसअवस्थामें कि जो पूर्वोक्त विधिसे प्रतिमा न होसकें २९४। २९५। २९६। २९७। २९८॥

अब नवग्रहोंके वेदोक्त मंत्रोंकी समस्या लिखते हैं॥

आकृष्णेनइमंदेवाअग्निर्मूर्धादिवःककुत्। उद्बुध्यस्वेतिचऋचोयथासंख्यंप्रकीर्तिताः २९९॥
बृहस्पतेअतिअदर्यस्तथैवान्नात्परिश्रुतः।शन्नोदेवी कयानश्चिकेतुंकृण्वन्निमांस्तथा ३००॥

ऐ०सहृदयोः—सूर्यादि नवग्रहोंके क्रमसे यथासंख्य यह नवमंत्र वेद ऋचाओंसे कहे-अर्थात्-(आकृष्णेनरजसावर्त्तमानो) इत्यादि पाठ वाली ऋचा सूर्यकी १ (इमंदेवा) इत्यादि पाठवाली ऋचा चन्द्रमाकी२ (अग्निर्मूर्धादिवःककुत्पत्ति) इत्यादि पाठवाली मंगलकी ३ (उद्बुध्यस्व) इत्यादि बुधकी ४। २९९ (बृहस्पतेःअति अदर्यो) इत्यादि बृहस्पतिकी ५ (अन्नात्परिश्रुतो) इत्यादि शुक्रकी ६ (शन्नोदेवीः) इत्यादि शनैश्चर की ७ (कयानश्चित्रा) इत्यादि राहुकी८ (केतुंकृण्वन्) इत्यादि केतुकी ९। ३००॥

अब आगे नवसमिधें बतलाते हैं॥

अर्कःपलाश खदिरअपामार्गोथपिप्पलः। औदुम्बरःशमीदूर्वाकुशाश्चसमिधःक्रमात् ३०१॥
एकैकस्यत्वष्टशतमष्टाविंशतिरेवच। होतव्यामधुसर्पिर्भ्यांदध्नाक्षीरेणवायुताः ३०२॥

ऐ०सहृदयोः—(अर्क) अँकौआ१ (पलाश)ढाखा२ (खदिर)खैर३ (अपामार्ग) चिटचिटा४ (पिप्पल) पीपर५ (औदुम्बर) गूलरकी६ (शमी) छोंकर७ (दूर्वा) दूब८ (कुशा)९-यह नव वृक्षोंकी हरी लकड़ी साफ अखंडित छिलका समेत हाथके प्रादेशमात्रसे नपी हुई क्रमसे सूर्यादि ग्रहोंके हेतुसे एक एक वृक्षकी यथाक्रमसे करनी चाहिये ३०१ एक एक ग्रहके निमित्त उसकी यथोक्त समिध भिन्न२ पूरी आठसौ संख्यामें होनी चाहिये आठ २ सौ न होसकें तौ अट्ठाईस २ करलेवै तिनको पूर्वोक्त मंत्रोंसे सहत और घृत लगाकर होमै अथवा सहत घी नही मिलै तौ दहीसेही यद्वा गाढ़े दुग्धमें लगाकर होमै पर इनमें भी शर्करा मिश्रित करलेवै ३०२॥

गुडौदनंपायसंचहविष्यंक्षीरपाष्टिकम्। दध्योदनंहविश्चूर्णमांसंचित्रान्नमेवच ३०३॥
दद्याद्ग्रहक्रमादेवद्विजेभ्योभोजनंद्विजः। शक्तितोवायथालाभंसत्कृत्यविधिपूर्वकम् ३०४॥

ऐ०सहृदयोः—नवग्रहोंकी प्रीतिकेलिये उनके निमित्तके भिन्न२नवब्राह्मणोंकी भोजन वस्तु बतलाते हैं कि सूर्यसम्बंधी ब्राह्मणको (गुडौदन) अर्थात् गुड़में रांधाहुआ मीठा

भात१ चन्द्रमाको खीर२ भौमको (हविष्य) कहिये सामाकँगुनी आदि मुन्यन्न जिमावै३ बुधके ब्राह्मणको (क्षीरषाष्टिक) अर्थात् दूधमें सट्ठी चावलोंका भात मिलाकर ४ वृहस्पतिको (दध्योदन) दहीभात५ शुक्रको हविः अर्थात् घृत और भात इति मिताक्षराकारः६ शनैश्चरको (चूर्ण) अर्थात् तिल चूर्ण मिश्रभात इतिमिताक्षराकारः ७ राहुके लिये मांस किन्तु मांस मिला भातपर जो भक्ष्य मांसोंमें गिनतीहों और जिस प्रकार का ब्राह्मण इस निमंत्रणको अंगीकार करै किन्तु राहुकी प्रीतिसे विधिक्रम अंगीकार है (यद्वा) इसका अनुकल्पहो ८ केतुके निमित्तसे (चित्रान्न) अर्थात् अनेकवर्णका भात यद्वा सतनजा-यहवस्तु मुख्यविधिमें कहीगई परन्तु अपनी शक्ति और संभवता के अनुकूल यह नहीं तो और ही जो वस्तु होसक्री या मिलसक्री हो सोई विधिपूर्वक सत्कारसे उन ब्राह्मणोंको द्विजाती लोग देवैं ३०३।३०४॥

चधि०—योगीश्वरने मुख्यविधिके पश्चात् यथालाभ या यथासंभवता जो आदेश करी सो इसहितुसे कि इन पदार्थोंमें मांसआदि विरलीवस्तु ऐसीहैं कि जिनको दाता और भोक्ताकेभी विवेकहै तो नहीं करनी चाहिये ३०३।३०४॥

अब दक्षिणा बतलाते हैं॥

धेनुःशंखस्तथानड्वान्हेमवासोहयःक्रमात्। कृष्णागौरायसंछागएतावैदक्षिणाःक्रमात् ३०५॥

ऐ०—सूर्यादि नवग्रहोंके निमित्तसे भिन्न २ यह दक्षिणा क्रमसे उन ब्राह्मणों को देवै-धेनु दूधवाली १ शंखबजना २ आंडूवृषभ ३ सुवर्ण कुछ भूषण वस्तु ४ वस्त्रपीत वर्णका ५ घोड़ासुपेद ६ कृष्णागऊ ७ लोहाशस्त्रादि ८ बकरा९।३०५॥

अब प्रकृत विधानमें कुछ विशेषता दुष्टग्रहकी अपेक्षासे कहते हैं॥

यश्चयस्ययदादुष्टःसतंयत्नेनपूजयेत्। ब्रह्मणैषांवरोदत्तःपूजिताःपूजयिष्यथ ३०६॥

ऐ०—प्रकृत विधानमें यहबात कहीथी कि शांतिकी कामना से सभीग्रह एकसाथ पूजनीय हैं-परन्तु-यहां यह विशेषता कहते हैं कि जो कोईसाग्रह जिसकिसीको जब कदाचित् दुष्टहो अर्थात् जन्मराशिसे छठे आठवें आदि यथोक्त दुष्टस्थानोंमें स्थित हो वह पुरुष उसीग्रहको विशेषकर यत्नपूर्वकपूजे क्योंकि ब्रह्माने इनग्रहोंको वरदिया है कि तुम मनुष्यों करके पूजेहुये उनमनुष्योंकोपूजो अर्थात् उनके इष्टकीप्राप्ति और अनिष्टका विनाशकरो-यहवार्त्ता यद्यपि सामान्य सबकेलिये कहीगई तथापि अभिषेकयुक्त राजाको विशेषकर इसबातका अधिकारहै सो नीचेकेश्लोकसे कहतेहैं३०६॥

ग्रहाधीनानरेंद्राणामुच्छ्रायाःपतनानिच। भावाभावौचजगतस्तस्मात्पूज्यतमाग्रहाः ३०७॥

ऐ०—नरेंद्राणां अर्थात् अभिषेकादि गुणयुक्त राजाआदि क्षत्रियोंको नवग्रह पूज्यतम होतेहैं किंतु उनको विशेषकर ग्रहोंकीपूजा कर्त्तव्यहै पुनि जोबात राजाको कर्त्तव्य है तो औरभी सब साधारणोंको कर्तव्यहै तिसकाहेतु कहते हैं कि जगत्का भावाभाव

अर्थात् जंगम और स्थावरमात्रकीभी उत्पत्ति और प्रलय यह जगत्कर्त्ता ने ग्रहोंके आधीनरक्खेहैं तथैव जीवोंकाउच्छ्राय कहिये उन्नति उँचाई वृद्धिआदि और पतनानि कहिये हीनता क्षीणता निपात आदि यहभी सबग्रहोंके आधीनरक्खेगये-तिसहेतुसे जो कोई उच्छ्राय और पतनके अधिकारीहों तिनकरके पूज्यहैं-क्योंकि जो इनकीपूजा सत्कार होतारहा तो उत्पत्तिभी अन्नादि यद्वा किसीवस्तुकी अपने नियत समय पर होवेगी और प्रलय निरोधभी अपने उचितकालमें होगा अन्यथा उनकी पूजाविना यह सारीबातें विपरीत जानो-राजा जगत्का ईश्वर होताहै उसको प्रजाकी उन्नति आदिसे अपेक्षा होतीहै इस्से जो राजा विशेषकर ग्रहोंको पूजैगा तो उसके पुण्य प्रभावसे सारीप्रजाके योगक्षेम आदिमेंयथोचित कल्याण बनारहेगा-राजाके निदर्शन से कुटुंबी अपनेघरका राजाहै उसका कुटुम्ब उसकी प्रजाहै कुटुम्बी ग्रहोंको पूजेगा तो उसके सारे कुटुम्बके योगक्षेम आदिमें कल्याण रहेगा ३०७॥

भधि०—यह संदेह मतकरना कि जगत्की उत्पत्ति और प्रलय यद्वा उच्छ्राय और पतनादि यह सबकाम केवल एक जगत्कर्त्ता का कर्तव्यहै इसमें ग्रहोंके आधीन होना यह असंगत है-क्योंकि जो ग्रहों का करना कहा सोई उस जगत्कर्त्ता का कर्तव्य है जगत्कर्त्ता अपने हाथसे कोईकाम नहींकरता क्योंकि वह निर्लेप और निस्संग सर्वथा विदितहै किन्तु उसकी इच्छामात्रसे उसीकी मायाकरके नियुक्त कियेहुये नवग्रह सब कुछ करसक्तेहैं(दृष्टान्त)जैसे संसारमें राजा अपने हाथसे कोईकाम नहीं करता उसके प्रधान करके नियुक्त कियेहुये कोतवाल थानेदार आदि सबकुछ करसक्तेहैं और जोकुछ वे करतेहैं सो सब उसीएक राजाका करना कहलाताहै और यथार्थ मेंभी उसीकाकरना निश्चितहै क्योंकि उसके प्रतापके भयसे सब अपने २ कामोंपर उद्यत बनेरहतेहैं जब कदाचित् एकदिनकोभी राजाका प्रताप उठिजाताहै तबदेखो उस एकही दिनमें प्रजा में क्या२विध्वंस होनेलगतेहैं कि उन रक्षाकरनेवालोंकोभी तुच्छप्राणी विध्वंसकरदेतेहैं इस्से उनसबोंकाकरनाधरना केवलउसकेप्रतापकेआधीनहै-परन्तु-इतनाइसमेंविलक्षणहै कि उन अधिकारियों का सत्कार जो प्रजालोग करते रहते हैं तिनके तो सबकाम अपने२ उचित समय और उचितन्याय तक पहुँचते हैं और जो कोई उनका निरादर वा अपमान वा उपेक्षा रखते हैं तिनके सच्चे कामभी विपरीत होजाते और उचित समयपर इंसाफ़ तक पहुँचने नहींपाते क्योंकि जैसे वे जगत्कर्त्ता के नियुक्त किये ग्रह उलटा सूधा करदेनेको समर्थहैं तैसे यह राजाके नियुक्तकिये ग्रह उलटासुलटा करनेको समर्थहैं इस्से इन राजग्रहोंकीभी पूजासत्कार प्रजाको नवग्रहोंके समान करनी उचित होतीहै किन्तु यहभी एक अपने योगक्षेमादिके हेतुसे धर्म मर्यादा में गिनती है (दग्ध बुद्धिका संदेह) भला ये बातें तो जुदीहैं पर हमग्रहोंका विश्वास नहीं करसक्ते क्योंकि

यहनवग्रह एक झूँठीकल्पना देखपड़तीहै(आक्षेप)ठीकहै इस्सेअधिक और क्याझूँठ होगी कि जो सूर्यकाविम्ब झूँठाकल्पितकरके नियतकिया जिसकेसायंकालछिपजातेके साथही अन्धकार और प्रातःकाल उदयहोतेकेसाथही प्रकाशहोजाता ऐसेही चन्द्रमा आदिके विम्ब जो रात्रिमें अपने२ नियत समयपर उदितहोते और छिपजातेहैं और जिसने इनकोनिर्मितकियेहैं उसकेनिकट सवयथार्थमेंझूठेहैं किन्तु वह सवसेनिस्संगहै केवल इन्द्रजालमात्र उसनेरचाहै परन्तु जो ऐसाइन्द्रजाल नहींवनाता तौ एकसूर्यकेही नहोनेमें संसारका कोईकाम नहीं चलसक्ता किन्तु जलोंका शोषणमात्रभी न होने से यावन्मात्र संसारी आर्द्रपदार्थ होतेहैं सव सड़जाया करते अंधकार वनारहता वर्षा होनीदुर्लभहोजाती वीजोंमें अंकुरआदिकी उत्पत्तिकठिनहोजाती फिर इनवातोंकेहोने विना जीवोंका पालनभी असंभवथा-ऐसेही चन्द्रमाके नहोनेमें अमृतवर्षण अन्नपोषणआदि रसोत्पत्ति आदिभी असंभवथी इत्यादि सभीग्रह अपने२कामोंको प्रत्यक्ष करतेहैं और ज्योतिस्सिद्धांतवेत्ता लोग भूगोलखगोलविद्याके प्रभावसे उनकेसमय२ के रूप लक्षण गुण कर्म आदिको प्रत्यक्ष देखसक्ते और देखतेहैं इस्से रचना करनेवालेने चाहे यहझूंठा इंद्रजाल रचाहो पर अस्मदादि इस प्रत्यक्षविषयको क्योंकर झूंठाकहें-यद्यपि अन्यग्रहोंकी अपेक्षा केवल राहुकेतु यहदोग्रह अदृश्यहैं क्योंकि इनका उदय प्रायः देखने में नहीं आता पर येभी कभी निजस्वापेक्षित समयपर अवश्य उदय होतेहैं तव इनकोभी सवसंसार देखलेताहै अभी केवल थोड़ेदिनोंकी वात है किंतु वैक्रम १९१० के और नौकेसंवत्में भी वरन ग्यारह पर्यंत दो अढ़ाई वर्षके अंतरमें कईवार और कईप्रकारके राहुकेतु पुँछरिश्रा ताराके आकारसे उदय होतेरहे अतिकाल तक सायंकालके समयसेही सवलोग दर्शन करनेलगतेथे परन्तु अच्छी तरह यादहै कि उसकी शांति किसीनेभी नहींकरी और उसनेभी जैसा कुछ फल ज्योतिश्शास्त्रोंमें लिखाहै सो प्रत्यक्षकर दिखाया सो सवको याद है कि सारी पृथ्वीपर विध्वंस फैलगया-उस्से पहले १८५४ और ९६ केभी अंतरमें वहुधा इनके दर्शनहम नेभी किये जोदक्षिण दिशा और पश्चिमके कोणमें बड़ेलंबे लट्ठाके आकार उदय होताथा जिसमें वुहारीकी पूँछके समान कँटीले जीरेसेप्रतीतहोते थे इसीहेतुसे वहुधालोग उसको वुहारीभी कहतेथे कोई उसके लंवावको देखकर खेतकी पटेलनिकहने लगतेथे उसनेभी प्रत्यक्ष अपनाफल अनावृष्टि और अन्नाकाल जीवनाश और युद्ध आदि सवयथार्थ कर दिखायाथा-अन्यथाग्रहण और भूकंपआदि औरभी अनेक ग्रहोत्पात जव२ कभी होतेहैं तव निस्संदेह अपना प्रभावकियेविना नहींरहते पर यह ठीकहै ये सारीवातें उसजगत्कर्त्ताके निकट निस्संदेह झूँठा इंद्रजालहै तथापि अस्मदादि जो एकलौकिक वाजीगरके या नटके इंद्रजालको समुझतेहुयेभी देखकरसञ्चा

प्रतीत करने लगते हैं सो जगत्कर्त्ता के इंद्रजालको कैसे झूँठा कहसकें ३०७॥

इति सर्वविघ्नशांत्यादिग्रहशांतिप्रकरणम्॥

यहांतक आचाराध्यायके प्रारंभसेलेकर योगीश्वरके कहेहुये ३०७ मूलश्लोकोंके अवलंबसे अनेक धर्मशास्त्रों के प्रमाण और सिद्धांतद्वारा विस्तारसहित-जो२ धर्म कर्म आचारआदि विधि और निषेधरूप वर्णन किये सो सवसाधारण गृहस्थों के आचारहैं अर्थात् उनमें राजा तथा प्रजाकोभी अधिकार एकसा वरावरहै-परन्तु-जो२ धर्म अव आगे वर्णनकिये जावेंगे उनमें राज्याभिषेक आदिगुणसंयुक्त गृहस्थी का अधिकारहै अर्थात् केवल राजाकाही किंतु प्रजाका नहीं उनमें-क्योंकि यह अग्रोक्तमर्याद राजाके विशेष धर्महैं किंतु अन्यसव साधारण गृहस्थियोंकी अपेक्षा इतने कामराजाको अधिक आचरणीयहैं सो अवनीचेसे कहतेहैं-तथापि इसकथनका यह सिद्धांत नहीं है कि राजाके आचरणकरिवेयोग्य कामोंको कोईसीखे नहीं किंतु सव कोहीसीखना उचितहै वरन विशेषकर उनलोगोंको कि जो राजाओंके संगती वा निकटवर्त्ती होते या किसी प्रकारका संवंध राजाओं से रखतेहों॥

अथ राजधर्मप्रकरणम्॥

महोत्साहः स्थूललक्षः कृतज्ञो वृद्धसेवकः। विनीतः सत्त्वसंपन्नः कुलीनः सत्यवाक्शुचिः ३०८॥
अदीर्घसूत्रः स्मृतिमानक्षुद्रोऽपरुषस्तथा। धार्मिकोऽव्यसनश्चैव प्राज्ञः शूरो रहस्यवित् ३०९॥
स्वरंध्रगोप्तान्वीक्षिक्यां दंडनीत्यां तथैव च। विनीतस्त्वथ वार्तायां त्रय्यां चैव नराधिपः ३१०॥

अक्ष०—त्रयाणांसह—महोत्साहः-स्थूललक्षः-कृतज्ञः-वृद्धसेवकः-विनीतः-सत्त्वसंपन्नः-कुलीनः-सत्यवाक्-शुचिः॥ अदीर्घसूत्रः-स्मृतिमान्-अक्षुद्रः-अपरुषः-धार्मिकः-अव्यसनः-प्राज्ञः-शूरः-रहस्यवित्॥ और स्वरंध्रगोप्ताभीहो-(तथैव)-आन्वीक्षिकीमें दंडनीतिमें और वार्त्तामें और त्रयीविद्यामें विनीतहो ऐसा नराधिपहो ३०८।३०९।३१०॥

भभि०—त्रयाणांसह—(नराधिप) राजा उसको कहिये कि जिसको राज्यगद्दीका अभिषेक हुआहो परन्तु वह अभिषेकभी उसकोहोना चाहिये जिसमें इतनेगुणहों अर्थात् प्रथम तो वड़े उत्साह वालाहो किंतु पुरुषार्थ साधन कर्मोंके आरंभमें अध्यवसाय नामपरे निश्चयका होना सो उत्साह कहलाताहै जिसमें यह अधिकतरहो वही (महान् उत्साहवान्) या वड़ा उत्साही कहलाता सो यहनराधिपमें अवश्यहोना चाहिये१दूसरागुण (स्थूललक्ष) उसको कहतेहैं जो अनेक शास्त्रोंके देखने और मथन करनेमें अभ्यासराखे और प्रयोजनकेध्रुवापर विशेषदृष्टिपातकरे२तीसरे(कृतज्ञ)उसे कहते हैं जो पराये कियेहुये उपकार वा अपकारकोभी अधिक समझे और भूले नहीं किंतु अवसरके अनुकूल दोनोंका प्रतिकारभीकरे३ चौथागुण (वृद्धसेवक) अर्थात् तपज्ञानचातुर्य्य विद्याआदि सर्वगुण वृद्धोंकी सेवा करनेवाला और अपनी सेवामें रखनेवाला

किंतु सवीभांति अच्छोंकी संगति वा आराधन करताहो४ (विनीत) कहिये सौशील्य आदि विनयसे संयुक्तहो अर्थात् किसी अपने संसर्गीसे विरुद्ध नही वांधे और स्नातक प्रकरणमें कहीहुई शिक्षावोंको वहुधा यादवनीराखे५ (सत्त्वसंपन्न) कहिये संपत्ति और विपत्तिमें भी एकसारहे किंतु न उसमें अतिहर्ष न इसमें अति विषादमाने ६ (कुलीन) कहिये कुलवान् अर्थात् पिताके कुलसे और माताकेभी कुलसे नाना मामा आदि वहुतसे जनसमूह वालाहो७ (सत्यवाक्) अर्थात् झूँठका अभ्यास नहीं डाले और मुखसे कहेहुये वचनपर आरूढ़ता धर्मके अनुकूल वनीराखे८ (शुचि) अर्थात् भीतरले मनसेभी शुद्धहो किंतु कपट आदिसे शून्यहो और वाहर इंद्रियोंसेभी शुद्ध रहे ९ (अदीर्घसूत्री) उसे कहते हैं जो ज़रूरी कर्त्तव्य कामोंके प्रारंभकरनेमें और नॅधे हुये कामोंके पूरे करदेनेमें व्यर्थ विलम्ब को न करताहो सो यहगुण राजामें अवश्य होना चाहिये १० (स्मृतिमान्)अर्थात् जिसवात को एकवार अच्छीभांति समुझले फिर उसको नहींभूले ऐसी प्रकृति होनीचाहिये ११ (अक्षुद्र) अर्थात् क्षुद्रकहिये असद्गुण असद्विद्या असद्वार्त्ता असत्पुरुष वंध्या पुत्रादि इन सवकेसंग औरसंसर्गसेभी अलगहो और छछोरपन छोड़दे १२ (अपरुष)अर्थात् परुष वचन कहिये प्रत्यक्ष पर दोषोंका कथन करना तिससे अलग हो १३(धार्मिक)अर्थात् वर्ण और आश्रम केभी नियम धर्मों से समन्वित हो किंतु वर्ण तौ क्षत्रिय अथवा जो कुछहो और आश्रम गृहस्थ राजाकाभी होताहै सो इनदोनोंके यथोक्त आचारोंसे सम्पन्नहो१४(अव्यसन) अर्थात् कोईतरहका विशेष दुर्व्यसन जिसमें न हो व्यसन अठारह प्रसिद्ध हैं उनके नाम नीचे अधिकोक्तिमें देखो १५ (प्राज्ञ)अर्थात् अतिगंभीर वार्त्ताके अर्थ प्रयोजन समुझलेनेमें समर्थहो १६(शूर)अर्थात् निर्भय जो किसीसे डरता न हो१७ (रहस्यवित्) अर्थात् गुप्त करनेयोग्य अर्थ प्रयोजनोंके छिपानेमें चतुरहो किंतु जिसका भेद उसके निकटवर्तीभी न पासकें १८(स्वरंध्रगोप्ता)कहिये अपने छिद्रोंको ढाँकनेवाला किंतु अपने राज्यके प्रसिद्ध सात अंगोंसें शत्रुके प्रवेशहोनेयोग्य मार्गोंकी शिथिलता रूप छिद्रोंका अवरोध करसकनेवाला हो १९ (तथैव) (आन्वीक्षिकी) में विनीतहो अर्थात् आन्वीक्षिकी नाम यद्यपि तर्कविद्याका विख्यातहै तिसमें चतुरहो पर विशेषतर आन्वीक्षिकी नाम आत्मविद्या मेंभी चतुरहो यहांपर आत्मविद्या कहनेसे यह सिद्धान्तहै कि जो विद्या पढ़े सुने पीछे निज आत्मद्वारा सुपरीक्षितभी करलीहो इसी परीक्षाको आन्वीक्षा और उस विद्याको आन्वीक्षिकी कहतेहैं इसभांति अनेक विद्याओंकी परीक्षा जिसने निज वुद्धिद्वारा करीहो यहभावहै २० तथैव (दण्डनीति)में विनीत हो किंतु दंडनीति नाम अर्थशास्त्रोंको कहतेहैं जिनसे अनागत अर्थोंका साधन और समागत अर्थोंकी रक्षा विधिदण्ड पूर्वक जानीजातीहै अर्थात् राजाको विशेषकर उशना और वृहस्पति

आदि आचार्यों के कहेहुये नीतिशास्त्र और कृष्णद्वैपायनकृत महाभारत संबन्धी राजधर्मके पढ़ने वा समुझने में विशेषता हो २१ तथैव वार्त्तामें विनीत हो अर्थात् कृषि वाणिज्य पशुपालन धनवृद्धि आदि कामोंकी मूलविद्या वा कुशलता को वार्त्ता कहतेहैं तिसमेंभी राजाको निपुणता हो २२ तथैव (त्रयीविद्या) में विनीत हो अर्थात् ऋक् यजुःसाममयी तीनों विद्यामें प्रवीणहो किन्तु भिन्न२ उनके ज्ञाताओंसे प्रावीण्य संग्रह कियाहो २३ इत्यादि सर्वगुणसंयुक्त होनेपर अभिषेक पानेका अधिकारी राजकुमार होताहै २०८।२०९।२१०॥

अधि०त्रयाणांसह–यहांपर वीस इकीस वाईस तेईस इनचारों अन्त्य संख्याओं में कहीहुई वार्त्तामध्ये मनुजीने अच्छीरीति कहीहै-सायथा (त्रैविद्येभ्यस्त्रयींविद्यांदण्डनीतिंचतद्विदः। आन्वीक्षिकींचात्मविद्भ्योवार्त्तारम्भांश्चलोकतः) अर्थात्-राजात्रैविद्य लोगोंसे जुदी २ एक २ विद्या जिसमें जोहो उस्से वही संग्रहकरै और दण्डनीति उसके जाननेवालेसे संग्रहकरै आन्वीक्षिकी नाम आत्मविद्या आत्मविद्याके जाननेवालोंसे किंतु जिस२विद्याकीपरीक्षा जिसने अपनेआत्मद्वारा करलीहो उस्से वही संग्रह करै सो ये विद्यायें चतुर्दश विद्याओंसे अपेक्षितहैं और(वार्त्तारंभांश्चलोकतः)अर्थात् कृषि वाणिज्य पशुपालन आदि नाना लक्षणवती वार्त्ता जो लोकमें प्रसिद्ध हैं उनको भी उनकेजानने वाले लोगोंसे सीखे समुझे-ऐसेही ऊपर पंद्रहवीं संख्यामें कहेहुये अठारहव्यसनोंके नाम जैसे (मनुजी) ने कहे हैं-तथाच (मृगयाक्षादिवास्वप्नःपरिवादः स्त्रियोमदः। तौर्यत्रिकंवृथाघातःकामजोदशकोगणः-पैशुन्यंसाहसंद्रोहईर्ष्याऽसूयार्थदूषणम्।वाग्दण्डजंचपारुष्यंक्रोधजोपिगणोऽष्टक) अर्थात्-(मृगया) नाम आखेट या शिकार १ (अक्षा.)अर्थात् कईप्रकारके द्यूतकर्म जो पाँशेआदिसे खेलेजाते २ (दिवास्वप्न) दिनका सोना ३ (परिवाद) वृथावाद थोथी कुतर्कणा आदि आपसके मनुष्यों से ४ (स्त्रीसेवा)अधिकतर या अनुचित मर्यादसे या दिवसमें स्त्रीप्रसंग ५ (मद)मदिरा आदिका सेवन ६ (तौर्यत्रिक)नृत्य १ गीत २ वादित्र ३ इन तीनोंमें अधिक तत्पर होना (वृथाघात)किसी प्राणीमात्रको विनाकारणके वधकरना या करवाना ८ आठहुये परंतु सातवेंके साथमें तीनकहे इस्से उन दोनोंको जोडकर दशहुये सो ये दश अवगुणो का गणकहिये समूह कामसे अर्थात् मनकी अभिलाषसे उत्पन्नहुये व्यसन कहलाते हैं ये दशव्यसन राजाको अत्यन्त पीडा तथा राज्य हानिके हेतु प्रसिद्ध हैं इसलिये इनमें तत्पर न हो-ऐसेही क्रोधसे उत्पन्नहुआ आठ अवगुणोंका अष्टगण कहलाताहै उनमें पैशुन्य पराई चुगुली चाई आदि परोक्षनिन्दा १ (साहस) विना विचार किये किसीपर प्रबलता आदि करबैठना २ (द्रोह)विना कारणका द्रोह बैर आदि खडाकर लेना ३ (ईर्ष्या) ईर्षा जो परोत्कर्ष आदिके नसहने से या क्रोधसे या दुर्जनतासे छल

पूर्वक वधकारिणी हो ४ (असूया) निन्दा ५ (अर्थदूषण) प्रत्येक शुद्धकामों में भी दोष लगाना ६ (वाक्पारुष्य) क्रोधसे गाली आदिका उच्चारण करना ७ (दण्डपारुष्य) दंडे आदिसे निज अपने हाथसेही या विना अपराध के ताड़नकरना आदि ८ ये आठों व्यसन क्रोधसे उत्पन्न होतेहैं और राजाके प्राण तथा राज्यके विनाश करनेकेहेतु प्रसिद्धहैं इसलिये राजाको प्रथम तो क्रोध नहीं करना उचित और क्रोधके आजाने परभी इनका ध्यानरखकर इनका अवरोध करना उचितहोना-इन अठारहमेंभी सात व्यसन छांटकर अतिकष्टदायक वतलाते हैं-यथा (पानमक्षाःस्त्रियश्चैवमृगयाचयथा क्रमम्। एतत्कष्टतमंविद्याच्चतुष्कंकामजेगणे-दण्डस्यपातनंचैववाक्पारुष्यार्थदूषणे। क्रोधजेपिगणेविद्यात्कष्टमेतत्त्रिकंसदा) अर्थात्-एकतौ(पान)मद्यादिवस्तुका १(अक्षाः) जूये का साधारणभावसेभी खेलना २ स्त्रियों का सेवन ३ मृगया शिकार अतिशय करके ४ ये चारों यथाक्रम से उत्तरोत्तर अधिकाधिकभाव से कष्टतम कामजगण में से छँटेहुये व्यसनजानै- और दण्डका पातन किन्तु निज अपने हाथसे जैसा ऊपर लिखागया १ (वाक्पारुष्य) धिक्कार या गाली आदि जैसा ऊपरकहा२ (अर्थदूषण)ऊपर कहेहुये के अनुसार ३ ये तीनों भी क्रोधजगणमें से छँटे हुये व्यसन सदाही कष्टतम जानो-ऐसेही उन्नीसवीं संख्यामें कहेहुये सप्तांग राज्यके सातोंअंग-यथा(स्वाम्यमात्यसुहृत्कोषाराष्ट्रदुर्गबलानिच। परस्परोपकारित्वाद्राज्यंसप्तांगमुच्यते) अर्थात्-एक तो (स्वामी) १ (अमात्य)जिसे प्रधान मंत्री या दीवानआम या देशदीवान कहतेहैं २ (सुहृत्)मित्र जो अन्यराजा उस राज्यके शुभचिंतकहों३ (कोष)धनागार,अन्नागार वस्त्रागार,शस्त्रागार आदि जो प्रसिद्धहोतेहैं तिनके उपलक्षणसे उनकोषोंके अध्यक्ष भी समुझने ४ (राष्ट्र)राज्य ५ (दुर्ग) क़िलागढ़ इसी उपलक्षण से गढ़का अध्यक्ष भी समुझना ६ (बलानि)फ़ौजें ७ये सातों परस्पर उपकारके हेतुसे राज्यके अंगकहलाते हैं अर्थात् इनमेंसे एकभी नहो तो राज्यनष्ट-होसक्ता और परस्पर उपकार का यह भावहै कि फौजोंके नहोनेमें शेष छः अंगोंकी रक्षा नहोनेसे छहू नष्ट होजायँ-ऐसेही कोषोंके नहोनेमें सेनासहित उन छःअंगोंकी पालना नहीहो तौभीमरे-ऐसेही मित्रोंके नहोनेमें शत्रु प्रवल होजायँ तव उस फ़ौज और खज़ाने आदि छः अंगोंसे कुछभी नहीं होसक्ता-ऐसेही उन पूर्वोक्त मित्रोंको इस मित्रसे भरोसा है इसी प्रकार परस्पर सातोंकी रक्षा और कल्याण उन्हीं सातोंसे होताहै-तव सप्तांगराज्य कहलाता और अभेद्य गिनाजाताहै-सिद्धांत इसका यह कि उन्नीसवीं संख्यामें जो कहाथा कि राजा (स्वरंध्रगोप्ता) हो अर्थात् अपनेइन्ही सातअंगोंके रंध्रकहिये(छिद्रों)को ढांकतारहे जिस्से इनमें किसी एकमेंभी कोईशत्रु प्रवेश करनेका मार्गनहींपावे और(छिद्र)कहने से मार्ग यहएक उपलक्षणमात्र है किंतु इसमें दोनों वातकी लक्षणा दर्शाई हैं अर्थात् एकतो

मार्गरूपी छिद्र यहभी कि कोई घुसंजाने नहींपावे दूसरा मुख्य यहभाव है कि इन कहेहुये अंगोंके अध्यक्षोंसे कोईशत्रु मिलाप नहीं करनेपावे क्योंकि शत्रु जब किसी अंगमें प्रवेश करताहै तो दोनों प्रकार से अर्थात् कभी तो अध्यक्षों की शिथिलता प्रमाद गफ़लत आदिके हेतुसे और कभी उनसे मिलाप करिके प्रवेश करता है सो यह मिलाप आदि कारण उसी अवस्थामें होतेहैं कि जब राजा पूर्वोक्त अठारह महाव्यसनोंमें आसक्तहोताहै किंतु अठारहमेंसे कोई एकव्यसनभी जबराजामें अधिकतर होगा तभी इनसातों अंगमें से किसी न किसी अंगमें प्रवेशकरने का अवकाश शत्रु को अवश्य मिलजावैगा इसलिये अठारह व्यसनों से राजा हाथखींचे और अपने छिद्रोंका ढाँकना इसका नामहै कि अपने राज्यके सातअंगों यद्वा उनके अध्यक्षों को साम आदि नीतिसे अपने वशमें यथासंभव, यथाकाल, यथाशक्ति, यथाअवसर के अनुकूल काम और क्रोधोंको रोकताहुआ बनारक्खे बसयही छिद्रोंका ढांकनाहै-यथा (सद्भावेनहरेन्मित्रंसद्भावेनचबांधवान् । स्त्रीभृत्यौदानमानाभ्यांदाक्षिण्येनेतरंजनम्) अर्थात्-मित्रको सद्भाव कहिये निष्कपटतासे वशमेंरक्खे ऐसेही निज बांधवों को भी सद्भाव कहिये सत्कारसे वशमें रक्खे स्त्रियों तथा समस्त भृत्यवर्गों कोभी दान और मानसे वशमें रक्खै इनके सिवाय अन्य मनुष्योंको शिष्टाचार आदि चतुरतासे हरै-तद्यथा(लुब्धमर्थेनगृह्णीयात्स्तब्धमंजलिकर्मणा । मूर्खंछन्दानुसारेणयथातथ्येनपंडितम्)ऊपर कहेहुये सात अंगोंमें पहलाअंग जो(स्वामी)कहाथा यद्यपि(स्वामी) शब्द से केवल राजासे अपेक्षा है किन्तु जैसे छः अंग और हैं तैसेही सातवाँ अंग राजा आपहै जैसे अन्य छः अंगोंकी रक्षा तैसे अपनी रक्षाके छिद्रमार्गों का अवरोधकरै-परन्तु-इसीस्वामी शब्दके अभिप्राय से यहांपर(युवराज)सेभी अपेक्षा है किन्तु जैसे अन्य अध्यक्षों वा मित्रोंसे निज शत्रुओंका मिलाप होजाने के छिद्रोंको ढांकै तैसेही युवराजसेभी किसी शत्रुका मिलाप होजानेवाले छिद्रोंको ढांकतारहै यह सिद्धांत है-पुनि इसी स्वामीशब्द के विशेषणसे प्रदेशाधिप भूपालभी अपेक्षितहैं किंतु जैसे अन्य छः अंगोंमें निज शत्रुके प्रवेश होनेवाले छिद्रोंका अवरोध कियाजाताहै तैसेही सातवांअंग जो प्रदेशाधिप भूपाल कहिये सूबालोग तिनसेभी किसीशत्रुके मिलाप होजानेवाले मार्गोंको ढांकै या उन्हींकी पराङ्मुखताका ध्यान रखकर तत्संबंधी छिद्रों को ढांके यह सिद्धांत हैं-इसीलिये उनकेभी लक्षण पहले देखलेने आवश्यक हैं-यथा (यःकुलाभिजनाचारैरतिशुद्धःप्रतापवान् । धार्मिकोनीतिकुशलःसस्वामीयुज्यतेभुवि) अर्थात्-वह पुरुष किसी भूमिभागमें स्वामी नियत कियाजाताहै जो अपनेकुलके और अभिजन कहिये संबंधियोंके भी आचारसे अति शुद्धहो किंतु अपनी कुलपरिपाटी पर आरूढ़हो और किसी अपने संबंधीसे विरुद्ध नहीं रखताहो और प्रतापवान्

कहिये प्रतापी रूःअवसे संयुक्त हो जिसके प्रतापसे वहसौंपाहुआ भूमिभाग स्वाधीन बनारहे किन्तु हाथसे नजातारहे पुनि धार्मिकहो किंतु ऐसी अधर्मवृत्ति उसकी नहो जिस्से उस भूमिभागकी प्रजाको बिगाड़दे और नीतिमें प्रवीणहो जिस्से वहांके प्रबंधमें न्यूनता नहींआनेपावे वह स्वामी नियत कीजिये-अन्यच्च-(क्षात्रधर्मरतोनित्यं वृथाहिंसांपरित्यजेत्। शुष्कवैरंमृषालापंपरोनिन्दांचवर्जयेत्॥ क्रोधंद्वेषंभयंशाठ्यंपैशुन्यमसदाग्रहम्। कौटिल्यंदंभमुद्वेगंयत्नेनपरिवर्जयेत्।)-अर्थात्-क्षात्र धर्म राज्य संबंधी आचरणमें तत्परहुआ राजा नित्यंप्रति वृथा हिंसाका परित्याग करै-सूखावैर किसी अपने नौकर चाकर या मित्रादिकोंसे न बांधे-मृषालाप व्यर्थ वार्त्ताका कथन करना-पराईनिंदा सन्मुख या पीछेभी करनेकात्यागरक्खै-क्रोध-पराया द्वेष-भयभीत रहना या होजाना-शठता धारण करनी-पिशुनता का स्वभावकरना-असद्वार्त्ताका आग्रहकरना कुटिलता-दंभ-उद्वेग मतफो व्याकुलकरलेना-इन सारीवातों को राजा यत्नपूर्वक छोड़ देवै जो अकंटक राज्य करना चाहे ३०८।३०९।३१०॥

यह तो राजा के (अंतरंग) अर्थात् आत्मीयगुण कहे जो शरीरमें होने चाहिये।

अब नीचे (बहिरंग) गुण कहतेहैं जो शरीरके बाहर होने चाहिये॥

समंत्रिणःप्रकुर्वीतप्राज्ञान्मौलान्स्थिरान्शुचीन्। तैःसार्द्धंचिंतयेद्राज्यंविप्रेणाथततःस्वयम्॥३११॥

ऐ०-(स) कहिये वही अभिषेकयुत राजा जिसकेगुण ऊपर कहेगये सो ऐसे मंत्रियों को अपने मंत्रित्वमें राखे जो(प्राज्ञ)हों अर्थात् हित अहित की बात समझने में चतुर हों पुनि(मौलान्)अर्थात् जो अपने वंशकी परंपरा में चले आतेहों वे मौल कहलातेहैं तिनको करै पुनि(स्थिरान्)अर्थात् जो अतिहर्ष के स्थान तो विशेष हर्षित होकर फूलें नहीं और अति विषाद के स्थान कुम्हिलाकर घबरावें नहीं वेस्थिर कहलातेहैं तिन को करै पुनि(शुचीन्)अर्थात् धर्म अर्थ कामके भयसे जिनको राजाने उपधाद्वारा शोधिलियेहों वे शुचि यद्वा उपधाशुचि कहलातेहैं तिनकोकरै-तिनकेसाथ राज्यकाचिंतमनकरै कितुसंधिविग्रह आदि राजवृद्धिके लक्षणवाले कामोंका विचारकरै तहां सभी मंत्रियोंको इकट्ठे करके एकसाथभी और आगे पीछे एक २ से जुदी २ भी संमतिलेवे पुनि (विप्रेणाथ) अर्थात् उनके साथ संमतिकिये पीछे सकल शास्त्रार्थ के विचार में कुशल ऐसे ब्राह्मण वा पुरोहितसे संमति लेवे पुनि ततःस्वयं अर्थात् ब्राह्मणसे विचारांश किये पीछे केवल आप भी निज बुद्धि से विचार करे ३११॥

अधि०-मंत्री जनों के लक्षण जोअन्य शास्त्रोंमें कहेहैं तिनमें कोई २वार्त्ता अधिक पाई जातीहै इसलिये उनका लिखनाभी यथोचितहै-तद्यथा(स्वदेशजंकुलाचार विशुद्धमुपधाशुचिम्।मंत्रज्ञमव्यसनिनंव्यभिचारविवर्जितम्।अधीतव्यवहारांगमौलंख्यात विपश्चितम्।अर्थस्योत्पादकंसम्याद्विदध्यान्मंत्रिणंनृपः)अर्थात् राजा ऐसामंत्री नियत

करे जो अपने देशमें जन्माहो और निज कुलके आचारसेभी शुद्धहो और उपधासे भी शुचिहो किंतु उपधाद्वारा राजाने शोधन उसका कियाहो मंत्रज्ञभीहो किंतु मंत्र संमति सलाह में प्रवीणहो और अव्यसनीहो किंतु कोई तरहका व्यसन दुर्व्यसन जिसमें न हो व्यभिचारसेभी रहितहो यहां पर व्यभिचार उसकी प्रकृतिसे अपेक्षा रखताहै अर्थात् ऐसी व्यभिचारवती प्रकृति न हो कि अभी कुछ कहा और थोड़ीदेर में उसीबातसे पलटगया-और व्यवहारांग उसने पढ़ाहो जिस्से प्रजाकेन्यायमें गड़बड़ झाला न करदे और मौलहो जिसके लक्षण ऐक्यार्थमें कहचुकेहैं और विख्यात हो और विपश्चितहो अर्थात् किसी वार्त्ताके समझनेमें बुद्धि जिसकी रुकती या उलझती न हो इनबातोंके होनेपरभी भलीभांति अर्थका उत्पादनकरसकने वालाहो तिस को मंत्रीकरै-अन्यत्र-युक्तिकल्पतरुनामक नीति शास्त्रे-यथा (शांतोविनीतःकुशलःसत्कुलीनःशुभान्वितःशास्त्रार्थतत्त्वगोऽमात्योभवेद्भूमिभुजामिह)अर्थात्-शांतप्रकृतिवालाहो किन्तु क्रोधीस्वभाव जिसका न हो विनीतहो किन्तु सौशील्य विद्यामें निपुणहो और कुशल अतिचतुरहो और सत्कुलीन कहिये श्रेष्ठ कुलमें जन्माहो और शुभान्वित कहिये शुभ आचरणवालाहो किन्तु कुमार्गी न हो पुनि शास्त्रार्थ तत्त्व कहिये व्यवहारांग आदि जानताहो ऐसा अमात्यनाम मंत्री इहसंसार यहाराज्य प्रबंधमें राजाओंका होवै-मनुजीके कथनसे मंत्रियोंकी संख्याभी सात यद्वा आठ निश्चितहोतीहै-यथा-(मौलान्शास्त्रविदःशूरान्लब्धलक्षान्कुलोद्भवान्। सचिवान्सप्तचाष्टौवाकुर्वीतसुपरीक्षितान्)अर्थात्-सचिवनाम मंत्रीजन सात अथवा आठ ऐसेकरै जो भली भांति परीक्षा कियेहों किन्तु उपधाद्वारा राजा ने शोधिलियेहों और मौलहों जिनके लक्षण ऐक्यार्थ में कहेथे और शास्त्रोंके जानने वालेहों शूरमाहों पुनि लब्धलक्षहों किन्तु जिनका चिह्नकोईसा विख्यातहो और कुलोद्भवकहिये यातो राजाकेही कुलमें हुयेहों या किसी अन्य सत्कुलमें जन्मेहों-यहां पर बहुधा उपधाकाचर्चा आया यद्यपिइसमें कहींभी उसके लक्षण कहे नहीं परन्तु कालिका पुराणमें उपधाके लक्षणकहे हैं-यथा (धर्मार्थकाममोक्षेश्चप्रत्येकंपरिशोधनैःउपेत्यधीयतेयस्मादुपधापरिकीर्त्तिता॥ अर्थकामोपधाभ्यांतुभार्याःपुत्रांस्तुशोधयेत्। धर्मोपधाभिर्विप्रांस्तुसर्वाभिःसचिवान्पुनः)अर्थात्-राजाकोयहउचितहै कि धर्म अर्थ काम मोक्ष इनचारोंसे प्रत्येक मनुष्यको यथायोग्य परिशोधनकरे-तहां इन चारों से यद्वा किसी एकहीसे परिशोधनों करके किन्तु परिशोधनके उपायोंसे (उपेत्य-धीयते) अर्थात् जिसलिये परिशोधनका उपाय उसके उप कहिये समीप पहुँचाकर धारण किया जाता और निज बुद्धिद्वारा उसका अभ्यंतर अपने मनमें धारण किया जाता इस्से उसकर्मको (उपधा) कहते और उस पुरुषको (उपधाशुचि) कहते हैं जो उसमें पूराउतरे पर यथार्थ में यह भी एकप्रकारकी

गुप्तपरीक्षा होतीहै जिसको राजा धर्मके भयसे अर्थकेभयसे कामकेभयसे मोक्षकेभय से इनके संबंधी मनुष्योंकी जुदी२नाना भांतिकी रीतोंसे करताहै दृष्टांत जैसेअर्थकी परीक्षामें गुप्तभाव उसके समीप कुछ धन रखवादेना या किसी निजमनुष्यके द्वारा चोरी आदिका कुछलालच दिखलाना इत्यादि नाना प्रकार-ऐसेही कामकी उपधा नाम परीक्षा मध्ये किसीस्त्रीसे छलवार्त्ता करवाना आदि नानाप्रकार-ऐसेही संबमें जानो-तहां-दूसरे श्लोकसे उपधाका भिन्न व्यवहार बतलातेहैं कि-(अर्थउपधा) और (कामउपधा) इनदोनोंसे भार्याओं और पुत्रोंकाभी परिशोधन करलेवे-और (धर्मकीउपधाओं) से विप्रोंका परिशोधनकरै पुनि सचिव जो मंत्रीलोगहैं तिनके आशयका परिशोधन सर्भसे किन्तु चारोंप्रकारकी उपधाओं से परीक्षा करै (उपधीयते शुद्धि ज्ञानमत्र) ३११॥

पुरोहितंप्रकुर्वीतदैवज्ञमुदितोदितम्। दंडनीत्यांचकुशलमथर्वांगिरसेतथा ३१२॥

ऐ०—वह राजा पुरोहितभी करै किंतु सभीप्रकारके दृष्टा दृष्टार्थरूप कर्मोंमें पुरतः कहिये आगे बढ़कर हितकरनेवालेको दान मान सत्कारोंसे अपनेमें युक्तकरै अर्थात् सदैवकेलिये अपना करिकै मानै सो वह पुरोहितभी (दैवज्ञ) हो अर्थात् होनेवालेग्रहोत्पातोंको प्रथमसे जाननेवाला और उनकीशांति आदि प्रक्रियाका जानने वालाहो पुनि (उदितोदितं) अर्थात् विद्या अभिजन अनुष्ठान आदि उदित कहिये शास्त्रोक्त तिनसे उदित कहिये समृद्ध संपन्न ऐसाहो और (दंडनीति) में कुशलहो किंतु अर्थ शास्त्रका वेत्ताहो तथा (अथर्वांगिरस) में भी कुशलहो किंतु प्रतिष्ठाशांत्यादि कर्मोंमें प्रवीण हो ३१२॥

श्रौतस्मार्तक्रियाहेतोर्वृणुयादेवचर्त्विजः। यज्ञांश्चैवप्रकुर्वीतविधिवद्भूरिदक्षिणान् ३१३॥
भोगांश्चदद्याद्विप्रेभ्योवसूनिविविधानिच। अक्षयोयंनिधिराज्ञांयद्विप्रेषूपपादितम् ३१४॥
अस्कन्नमव्यथंचैवप्रायश्चित्तैरदूषितम्। अग्नेःसकाशाद्विप्राग्नौहुतंश्रेष्ठमिहोच्यते ३१५॥

ऐ०त्रयाणांसह—(श्रौत)कर्मअग्निहोत्रादि और(स्मार्त)कर्मउपासनाआदि क्रियाओंकी अनुष्ठान सिद्धिकेलिये ऋत्विजोंकोभी करै अर्थात् उनकर्मोंके जाननेवालोंको अपना ऋत्विक् बनावै-और-बहुतसी दक्षिणावाले राजसूयादि यज्ञोंकोभी विधिवत्करै३१३ पुनि उन्हींयज्ञोंकी क्रियासाधनाके दानद्वारा विप्रोंको नानाप्रकारकेभोग कहिये सौख्य वस्तु अनेक देकर और (वसूनि) कहिये धनभी सुवर्ण रूप्य आदि देवै क्योंकि यह ब्राह्मणों को अर्पण कियाहुआ धन राजाओंका अक्षयनिधि कहलाता किंतु इसका नाश नहींहोता ३१४ वरन हवनादि द्वारा अग्निमें होमेहुये यद्वा यज्ञादिकों में लगाएहुयेकी अपेक्षा(विप्राग्नि)में होमाहुआ श्रेष्ठ इससंसारमें कहलाता-(विप्राग्नि) विप्र रूप अग्निमें होमाहुआ अर्थात् विप्रोंको दियाहुआ इसलिये श्रेष्ठहोताहै कि जिस्से

यह विप्रोंका दियाहुआ(अस्कन्न)होताहे किन्तु फैलता या खिंडता नहीं और (अव्यथ) होता किन्तु उसयज्ञमें पशुहिंसा आदिभी होती, इसमें हिन्सानहीं और प्रायश्चित्तों सेभी अदूषित होता किन्तु यज्ञादि संबंधी पशुहिन्सा के प्रायश्चित्तभी करने होते इसमें प्रायश्चित्तकी अपेक्षा नहीं ३१५॥

अलब्धमीहेद्धर्मेणलब्धंयत्नेनपालयेत् । पालितंवर्द्धयेन्नीत्यावृद्धंपात्रेषुनिक्षिपेत् ३१६ ॥

ऐ०—ऊपर कहाथा कि विप्रोंको धनादिक वस्तुदेवे तिसकी परिपाटी कहते हैं कि इसरीतिसे देवे-किन्तु जो वस्तु हाथमें नहींआई उसके लाभहोनेके लिये धर्मके अनुकूल वांछा और उपायभी अनेक भांतिसे करे और यत्नसे हाथ आएहुये की रक्षा करे किंतु निज आप उसकी अपेक्षा वनीरक्खे पुनि रक्षा कियेहुये कोभी नीति नाम युक्ति से बढ़ातारहे पुनि वृद्धिको पहुँचेहुये धनों को पात्रोंमें निक्षेप करे अर्थात् धर्म अर्थ कामरूप श्रेष्ठ पात्रोंको देतारहे पुनि दूसरा अर्थ यहभीहै कि बढ़ेहुये को निधि रूप पात्रोंमें निक्षेपनाम संचयभी करतारहे पर मुख्यार्थ वहीहै ३१६ ॥

अब कदाचित् भूमिआदि दानकियाहो उसकीरीति कहतेहैं ॥

दत्वाभूमिंनिबंधंवाकृत्वालेख्यंतुकारयेत् । आगामिभद्रनृपतिपरिज्ञानायपार्थिवः ३१७ ॥

ऐ०—यथोक्त विधिसे भूमि ग्राम क्षेत्र आदिदेकर अथवा(निबंध)नियतकरिके(लेख्य) पत्र अर्थात् सनद उसकी करवावे-किसलिये कि-(आगामि) समय भविष्यत्कालमें जो होनेवाले(भद्रनृपति)युवराज आदि यद्वा जो कोई किसीहेतुसे किसी कालांतरमें वहां के राजा हों तिनके परिज्ञानके लिये लेख्यपत्र करवावे जिस्से उनको यह मालूम हो कि अमुक राजा ने अमुक मनुष्य को अमुकवस्तु अमुक समयपर दीथी सो यह (भूमिदान) या (निबंधों)का नियत करना और (लेख्य) पत्रोंका करवाना भी सब उसी (पार्थिव)के आधीन किंतु भूपतिके सिवाय किसी भोगपतिको अधिकार इसमें नहीं- और निबंध वे कहलातेहैं जो राजा किसीको वसौंदी या मासिक या नैत्तिक आदि अनेक रीतोंसे कुछ बन्धान नियत करताहै ३१७॥

लेख्यपत्र किसरीतिसे करवावे सो कहते हैं ॥

पटेवाताम्रपट्टेवास्वमुद्रोपरिचिह्नितम् । अभिलेख्यात्मनोवंश्यानात्मानंचमहीपतिः ३१८ ॥
प्रतिग्रहपरीमाणंदानच्छेदोपवर्णनम् । स्वहस्तकालसंपन्नंशासनंकारयेत्स्थिरं ३१९ ॥

ऐ०संहृदयोः—(पटे)अर्थात् कपास आदि सूत्रके बुनेहुये और माड़ी चढ़ेहुये वस्त्र पर या कसीदा आदिकी रीतिसे जैसी जहांकी परिपाटी हो या जैसी राजाकीइच्छा हो उसकेअनुसार अथवा(ताम्रपट्टे)तांबेकेपत्रपर लिखवाकर खोदवावे इत्यादि कागद पर्यंत औरवस्तु भी द्वितीय (वा) शब्दके अभिप्रायसे समुझनी तिसके ऊपर पहले राजानिज (आत्मनोवंश्यान्) अर्थात् अपने प्रपितामह पितामह पिता और (आत्मानं)

अपने नामको इन सवों के गुण वीर्य आदिकी विख्याति सहित (अभिलेख्य) कहिये लिखकर वा लिखवाकर तथैव (च) शब्दकी लक्षणा से प्रतिग्रह लेनेवाले का भी नाम उसकी विख्याति सहित लिखे और (प्रतिग्रहपरिमाणम्) अर्थात् प्रतिग्रह जो वह दान वस्तु किन्तु जितना निवन्ध या जितनी धरतीहो तिसका परिमाणभी इसप्रकार से लिखवावे कि इतने मुद्रा मासिक या बसौंड़ी तथैव (दानच्छेदोपवर्णनम्) अर्थात् जो पृथ्वी आदि का (दान) हो तौ उसका (छेद) कहिये परिच्छेद किन्तु अन्य धरतीसे भिन्नता करदेनी लिखे (दृष्टान्त) जैसे अमुकनाम धरतीका एकनिवर्तन अर्थात् कितश्च अमुकनाम नदीके अमुकनाम घाट वा किनारेसे लेकर अमुक ठिकाने पर्यंत-जिसका इतनेबीघे या बिस्वे आदि परिमाणहै और इतना उसका भूमिलाभ होताहै-फिर इसपीछे उस धरतीका(उपवर्णन)भी इसप्रकार से लिखवावे कि उसके दक्षिण ओर अमुक क्षेत्र वा अमुकग्राम है पूर्वओर अमुक नदी वा झीलहै पश्चिम ओर खेड़ाहै पहाड़है उत्तरओर वन या राजमार्ग आदि जो कुछहो इत्यादि लिखे पीछे(स्वहस्तकालसम्पन्नम्)अर्थात् स्वहस्त सम्पन्न तथा कालसम्पन्नकरिके स्थिर शासन करे किन्तु दृढ़आज्ञाकर देवे(दृष्टांत)यथा अपने हस्ताक्षरों से संयुक्त करना तौ स्वहस्तसंपन्नता कहलाई सो इसप्रकारसे कि हमने अपने संमत पूर्वक निजहाथसे हस्ताक्षर किये और अमुक नामा मनुष्य अमुकनामाके पुत्रको जो इसपर लिखदिया सो प्रमाणहो-ऐसेही (कालसंपन्न) का यह भावहै कि पंचांगविधि सहित शाके और संवत्सर आदि दोप्रकारके कालपरिमाण उसमेंलिखे कि जोएकसे भूलपरनेकी संभावनाहो तौ दूसरेसे निश्चय होजावै कि इतनीवर्षें इसपत्रके लिखे पीछे बीती हैं और उनपर्व आदिकालोंसेभीसंपन्नकरे कि उसदिन चंद्रग्रहण या संक्रांति आदि जोकुछहो-औरदृढ़ आज्ञाकाकरदेना यह कि जो कुछहमनेलिखा सो आगेकोभी कोई(भद्रनृपति) नहींमेटै किंतु इसलिखेहुयेका शिष्टमार्ग सवकोई पालनकिये जावे इसप्रकार सर्वथा उसपत्रको संपन्नकिये पीछे (स्वमुद्रोपरिचिह्नितम्)अर्थात् अपनी राजकार्यसंबंधी मुहरसे लिखावटकेऊपर भिन्नकिसी योग्यस्थलपर चिह्नितकहिये अंकितकरदेवे३१८।३१९॥

भवि०-(पार्थिवःस्वयंकुर्यात) इस कथनसे संधिविग्रह आदि करनेवाले किसीअन्यमंत्री आदिको इसवातमें अधिकार नहीं सोई यहस्मृतिभी प्रमाणहै कि(संधिविग्रहकारीतुभवेद्यस्तस्यलेखकः।स्वयंराज्ञासमादिष्टःसलिखेद्राजशासनम्)अर्थात्-संधिविग्रह करनेवाला कोई मंत्री आदि जो उसका लेखकहो सो निज राजाकरके ठीक आज्ञा पायाहुआ राजशासन लिखे-किंतु राजाकी अधकची आज्ञापरभी स्वातंत्र्य सेही न लिखबैठे ३१८।३१९॥

अब राजाका निवास-स्थान कहतेहैं ॥

रम्यंपशव्यमाजीव्यंजांगलदेशमावसेत् । तत्रदुर्गाणिकुर्वीतजनकोषात्मगुप्तये ३२० ॥

ऐ०-राजा ऐसेदेशमें बसै जो (रम्य) कहिये रमणीय किंतु अशोक चंपक आदिवन वृक्षोंसे संपन्नहो और (पशव्य) कहिये पशुओंको हितकारीहो किंतु चारा आदिकी वहुताइतसे पशुओंकी वृद्धिकरनेवालाहो और (आजीव्य) कहिये कंदमूल पुष्पफल अन्नादिनाना वस्तुवालाहो जिस्से सबका पालनहोसके और (जांगल) हो अर्थात् यद्यपि जांगल देश, उसीको कहतेहैं जिसमें थोडा जल थोड़ेवृक्ष थोड़ेपर्वतहों परन्तु यहां पर जांगल शब्द एक उपलक्षण मात्र केवल एकांत देशका वाचकहै अर्थात् राजाके निवासयोग्य ऐसाजांगल देशहो, जो वस्तीसे कुछदूर और अधिक जलवान् अधिक वृक्षवान् अधिक पर्वतवान्हो-तहां-निजमनुष्योंकी और कोषोंकी औरनिज आत्माकीभी रक्षाकेलिये एक अथवा अनेक दुर्गवनावै ३२० ॥

प्रधि०-दुर्ग उसस्थानको कहतेहैं जिसमें कोई शत्रुआदि जानाचाहै तौप्रथम तो जाही नहींसके अथवा बड़ेदुःखोंसे गतिकरके पहुँचसके इसलिये दुर्गके न होनेमें राजाका निर्वाह नही होसक्ता-क्योंकि(अदुर्गोविषय:कस्यनारेःपरिभवास्पदम् । अदुर्गोऽनाश्रयोराजापोतच्युतमनुष्यवत्) अर्थात्-विना दुर्गका राज किस राजाका निजशत्रुके पहुँचायेहुये पराभवका आस्पद नहीं होजाता इसलिये विनादुर्गके अनाश्रयभूत राजा ऐसा गिनाजाता, जैसा जहाजसे गिराहुआ मनुष्य विनआश्रय होजाताहै-मत्स्यपुराणके १९१ अध्यायमें दुर्गरचनाकी अपेक्षासे यह कहाहै कि(दुर्गंचपरिखोपेतं वप्राट्टालकसंयुतम् । शतघ्नीयंत्रमुख्यैश्चशतशश्चसमावृतम्-गोपुरंसकपाटंच तत्ररयात्सुमनोहरम् । सपताकंगजारूढोयेनराजाविशेत्पुरम्)अर्थात्-दुर्गभी सब ओरसे खाईकरके युक्त और वप्रनाम मट्टीके ऊँचे२टीले दमदमे जो मोरचाओंके योग्यहों और अट्टालक नाम-अटारी भटे और ऊंचेऊंचे बुरज इनसेभी संयुक्तहो और शतधाप्रकारकी शतघ्नी नाम तोपों और यंत्रचरख आदि सबचीजोंसेभराहो-तिसदुर्गमे गोपुर कहिये द्वारफाटिक सहित सुन्दरमनका हरनेवाला और इतना ऊंचाहो जिसमें होकर हाथीपर सवारहुआ राजा निशानोंसहित दुर्गपुरमें प्रवेशकरै-दुर्गभी छःप्रकारके होतेहैं सोई मनुजीने उनके यहलक्षण कहेहैं कि(धन्वदुर्गंमहीदुर्गमब्दुर्गंवार्क्षमेव च । नृदुर्गंगिरिदुर्गंचसमाश्रित्यावसेत्पुरम्) अर्थात्-इनछःमें से कोईसा एकदुर्ग अपने वासपुरके प्रति सबओरसे घेरादेकर निवासकरै-तिनमें एकतो (धन्वदुर्ग) उसे कहतेहैं जो अपने निवासपुरके सब ओर पाँच२योजन भूमिपर्यंत मरुदेश निर्जलहो वहांभी बडे दुःखोंसे पहुँचना होताहै जैसा बीकानेर आदि मारवाड़ देश मरुभूमि प्रसिद्धहै १ दूसरा (महीदुर्ग) उसे कहतेहैं जोपत्थरईंटसे वनाहुआ द्वादशहाथ ऊंचाकोटसब

ओरसे घेराहुआ वहुं विस्तारवाला युद्धके हेतुसे ऊपर सेनाके फिरनेंयोग्य अति चौड़ाकोट जिसमें साधारण अनेक भांतिके गवाक्ष झरोखेभी बनेहों सुन्दर कपाटों संहित द्वारहो जैसे दिल्ली आगरा आदिके किले २ तीसरा (अब्दुर्ग) उसे कहते हैं जो सब ओर अगाधगहिरे जलसे घिराहो जैसे काश्मीर और ब्रह्माके देशआदि में किले प्रसिद्धहैं ३ चौथा (वार्क्षदुर्ग) उसे कहतेहैं जो सब ओर वृक्षोंसे घिराहो जैसा रुहेलोंके रामपुरमें वांसोंका घेरा और कटियारी मुल्क अवधमें बबूरोंका ४ पांचवां(नृदुर्ग)उसे कहतेहैं जो चार प्रकारकी सेनासे चाहे तिसमैदानमें रचना करिकै बांधिलिया जाताहै जैसे महाभारत और भोजप्रबंध आदि ग्रंथोंमें विशेषकर चक्रव्यूह शकटव्यूह पद्मव्यूह आदिनाना भांतिसे कहेहैं और लोकमेंभी युद्धसमय बहुधा रचेजातेहैं उसको चाहे सदैव कोई उसीप्रकारसे बनाकर उसमें निर्भय वासकरताहै तो स्थावरदुर्ग बनानेकी जरूरत न हो क्योंकि यहजंगमदुर्ग इसीसे कहलाताहै कि इसको चाहे तहां उठाकर लेजासक्के हैं बरन ऐसे राजा सदैव इसीदुर्गसे निर्वाहकरते कि जो किसी प्रबल के भयसे वनमें भागे फिरतेहैं ५ छठा (गिरिदुर्ग) उसको कहतेहैं जो सब ओर पहाड़ोंसे घिराहो जैसे नैपाल और जयपुर आदिकेदुर्ग प्रसिद्धहैं ६-यद्यपिदुर्ग सभीश्रेष्ठहैं पर इनमें छठा गिरिदुर्ग सबसे उत्तम होताहै-यथा(एषांहिबाहुगुण्येनगिरिदुर्गंविशिष्यते) इनमें (धन्वदुर्ग) के रहनेवाले तो मरुमृगोंके समान निर्भयगिने जातेहैं १ (महीदुर्ग) के रहनेवाले ऐसे निर्भय कहलातेहैं जैसे बिलमें रहनेवाले जीवोंको शत्रुनहीं पीड़ादेसक्का २ (जलदुर्ग)के रहनेवाले ऐसे निर्भय कहलातेहैं जैसे जलचरजीव जलमें निजशत्रु के वशमें नहीं आते ३ (वृक्षदुर्ग)में रहनेवाले ऐसे निर्भय कहलातेहैं जैसे वृक्षोंपर बसने वालेजीव किसीके वशमें नहीं आते ४ (सेनादुर्ग) के रहनेवाले इतना निर्भय कहलातेहैं जितना मनुष्य अपने मनुष्यत्वसे किसी अन्य जीवके वशमें नहीं आता ५ (गिरिदुर्ग) केरहनेवाले इतना निर्भय कहलाते जैसे देवता स्वर्गमें बैठेहुये मनुष्यके वशमें नहीं आसक्केहैं-इसीसे गिरिदुर्ग सबसे उत्तम कहलाता ६-तथाच (त्रीण्याद्यान्याश्रितास्त्वेषांमृगगर्ताश्रयाप्चराः । त्रीण्युत्तराणिक्रमशः प्लवङ्गमनरामराः-यथादुर्गाश्रयानेतान् नोपहिंसंतिशत्रव ।तथारयोनहिंसंतिनृपंदुर्गसमाश्रितम्)यह बडाई दुर्गमें रहनेवालों की रक्षामध्ये लिखीगई अब आगे दुर्गद्वारा कामोंकी सिद्धिवर्णन करतेहैं मनुजीके कथनसे-यथा(एकःशतंयोधयतिप्राकारस्थोधनुर्द्धरः । शतंदशसहस्राणितस्माद्दुर्गंविधीयते-तत्स्यादायुधसंपन्नंधनधान्येनवाहनैः।ब्राह्मणैःशिल्पिभिर्यंत्रैर्यवसेनोदकेनच-तस्यमध्येसुपर्याप्तंकारयेद्गृहमात्मनः । गुप्तंसर्वर्तुकंशुभ्रंजलवृक्षसमन्वितम्) अर्थात् प्राकारमें बैठा हुआ धनुष्धारी एकही बाहरले सो मनुष्योंकेप्रति लड़ताहै एवं प्राकार में बैठेहुये मनुष्योंका सैकरा एक बाहरले दशहजारोंके साथ लड़सक्काहै तिसकारण

से दुर्गवनातेहैं-वह दुर्गशास्त्रों से संपन्नहोवे तथैव धन धान्य और चतुष्पदादि बाहनों और ब्राह्मणोंसे और शिल्पिनाम कारीगरोंसे अनेक यंत्रोंसे और यवसनाम घासफूस भूसाआदिसे जलसेभी संपन्नहोना चाहिये-तिसके मध्यमें अपने रहने योग्य सुपर्याप्त कहिये वहुत ठीक रचनावाला विस्तारवान् घरवनवावे-पुनि-वह स्थानभी सब ओरसे (गुप्त) हो अर्थात् खाई अंतर कोट ब्रारदीवारी आदिकी रक्षातथा सेना की तैनाथी आदिकी रक्षाओंसे सुरक्षित और अगम्यहो और (सर्वर्तुक) हो किन्तु वर्षा शीत आतप आदि सभी ऋतुकी आरामयोग्यहो और (शुभ्र) कहिये अतिनिर्मलहो जलों और वृक्षोंसेभी संयुक्तहो यह मनुजीने कहाथा-इसभांति निर्मित किये हुये दुर्गोंके(अध्यक्ष) कहिये अधिष्ठाता और उन्हींके उपलक्षणवान् रक्षकभी जैसेहोने चाहिये तिनके लक्षणकहतेहैं-यथा(अनाहार्य्यश्चशूरश्चतथाप्राज्ञःकुलोद्गतः।दुर्गाध्यक्षःस्मृतोराज्ञस्तद्युक्तःसर्वकर्मसु)अर्थात्-राजाका दुर्गाध्यक्ष ऐसा होनाकहाहै जो प्रथम तो (अन्-आहार्य्य) हो किन्तु जिसे कोई घेरकरपकड़ न सक्ताहो ऐसेपराक्रम और चालाकी वालाहो और युद्धकरनेमें विख्यात शूरमाभीहो तथैव (प्राज्ञ) कहिये अतिचतुरहो और कुलोद्गतहो किन्तु प्रथम तो राजाकेही कुलकाहो अथवा किसी ऐसे उत्तम कुलकाहो जो अपने कुलमें सर्वोपरि अंकुशरूप नियमित कियागयाहो-जो२ लक्षण इसमें कहे वेही इसके आधीनकी सेनामेंभीहों अर्थात् ठेठदुर्गकी रक्षासंबंधी सेनाके सभी लोग इसभांतिके चुगमाहों ३२० ॥

तत्रतत्रचनिष्णातानध्यक्षान्कुशलाञ्छुचीन्। प्रकुर्य्यादायकर्मान्तव्ययकर्मसुचोद्यतान् ३२१॥

ऐ०-(तत्रतत्र) जहांके तहां ठौरठौर अर्थात् धर्म,अर्थ,काम, मोक्ष संबंधी कार्य्योंमें श्रेष्ठ (अध्यक्षों) को नियतकरे जो उन्हीं कामोंके करनेयोग्यहों १-सो कैसे अध्यक्षोंको नियतकरे (निष्णातान्) अर्थात् जो उसीएक अपने२ व्यापारमें तत्परहों किंतु वहुधंधी न हों जिस्से उनका चित्तएकाग्र न होसके२पुनि (कुशलान्) अपनेसंबंधी कामोंकी प्रक्रियामेंभी प्रवीणहों३-और (शुचीन्) अर्थात् चार प्रकारकी उपधा जिनका चर्चा ३११ की अधिकोक्तिमें आयाथा तिनसे शुधेहुयेहों४-पुनि (आयकर्मान्त-उद्यतान्) अर्थात् आय कहिये लाभसंबंधी कर्म जो सुवर्णादि उत्पत्तिके (आकर) स्थानों पर आवश्यक होतेहैं तिनके (अंत) कहिये निकट जाकर निज २ कामकी अवेक्षामें उद्यतरहैं किंतु उपस्थित बनेरहाकरें ऐसा उनका स्वभावहो ५-पुनि (व्ययकर्मसु-उद्यतान्) अर्थात् सुवर्णादि अन्नादि शस्त्रादिके खर्चकरने किंतु देनेवाले कामोंपर उपस्थित रहनेवालेहों६-और(च)शब्दकेअभिप्रायसे(प्राज्ञत्व)आदिगुणयोग्यतासेभी संपन्नहों३२१॥

अधि०—ऊर्ध्वोक्तवातोंका निर्णय-ऊपर कहाथा कि धर्म,अर्थ,काम, मोक्ष संबंधीकार्योंमें जो लोग उन्हींकामोंके योग्यहों तिनको नियतकरे सो कहतेहैं-यथा (धर्मकृत्येषु

धर्मज्ञानर्थकृत्येषुपंडितान्।स्त्रीषुक्लीवान्नियुंजीतनीचान्निंद्येषुकर्मसु) अर्थात् पंचयज्ञादि और दानादि धर्म संवंधी कार्योंके स्थान धर्मज्ञोंको अधिष्ठाताकरै (और) अर्थकृत्य कहिये धनकी आमदि संवंधी कार्योंमें पंडितोंको अर्थात् शास्त्र और लोकसेभी अतिचतुरोंको कि जो हानि लाभकी विवेचनामें समर्थहों (और) काम संवंधी कार्योंपर अर्थात् स्त्रियोंकी रक्षा और पालन आदि स्थानोंमें क्लीवोंको किंतु जो नपुंसकहों तिनकोही अधिष्ठाता करे (और) निंद्य यद्वा मलीन कामोंके स्थान नीच जातोंको अध्यक्ष वनावे-तिसपर वे आपभी उनकार्योंमें कुशल कहिये प्रवीणहों यहकहाथा-तद्यथा-(योयत्रकुशलःकार्येतंतत्रविनियोजयेत्।कर्मस्वदृष्टकर्माय:शास्त्रज्ञोपिविमुह्यति) अर्थात्-जो२ मनुष्य जिसकार्य्यमें निपुण और प्रवीणहो उसीको उसकार्य में आरोपितकरै-क्योंकि-कर्मोंमें जो अदृष्टकर्मा होता वहशास्त्रज्ञभी विमोहित होजाता अर्थात् जिसने किसी कामका ढंगकेवल उसकामके विधिनिषेधरूप शास्त्रद्वारापढ़ा और समझाभी यद्यपिहो पर उसकामको करतेहुये कभीनदेखाहो तौवह ऐसाशास्त्रज्ञभी अदृष्टकर्मा होनेके हेतुसे उसकामके करने या करवानेमें विमोहितहोता अर्थात् घवराता और उसका जीउलझताहै (च) शब्दकेअभिप्रायसे प्राज्ञत्व आदिगुण योग्यता जोऊपर कहीथी-सायथा-(प्राज्ञत्वमुपधाशुद्धिरप्रमादोभियुक्तता। कार्येषुव्यसनाभावःस्वामिभक्तिश्चयोग्यता) अर्थात् (प्राज्ञत्व) कहिये चतुरता-और उपधाशुद्धि जैसी ३११ की अधिकोक्तिमें कहचुकेहैं तिसका होना-और (अप्रमाद) कहिये गफ़लत या असावधानीका न होना-और (अभियुक्तता) कहिये जिसकाम पर लगायाजाय तिसमें तत्परवनारहना-और (कार्येषु-व्यसनाभावः) किंतु निजसंवंधी कार्योंमें व्यसनका अभावकहिये न होना सो इसबातके कई सिद्धांतहैं तिनमें एकतौ यह कि जिसकामको अपनेस्वामीके लिये करता या करवाताहो उसी कामका व्यसन अपनेलियेभी उत्पन्न करिके उसकामको जुदानिज अपनेलिये प्रारंभकरलेना किसीलाभकी दृष्टिसे-दूसरा यहकि उसकामकेकरने या करवानेमें व्यसन कहिये विपत्ति झगड़ा टंटा विघ्न उपद्रव आदि वारम्वार खड़े करदेने-तीसरा यह कि उसकार्यके सिवाय अन्य कामोंमें आत्मीयव्यसन उत्पन्न करलेने-इत्यादि अनेक सिद्धांतरूप व्यसन जिसमें न हों किंतु चित्तकी एकाग्रतासे उसीकामकी साधनामें तत्परवनारहे-इनकहेहुये शुभगुणोंका होना उस मनुष्यकी योग्यता अर्थात् लियाक़त कहलातीहै ३२१॥

नात:परतरोधर्मोनृपाणांयद्रणार्जितम्। विप्रेभ्योदीयतेद्रव्यंप्रजाभ्यश्चाभयंसदा ३२२॥
यआहवेषुवध्यंतेभूम्यर्थमपराङ्मुखा। अकूटैरायुधैर्यांतितेस्वर्गयोगिनोयथा ३२३॥

ऐ०सहद्वयोः—पहले ३१४ श्लोकसे लेकर सामान्य धनों और भोगोंका दान फल कहाथा अव यहांपर विक्रमार्जित धनोंकादान फल विशेष कर कहतेहैं कि-राजाओं

को इससे अधिक परतर धर्म और कोई नहीं जो विप्रोंको (रणार्जित) कहिये रणके द्वारा संग्रहकिया धन और प्रजाओंको अभयदान सदैव दियाजाताहै ३२२ रणमें विपत्तिभी आपरतीहै फिर कहांसेधन और दान या धर्महोसक्ताहै किंतु न जानें पीछे क्याहो इसलिये कुछ न करनेमेंही कल्याण है इस हेतुसे कहते हैं कि-ये भूपालभूमि आदिरत्नोंके अर्थ(आहवेषु)कहिये युद्धोंमें(वध्यंते) मारेजातेहैं ते उसप्रकार सुखसे स्वर्ग को जातेहैं जैसे योगाभ्यासमें रतहोतेहुये योगीपुरुष चलेजातेहैं परन्तु वेही कि जो (अपराङ्मुखा) अर्थात् सन्मुख होकर मारेजातेहैं किंतु मुहँफेरकर भागतेहुये जो पीछे शस्त्रखातेहैं वे नहीं और वेभी कि जो आप (अकूटशस्त्रों) से लड़तेहैं किन्तु ये विषदग्धआदि नानाकूट शस्त्रोंसे वधकरतेहैं ते नहीं ३२३ ॥

अब साधारण सभी युद्धकारियोंका धर्म कहतेहैं ॥

पदानिक्रतुतुल्यानिभग्नेष्वविनिवर्तिनाम् ।राजासुकृतमादत्तेहतानांविपलायिनाम् ३२४ ॥

ऐ०—भग्नेषु-अविनिवर्तिनाम्-पदानि-क्रतुतुल्यानि-इतिपूर्वार्द्धसंबंधः-अर्थात् हाथी घोड़ा रथ पदातीरूप अपने बलोंके भग्न होजाने किंतु सेना भंग होजानेमें जो कोई धैर्यवान् होकर अविनिवर्तीहोते अर्थात् उलटेनहीं फिरते किन्तु शत्रुओंके सन्मुख लड़ते चले जातेहैं तिनके जातेहुये एक२पग अश्वमेधादि यज्ञोंके तुल्य फल देनेवाले होतेहैं-इस्से विपरीत करनेमें दोषहै सो पिछले अर्द्धसे कहतेहैं कि-विपलायिनां-हतानां-सुकृतं-राजा आदत्ते-अर्थात् पराङ्मुखहोकर भागतेहुये मारेजानेवालों का पुण्यपहला संचित कियाहुआभी राजालेलेता है ३२४ ॥

परन्तु अग्रोक्तोंको मारनेमें निषेधहै सो कहतेहैं ॥

तवाहंवादिनंक्लीबंनिर्हेतिंपरसंगतम् । नहन्याद्विनिवृत्तंचयुद्धप्रेक्षणकादिकम् ३२५ ॥

ऐ०—किंतु इतनोंको कदाचित्भी न मारे एक तो (तवाहंवादिनं) अर्थात् जो यहकह कर आधीन होनेलगे कि मैं तुम्हाराहूं १ (क्लीब) नपुंसक जोयुद्धके भयसे भिन्नछिपता फिरताहो २ (निर्हेति) निःशस्त्र जिसके हाथमें शस्त्रनहो या हो और उसने फेंकदियेहों या युद्धकरतेहुये गिरगयेहों किंतु किसीतरहसे निहत्थाहो ३ (परसंगत) जो और किसी से लड़रहाहो ४ (विनिवृत्त) जो लडतेहुय भागपड़ाहो या लड़ाईसे हाथ खींचाहो ५ (युद्धप्रेक्षणक) जो युद्धका तमाशा देखरहाहो ६ (आदिकम्) इस आदिशब्दसे देखनेवाले को आदिलेकर औरभी अनेक संग्रहीतह तिनका चर्चानीचे अधिकोक्तिमें ३२५ ॥

अधि०—ऊर्ध्वोक्त-आदि शब्दकासिद्धांत(गौतमजी) के वाक्यसे अपेक्षितहै-यथा-(न दोषोहिंसायामाहवेऽन्यत्राश्वसारथ्यनायुधकृतांजलि।प्रकीर्णकेशपराङ्मुखोपविष्टस्थलवृक्षारूढदूतगोब्राह्मणवादिभ्यः) अर्थात्-(गौतम)ऋषिने यहकहाथा कि रणमेंहिंसा का दोष नहीं है परन्तु इनके सिवाय किंतु घोड़ा१ सारथी२अनायुध-निहत्था३कृतां-

जलि-हाथ जोड़ताहुआ ४ प्रकीर्णकेश-जो अपनी दाढ़ी हाथमें लेकर आगेकरै कि चाहै मारौ चाहै छोड़ो और वहभी प्रकीर्णकेशहै जिसकी आंखों आगे शिरके वाल या वालोंके उपलक्षणसे कुछवस्त्रआदि आड़हो जिसके हेतुसे वह तत्काल अपने हंताको देखनहीं सक्ता५ पराङ्मुख-जिसने लड़ाईसे मुँहफेरलिया६उपविष्ट-बैठाहुआ ७ स्थलारूढ़-जो युद्धभूमिसे अलहदे किसी स्थलमें खड़ाहो तिसको यद्वा वाहनसे उतराहुआ भी स्थलारूढ़ कहलाता उसको वाहन पर सवारहुआ नहीं मारै यहधर्म युद्धकीमर्यादहै८वृक्षारूढ़-जो वृक्षपरचढ़ाहो९दूत-जो चिट्ठी या ज़वानीख़वरलायाहो १०गो-गऊ या वृषभ और वृषभकेउपलक्षणसे अन्यभारवाहभी ११ब्राह्मण-साधारण मात्रभी परन्तु जो सन्मुख युद्धनकरताहो १२ वादी-जो लड़ाईको थाँभकर तर्कवादमें तत्परहो १३-अर्थात् इनको मारनेसे रणमेंभी हिंसादोष लगताहै-इसवार्त्तामध्ये कुछ विशेषतासे(शंखाचार्य)ने भी वर्जित किये हैं-यथा-(नपानीयंपिबंतंनभुंजानंनोपानहौमुंचंतंनावर्माणंनसवर्माणं नस्त्रियंनकरेणुंनवाजिनंनसारथिं नदूतंनब्राह्मणंनराजानमराजाहन्यात्-अर्थात-एक तो पानीआदि कुछपीतेहुये को नमारै१ नभुंजानं-खातेहुयेको भी नहीं२ नोपानहौमुंचंतं-जूताउतारतेहुये और इसी उपलक्षणसे पहिरतेहुयेकोभी नहीं३ नावर्माणं-जिसने कवच उतारदियाहो तिसको नहीं४ नसवर्माणं-कवचपहिरतेहुयेको नही५ नस्त्रियं-स्त्रीको नहीं६ नकरेणुं-हाथीको नहीं७ नवाजिनं-घोड़ेको नहीं ८ नसारथिं-सारथीको नहीं९ नदूतं-दूतको नहीं १० नब्राह्मणं ११ (नराजानं नराजा हन्यात्) अर्थात् राजाको सन्मुख युद्धकरतेहुयेको भी राजाही अपने हाथसेमारै परंतु जो राजा नहीं किन्तु राजाका नौकर मात्र कोईहो सो प्रतिपक्षी राजाको मारै नहीं अर्थात् पकड़लेना यह जुदीबातहै पर उसपर शस्त्र नहीं डाले क्योंकि राजा साक्षात् ईश्वरकारूप होताहै ३२५॥

अब दरवार आदि धंधोंका नियम कहतेहैं॥

कृतरक्षः समुत्थायपश्येदायव्ययौस्वयम्। व्यवहारांस्ततोदृष्ट्वास्नात्वाभुंजीतकामतः ३२६॥
हिरण्यंव्याप्टतानीतंभांडागारेषुनिक्षिपेत्। पश्येच्चारांस्ततोदूतान्प्रेषयेन्मंत्रिसंगतः ३२७॥

ऐ०सहद्वयोः—(कृतरक्षः-समुत्थाय) रक्षा किया हुआ किंतु यथा संभव सिपाहियों की रक्षासे संपन्न ऐसा दिनप्रति प्रातःकाल उठिकर (आयव्ययौ-स्वयं-पश्येत्) लाभ और खर्च दोनोंका लेखा जोखा आपदेखै (ततः) तिसपीछे (व्यवहारान् दृष्ट्वा) मुक़द्दमातके इंसाफ़ोंको देखभालकर मध्याह्नसमय यद्वा (कामतः) जिस किसीसमय अपनी इच्छा हो तव (स्नात्वा-भुंजीत) स्नानकरिके भोजनकरै ३२६ तिसपीछे (हिरण्य) कहिये सोना चांदी आदि जो कुछधन (व्याप्टतानीतं) किन्तु (व्याप्टतैः-आनीतं) अर्थात् व्याप्टतोंकरके लायाहुआ उक्तधन आप देखकर (भांडागारेषु) भंडारोंमें (निक्षिपेत्) डालदेवै किन्तुरख

देवे या रखवादेवे जैसा उचितहो-व्याप्रतोंका लायाहुआ अर्थात् व्याप्रत उन्हें कहते हैं जो धनके उत्पत्ति स्थानोंपर अधिकारी नियत किये जातेहैं-यह कामकिये पीछे (चारान्-पश्येत) चार नाम गूढ़चर किन्तु मुखबिरखुफिया जो विश्वासकिये और कहीं भेजेहुये गूढ़वृत्तांत लेकरआयेहों तिनकोदेखे अर्थात् उनकोदेखकर कहींटिकावे और पीछे किसी उचित समयपर उनकीवात बूझे सो इकल्ला आपनहीं किन्तु (मंत्रिसंगतः पश्येत्) मंत्रीके साथ होकर देखेबूझे ततः तिसके अनन्तर मंत्रीके साथहुआ राजा (दूतान्-प्रेषयेत) दूतोंको भेजे अर्थात् अन्यत्रभी जरूरी कामोंको जहां भेजनाहो और पूर्वोक्त गूढ़चारोंकेभी कहेहुये वृत्तान्त का दृढ़-निश्चय करनेको दूतभेजे जो उचित समझे ३२७॥

-अधि०सहद्वयोः-पूर्वश्लोकमें व्यवहारोंका देखनाकहाथा सोतो व्यवहाराध्यायआदि व्यवहारांगरूप शास्त्रोंकेअनुसारदेखे-उक्तंच(व्यवहारान्नृपःपश्येद्विद्वद्भिर्ब्राह्मणैस्सहाध र्मशास्त्रानुसारेणक्रोधलोभविवर्जितः)-अर्थात्-राजा क्रोध और लोभोंको छोड़कर धर्म-शास्त्रकेअनुसार व्यवहारोंको देखे पर इकल्लानहीं किन्तु विद्वान्ब्राह्मणों और मंत्रियों को साथलेकर देखे ३२६ (चार)और दूतोंका चर्चा कियाथा तिनमें चार का दूसरा नाम (प्रणिधि)कहतेहैं उसीको गूढ़चर भी कहते हैं इसहेतुसे कि वह छिपकर अन्य राज्योंका भेदभाव और अपने राज्यकाभी सारावृत्तांत गूढ़रूपसेचल फिर लेआता है-इसप्रणिधिमें इतनेगुणहोनेकेहैं नीतिवाक्यामृतमें-(अमौढ्यममान्द्यममृषाभाषि त्वमभ्यूहकत्वंच)-अर्थात्-जिसमें मूढ़ता मन्दता असत्यभाषिता नहीं और(अभ्यूहकत्व) कहिये प्रत्येक वार्त्ताको ऊहासेही पहँचानलेना,यहप्रकृतिहो इसके विशेषलक्षणदेखो आगे३३१ की अधिकोक्तिमें-दूत-उनको कहतेहैं जो किसीराजाके समीप प्रत्यक्षभाव से प्रकटभेजे जायँ परन्तु यहतीन प्रकारके होते हैं तिनकेनाम-यथा-निसृष्टार्थ १ संदिष्टार्थ२ शासनहर३-तहां-(निसृष्टार्थ) वे कहलातेहैं जो राजकार्योंको देशकालके औचित्य अनुकूल आपही कथनकरनेमें समर्थहों किन्तु किसीकामकी आज्ञानाम मात्र सेही मिलनेपर तत्काल उसकामके करनेवालोंको अपनी बुद्धिसेही यथायोग्य समझादिया अथवा जहांकहीं आपही भेजेगये तो वहांजाकर सबउत्तर प्रत्युत्तर अपनी प्रज्ञासे आपही साधन करिआये वरन अन्त्य सिद्धांत इनका यहीहै कि विनाआज्ञा भी देशकाल के अनुकूल योग्य कामोंका साधन स्वतःकरसके१(संदिष्टार्थ)वे कहलाते हैं कि जितनीवात उनको आदेश पूर्वक सुनादीगई उतना संदेशा जाकर कहसुना देवें उसको कि जहांभेजेजायँ २ (शासनहर)वे कहातेहैं कि जिनको मुखसे तो सुनीहुई भी कहआनेमें चतुरता नहीं परन्तु लिखेहुये आज्ञापत्रों को पहुँचासकें ३-इन दूतों के गुण और लक्षणभी पहले मनुजीके कहे दर्शातेहैं-यथा-(दूतंचैवप्रकुर्वीतसर्वशास्त्र

विशारदम्। इंगिताकारचेष्टज्ञंशुचिंदक्षंकुलोद्गतम्) अर्थात्-राजा ऐसेपुरुष को दूत नाम वकीलबनावे जो सर्वशास्त्रों किंतु देखेंबिनदेखेभी नीत्यादि अर्थ शास्त्रोंकेसमझने में बुद्धि विशारद हो पुनि (इंगित-आकार-चेष्टज्ञं)इन तीनबातोंकाज्ञाता तहां(इंगितज्ञ)जो मनोगत अभिप्रायमात्र का सूचन करनेवाला बचन स्वरादि से और (आकारज्ञ) जो मुख प्रसन्नता मुखमलीनता आदि देह धर्मोंकी समस्या से बातको पहँचाने और (चेष्टज्ञ) हाथ उँगुली नेत्र आदिके इशारे से तत्त्ववार्त्ता को सूचन करसके और (शुचि) जो धन तथा स्त्रीव्यसनसे शुद्धहो(दक्ष)चतुर हो और कुलोद्गतभीहो किंतु यातो राजा केही कुलकाहो यद्वा किसी प्रतिष्ठित कुलका हो-क्योंकि (अनुरक्तःशुचिर्दक्षःस्मृतिमान्देशकालवित्। वपुष्मान्वीतभीर्वाग्मीदूतोराज्ञःप्रशस्यते) अर्थात्-राजाका दूत ऐसा उत्तम होताहे जो(अनुरक्त)हो किन्तु अपने स्वामीके सिवाय सभीमनुष्योंमें स्नेह करनेवाला हो जिस्से किसी राजाकेपास भेजाजाय तौ वहां वार्त्ता २ द्वेष नहींकरलेवे और(शुचि)जो धन तथा स्त्री व्यसनसे शुद्ध होवे जिस्से कोई प्रतिपक्षी राजा उसको धन या स्त्री देकर लोभसे तोड़नहींलेवे और(दक्ष)चतुरहोना इसलिये योग्यहै कि काम को और कामके समयको उलाँघे नहीं और(स्मृतिमान्)होना इस्से उचितहे कि सीख पायेहुये संदेशेको यादरक्खे इत्यादि किसीबातको भूलैनहीं और(देशकाल)का जानने-वालाइसलिये कि देश और कालको पहँचानकर कुछ अपनीबुद्धिसेभी जैसा उचित समझै कहसके इसीलिये प्रत्यक्ष देशों और कालोंकी व्यवस्थाभी सीमा आदि वा आचार आदि सार्वदेशी व्यवहारों को यथावत् रीतिसे जानताहो किन्तु शास्त्र और लोकसेभी जिस्से देशकालके अनुकूल किसीवार्त्तामें अनुत्तर न होजाय-और (वपुष्मान्) अर्थात् अच्छे डीलडौल स्थूलदेह सुरूपवान् वा निरोगीभीहो जिस्से उसका वचन शीघ्रहृदयमें स्वीकारहो और निरोगतासे किसीकामको अधकच्चाछोड़कर नहीं भागे-और(वीतभीः)किंतु निर्भय स्वभावहो जिस्से किसी अप्रिय संदेशकेभी कहनेमें भय-भीत न होजाय और (वाग्मी)हो किन्तु उक्तिपूर्वक मधुरभाषणसे बातचीत करता हो जिस्से सुननेवालेका मन उपरामको न पहुँचे ऐसे दूतसे राजाके सबकामसिद्धहोतेहैं-मत्स्यपुराणमेंभी इसके लक्षण कहेहैं-यथा (यथोक्तवादीदूतःस्याद्देशभाषाविशारदः। सक्तःक्लेशसहोवाग्मीदेशकालविभागवित्॥विज्ञातदेशकालश्चदूतःस्यात्समहीक्षितः। (तेषामपि) वक्तानयस्ययःकालेसदूतोनृपतेर्भवेत्) अर्थात्-दूत ऐसाहो जो यथोक्त वादी किन्तु जो बात राजाने कहकर भेजाहो उसीबात का चर्चा बादकरे किन्तु उस बातको छोड़कर कोई नईबात न खड़ी करलेताहो ऐसा स्वभावही उसका सदैवहो-अनेक देशभाषाओंके बोलने और समझनेमें विशारदहो क्योंकि अनेक देशोंमेंजा-ना परैगा जहां की भिन्न२ भाषाहोती हैं (सक्त) हो किंतु कामोंमें लगारहताहो (क्लेशों)

कोभी सहलेनेमें पक्काहो क्योंकि देशविदेश जानेमें क्लेश अवश्यहोतेहैं (वाग्मी) हो इसके लक्षण ऊपर कहचुके हैं (देशविभागवित्) भूगोल आदिके द्वारा देशोंकी सीमा आदि अनेक विभागोंका जाननेवाला (कालविभागवित्) तीनों कालका विभाग किंतु भूत भविष्य वर्त्तमानमें पलघड़ी आदिसे लेकर युगों पर्यंतका गणित हिसाब और राजाओंके शकसंवत्सर और वितीत राजाओंके मितिग्रंथ अर्थात् तवारीखोंकाभी जानने वालाहो-इसके सिवाय (विज्ञातदेशकाल) हो अर्थात् समय२का वर्तावा सर्वदेशों और कालोंकी रीतिभांति मर्यादें यहभी सब जानी सीखीहों सो मनुष्य राजाकादूत हो(तिनमेंभी)जो कोई उपस्थित समयपर तत्काल नयनीतिका वक्काहो सोठेठ नृपति का समीपवर्त्ती दूतहोवे-जिसके द्वारा अन्य देशों के आये हुये विराने दूतों से वार्त्तालाप राजाकरे किंतु निजअपनेही मुखसे नहीं-चाणक्यमेंभी इसके लक्षणकहेहैं-यथा (मेधावीवाक्पटुःप्राज्ञःपरचित्तोपलक्षकः । धीरोयथोक्तवादीचएषदूतोभिधीयते)अर्थात् (मेधावी) बुद्धिमान्हो (वाक्पटुः)किन्तु जिसकी वाणीमें लावण्य और चतुरताहो (प्राज्ञ) पंडित विवेकीहो-और पराये चित्तकी भावना लखसक्काहो (धीर) धैर्य्यवान्हो (यथोक्तवादी) भीहो इसकेलक्षण ऊपर कहचुकेहैं-यहदूत कियाजाताहै-दूतोंकी महिमा बारम्बार इसलिये कहनीपरी कि दूत राजद्वारोंमें बड़ी पदवीका मनुष्यहोता और संधितथा विग्रह यह दोनों बात इसकेहाथमें रहती हैं इसीलिये (मनुजीने) कहाहै कि (अमात्येदंडआयत्तोदंडेवैनयिकीक्रिया । नृपतौकोशराष्ट्रेचदूतेसंधिविपर्ययौ॥दूतएव हिसंधत्तेभिनत्त्येवचसंहतान् । दूतस्तत्कुरुतेकर्मभिद्यंतेयेनवानवा॥सविद्यादस्यकृत्येषु निगूढेङ्गितचेष्टितैः । आकारमिंगितंचेष्टांभृत्येषुचचिकीर्षितम् ॥ तथाप्रयत्नमातिष्ठेद्यथात्मानंनपीडयेत्) ३२७॥अर्थात्-दंड जो वस्तुहै सोतो (अमात्य)नाम सेनापतिकेआधीनहै किन्तु हाथी घोड़ा रथ पयादे यह चतुरंगिनीसेना और शस्त्र जो हैं सोईदंडरूप हैं सो उसके आधीनमें सौंपेहुये रहते हैं इसलिये दंडसंबंधी कामोंमें उसकी योग्यतादेखी चाहिये क्योंकि(दंडेवैनयिकीक्रिया) अर्थात् यावन्मात्र विनयक्रिया किन्तु जो२ नीति संबंधी प्रबंध हैं सो सबदंडके आधीन हैं दंडविनावशमें नहीं आसक्के इसलिये उसका होनाभी सूचितहै-और कोशधनकास्थान तथा राज्य देश ग्राम यहदोनों वस्तु राजाके आधीनहोतीं किंतु औरके आधीन करदेना उचित नहीं इसलिये राजा आप इनका प्रबंधरक्खे-ऐसेही (दूतेसंधिविपर्ययौ) अर्थात् संधिनाम फूटेहुयोंका मिलापकरादेना और विपर्ययनाम विग्रह किंतु मिलेहुयोंमें विरोध युद्धकरवादेना यह दोनोंबात दूतके आधीन होतीहैं वह जो चाहे सो राजाकीइच्छासे विपरीतभी करसक्काहै उसको थोड़ा नहीं समझना इसीलिये अबदूसरे श्लोकमें फिर सावधान करते और दूतकी प्रशंसाभी करतेहैं किंतु दोनोंपक्षमें यहकथनहै कि ॥ दूतही फूटेहुयोंको

मिलादेताहै दूतही मिलेहुयोंको फोड़देताहै दूतवह कर्मकरताहै परदेशमें जाकर कि जिसकर्मसे बड़े२ज्ञानमानभी आपसमें फूटजातेहैं-अवतीसरे श्लोकसे दूतको शिक्षा करतेहैं कि॥ वह दूत इसप्रतिपक्षी राजाके (कृत्येषु) कर्त्तव्य कामोंकेमध्ये (विद्यात्)भेद भावलेवे किसप्रकारसे (निगूढ-इंगितचेष्टितैः)अर्थात् निगूढ़नाम जो भितरियालोग राजाके समीप रहनेवाले परिजन आदि तिनकी समस्या और चेष्टाओंसे जाने क्या जाने वहांका (आकार) डौल (इंगित) मनोगत अभिप्राय(चेष्टा)कर्त्तव्यता जैसी देखपरे-और उसराजाका (चिकीर्षित) कहिये जो कुछ वहकरना चाहताहो सोउसके (भृत्येषुच) जानीयात् अर्थात् क्षोभकियेहुये अपमान पायेहुये लोभी आदि लघुसेवकोंके वार्त्ता कथनसेभी जाने अब चौथेश्लोकमें इसदूतकी अपेक्षासे-भेजनेवाले राजाको शिक्षा करतेहैं कि॥ उसदूतके द्वारा साराहाल वहांका तत्त्वपूर्वक जानिके तैसा यत्नकरे जिस्से अपनेको पीडा नहीं पहुँचे-किसीका भेजाहुआ दूत जो अपने पासआवे उसका वधकरना निषेधहै-यथा (नदंडार्हःप्रतिनिधिस्तथादूतोपिसुव्रतैः। नियोक्तृकृतदोषेण विधिरेपसनातनः) अर्थात्-यह सनातन विधिचली आतीहै कि सुव्रतों धर्मज्ञोंकरके प्रतिनिधि नाम मुखतार तथा दूतनाम वकील यद्वा संदेशाहर ये दोनों भेजनेवालेके दोषसे दंडयोग नहींहोते किन्तु जोआत्मीय कुछ अपराधकरवैठें तो जुदीवातहै-यतः (स्वापकर्षपरोत्कर्षदूतोक्तैर्मन्यतेतुकः। सदैवावध्यभावेनदूतःसर्वंतुजल्पति)अर्थात्-दूतकी उक्तियोंसे पराई उत्कर्षा और अपनी न्यूनता कौनमानै है किन्तु कोई नहीं मानता क्योंकि दूत अपने अवध्यभावसे निडर होकर सदैव सब कुछ कहनी न कहनी भी कहताहै-अन्यच्च (उद्यतेष्वपिशस्त्रेषुदूतोवदतिनान्यथा। नचहन्यात्तथाप्येनंराजा दूतमुखोयतः)अर्थात्-दूत अपने ऊपर शस्त्र उद्यत होनेपरभी अन्यथा नहीं कहता किन्तु जो आज्ञा लेआयाहै सो उसदशामेंभी कहेविना नहीं रहता तथापि इसकोमारैनहीं क्योंकि जिसहेतुसे राजा दूतमुखहोता किन्तु दूतही राजाका मुखप्रसिद्धहै फिर जब राजाका मुख तोड़दिया तो वात चीत उसके हृदयकी क्योंकर जानीजायगी-तस्मात् (वैरूप्यमंगेषुकषानिपातोमौंड्यंतथालक्ष्मणसन्निवेशः। एतान्वधानर्हतिरूक्ष वादीशास्त्रेषुदूतस्यवधोनदृष्टः)अर्थात्-किसीअंगमें विरूपता करनी-या कषानिपात चाबुक आदिका मारना-या मुड़वादेना-याकिसीचिह्नसे दागदेना-इतने वधोंके योग्य यद्यपि रूक्षवादीहोताहै तथापि शास्त्रोंमें दूतका वधकहीं नहीं देखागया रूक्षवाद पर भी इसलिये दूतको मारे नहीं ३२६। ३२७॥

ततःस्वैरविहारीस्यान्मंत्रिभिर्वासमागतः। बलानांदर्शनंकृत्वासेनान्यासहचिंतयेत् ३२८॥

पं०-(ततः)दुपहर पीछे (स्वैरविहारीस्यात्) इच्छाके अनुकूल विहार करनेवाला हो किंतु चाहै अन्तःपुरमें आप एकाकी वार्त्ता विनोद करने जावे यद्वा बाह्यभूमि का

(विहार) सैर करने जहां कहीं जानेकी इच्छा हो तहां विश्वास पात्र मन्त्रियों करके (समागत)किन्तु उनके मध्यमें हाथी आदि पर वैठाहुआ रक्षापूर्वक विहार करने जावे वहांसे घूमघामकर फौजोंमेंजावे तहांवालोंका दर्शन किन्तु सज्जीभूत अलंकृत चतुरंगिनी सेनाओंकी गति मरिपाटीआदि देखभालकर(सेनान्यासहर्चितयेत्)किन्तुसेनानी नाम सेनाका अधिपति उस्से आवश्यक वातोंका चिंतमन विचार करै अर्थात् सेना की रक्षा और शिक्षाआदिकी संमतिदेवै जैसा उचित हो ३२८॥

(अधि०-मनुनेभी कहा हैं कि (विहृत्यचयथाकामंपुनःकार्याणिचिन्तयेत्) अर्थात्-इच्छाके अनुकूल विहार कियेपीछे फिरभी कार्योका विचारकरे ३२८॥

अथ सायंकालसेपीछेका धन्धा कहते हैं॥

सन्ध्यामुपास्यशृणुयाच्चाराणांगूढभाषितम्। गीतनृत्यैश्चभुंजीतपठेत्स्वाध्यायमेवच ३२९॥

ऐ०-वहां से लौटाहुआ राजा संध्याकी उपासना करिके फिर (चाराणांगूढभाषितं शृणुयात्)अर्थात् पूर्वोक्त चार गूढचर जो आयेहुये कहीं टिकाये थे तिनका (गूढभाषित) किन्तु गुप्तवार्त्ता एकांत में सुने फिर गीत नृत्य आदि संयुक्त यथारुचिके अनुकूल किंचित्काल विनोद कियेपीछे डोढ़ीमें जाकर भोजन करै फिर(स्वाध्याय)को भी पढ़े अर्थात् अपना वह पाठ जिस्से रातोंदिन धन्धा करने परते हों किन्तु व्यवहारांग शास्त्र आदि तिनको रात्रिमें भोजन कियेपीछे फुर्सतमें विचारै जिस्से भूलैंनहीं यद्वा स्वाध्याय अपने जाती नियम का पाठ ३२९॥

अधि०-चार लोगोंकी गुप्त वार्त्ता श्रवण करने का प्रकारभी कहा है-यथा (संध्यां चोपास्यशृणुयादंतर्वेश्मनिशस्त्रभृत्। रहस्याख्यायिनांचैवप्रणिधीनांचचेष्टितम्) अर्थात्-संध्योपासन कियेपीछे(अंतर्वेश्मनि) राजमहलोंके भीतर एकांतमें जाकर(शस्त्रभृत) किन्तु नंगीखड्ग आदि हाथमें लियेहुये राजा उन लोगोंकी वार्त्तासुने जो(रहस्याख्यायी)हों किन्तु एकांतमें संमति करनेवाले और (प्रणिधीनांचचेष्टितम्) किन्तु प्रणिधिनाम चारलोगोंका चेष्टा कियाहुआ वृत्तांतहो सोभी इसीरूपसे सुने क्योंकि न जाने कोई कुछ विश्वासघात करनेका विचारकरिआयाहो-भला जिसवातसे ऐसाखटका सम्भवितहै तो श्रवण करनाही अनुचितहै किन्तु न सुनना चाहिये इस अपेक्षा में कहते हैं कि सो नहीं किन्तु अवश्य सुनना चाहिये-यथा (गावःपश्यंतिगंधेनवेदैःपश्यंतिच द्विजाः। चारैःपश्यंतिराजानश्चक्षुर्भ्यामितरेजनाः) अर्थात्-गौयें किसी वस्तुको पहचाना चाहतीहैं तो उसकी गन्ध सूंघनेसे पहचानती हैं और ब्राह्मण वेदोंसे देखकर पहचानते हैं ऐसेही राजालोग चारों की वात सुनकर देशों का वृत्तांत घरवैठे देखा करतेहैं और अन्य सब साधारण लोग नेत्रोंसेही देखसक्तेहैं-अर्थात्-चारलोग राजा के नेत्र कहलातेहैं इसीलिये (चारचक्षु) राजाका नामहै क्योंकि (चाराश्चक्षूंपियस्य)

यहीबात नीतिवाक्यामृतमेंभी कहीहै कि(स्वपरमंडलकार्याकार्यविलोकनेंचाराश्चक्षूंषि क्षितिपालानाम्) अर्थात्-अपने और परायेमंडलोंका काज अकाज भलाई बुराई जो कुछ कही होताहो तिसके देखनेमें क्षितिपालोंके चक्षुचार लोगहोतेहैं-इसलिये चारों से अवश्यबातकरें-और पीछे जब भीतरली डोढ़ीमें भोजन करनेजावे तब किसी अन्य प्रधानको सौंपजावे-तथाचोक्तं-(गत्वाकक्षांतरंत्वन्यत्समनुज्ञाप्यतंजनम्। प्रविशेद्भोजनार्थंचस्त्रीभिरंतःपुरंसह) ३२९॥

संविशेत्तूर्यघोषेणप्रतिबुध्येत्तथैवच। शास्त्राणिचिंतयेद्बुध्वासर्वकर्तव्यतास्तथा ३३०॥

ऐ०—भोजनकरचुकने और पूर्वोक्त स्वाध्याय पढ़े पीछे, (संविशेत्) शयनकरै सो किस समयकरै कि (तूर्यघोषेण) अर्थात् तुरही आदि वाद्योंसे शब्द होनेके साथ किंतु एकप्रहर या सवापहर रात्रिगये का गजर बजनेपर सुनतेके साथसोवै क्योंकि वहगजर इसीलिये बजताहै कि सोरहनेकेलिये संबोधन होजाय किंतु अधिक जागने से भी रोगोंसे शरीर पीड़ित होजाताहै तब सभीकाम धंधे धन धर्मादिक बन्द होजातेहैं इसलिये अधिक जागेभी नहीं (तथैव-प्रतिबुध्येत्) अर्थात् उसीप्रकार तूर्यघोषके साथ जागै किंतु चौघटिका रात्रिशेषका गजरसुनतेही उठखड़ाहो क्योंकि वह गजर इसीलिये बजताहै कि सोनेवालोंको जागनेका संबोधनहोजाय और गजरयद्वा तूर्यघोष यहएक निदर्शन मात्रकहाहै किंतु जहां जैसी परिपाटीहो अर्थात् कहीं अनेक बाजन एकसाथ बजतेहैं कही शंखआदि कहीं केवल तुरुही कहीं केवलघंटा कहीं तोप कहीं धौंसानक्कारा नौबतआदि किसी२बोलीमें इसीको उर्दीभी कहतेहैं (बुध्वा-शास्त्राणिचिंतयेत्) जागने पीछे शास्त्रोंका चिंतमनकरै तथा (सर्वकर्तव्यताः) किंतु औरभी जोकुछकरनाहो अगले दिनमें वहभी सबकरने योग्य कामधंधे उसीप्रकार फिर चिन्तमनकरै जैसे पहले दिनमें भिन्न२ समभायेथे-दूसरा अभिप्राय इसका अगले श्लोकसे अनुकर्षपूर्वक यहभीहै कि रात्रिके पिछलेपहरे गुप्तभाव चुपकेउठिकर विश्वासपात्र शास्त्रज्ञोंके साथयद्वा एकल्लाही निज आपशास्त्रोंका विचार किसी आवश्यक और सुगुप्तवार्ताके निमित्तसे करै तैसेही अन्यभी कर्तव्यकामोंका विचार अगले दिनकेलिये उसीसमयकरलेवे सो इनदोनों बातका ब्योरा आगे ३३१ श्लोकमें भिन्न२खुलजायगा कि पहलेअर्द्धमें गुप्तभाव चारोंका भेजनाकहेंगे और पिछले अर्द्धमें दूसरेदिन में प्रातःकालके वे धंधे कि जो पूर्वदिनके धंधोंमें कहने शेषरहगयेथे सो स्पष्ट करेंगे (परन्तु) पढ़नेवालेको दोनोंदिनके कहेहुये धंधेसब एकदिनका व्यवहार समझनाचाहिये किंतु किसीदिन दोकाम अधिक आनिपरतेहैं किसीदिन दोन्यूनहोते परनित्यके मामूली काम सदैव एकसेहोते इसलिये दोदिनकी लपेटमें कहेहैं ३३०॥

अधि०—ऊपर कईश्लोकोंसे लेकर जो प्रतिदिनके आचारराजाको बतलाये गये

सोंनिरोगताकी दशामें समझने किन्तु विपरीततामें मुख्यमंत्री आदिको सौंपनामनु जीने कहा है-यथा (एतद्वृत्तंसमातिष्ठेदरोगःपृथिवीपतिः। अस्वस्थःसर्वमेवैतन्मंत्रिमुख्येनिवेशयेत्) अर्थात्-इसकहेहुये वृत्तनाम आचारपरपृथिवीपति(अरोग)स्वस्थहोकर स्थितहोवै और जो (अस्वस्थ) कहिये रोगीहो तौ यहसारे काम मुख्यमंत्रीके आधीनकरे किंतु किसी कामकी प्रवृत्ति नहींरोके अपनी बीमारीके हेतुसे ३३० ॥

प्रेषयेच्चततश्चारान्स्वेष्वन्येषुचसादरान्। ऋत्विक्पुरोहिताचार्यैराशीर्भिरभिनंदितः ३३१॥
दृष्ट्वाज्योतिर्विदोवैद्यान्दद्याद्गांकांचनंमहीम्। नैवेशिकानिचततःश्रोत्रियेभ्योगृहाणिच ३३२॥

ऐ०सद्वयोः-पूर्वोक्त विधिसे रात्रिशेषमें शास्त्रोंका विचार या संमतकिये पीछेउसी जगह बैठाहुआ विश्वासपात्र (चारों) को जहां२ भेजनाचाहे तहां सुगुप्तभावसे भेजे किन्तु (स्वेषु) अपने सामंत आदि अधिकारियोंपर यद्वा (अन्येषु) अन्यराजाओं पर उनका गुप्तभेद लेनेकेलिये दानमान सत्कारोंसे आदरसहित पूजित करिके भेजे पर इसबातको कोई और नहीं जाने किंतु इसीलिये रात्रिशेषमें शयनस्थान परबैठाहुआ गुप्तभावसे विचारकरना पहले श्लोकमें कहाथा (ततः) तिसपीछे-प्रातःकालका संध्योपासन अग्निहोत्र आदिकरिके-ऋत्विक्-पुरोहित-आचार्योंकरके आशीर्वादों से (अभिनंदित) हुआ किंतु तेजोबल पायाहुआ पश्चात् ३३१ ॥ ज्योतिर्विदोंको वैद्योंको देखकर उनसे निजशरीर व्यवस्था कहसुन और उनका बतलायाहुआ विधानकरने वालोंको आज्ञादेकर तिसपीछे यथोक्त विधिसे चाराआदिके प्रबंधपूर्वक विशेषदुग्धवतीगऊ और कांचन आदि और पृथ्वी और बनेहुये उत्तम घरभी और (नैवेशिकानिच) अर्थात् विवाहके उपयोगी पदार्थ वस्त्रअलंकारआदि कन्यादानके योग्यइत्यादि नाना सत्पदार्थ श्रोत्रियादिकोंको देवे ३३२ ॥

- भाषि०-भेजने योग्य (चार) लोगोंके लक्षण (युक्तिकल्पतरु) में अनेकधा कहे हैं-यथा-(विवस्वानिवतेजोभिर्नभस्वानिववेगतः। नृपोनिहन्याच्चारेणपरराष्ट्रंविचक्षणः) सयथा (तर्केंगितज्ञःस्मृतिमान्स्वीयभावाप्रकाशकः। क्लेशायाससहोदक्षःसर्वत्रभयवर्जितः॥सुभक्तोराजसुतथाकार्याणांप्रतिपत्तिमान्। तथान्यानपियुंजीतसमर्थाञ्छुद्धचेतसः॥ कालज्ञान्मंत्रकुशलान्सांवत्सराचिकित्सकान्।अक्रुद्धांश्चतथालुब्धान्दृष्टार्थान्तत्त्वभाषिणः॥ पाखंडिनस्तापसादीन्परराष्ट्रेनियोजयेत् (तेषामपिपरिज्ञाने) (स्वदेशपरदेशज्ञान्सुशीलान्सुविचक्षणान्। वार्ताहर्यान्बहूंश्चैवचाराणांविनियोजयेत्) यतः(नैकस्यवचनेराजाचारस्यप्रत्ययंवहेत्।द्वयोःसम्बन्धमाज्ञायतद्युक्तंकार्यमाचरेत्॥ तस्माद्राजाप्रयुंजीतचारान्बहुमुखान्बहून्।नीरेतोवामनाःकुब्जास्तद्विधायेचकारवः-भिक्षुक्यश्चारणादास्योमालाकार्यःकलाविदः। अंतःपुरगतांवार्तांनिर्हरेयुरलक्षिताम्॥ प्रकाशश्चाप्रकाशश्चचारस्तुद्विविधोमतः। अप्रकाशोऽयमुद्दिष्टःप्रकाशोदूतसंज्ञकः)

अर्थात्-विचक्षण राजा अपने शत्रुका राज (चार) द्वारा उस प्रकारसे मारे हरें कि जैसे (विवस्वान्) सूर्य अपने तेजोरूप किरणोंसे जहां जहां पाताहै सर्वत्र जलको शोषलेता है और (वेगतः-नभस्वान् इव) अर्थात् जैसे वायु अपने पवन वेगके झकोरोंसे वृक्ष वा छप्पर आदिको हर लेजाता है-तद्वत् राजा अपने चारों के वलसे कामकरै-वह (चार) भी ऐसा होना चाहिये (तर्क) और (इंगित) का जाननेवाला किन्तु बुद्धिसे ऊहा कर लेना किसीकी वात सुनकर अर्थात् अन्य सम्बन्धी वातसे निज प्रयोजनकी तर्कणा करलेना सो तौ तर्कज्ञ और इंगित किसीकी मनोगत वार्त्ताकी समस्या समझलेनी सो इंगितज्ञ ऐसे लक्षणवालाहो और (स्मृतिमान) हो किन्तु जो २ बात देखे सुनें सो तद्रूप याद रखसक्ता हो और (स्वीयभाव-मप्रकाशक) हो अर्थात् अपना भेद खोलने वाला स्वभाव उसका न हो जिस्से देखी सुनी बात या अपना सिद्धांत पेटमें रोक न सक्ताहो इतने गुण होनेपर भी (क्लेश) और (आयास) परिश्रमका सहलेनेवालाहो क्यों-कि विदेशमें गये पीछे परिश्रम तौ नित्यही आवश्यकहै और वहुधा भांतिके क्लेशभी आपरतेहैं तिनके सहलेनेमें पक्काहो औरभी (दक्ष) अति चतुरहो और सर्वत्र (भयवर्जित) किन्तु भयके स्थानमें भी निडर होकर किसी वहानेसे जासक्ता हो-इसके सिवाय जो यह वात उसमें हो कि अपने किसी रंगढंग या किसी गुणके हेतुसे राजाओं मे (सुभक्त) हो किन्तु अनेक राजाओंसे आना जाना आदि मेलमिलाप ठेठ अपनी स्वाभाविक वृत्तिसे रखताहो (दृष्टांत) जैसे भाटलोग या वहुरूपिआ लोग इत्यादि तौ यह अधिक श्रेष्ठ गुणकारी वातहै औरभी (कार्याणां-प्रतिपत्तिमान्) हो तौ अधिक उत्तमहो किन्तु अपने किसी व्यापार आदि कामोंके धंधे सिद्ध करनेवालाहो जो उन कामोंके सहारे से सर्वत्र गति करसक्ताहो-अथवा कार्याणांप्रतिपत्तिमान् अर्थात् पूर्वोक्त सव गुणोंके होनेपर भी जो अपने स्वामीके कार्योंकी सिद्धि करसक्ताहो तौ उसको (चार) करना चाहिये (तथा) विधान् अन्यान् अपि अर्थात् उस प्रकारके गुणोंवाले अन्य (चारों) कोभी चाहे राजा आपकरै चाहे वह चारही अपने तुल्य गुणवाले अनेक (चार) अपने जानेहुये विश्वासपात्र अपनी ओरसे सहायकरूप नियत करके आप उनका अधिष्ठाता वनै और उन सवसे अपनी वुद्धि और उपायके अनुकूल कामलेवै परन्तु वे सव अ-नुचारकभी ऐसेहों तिनको करै किन्तु (समर्थात्) जो भेदले आनेमे समर्थ हों तिनको करै और (शुद्धचेतस) शुद्ध निर्मल निष्कपट चित्तवालोको जो वीचही में वनी वातको बिगाड़ें तोड़ें नही और (कालज्ञान्) जो कालके समयके पहँचाननेवालेहों तिनको और (मंत्रकुशलान्) जो सलाह सम्मति करने में चतुरहो तिनको और (सांवत्सर) जो संव-त्सर सम्वन्धी शास्त्रके जाननेवाले किन्तु वर्षफल वनाने या पंचांग पत्रके वनानेवाले वा भूत भविष्य वर्त्तमान फल कहनेवाले ज्योतिषीहों तिनको इसलिये कि उनकेपास

विदेशमें भी सब लोग आतेजाते और अपने मनकी पीड़ा भेद भाव सब उनसे कह देतेहैं अथवा ऐसे नहीं तो वेभी (सांवत्सर) में गिनती हैं कि जैसे जयपुरिया ब्राह्मण कच्चेपक्के सभी पत्रा बांधकर नित्यंप्रति नियमसे घर घर आप जाकर फेरीदेते और स्त्रियों तकमें जाने आनेका अभ्यास रखकर भिक्षा वृत्ति कियाकरते उनसे चाहे तिस घरका व्योरा अखबार कीसी भांति मिलसक्ताहै तिनको करै और (चिकित्सकान्) जो वैद्यक वृत्तिसे विदेशमें बहुधा जाते आतेहों तिनको अथवा(सांवत्सराचिकित्सकान्) इन दोनों पदोंको मिलाकर एक तीसरा अर्थ यहभी संगृहीत है कि संवत्सर पर्यंत चिकित्सा करनेवालोंको अर्थात् जैसे आंखोंके बनानेवाले सथिया आदि अनेकवैद्य ऐसे होते हैं जो निरन्तर सालभर ताईं दवा करनेमें तत्पर होते और प्रतिज्ञा अपनी पूरी कर दिखलाते हैं तिनको (चार) बनावै क्योंकि अच्छा भेद एक साल विना मिल सकना भी दुर्लभ होता-परन्तु (अक्रुद्धान्) अर्थात् वह लोगभी जो क्रोधी नहींहों तिन को करै क्योंकि क्रोधीसे कोई काम पूरा नहीं होता किन्तु वह बीचही में अपने कार्य सम्बन्धी मनुष्यसे तोड़फोड़कर बैठता है इसलिये क्रोधीको उन गुणोंके होने पर भी नहीं और (अलुब्धान्) जो लोभी नहींहों तिनको करै क्योंकि लोभी शीघ्र अपने स्वामी की शुभ चिन्तकता छोड़कर थोड़े लोभसे पराये वशमें होजाताहै इसलिये अतिलोभी को उन गुणोंके होनेपरभी नहीं और(दृष्टार्थान्)जिन्होंने संसारके अर्थकहिये प्रयोजन काम धंधे नानाभांतिके ऊंचनीच भलेबुरे अतिकाल और अति अवस्था और अति बर्ताव द्वारा खूब देखेसुनेहों किन्तु संसारका मथन अच्छी भांतिसे किया हो तिनको करै इसलिये थोड़ीसी अवस्था वालेकोभी नहीं और (तत्त्वभाषिणः) जो तत्त्वभाषी हों किन्तु जितनीबात देखी या सुनीहो उतनी कहसुनानेकास्वभाव जिनकाहो तिनकोकरै अर्थात् जो ऐसे बतफरोश हों कि पैसाभर देखी सुनी सेरभर अपनी ओरसे जोड़कर बकडारैं तिनको नहीं क्योंकि इसबातसे परमहानि राजाकी होतीहै औरभी (पाखंडिन-स्तापसादीन्) अर्थात् जो लोग जीविकाके अर्थी पाखंडरूपसे बनेहुये तपसीआदिअनेक चेटकनाटकवाले देशोंमें विचरतेरहते हैं तिनकोभीउनके चेलीचाँटोंसहित पर उसभेद को चेलेचाँटे न जानें कियह हमारागुरुकिसराजाका साधकहै और कार्य अपने गुरुकी साधकतामें सबकरतेरहें इसभांतिसे उनको चारबनावै और परराज्यमें लगावै (फिरउन चारोंकाभी गुप्तभेद लेनेकेलिये)कि यहलोग वहांजाकर क्याकरते हैं और यहांआकर क्याकहते हैं इसलिये उनकी वार्ताहरनेवाले औरभी अनेकोंको लगावै ऐसे कि जो अपने और परायेदेशों का भेदजानने वालेहों और सुशीलहों सुविचक्षणहों-क्योंकि-राजा एकही चारके कहनेपर विश्वास न लावै इसलिये कि न जाने उसने कुछछल प्रपंचकी बनावट आनिकर कहीहो इसहेतुसे दोकीबात एकसी मिलती जानकर जो

कुछ उचित हो सो काम करें—इसलिये राजा एकही दो चारों को नहीं भेजै किंतु बहुत से मुखवाले बहुत चारोंको भेजै—बहुतसे मुखवाले अर्थात् एकएक चारके साथ अनेक २ साधक उसके आधीन हों वेही उसके अनेक मुख हैं जिनके द्वारा वह एकत्र बैठाभी सब देखता सुनता और कहता रहे—इसलिये राजा ऐसे लोगों को उन (चारों) के आधीन साधकराखै जो (नीरेत) नपुंसक हों (वामन) बौना हों (कुब्ज) लूले लँगड़ेहों और भी (तद्विधाः—कारवः) अर्थात् उसीप्रकार के नपुंसक बौना लूला आदि अंगभंग कारुजाती के लोग जिन्हें कारीगर कहते हैं किंतु राजबाढ़ई दर्जी सूपकार आदि अनेक जो प्रसिद्ध हैं तिनको उन पूर्वोक्त चारोंके साधक नियतकरै क्योंकि ये लोग वहां जाकर अपने २ पेशे की नौकरीकरैं और भेदूहोकर कार्यसाधैं और सदैव अपने अधिष्ठाता चारको संबोधित करतेरहैं और वह अन्य दूतोंसे खबर पहुँचाता रहै अपने राजा पास-इसीलिये अनेक भिक्षुकीं वैरागिनैं आदि जोबाईबनिके घरोंमें भिक्षाके बहाने से जाकर और नाच गान दिखाकर बहुधारीति प्रीति करलेती हैं तिनको और भी (चारण) जो एक प्रकारके कीर्ति गान करनेवाले नटप्रसिद्ध होतेहैं तिनको करै क्योंकि वे राजा केभी सन्मुख जापहुँचते हैं-और भी अनेक दास दासी जो वहां जाकर सेवा में नौकरी करैं या वहां के सेवकों से मिलाप अपनी रीति भांति से रखकर कामसाधैं और सदैव अपने अधिष्ठाता (चार) को संबोधित वहांके भेदों से करते रहैं-और भी (मालाकारी) मालिनैं जो फूलमाला के हेतुसे अंतःपुरमें भी नित्य जासक्ीं या सेवामें रहसक्ी हैं और भी (कलाविदः) किंतु चौंसठि प्रकार की कलाओं मध्ये जो कोईसी एक दो चारकलाके जाननेवाले भानमतीआदि पेशेवाले तिन्हेंउन पूर्वोक्त (चारों) के साधक नियत करै इसलिये कि ये सब अपने २ कर्म या कौतुक हेतु से धुर अंतःपुरके भीतरकी अलख वार्ता को हरलावैं-परन्तु इस भांतिका आचरण भी राजाको सदैव निरर्थक में करना अनुचित है किन्तु इन बातोंका करना तो बड़ीसी किसी आवश्यक दशामें समयके अनुकूल संभवहोताहै पर इनबातोंका याद रखना इस हेतु से उचित है कि इन प्रकारों से कोई अपना भेद न लेजानेपावै जिस्से पीछे कुछ उपद्रव उठै इस्से इसभांति के आयेहुये विदेशी नौकर चाकर और सेवक दासी आदिकी चेष्टासे चौकसरहै यहसिद्धांतहै-(चार) दो प्रकारके होतेहैं एक प्रकाशमान जो प्रत्यक्ष भेजेजायँ-दूसरे-अप्रकाश जो गुप्तभेजेजायँ तिनमें अप्रकाश तो येही हैं जिनका चर्चा यहां पर कियागया और प्रकाशमानको दूतकहते हैं जिनका चर्चा ३२७ की अधिकोक्तिमें आयाथा ३३१। ३३२॥

ब्राह्मणेपुक्षमीस्निग्धेप्वजिह्मःक्रोधनोरिपु। स्याद्राजाभृत्यवर्गेषुप्रजासुचयथापिता ३३३॥

ऐ०—पूर्वोक्तबातोंके सिवाय राजा अपना स्वभाव और चेष्टा इसप्रकारकी राखै किंतु

ब्राह्मणों पर क्षमावान्हो निंदा आदिके करनेपरभी (स्निग्धेष्वजिह्मः) अर्थात् स्नेहकरने वाले मित्रादिकों पर सूधासरलभावहो-शत्रुओंपरक्रोधवान्-अन्यसाधारण भृत्यवर्गों पर और प्रजाओंपरभी ऐसाहोकेरहे जैसा पुत्रोंपर पिता अर्थात् उनके हितकाआचरण और अहितकी निवृत्तिमें तत्परबनारहे यह राजाओंका परमधर्महै ३३३॥

अब प्रजा परिपालनका फल कहतेहैं॥

पुण्यात्पड्भागमादत्तेन्यायेनपरिपालयन्। सर्वदानाधिकंयस्मात्प्रजानांपरिपालनम् ३३४॥
चाटतस्करदुर्वृत्तमहासाहसिकादिभिः। पीड्यमानाःप्रजारक्षेत्कायस्थैश्चविशेषतः ३३५॥

ए०सहृद्वयोः—जिसहेतुसे कि धर्मशास्त्रोक्त न्यायसे प्रजाओं का परिपालन रक्षण आदि करताहुआ राजा उनके कियेहुये पुण्यमेंसे छठाभाग लेताहै किंतु रक्षा करीहुई प्रजाके पुण्यमें षष्ठांशका भागी धर्मके अनुसार होताहै इसीसे प्रजाओंका परिपालन कर्म राजाओंको पूर्वोक्त सबदानोंसे अधिकदान फलहोताहै इसलिये पुत्रोंकेही तुल्य पालनकरै-किसप्रकारसे-सो कहतेहैं ३३४ (चाट) वे कहलातेहैं जो किसीतरहका विश्वासदे दिलाकर पराया धनहरलेते इन्हींको प्रतारकभी कहतेहैं-(तस्कर) जो छिपकर धनचुरावे-(दुर्वृत्त) वे कहलाते जोइन्द्रजाल आदि माया कितव छलकरके किसीकाधन या मनुष्य हरलेते-(साहसिक) वे कहलाते जो सहसा प्रबलता करिके छीनलेते तिनमें भी महासाहसी वे होते जो इसीबातका पेशाकरते बटमारआदि-आदि शब्दसे और भी अनेक धूर्त सेवड़ेआदि (कुहक) विद्याके मायावीहोतेहैं-इनसे पीड़ित कियेहुये और पीड्यमान प्रजालोगोंकी रक्षाकरे-इनके सिवाय विशेषकर कायस्थोंसेभी प्रजाकी रक्षा करे (कायस्थागणकालेखकाश्च) अर्थात् सभीकायस्थोंसे अपेक्षा नहीं किंतु जो राजद्वारों यद्वा बाह्यदेशोंके हिसाबी और लेखकहों तिनसेरक्षाकरे क्योंकि (तेषांराजवल्लभतयातिमायावित्वाच्चदुर्निवारत्वात्) अर्थात् वे राजाओंकेकार्य साधकता और उपक्षत्रियत्वसेभी बहुतप्यारे होते और मायावीभी उनमें बहुधाहोते इस्से उनके फंदेमेंफँसीहुई प्रजाका बिगड़जाना संभवहै ३३५॥

भधि०—(स्मृत्यंतरेपि)चाटचारणचौरेभ्योवधबंधभयादिभिः। पीड्यमानाःप्रजारक्षेत्कायस्थेभ्योविशेषतः-अर्थ इसकाभी वहीहै जो ऊपर कहागया-और कायस्थ यह एक निदर्शन मात्र शास्त्रवक्ताने कहाहै किंतु कायस्थोंके उपलक्षणसे जो कोई उनकामोंपर नियतहो वहीकायस्थ समुझा चाहिये-परन्तु विशेषकर कायस्थका नामलेकर कहनेसे सर्वथा यहभी निश्चितहुआ कि कायस्थ जातीका यहकामसृष्टिकी आदिसेही चलाआताहै क्योंकि जो यह प्रधानता इनको नहीं होती किंतु सभीलोग उनकामोंके अधिकारी होते तो शास्त्रवक्ता उनकामोंकी अधिकार संज्ञासे आदेशकरते ३३५॥

अरक्ष्यमाणाःकुर्वंतियत्किंचित्किल्बिषंप्रजाः। तस्मात्तुनृपतेरर्द्धंयस्माद्गृह्णात्यसौकरान् ३३६॥

ऐ०--रक्षाके न करनेमें दोष कहतेहैं कि अरक्ष्यमाण प्रजालोग जोकुछ पापकरतेहैं उसमें आधा पाप राजाको इसहेतुसे लगताहै कि जिस्से यहराजा उनसे अनेक राज करलेता और रक्षा उनकी नहीं करता ३३६ ॥

अधि०-(वरंविषाशनंराज्ञांवरमग्नौप्रवेशनम् । अनाथानांप्रपन्नानांकृपणानामरक्षणात्॥अनाथंकृपणंवृद्धंस्त्रियंबालंनिरागसम्।परिरक्षेद्धनैःप्राणैर्बुद्ध्याशक्तिबलेनच॥देशंकालंचशक्तिंचकार्य्यंचाकार्य्यमेवच।सम्यग्विचार्ययत्नेनकुर्य्यात्कार्य्याणिसर्वदा॥नकुर्यात्कस्यचिद्बाधांपरबाधांनिवारयेत्।चौरान्दुष्टांश्चशत्रूंश्चबाधयेच्चापिसर्वदा) अर्थात्-राजाओंको विष भक्षणकरलेना श्रेष्ठहै अग्निमें गिरपरना श्रेष्ठहै किन्तु अनाथोंकी आधीनोंकी कृपणोंकी दरिद्रोंकी रक्षा न करनाश्रेष्ठनहीं-इसलिये-अनाथ कृपण बालक वृद्ध स्त्री निरपराधी कोईहो तिसको अपराधीसे बचावै और इन सबकी रक्षाकरे अपने धन प्राण बुद्धि शक्ति बल इनसे किंतु इनमेंजिसकिसीसे होसक्तीहो तिसकालोभ नहींकरे-(परन्तु सहसा नहींकरे यह कहतेहैं)किन्तु देश १ काल २ शक्ति अपनी यद्वा अपराधीकी ३ (कार्य)अर्थात् करनेकी योग्यता ४ (अकार्य) न करनेकी योग्यता ५ इन सबोंको यत्नपूर्वक अच्छीभांति पहले विचारलेवै तब रक्षासम्बन्धी दण्ड आदिकार्य्योंकोकरै किन्तु (सर्वदा) सबदिन इसीरीतिसे आचरणकरै-और किसीकोभी बाधानहीं करे बरन जहांतक शक्तिहो पराई बाधाका निवारणकरे यहराजाकाधर्महै परन्तु चोरोंको दुष्टोंको शत्रुओंको इनसबोंको बाधाभी सदैव यथाकाल यथाशक्ति यथादेश यथासंभवके अनुकूल करतारहे तौ अधर्म नहीं किंतु यहभी एकधर्म है ३३६ ॥

अब निग्रह और अनुग्रह का न्याय कथन करतेहैं ॥

येराष्ट्राधिकृतास्तेषांचारैर्ज्ञात्वाविचेष्टितम्॥ साधून्संमानयेद्राजाविपरीतांश्चघातयेत्॥ ३३७ ॥

ऐ०-जेकोई राज्यके अधिकारी कियेहों तिनका विचेष्टित कहिये कियाहुआ आचरण अपने२ अधिकारोंकी साधनामें भलाई,बुराई सो पूर्वोक्त चारोंके द्वारा जानबूझकर (साधून्-संमानयेत्) किंतु जो सत्‌आचरणवालेहों तिनका राजा मानबढ़ावे किसीरीतिसे दान मान सत्कारोंकरके उन्हें प्रतिष्ठितकरै और जोविपरीतहों किंतु दुष्टवृत्तिवालेहों तिनकाभेद जानिकर घातकरै अर्थात् किसी प्रकारका दंड उनकी दुर्वृत्ति के अनुसार देवै ३३७॥

अधि०-(चारों) के द्वारा उसदशामेंभी भेदलेना उचितहै कि जब कोई किसी अधिकारीकी प्रत्यक्षमें निंदाकरताहो क्योंकिबहुतेरे किसी निजसंबंधी वैरभावसे वृथानिन्दा भी करनेलगतेहैं इसलिये उनकेकहनेसेही दंडनदेवे तथाचोक्तं(नपरस्यापवादेनपरेषांदंडमाचरेत् । आत्मनावगतंकृत्वाबध्नीयात्पूजयेत्तुवा)-अर्थात्-औरके अपवाद करनेसे हीऔरोंको दण्ड न आचरै यद्वा वैरीके अपवाद करनेसे उसके वैरियोंको दंडनहीं देवै

किन्तु अपने मनबुद्धिसे विचार पूर्वक निश्चयकरिकै तब दंडदेवै या सत्कारकरै-परंतु मनबुद्धिका विचारभी पछिकरै किन्तु पहले चारोंसेही भेदभावलेवै यहसिद्धांतहै और दंडदेवै या सत्कारकरै इसकथनका यह सिद्धांतहै कि जिसबातकी निन्दा उसकी हुई थी उसीकी दृढ़ता और सचेउटी चारोंसेभी मिलै तद्वत् अपनी आत्माका विचारभी उसीपर दृढ़ताकरै तब तो दंड जैसायोग्यहो सोदेवे (अन्यथा) जब उसनिन्दाका कोई भांति उसपर चिह्न नहीं पाया जाय और सर्वथा वह निष्कलंक निश्चितहोजाय तब उसका सत्कार कुछ इसहेतुसे करना योग्यहै कि उसपर भूंठाकलंक जो आरोपित हुआ जिसके कारण उसकी व्यर्थ निंदा उड़ीफैली तिसका प्रतिकार उसके सत्कार द्वारा कियाजावे-इसलिये राजाको एकचारकेभी कथनपर विश्वास न करना चाहिये किंतु कईचारोंके कथनमें सात्यतापावे तबकुछकरै या उनकई के कथनमें असात्यताहोनेपर अपने मनबुद्धिके अनुकूल जो संभवितहो-क्योंकि इसमें किंचित्भी व्यतिक्रमहोनेसे राजाकी परमहानि होतीहै-तथाचधर्मः-(अदंड्यान्दंडयन्राजादंड्यांश्चैवाप्यदंडयन् । अयशोमहदाप्नोतिपापंचैवतदच्युतम्) अर्थात्-राजा अदंड्यपुरुषों को विनाविचारे दंडदेताहुआ और दंडनीयोंको प्रमादसे दंड न देताहुआ महाअयश तो पहले लोकमेंही पाताहै पुनि उस्से पापभी ऐसाअच्युत होताहै कि जिसकीच्युति जन्मांतरमें भी नहीं होती-इसलिये राजाको दोषादोषके विचारमें प्रमाद और शिथिलता न चाहिये ३३७॥

अब घूस रिशवतकी चर्चा करतेहैं॥

उत्कोचजीविनोद्रव्यहीनान्कृत्वाविवासयेत् । सदानमानसत्कारान्श्रोत्रियान्वासयेत्सदा ३३८॥

ऐ०—राजा उत्कोचजीवियों को द्रव्यहीन करिकै विवासकरावै किंतु घूसखानेवालों से धनदंड लेकर उन्हें राज्यसे बाहरकरै और श्रोत्रियोंको दानमान सत्कारों सहित अपने राज्यमें सदैव जो आतेजावँ तिन्हें बसावै जिस्से उसके राज्यमें संपन्नता बनी रहै-(उत्कोच) कहतेहैं घूसरिशवतको कि जो किसीकार्यवालेसे कुछधन लेकर कार्य में अयुक्तता करीजातीहै उसधनके खानेवालेको उत्कोचजीवी अर्थात् रिशवतखोर या घूसखाऊ कहते हैं ३३८॥

अब ठेठ राजाकी अपेक्षामें अन्याय धनसे हानि कहतेहैं॥

अन्यायेननृपोराष्ट्रात्स्वकोशंयोभिवर्द्धयेत् । सोऽचिराद्विगतश्रीकोनाशमेतिसबांधवः ३३९॥
प्रजापीडनसंतापात्समुद्भूतोहुताशनः । राज्ञःकुलंश्रियंप्राणांश्चादग्ध्वाननिवर्तते ३४०॥

ऐ०सहद्वयोः—जोकोई नृपति अपने राज्यमेंसेधन अन्यायसे संग्रहकरिकै अपनाकोश बढ़ाताहै वह शीघ्र थोड़े कालमें लक्ष्मीहीन होकर निजबांधवों सहित नाशको पहुँचताहै३३९ क्योंकि प्रजाकी पीड़ारूपी संतापसे समुत्थितहुआ अग्नि-राजाकेकुलको

और लक्ष्मीको और प्राणोंकोभी विनाजलाये नहीं जाता-इसलिये राजा जो धनलेवै सो न्यायसे विपरीत नहीं लेवै (ततखादनेतुनारदः) (अन्यायेनापियद्भुक्तंपित्रापूर्वतरैस्त्रिभिः। नतच्छक्यमपाकर्तुंक्रमात्त्रिपुरुषागतम्) ३४० ॥

अब आगे विजय फल कहतेहैं ॥

यएवनृपतेधर्मःस्वराष्ट्रपरिपालने । तमेवकृत्स्नमाप्नोतिपरराष्ट्रंवशंनयन् ३४१ ॥

ऐ०—नृपतिका जो२ धर्म या फल अपने राज्यके परिपालन करने में कहागयाउसी धर्मका साराफल अपने शत्रुका राज्य वशमें लेताहुआभी पावैहै ३४१ ॥

वशमें आये हुयेकी परिपालन विधिकहतेहैं ॥

यस्मिन्देशेयआचारोव्यवहारःकुलस्थितिः । तथैवपरिपाल्योसौयदावशमुपागतः ३४२ ॥

ऐ०—जब कोईदेश अपने वशमें आयाहो तब अपने देशके आचारोंका प्रचार वा मिलाव उसमें नहीं करे किंतु जिसदेशमें जो आचार और जो कुलव्यवहार और कुलोंकी परिपाटी जैसी चली आतीहो तैसीही परिपालन कियेजावे जिसमें प्रजालोग सुखी रहकर आशीर्वादकरैं किंतु विपरीततामें शापदेतेहैं-परन्तु जो कोईबात विरुद्ध वा दुःखदायकहो उसको प्रजाकी संमति और प्रसन्नतासे परिशोधन करना अनुचितनहीं-तथापि जो उचित और संभाव्यरीतोंसेही कियाजावे किंतु कोई बात हठ धर्मीसे नहीं ३४२ ॥

मंत्रमूलंयतोराज्यंतस्मान्मंत्रंसुरक्षितम् । कुर्याद्यथास्यनविदुःकर्मणामाफलोदयात् ३४३ ॥

अक्ष०—यतःराज्यंमंत्रमूलंतस्मान्मंत्रंसुरक्षितं तथाकुर्यात् यथास्यराज्ञःकर्मणांमंत्रं आफलोदयान्नविदुरन्ये ३४३ ॥

अभि०—जिसहेतुसे ३११ में कहाथा कि उनमंत्रियोंके साथ राज्यका विचार करे तौ यथार्थसे राज्य मंत्रमूल ठहरा किंतु राज्यके सारेकाम धंधोंकी मूलकेवल मंत्रके आधीनहै तिसहेतुसे विचारेहुये मंत्रको उसप्रकारसे सुरक्षितकरै किंतु जैसीभांतिसे इसराजाके संधिविग्रह आदि कर्मोंका मंत्रभेद तब ताईं कोई और न जाने जबतक उसमंत्र यद्वा उनकर्मों के फल यथावत् उदय न हो लेवें ३४३ ॥

अधि०—(मंत्रभेदेऽपियेदोषाभवंतिपृथिवीपतेः।नशक्यास्तेसमाधातुंमंत्रिभिस्सुभटैरपि) अर्थात्-पृथिवी पतिके-मंत्रभेद होजानेमें जो२ दोष उत्पन्न होतेहैं वे दोष फिर मंत्रियों और सुभटों अतिवीरोंसेभी सम्यक् आधानकर सकने योग्यनहीं होते-इस लिये राजा अपने राज्य संबंधी मंत्रोंकी रक्षाभली भांतिकरै-तथाचोक्तम्-(मंत्रंबीजव द्राजन्रक्षणीयंयथातथा। मनागपिनभिद्येततद्भिन्नंनप्ररोहति) अर्थात् हे राजन् मंत्र जैसाहो तैसाही बीजवत् रक्षाकरणीयहै किंतु उसमेंसे (मनाक् अपि) किंचित्भी न भेद होनेपावै क्योंकि वहमंत्रबीज किसीभांति भिन्नहुआ जमता नहीं अर्थात् बोयाहुआ

वीज धरतीमें से उभरकर भिन्नहोजाता वह जमता नहीं तैसेही मंत्रभी फूटाहुआ कार्यकी सिद्धिमें जमता नहीं-यद्वा किसानलोग जोवीज अगले सालकेलिये संचय करते उसमेंसे आवश्यकता परभी किंचित् नही निकालते क्योंकि उसमेंसे कुछभिन्न करलेनेमें फिर वहवीज अपनी ऋतुपर धरतीमें बोनेसे उपजता नहीं यहएक आनि होतीहै क्योंकि जववोनेकेलिये निकालताहै तव उसमेंसे देवपितर आदिके नामसेमुट्टी निकालकर पछिवोताहै इसलिये किसानउसवीजकी परमरक्षारखताहै-और यथार्थ उसवीजकी रक्षा यद्वा आनि इसलिये होतीहै कि वीजमें वहुधा वारम्वार हाथलगने या अधिक वायुलगने या धूपलगने या सीलपहुँचने आदिसे उसका उपजना और फलावट न्यूनहो जातीहै इसलियेवीजकी वस्तु,सवसे जुदी रखकर वारम्वार छेड़ते नहीं ऐसेही राजा अपने मंत्रको वारंवार उघाड़े नहीं तो फल दायकहो ३४३॥

अव द्वादश राजमंडल यद्वा अपने सहित त्रयोदश राज मंडलका विचार कहते हैं इस वार्ता को अतिसूक्ष्मवुद्धिसे विचारना जिस्से-तद्रूप इसका स्वरूप हृदय गतहो जाय॥

अरिर्मित्रमुदासीनोऽनंतरस्तत्परःपरः। क्रमशोमण्डलंचिंत्यंसामादिभिरुपक्रमैः ३४४॥

भक्ष०—अरि१ मित्र२ उदासीनः३-अनंतरः१ तत्परः २ तस्मात्परः३-क्रमशः-अर्थात् यह तीनों यथाक्रमसे समझलेने-किंतु-ठेठ अपने राज्यसे (अनंतर) कहिये लगा हुआ भिडाहुआ दूसरा राज्य वहअपना अरि१-कहलाता-और (तत्पर) कहिये उस्से अगला तीसरा राज्य वह अपना मित्र२ कहलाता-और (तस्मात्परः) उस्सेभी अगला चौथा राज्य वहअपना उदासीन३ कहलाताहै-(यह तीनों अरि१ मित्र२ उदासीन३ यहां पर प्राकृत कहलातेहैं प्राकृतका अभिप्राय,नीचे अभिप्रायार्थमें समझलेना) इसभांति क्रमसे चारोंदिशामें द्वादश राज्योंका मंडल और वीचमें तेरहवाँ आप वैठाहुआ सारेमंडलका चिंतभन विचारसाम आदिनीतिके उपक्रमोंसे करतारहे३४४॥

अभि०—ऊपरके अक्षरार्थमें अरि १ मित्र २ उदासीन३ जो कहेगये सो यहतीनों प्राकृत कहलातेहैं इसहेतुसे कि अरिनाम शत्रुभी तीनप्रकारके होतेहैं-तिनमें प्रथम इन्हीं तीनोंके लक्षण समझने चाहिये सो अरि और मित्रके लक्षण तो प्रसिद्धहैं पर तीसरा उदासीन वह कहलाता जो शत्रुताभी न करताहो और मित्रताभी न रखताहो किंतु जिसको वैरप्रीति दोनोंसे कुछ अपेक्षा नहीं वह उदासीन होताहै-अव तीनोंके तीन प्रकार जो अभी ऊपर कहेथे तिनके लक्षण दर्शातेहैं कि सहज कृत्रिम प्राकृत इनभेदोंसे तीन२ प्रकारके तीनों होतेहं अर्थात् सहजशत्रु तो सापत्नको कहतेहैं और सापत्न भागी साझीको कहतेहैं जैसे अपना चचा या चचेरे भाई आदि जोवटवारीके भागीहों इनको सहज इसलिये कहतेहैं कि ये साथही अपने घरसेही शत्रुरूपज-

न्मलेतेहैं फिर चाहे घरकेघरहीमें मौजूदहों अथवा कुछदूरीअन्तरसे वेभी कहींकेदेशाधिपहों कुछइसपर नियमनहींहै परदायभाग उनका निश्चितहो यहसिद्धांतहै १-दूसरे कृत्रिमशत्रु वे कहलातेहैं कि जिनका कुछअपकार किसी हेतुसे कियागया और पीछे वे शत्रुभाव करनेलगे अथवा उन्होंने कुछअपकार अपनाकिया इसहेतुसे उनकेसाथ वैर करनापड़ा फिर चाहे अपनेसे दशराज्यका दूरी अन्तर उनसेहो कुछ इसका नियम नही है इनको इसलिये कृत्रिम कहते हैं कि ये बनावट के बनेहुये शत्रुहोते कुछ घरमें जन्म नहीं पाया-या-पाया हो तौभी जो अपकार हेतुसे शत्रुता बांधें तो वे भी कृत्रिम कहलाते हैं अर्थात् सहज शत्रु उसी दशामें कहलासक्के हैं कि हिस्सा बांटके हेतुसे वैर बांधै२-तीसरा प्राकृतशत्रु वह कहलाताहै जो अपनेराज्यसे अनन्तर भिड़ाहुआ दूसरा देशाधिप हो चाहे वह प्रत्यक्षमें शत्रुता नहीं भी करता हो परन्तु उसकी प्रकृति में यह वैर भाव रक्खारहता है कि कोई भांति से अपने अनन्तरवाले को दबालेवें जैसे वह अपना प्राकृत शत्रु गिनाजाता है तैसेही आपभी उसका प्राकृत शत्रु कहलाता है क्योंकि जैसे अपनी सीमासे वह अनन्तरहै तैसेही उसकी सीमासे आप अनन्तर है इसलिये वह प्राकृत अरिभाव परस्पर दोनों में समझाजाता और इसी हिसाब से अपनी चारों दिशाके चारो राज्य प्राकृत अरिकहलाते हैं-इसी प्राकृत अरिका चर्चाऊपर अक्षरार्थ में आयाथा किंतु वहां पर शेप दो शत्रुओंसे कुछ अपेक्षा नहींहै३-अब तीनों भांति के मित्र बतलातेहैं कि-प्रथम तो सहज मित्र वे कहलातेहैं जो साथही किंतु निजघरसेही मित्ररूप जन्मपाकर सबतरहसे सहायकबनेजैसे अपने भानजे या फूआ के बेटे या मावसीकेबेटे मामाके बेटे इत्यादि और भी १-दूसरे कृत्रिम मित्र वे कहलाते हैं कि जिन्होंने कुछ अपने साथ भलाई उपकार सहायता आदि किया हो या उनके साथ आपहीने किया हो या परस्पर दोनों का दोनोने किया हो ये इसीसे कृत्रिम कहलाते हैं कि कार्य और कारण के अनुकूल मित्रबनजातेहैं चाहे अपनेसे दश राज्य का दूरी अन्तर उनसे हो कुछ इसबातका नियम नहीं है २-तीसरे प्राकृतमित्र वह कहलाता है जो अपने राज्य से एकांतरित राज्य हो किंतु बीच में उस पूर्वोक्त प्राकृत अरिका राज्य अन्तर देकर उस्से अगला राज्य प्राकृत मित्र कहलाता है इसीकी चर्चा अक्षरार्थ में आईथी किंतु वहांपर शेप दो मित्रों से कुछ सम्बन्ध नहीं है-इसको प्राकृत मित्र इसहेतु से कहते हैं कि चाहे वह अपना से कुछ मित्रता नहीं भी करता हो पर उसकी प्रकृति में यह बात समाई रहती है कि बीचवाले पूर्वोक्त प्राकृत अरिको कि जो वरले परले दोनों का अरिकहलाचुका तिसको यद्यपि में कुछ नहीं दबासक्का पर इस्से परले तीसरे से कदाचित् मेरा मेल मिलाप होजाय तो दोनों मिलकर इसको बीचमें दबालें या वही एक ऐसा प्रबल हो जो इसे

दवासके तौ मैं उसको अपनामित्रसमभौं और बनै तौ सहायताभीकरूं-इन कारणों से एकांतरितवाले परस्पर दोनों प्राकृतमित्रगिनेजातेहैं कुछमित्रता करनेपरही नियम नहींहै-इसी हिसावसे चारों दिशामें जैसे चारिप्राकृत शत्रुवतलायेथे तैसेही उनसेपरे चार प्राकृत मित्रभी समझने चाहिये इसप्रकार आठ राज्यका मण्डल होचुका और बीचमें नवां आप है ३-अब तीनों भांति के उदासीन वतलाते हैं तिनमें प्रथम तौ सहज उदासीन वे कहलाते जिनमें सहज शत्रु और सहज मित्र इनदोनोंके पूर्वोक्त लक्षण कोई भी न पायेजायँ (दृष्टांत) यथा जन्म सम्बन्धसे चचा भाई भतीजोंमें अवश्य गिनती हों परन्तु किसी हेतुसे दायभाग के अधिकारी नहीं हैं जो झगड़ा टंटा करसकैं इसलियेवेही सहज उदासीन कहलानेलगे (और) किसी दशामें वेभी सहज उदासीन होसक्ते हैं कि जिनका दायभाग तौ निःसंदेह निश्चित है परन्तु वे उसके पानेका दावाकभी आगे पीछे भी न करेंगे-इनके सिवाय वेभी सहज उदासीन हैं कि जन्म सम्बन्ध से सहज मित्रोंमें गिनतीहुयेथे अर्थात् पहले जैसा कहचुकेहैं कि भानजे या फूआ और मावसी के बेटा आदि सहज मित्र कहलातेहैं परन्तु वेही लोग उनमेंसे जो २ कोई मित्र भाव सहायता आदि अपने साथ न करते और न मानते हों तौ सहज उदासीन कहलानेलगे फिर चाहे दूर या नगीच रहतेहों कुछ इसकानियम नहीं है यह तौ सहज उदासीन कहेगये १-अब दूसरे कृत्रिम उदासीन वे कहलाते हैं जिनमें पूर्वोक्त कृत्रिम शत्रु और कृत्रिम मित्र इनमें से एक केभी लक्षण नहीं पायेजायँ अर्थात् नतो अपकार करतेहों न उपकार करतेहों न कुछ वैर न कुछ प्रीति ऐसे सामान्य भावहों और जन्मसम्बन्धसे कुछअपेक्षा जिनमें नहीं और चाहे दूर या नगीचहों कुछ इस बातकाभी नियम नहीं है २-और तीसरे प्राकृत उदासीन वे कहलाते जो अपने से चारों दिशामें चौथा २ राज्य अर्थात् पूर्वोक्त प्राकृत अरि और प्राकृत मित्र इन दो २ राज्यों को बीचमें देकर उनसे परेपरे प्राकृत उदासीन राज्य कहलाते हैं इन्हीं का चर्चा अक्षरार्थ में आयाथा किंतु शेष दो उदासीनों से वहांपर कुछसम्बन्धनहींहै-इस प्रकारसे बारहराज्यका मण्डल अर्थात् अपने से तीन आगे तीन पीछे तीन वामे तीन दाहने किंतु पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण चारों ओर और बीचमें तेरहवां आप है-यह राजमण्डल पद्माकार समझकर अवश्य भावसे साम आदि नीतिके उपक्रमों से विचारता रहे अर्थात् उन बारहो का विचेष्टित जो कुछहो तिसका विचार बलाबल के अनुकूल अपने कल्याण की अपेक्षासे रातौदिन चिंतवन करता रहे कि कौन हमसे संधि और कौन विग्रह किया चाहता है किंतु उनसे गाफ़िल असावधान मत होजावे ३४४॥

अब यहां पर पहले चक्र का अवलोकन करो फिर पीछे इसकी अधिकोक्ति को विचारो·

पूर्व

द्व्यंतरितराज्य ४

यह अपना प्राकृत उदासीन है और इसी को अरि मित्र भी कहते हैं॥

एकांतरित राज्य ३ यह अपना प्राकृत मित्र

अनंतर राज्य २ यह अपना प्राकृत अरि कहाता है

उत्तर

द्व्यंतरितराज्य ४ यह अपना प्राकृत उदासीन

एकांतरितराज्य ३ यह अपना प्राकृत मित्र

अनन्तरराज्य २

यह अपना प्राकृत अरि कहलाता है।

यही पूर्व अरि का अरि और पूर्व मित्र का मित्र और पूर्व उदासीन का उदासीन है यही उत्तर मित्र का अरि उत्तर उदासीन का मित्र ऐसे ही सर्वत्र समुझो यही दक्षिण अरि का मित्र दक्षिण मित्र का उदासीन और पश्चिम अरि का अरि पश्चिम मित्र का मित्र पश्चिम उदासीन का उदासीन है ऐसे ही राजा के अनुसार सब कोई भी अपनी बुद्धि से जानलो

अपना राज्य १

इस मध्यवर्ती राजा को संज्ञा भेद से विजिगीषु भी कहते हैं

इस अवस्था में कि जब किसी अन्य राजा को विजय करने का विचार करै॥

अनंतर राज्य २ यह अपना प्राकृत अरि कहलाता यही दक्षिणवाले उदासीन का मित्र है यही पूर्व के अरि का अरि और पूर्व के मित्र का मित्र और पूर्व के उदासीन का उदासीन है यही दक्षिण वाले मित्र का अरि पश्चिम के अरि का अरि पश्चिम के मित्र का मित्र पश्चिम के उदासीन का उदासीन और उत्तर के अरि का मित्र इत्यादि और भी जानलो॥

एकांतरित राज्य ३ यह अपना प्राकृत मित्र

द्व्यंतरितराज्य ४ यह अपना प्राकृत उदासीन

दक्षिण

अनतरराज्य २

यह अपना प्राकृत अरि कहलाता है

एकांतरितराज्य ३ यह अपना प्राकृत मित्र

द्व्यंतरितराज्य ४ यह अपना प्राकृत उदासीन

पश्चिम

भधि०–इस ३४४श्लोकमें अक्षरार्थ यद्वा अभिप्रायार्थसे विजिगीषु राजाके अरि १ मित्र २ उदासीन ३ यह तीन प्रकृती चारों दिशामें वतलाईं और उन्हीं का तद्रूप ज्ञानहोजाने के हेतुसे त्रयोदश राजमण्डलका पद्माकार चक्रभी निरूपण कियागया तथापि वह त्रयोदश राजमण्डलएक सामान्य रूपसे निदर्शनमात्र कहागया क्योंकि सर्वत्र और सदैव कुछ भूमि अथवा राजमण्डलों का एकहीसा डौलनहींहोसक्ता अर्थात् जहां कहीं इसीप्रकारसे राजमंडलोंका डौलहो तहां तौ तद्रूप इसीचक्रके अनुकूल समझाचाहिये और जहां कहीं अपनेसे चारों ओर बारह राज्य नहीं किंतुथोड़े बहुत जो कुछहों उनमेंभी प्रकार तौ सर्वत्र यही समझलेना पर इसबातका आग्रह नहीं है कि चारों ओर अरि और चारों ओर मित्र या उदासीन क्योंकर समझेजायँ अर्थात् दोहीतरफ समझलेने या तीनतरफ जहां जैसा राज्यकी सीमाका डौलहो तैसाही चक्रभी अंगीकारहोसक्ताहै-इसके सिवाय जहां पूरेबारह तेरह मंडलोंकीयथावत् प्राप्तिहो-जैसी चक्रमें लिखीहैतहांभी सदैव यहनियम नहींरहसक्ता कि चारशत्रु चारमित्र चार उदासीन ठीक २ हों क्योंकि यद्यपि शास्त्रोक्त संज्ञामात्रसे वेही प्राकृत शत्रु कहलातेहैं कि जिनकी सीमा अपने राजसे भिड़ीहो परन्तु जबकदाचित् उनसे अगले राज्यवाले जो प्राकृत मित्र निश्चित होचुकेहैं उनमेंसेकोई एक या दो अपना कृत्रिम शत्रु होगया किंतु उनसे अपना अपकार हेतुक वैर बँधगया उससमय शत्रु अधिक होगये और मित्र थोड़े रहगये या उन्हीं मित्रोंमेंसे कोई अपने शत्रुका सेवन करनेलगा तो वहभी शत्रुगिनागया तोभी शत्रु अधिकहुये मित्र थोड़ेरहे-या प्राकृत शत्रुओंमें से कोई अपना उपकार करनेलगा तौ वह मित्र कहलाया इसहेतुसे मित्र अधिक होगये शत्रु थोड़ेरहे अथवा इनबारहमेंसे तौनहीं परइनसे उपरांतके अधिक राज्योंमेंसे कोई राजा दूरस्थभी अपने प्राकृत शत्रुओंसे मिलाप रखनेलगा तौ वह भी अपना अरि ठहरा तोभी शत्रु अधिक होगये और मित्र वेहीचार बनेरहे-सोई नीचे मनुवाक्यसे भी निश्चितहै-यथा (अनन्तरमरिंविद्यादरिसेविनमेवच। अरेरनन्तरंमित्रमुदासीनंतयोःपरम्)-अर्थात्-अनन्तर कहिये भिड़ेहुये राज्यको विजिगीषु अपना अरि जानै और अरिसेवीकोभी अरिजानै किंतु अपने सीमाभिड़े राज्यवाले से जो कोई दूर या नगीचवाला मेल मिलाप अति प्रीतिभावसे रखताहो या उसके आधीन होताहो तिसकोभी अपना अरिजानै और अरिसे अनन्तर कहिये परली ओर सीमा भिड़ेराज्यवालेको विजिगीषु अपना मित्रजानै और उनदोनोंसे परे सीमा भिड़े राज्यको विजिगीषु अपना उदासीनजानै यह मनुजीने कहाथा(भेद २)मनुजी ने इस राजमण्डलको पद्माकार चक्रकीरीतिसे नहीं कहा-यद्यपि मनुजीके और योगीश्वरके कथनमें कुछ अन्तर नहीं किंतु सिद्धांत दोनोंका एकहै सोई अनन्तरोक्त मनुके

वाक्यसे योगीश्वरके मूलश्लोककी वाक्यमें एकता अभी ऊपर होचुकीहै तथापि उस पद्माकार मण्डलके स्थान मनुजीने कुछ और भांतिसे विलक्षणरूप मंडल दरशायाहै अर्थात् मनुजीने कुछ चारोंदिशाका नियम नहीं अंगीकार किया किन्तु आगे पीछे दोही तरफके डौलसे राजमंडल कहदिया है-तिसकाभी यथार्थ कारण वहीहै जो इस अधिकोक्तिके प्रारम्भमें लेकर अनन्तरोक्त मनुवाक्य से पहले २ लिखागया क्योंकि सर्वत्र अपने से चारोंओर द्वादश राज यथोक्तक्रमसे नहींहोते अर्थात् कहींवैसा डौल भी होताहै और कहीं मनुजीके सिद्धांतसे केवल आगे पीछेकाही डौलहोताहै-दृष्टांत इसका ध्यानकरो कि जहां अपने राज्यसे दाहने और बायें दोनों तरफ़केवल पहाड़ यद्वा समुद्रहो किंतु दाहने बायें पार्श्वमें और कोई राज्य ऐसा नहींहै कि जिस्से कुछखटका या प्रयोजन परे तहां केवल आगे और पीछेही निरंतर अनेक राजपंक्तिके आकार चलेजाते हैं इसलिये मनुजीने उसडौलसे राजमंडलका वर्णन कियाहै बल्किमनुजीने अरि१ मित्र२ उदासीन३ इनके संज्ञाव्यपदेशभी अधिक बांधेहैं-इसलिये अब हम अपने जिज्ञासू लोगोंका संदेह यद्वा चित्तकी भ्रांति दोनों ओरसे निवृत्तहोनेके लिये मनुजीका बाधा डौलभी इसी अधिकोक्तिमें विन्यास करतेहैं सो देखो-यथा(मध्यमस्यप्रचारंचविजिगीषोश्चचेष्टितम् । उदासीनप्रचारंचशत्रोश्चैवप्रयत्नतः) अर्थात्-मनुजी कहतेहैं कि राजमंडलके विचारमें राजाको यहउचितहै कि एक तो (मध्यमराजाका) चितवनकरे कि वहमेरेलिये या मेरे शत्रुओंकेलिये या मेरे मित्रोंकेलिये क्या करना चाहताहै या किस उपायमें समुद्यतहै यह प्रचार उसका सोचे १ ऐसेही (विजिगीषोश्चचेष्टितं) अर्थात् विजिगीषूजो कोई राजा किसी एकको या अनेकोंको विजय करने पर समुद्यतहो तिसकाभी चेष्टित कहिये करना धरना आदि अपने मनमें सोचे कि वहकिसकेलिये क्याकरना चाहैहै२ ऐसेही (उदासीन) काभी प्रचार कहिये करना धरना आदि देखसुनिके अपने घरमें बैठा सोचे कि उसका क्याढंगहै किंतु वहकेवल उदासीनही बनारहेगा या आगेपीछे किसीका पक्षपातभी करेगा३ ऐसेही (शत्रोश्चैव) किंतु अपने शत्रुकाभी करना धरना इच्छाआदि प्रयत्नपूर्वक निजमंत्रियों सहित सोचे कि उसमेरे शत्रुका कोई औरभी सहायकहै या नहीं और उसका या उसके सहायकोंका कितनाबल या कितना धन या कैसा उनका राज्यहै यह सबसोच विचार करतारहे-अब इन चारोंके लक्षण समझलेने चाहिये कि (मध्यमराजा) उसेकहतेहैं जो किसी विजिगीषु और उसके शत्रुकीभी दोनोंकी सीमासे भिड़ाहुआ तीसरा राजा इतना बड़ासमर्थहो कि जब कदाचित् वे अरि और विजिगीषू दोनों परस्पर अपने वैर भावसे लड़ेभिड़ें तबदोनोंको दंडदेसक्ताहो या वे दोनों मिलापरक्खें तब दोनोंपर कुछ अनुग्रहभी करसक्ताहो वह (मध्यम) कहलाताहै इसीलिये विजिगीषूको या मा-

धारणहर किसीको सबसे पहले मध्यमका अभिप्राय सोचना उचित कहाहै क्योंकि वहप्रबलहै न जाने पीछे किसकी ओरहो १ (औरविजिगीषुराजा) वही कहलाता है कि जो अतिप्राज्ञआदि गुणसंपन्न अतिउत्साहवाला अमात्यादि प्रकृतीं जिसकी उत्तम और अनुरक्तहों इतनी वातोंसे संयुक्तहुआ विजयकरनेपर उत्साह रखताहो इसलिये उसकाभी सोच विचार करना उचितहै२ और (उदासीनराजा) उसे कहतेहैं जोपूर्वोक्त अरि विजिगीषु मध्यम इनतीनोंको लड़तेभिड़ते देखतीनोंकोही दंडदेनेमें समर्थ या तीनोंको परस्परमेल मिलापरखने परकुछ अनुग्रहकरनेमें समर्थहो पर निष्कारण में किसीको सताने परदृष्टि उसकीनहीं वह (उदासीन) है इसलिये उसकेभी अभिप्रायका विचार करना उचितहै३ चौथे (शत्रुराजा) वे कहलातेहैं जिनकाचर्चा पहलेभी अभिप्रायार्थमें होचुकाहै कि सहजशत्रु कृत्रिमशत्रु प्राकृतशत्रु यहतीन प्रकारके अरिहोते हैं ४ ॥ इतना कहकर फिर मनुजी कहते हैं कि (एताः प्रकृतयोमूलंमंडलस्यसमासतः । अष्टौचान्याःसमाख्याताद्वादशैवतुताःस्मृताः)-अर्थात्-इतनी जो चार प्रकृतीं ऊपर वतलाईं सोराजमंडलकी मूलप्रकृतीं (समासतः) संक्षेपसे कही गईं किंचआठ प्रकृतीं राजमंडलकी शाखारूप और भी कहीहैं वेभी इन्हीं मूलप्रकृतीनमें गिनती हैं इसलिये चार और आठ मिलकर वारह प्रकृतीं राजमंडलमें विख्यात हैं-वे आठप्रकृतीं इसप्रकार से होती हैं कि शत्रु तो ऊपरवाली चार प्रकृतियों में गिनती होचुके अब उन्हीं पूर्वोक्त अपने शत्रुओंकी राजभूमिसे आगेआगे यथाक्रमसे पहिला राजा अपना मित्र कहलाता है सोई पूर्वनिर्मित चक्रमें देखलो१ पुनि उससे अगिलाराजा अपना (अरि-मित्र) कहलाता अर्थात् अपने शत्रुका मित्र यहभी उसी चक्रमें देखलो २ पुनि उससे अगला राजा अपना (मित्र-मित्र) कहलाताहै अर्थात् अपने मित्र का मित्र सो यहभी उस चक्रमें यद्यपि तीनसे अधिक राजा पूर्वदिशामें लिखेनहीं क्योंकि यह चक्र योगीश्वरके कहेहुये डौलपर बनाया है परंतु उसके अनुक्रमसे अधिक राजा अपनी वुद्धिसे जोड़कर समझलो३ पुनि उससे अगलाराजा अपना(अरि-मित्र-मित्र) अर्थात् अपने अरिके मित्रका मित्र गिनाजाता है यहभी उसी चक्रमें अपनी वुद्धिसे जोड़कर पूर्वदिशा में समझलो ४ यह चार तो अपने और अपने शत्रुसेभी आगे हुये-ऐसेही अपने से पीछे पश्चिम ओरभी यद्यपि इसी क्रमसे येही सव नाम संज्ञा होसक्तीथीं परन्तु मनुजीने आगे और पीछेमें कुछवैरभाव संवन्धी अधिकभेद समझकर संज्ञाभेद करदिया है-और यहभी कि आगे तो शत्रु भूमिसे आगे आगे गिनती करीथी और पीछे केवल अपनेसेही पीछेपीछे किन्तु अपने पृष्ठवर्त्ती शत्रुसेही नामसंज्ञा वदली हैं-यथा-अपनेसे पीछेवाला जो चक्रकेहिसाबसे शत्रु गिनाजाता उसीको (पार्ष्णिग्राह) कहते हैं परन्तु पार्ष्णिग्राह कोईछोटा मोटा नहींहोसक्ता अर्थात्-

विजिगीषूका पृष्ठवर्त्तीभीहो और देशादिकोंका आक्रमणभी आचरताहो तो अपना पार्ष्णिग्राह कहलावै-यहां पर विजिगीषूका या अपना कहना दोनों एकीबातहै१ पुनि उस्से पिछला जो चक्रके हिसावसे मित्र कहलाता उसीको (आक्रंद) कहतेहैं परन्तु आक्रंदभी वही कहलासक्ता कि जो पार्ष्णिग्राहका नियामक वनसकै अर्थात् पार्ष्णिग्राह जो कुछ देशादिकोंका आक्रमण आदि आचरताहो तिसके आचरणोंका नियंताहो किंतु चाहै करतेहुयेको रोकदेवै चाहै अपनी प्रेरणासेकरवावै या चाहै उसके आचरणोंमें नियमबांधै कि इसप्रकारसे करो पर इस्से न्यूनाधिक या हमारी इच्छासे विपरीत नहीं सो यह राजा उस विजिगीषूका अर्थात् अपनाही आक्रंद कहलाताहै२ इस आक्रंदसेभी पृष्ठवर्त्ती राजा (पार्ष्णिग्राहासार) कहलाता३ पुनि इस्सेभी पृष्ठवर्त्ती राजा (आक्रंदासार) कहलाताहै४-आठ यह शाखा प्रकृती और चार पहलीं मूल प्रकृतींमिलाकर वारह राजमंडलोंका राजमंडल हुआ परन्तु पूर्वोक्त पद्माकार चक्रकी अपेक्षा इसमें कुछ अन्तरहै क्योंकि यहांपर वामे दाहनेका चर्चा नहीं किन्तु केवल आगे पीछेका हिसाबहै तिसका हेतु इसी अधिकोक्तिके प्रारंभमें लिखचुकेहैं समझलो अर्थात् किसी भूमिमें वहीडौल मुख्यहोसक्ता और किसी भूमिभागमें यहडौल ठीक होसक्ताहै इसलिये दोनों महर्षियोंका सिद्धान्त एकहै कुछ सन्देह का अवसर नहीं-इस अप्रोक्त राजमंडलमें यद्यपि केवल आगे पीछेकाही चर्चा कियाहै तथापि इसमें इनआठसे पहले जो चार प्रकृतीं मूलरूप कहीथीं उनमें वामे दाहनेकीभी संभवता पाई जातीहै क्योंकि उनमें किसी ओरका निर्विकल्प नियमनहीहै-परन्तु यह भी यादरक्खो कि वारह राजोंका मंडल कहना यह शास्त्रवक्ताने नीतिज्ञोंकेलिये एक निदर्शन मात्रलिखाहै किंतु यही मंडल कहीं दश या आठ नौ इत्यादि न्यूनसंख्यासे होसक्ताहै और-कहीं अधिक संख्यामें चौदह पन्द्रह अठारहसेभी होसक्ताहै अर्थात् जहां जैसा भूमिभागोंका डौलहो या समयके अनुकूल जैसे राजाहों या जैसी उनमें परस्पर संमति या विरुद्धहो या जिसकालमें जैसा सार्वदेशी सम्राट्हो इनसारीबातोंके आधीन जहां जैसीसंभवताहो उसीके अनुकूल राजमंडलभी नीतिज्ञोंको चिंतनीय हैं पर सर्वत्र या सर्वथा या सव कालोंमें निर्विकल्प नियम कोई साभी नहीं रहसक्ता (भेद३) अव इस द्वादश राजमण्डलकी (द्रव्यप्रकृतीं) कहतेहैं अर्थात् प्रत्येक राज्यमें एक तो (अमात्य) नाम देश दीवान और अनेकमंत्री १ (राष्ट्र) कहिये देश२ (दुर्ग) किला३ (अर्थ) कोष४ (दंड) अर्थात् शस्त्रोंसहित चतुरंगिणी सेनाकावल और सर्वसेनापति५ यह पांचवस्तु सभी राज्योंमें होतीहैं येही पांचद्रव्य प्रकृतीं कहलातीहैं इसहिसावसे वारह राज्योंकी साठिप्रकृती द्रव्यरूपहुई और वे वारह राजाभी मूलप्रकृतिरूपसे वारह प्रकृतीं समझेगये तिनमें साठिवेभी जोड़कर कुल७२ प्रकृतीहुई-सो यह

मनुजीने कहाहै-यथा(अमात्यराष्ट्रदुर्गार्थदंडाख्याःपंचचापराः। प्रत्येकंकथिताह्येताः संक्षेपेणद्विसप्ततिः)अर्थ इसका ऊपरहोचुका-इस बहत्तरि प्रकृतिरूप राजमंडलको अपने हानिलाभ या शुभाशुभके हेतुसे सामआदि उपायोंसे राजासदाही निजप्रधानों साथ एकांतमें विचार करतारहे-जैसा ३११ के उत्तरार्द्धमें कहाथा कि (तैःसार्द्धंचिंतयेद्राज्यंविप्रेणाथततःस्वयम्) बहत्तरिप्रकृतीं कहनेका यहसिद्धांतहै कि अपनी और विरानीभी ७२ प्रकृतियों का न्यूनाधिक भाव और अनुरक्तभाव या विरक्तभाव या अन्योन्योंका संहत वा मैत्रीभाव या अरिभाव आदि नानालक्षणसे विचारे कि किस राजाकी प्रकृती मुझसे प्रबल या निर्बल या किससे किसको किसभांतिकी सहायता वा किसको किसकी उपेक्षा वा अनुराग आदि यह सारीबातें भूत भविष्यत् वर्त्तमान तीनों कालकी अपेक्षासंयोगसे विचारे-इसीलिये अबनीचे के श्लोकसे सामआदि उपायों को कहतेहैं ३४४॥

उपायाःसामदानंचभेदोदंडस्तथैवच। [illegible] ३४५॥

ऐ०-(उपायाः) यह चार उपाय क[illegible] उपायसे कामचलाना१ (दान) सुवर्णादिरत्नों वा भूमिभाग आदि देकर काम चलाना २ (भेद) अर्थात् शत्रुके सामंत आदि अधिकारियोंमें किसीयुक्तिसे फूटकरवाकर अपनाकाम निकालना३ (दंड) अपकार जो धनहरणसे आदिलेकर वधपर्यंत ४ यह चार उपाय शत्रुआदिको वशाकरनेके प्रकारहैं सो यह चारों (सम्यक्प्रयुक्ताःसिद्धयेयुः) अर्थात् देश काल वस्तुआदिके अनुकूल सम्यक् विधिसे लगायेहुये सिद्धहोते अपना फलदेते हैं पर इनमें (दंड) जोहै सो (अगतिकागतिः) प्रसिद्धहै इसलिये जबतक उनतीन उपायोंसे काम चलसक्ताहो तबतक दंड नहीं लगावे किंतु दंडसंबंधी आचरणका बर्तावा लाचारी अवस्थामें कियाजाताहै-तथापि-जहां२ दंडकी योग्यताहुआ करतीहै सो नीचे अधिकोक्तिमें कहतेहैं ३४५॥

अधि०-पहले त्रयोदश राजमंडलमें तीनप्रकारके शत्रु जो कहेथे वेही सबशत्रु चार२प्रकारके होतेहैं एक तो यातव्य१ उच्छेत्तव्य२ पीडनीय३ कर्शनीय ४(यातव्य)उस परगमन करने योग्य सोऐसा कौनहोताहै अनन्तर भूपति जो अपना प्राकृत शत्रु गिनाजाताथा और वही किसीहेतुसे कृत्रिम शत्रुभीहोजाय तब उसदशामें यातव्य है और तभी दंडकी अपेक्षाहोगी फिरचाहे वहीअनन्तर भूपअपने सहज शत्रुओंमें भी गिनताहो या न हो तो इसबातपर कुतर्कणा नहींहै १ (उच्छेत्तव्य) अर्थात् नाश करने योग्य कौनसा कि जोअपना कोईप्रकारका शत्रुहोने परभी व्यसनीहो किंतुउक्त अठारह व्यसनोंमेंसे अनेक व्यसनोंसे संयुक्तहो और हीनबलभीहो और उसकी पूर्वोक्त प्रकृतीभी उस्से विरक्तहों किंतु उस्से नाराज या उसमें श्रद्धा नहीं करतीहों या

विदुर्गहो या मित्रहीनहो या दुर्बलहो तौ इसमेंभी दंडकी अपेक्षाहोगी २ (पीडनीय) अर्थात् केवल पीडादेने योग्य कौनसा कि जो अपना निःसंदेह शत्रु होनेपरभी मंत्र बलसे हीनहो या मित्रबल से हीनहो ३ (कर्शनीय) अर्थात् कृश दुर्बल करदेने योग्य कौनसा कि अपना शत्रुहोनेपरभी प्रबल मित्रकेबलसे संयुक्तहोनेसे बलवान्हो किंतु इसमें कुछदंडकी अपेक्षा तौ नहीं परभेद उनमें फूटकरवानेके उपायोंसे निर्बलकरदेना यह तात्पर्यहै यद्वा थोड़ाबहुत उसकेकोश और दंडआदिका अपकर्षण किसीयुक्तिसे करलेना तौभी निर्बलता संभवितहै-तद्यथा (निर्मूलनाशमुच्छेदंपीडनंबलनिग्रहम्। कर्शनंतुपुनःप्राहुःकोशदंडापकर्षणात्) शत्रु तौ चार प्रकारके कहे पर मित्रभी दोप्रकार के होते हैं यथा एकतौ बृंहणीय १ कर्शनीय २ (बृंहणीय) अर्थात् पुष्टबलवान् करदेने योग्य कौनसा कि जो अपने पूर्वोक्ततीनिप्रकारके मित्रोंमें होनेपरभी यथार्थ मैत्रीभावरखताहै। परन्तु कोश और बलसे हीनहो तौ उसकोकोश और बलसे बृंहणकरदेना चाहिये क्योंकि उस्से कभी सहायता मिलेगी१ (कर्शनीय) अर्थात् अपने पूर्वोक्तमित्रों में होनेपरभी कोश और बलकी आधिक्यता उसमें विशेषहो तौ किसीप्रकारसे कम करवादेनी चाहिये क्योंकि न जाने कोईसमय वही अपना शत्रुहोजाय या अपनेशत्रुओंका सहायक होजाय२-साम दान दंड भेद यहचार उपाय जो शत्रु और मित्रोंकी अपेक्षासे कहेगये सो केवल इन्हींदोनोंके वशकरनेमें नहीं किंतु छोटेमोटे सभीकामों के प्रबंधमें राजा इनका (योगविचार) देशकाल वस्तुके अनुकूलकरै तथैव राजाके निदर्शनसे औरभी सारालोक अपने साधारण व्यवहारोंकी अपेक्षामें उनकामोंके अनुकलयोग सोचे-(दृष्टांत) यथा (अधीष्वपुत्रकाधीष्वदास्यामितवमोदकान्। यद्वान्यस्मै प्रदास्यामिकर्णमुत्पाटयामिते) अर्थात् जैसे पुत्रकी शिक्षामध्ये (पढ़ोबेटापढ़ो)इत्यादि प्रियभाषण (साम) उपाय जब इसमें नहीं पढ़े तब (बेटातुम्हें लड्डूदेंगे) यह कहकर कुछलड्डूआदि देनाभी जिसके लालचसे वहपढ़े सो यह (दान) उपाय जब इसमेंभी न पढ़े तब (यहलड्डूअबदूसरेकोदेंगे) यह कहकर उसके देखतेहुये उनको देदेना कि जो पढ़तेहों सो यह (भेद) उपाय कहलाया यद्यपि इसमें देना कहागया परन्तु यहउपाय औरोंको देनेसे दानमें गिनती नहींरहा किंतु इसमें दानरूपसे भेदकर दिखलायाहै क्योंकि भेदशब्दका अर्थ केवल फूटकरवानाही नहीं किंतु भेदके अनन्त लक्षण होते हैं जब इसप्रकारसे भी नहींपढ़े तब (तेरोकान उखेड़डालूंगा)इत्यादि असंख्यलक्षण दंडके प्रसिद्धहैं-परन्तु इस दंडरूपी उपायमें राजाको बड़े२ विचार आवश्यक हैं अर्थात् दंडनीयोंके साथमें अदंड्योंको दंडदेना निषेधहै-तथाचमनुः(यथोद्धरतिनिर्दाता कक्षंधान्यंचरक्षति। तथारक्षेन्नृपोराष्ट्रंहन्याच्चपरिपंथिनः)अर्थात्-जैसे खेतमें (निर्दाता) कहिये कटेहुये अन्नोंकी लावनी आदि करनेवाला एक साथही पैदाहुये अन्न और

तृणादिक दोनोंमेंसे (कक्ष) नाम तृणोंको दूरकरता जाता और अन्नको रखलेताहै तैसेही राजाभी राजकी रक्षाकरै और अपने परिपंथियोंको मारवहावै-अर्थात् दुष्टोंको दंडदेनेमें उनके सहजातभाई भतीजे आदिकुटुंब जोअदुष्टहों तिनको नहींमारै किंतु उनसुजनों सहित राजको बनारक्खै वरन उसराज्यको उन्हींके आधीनकरिकै उनकी और उसराज्यकीभी रक्षा आपकरै परनिपट उसराज्यका नाम चिह्नहींमेटे तब तौ उसकी शोभा और प्रशंसा और धर्म और बड़प्पन येबनेरहें अन्यथा इनसे विपरीत करनेमें यहसारी वातें विपरीत होंगी क्योंकि जो उनको राज्य सहितबनारखकर अपने आधीन रक्खैगा तब तौ उनराजाओंका पूज्य और उनके मस्तकपर विराजमान उनसे बड़ा कहलावेगा और जब उनका नाम निशानभी मेटदिया तब क्या केवल हालीलोगोंसे बड़ाबनकर उसका बड़प्पन गिनतीमें आसक्ताहै-इसके सिवाय बड़प्पन मिलना तौ एक ओर पर उसअधर्मरूपदशामें राजाका नाशभी होजाताहै सोभी मनुजीने कहाहै-यथा (मोहाद्राजास्वराष्ट्रंयःकर्पयत्यनवेक्षया । सोचिराद्भ्रश्यतेराज्याज्जीविताचसबांधवः) अर्थात्-जो कोई राजा अपने पूर्व राज्यको या किसी राजको विजयकरिकै अपना करिपावै तिसको भलेबुरेके अविवेकरूप अनवेक्षासे सबको एकसी पीड़ादेताहै अर्थात् शास्त्रीय धनग्रहण और मारणआदि कष्टोंसे एकसाँसभीको दुःखदेताहै वहशीघ्र थोड़े कालमें जनपदवैरास्य प्रकृतिकोप अधर्मोंकरके बाधवों पुत्रादिकों सहित राज्यसेभी भ्रष्टहोजाता और जीवनसेभी नष्टहोजाताहै-इसलियेदंड संबंधी उपायमें अत्यंत सावधानी उचित है ३४५॥

अब राजनीतिके षड्गुण कहतेहैं॥

संधिंचविग्रहंचैवयानमासनसंश्रयौ । द्वैधीभावंगुणानेतान्यथावत्परिकल्पयेत् ३४६॥

ऐ०-संधि१ विग्रह२ यान३ आसन४ संश्रय५ द्वैध-या-द्वैधीभाव६-(एतान्षड्गुणान्) इतनेछः गुणोंको (यथावत्) जैसे चाहिये तैसेही अन्य शास्त्रोक्त विधिके अनुकूल (परिकल्पयेत्) वर्तावाकरै-अर्थात् जहां परजिस किसीगुणसे कामचल सक्ताहो तहांउसीको आचरै या जहां दोतीन आदिकईकी आवश्यकताहो तहां कईको आचरै (अथवा) किसीसे संधि और किसीसे विग्रह इत्यादि क्रमसे जहां जैसा संभवहो सो तो नीचे अधिकोक्तिमें समझना॥ परइनके लक्षणपहले इसीमें समझो कि-(संधि) उसकर्मको कहतेहैं जो परस्पर किसीप्रकारकी व्यवस्था निश्चयकरिकै अहदनामा लिखलेते चाहे सदैवकेलिये चाहे किसी अवधिकेलिये चाहेकिसी प्रतिज्ञाके अनुकूल या कुछदानादि व्यवस्थासे मिलाप करलेना सो इस१ संधिकेभी नीतिग्रंथोंमें सोलहलक्षण पर्यंत प्रसिद्धहैं१-(विग्रह) लड़ाई अपकार वैरयह प्रसिद्धहै२ (यान) यात्राको कहतेहैं कि जो किसीपर चढ़ाईकरी जातीहै३ (आसन) बैठरहना अर्थात् कोई अपनेसे विरुद्धभी कर

ताहो पर अपना अवसर न देखकर उपेक्षापूर्वक चुपके होरहना ४ (संश्रय) उस कर्म को कहते हैं कि जो किसी बलवान्का आश्रय सहारा लेलेते हैं कि वह अपनी रक्षा करसके ५ (द्वैधीभाव) उस कर्मको कहते हैं कि जो अपने सेना बलको दोठौर स्थापन करना किसी रक्षा सम्बन्धी स्वार्थ सिद्धिके हेतुसे होता है ६-ये छहूगुण प्रत्येक दो २ प्रकारके होते हैं-तथाचमनुः-(समानयानकर्माचविपरीतस्तथैवच। तदात्वायतिसंयुक्तःसंधिर्ज्ञेयोद्विलक्षणः)-अर्थात्-जहां तात्कालिक या उत्तरकालिकफल सिद्धिके लिये किसी अन्य राजाको साथ लेकर किसीपर चढ़ाई आदि कर्म किया जाता तहां तो (समानयानकर्मा) संधि कहलाताहे १ तैसेही जहां कहीं तात्कालिक या उत्तरकालिक फल सिद्धिके लिये इस प्रकार विषमरूपसे चढ़ाई आदि करीजाती हे कि उस द्वितीय नृपतिसे कहाकि तुम वहां जावो हम यहां जावेंगे तहां (असमानयानकर्मा) संधि कहलाता २ यह दो लक्षणवाली संधि मनुजीने कही पुनि इन्हीं दोमेंसे वह सोलह भेद भी उत्पन्न होजाते हैं कि जो विस्तार सहित नीति ग्रंथोंमें कहे अर्थात् युद्ध और जय पराजयके पश्चात् अथवा पहलेही दानादि कर्मोंसे जेसी संधि करीजाती हे तेसाही उस कर्मभेद या प्रतिज्ञा भेदसे उसका नामभी प्रसिद्ध किया जाता है (दृष्टांत) यथा दारिकादान आदिसे करीहुई संधिको सन्तान संधिनाम-या द्रव्यादि भेंट देकर करी हो तो उपहार संधिनाम इत्यादि षोडश नाम संज्ञा होजाती हैं १ (अथद्विविधोविग्रहः-स्वयंकृतश्चकार्यार्थमकालेकालएववा। मित्रस्यचैवापकृतेद्विविधोविग्रहःस्मृतः)-अर्थात्-एक तो (स्वयंकृतविग्रह) वह कहाता जो ठेठ अपनेकार्यकी सिद्धि किन्तु शत्रुपराजय करनेको युद्ध किया जाता हे-फिर चाहे वह युद्ध यथोक्त मार्गशिर आदि युद्ध मासोंमें चढ़ाई पूर्व कियाहो चाहे युद्धके वार्जित कालों में भी शत्रुको विपत्ति आदि व्यसन आपरनेसे अपना अवसर जानिके कियाहो इसका नियम नहीं १ दूसरा (मित्रस्यचैवापकृते) अर्थात् (मित्रापकृत-विग्रह) वह कहलाता कि जब अपने मित्रका अपकार कोई करताहो या करनेवालाहो उस दशामें सहायता करने जानापरे-(परंतु) इसका एक लक्षण और भी होताहे उस दशामें कि जब अपने मित्रनेही किसी अपने शत्रुका अपकार किन्तु अपने शत्रुपर चढ़ाई आदि करीहो तोभी अपने मित्रकी सहायता करने जानापरे तो वहभी (मित्रापकृत-विग्रह) कहलाताहे सो इस अर्थकी सिद्धि ऊर्ध्वोक्त श्लोक पादमें पाठांतर करनेसे होतीहे यथा (मित्रेणचैवापकृते) इस प्रकार पाठ बदलकर पहला और यह दोनों अर्थ अंगीकार होते हैं दूसरे विग्रहके रूपमें २ (अथद्विविधयानं-एकाकिनश्चात्ययिकेकार्येप्राप्तेयदृच्छया। संहतस्यचमित्रेणद्विविधं यानमुच्यते) अर्थात् (यान) कहिये यात्रा दो विधि से कहाती हैं एक तो (यदृच्छया) अकस्मात् देवयोगसे (आत्ययिकेकार्येप्राप्ते) किन्तु अवश्य कार्यके आपरने पर कि जिस्से

अपनी कुछ हानि होतीहो अर्थात् किसी शत्रुने कुछ उपद्रव आदि किसी भूमिभाग में तत्काल खडा कियाहो तिसके हेतुसे था तो आप शक्तिमान्हो तौ एकाकीही अपनी सेना साथ यात्राकरे सो यह एकप्रकार १ अथवा आप निर्बलहो तो मित्रकोभी उसकी सेना सहित लेकर यात्राकरे सो यह दूसरा प्रकार २ (अथद्विविधमासनं-क्षीणस्यचै-वक्रमशोदेवात्पूर्वकृतेनवा । मित्रस्यचानुरोधेनद्विविधंस्मृतमासनम्) अर्थात् (आसन) उपेक्षाचुपका हो रहना दो प्रकारका ऐसे होताहै कि एकतौ जो कोई अपने (दैवात्) किन्तु पूर्वजन्मार्जित प्रारव्धरूप दैवसे अथवा (पूर्वकृतेन) किन्तु इसी जन्मसे पूर्वकाल में संचित किये दुष्कर्मके प्रभावसे धन वाहन कोश आदि से क्षीण हीन होगया हो तिसका लाचारीस चुपका होजाना १ और दूसरा (मित्रस्यच-अनुरोधेन) अर्थात् उसका कि जो मित्रके अनुरोध कहिये रोकनेसे चुपकाहो किन्तु शुभचिन्तकतासे आगा पीछा सोचकर मित्र जिसको निषेध करे तिसका २ (अथद्विविधद्वैधं-बलस्यस्वामिनश्चैव स्थितिःकार्यार्थसिद्धये । द्विविधंकीर्त्यतेद्वैधंषाड्गुण्यगुणवेदिभिः) अर्थात्-प्रथम तौ (द्वैध) कहते हैं सेनाको द्विधाकर देना सो यहभी दो प्रकारका द्विधा करना उन लोगों ने कहाहै कि जो (षाड्गुण्यगुणवेदी) किन्तु संधि आदि छःप्रकारके नीति गुण जानने वालेहुये-सो इसमें दोप्रकार क्याहैं कि एक तो बलकी द्विधा स्थिति और दूसरे स्वामी कीभी द्विधा स्थिति अपने कार्यरूप अर्थ सिद्धिके लिये-अर्थात् एक तौ जहां कहीं सेनापति सहित बलकी सेनाथी संयुक्त हुईहो तहां किसी प्रयोजनके निमित्तसे द्विधा करना १ दूसरे किसी आवश्यक रक्षासम्बन्धी हेतुसे कभी (स्वामी)केउपलक्षणसे ठेठ राजधानी वा दुर्गसम्बन्धी सेनाका द्विधा करदेना २ यह मनुजीने कहा-परन्तु द्विधा करदेना यह एक निदर्शनमात्र कहाहै किन्तु इसी द्विधाके उपलक्षणसे स्वामीको वा सेनापतिको अख्तियारहै कि वह जहां जैसी आवश्यकता देखै तैसाकरे किन्तु द्विधा नहीं त्रिधा चतुर्धा पंचधा करदेना भी द्वैधीभाव कहलावेगा यह सिद्धांतहै-इसके सिवाय केवल द्विधा करदेनेकोही द्वैधीभाव नहीं कहते किन्तु द्वैधीभावके और भी अनेक अर्थ सिद्धांतरूप नीतिशास्त्रों में कहे हैं तिनमें एक तो यह सिद्धांतहै कि दो तरफ से दो शत्रुओंका खटकाहो और निज शक्ति उन दोके तुल्य नहीं देखे तो उनमें एक से संधि करिके मित्र बनावे दूसरेसे विग्रह करे तो इस कर्मका भी नाम द्वैधीभाव गुण कहेंगे क्योंकि उसने द्विधा वर्त्ताव किया-एक सिद्धांत यहभी है कि बलवान् दोशत्रुओं से एकसाथ युद्ध विरुद्ध कुछ करनापरे तो पूर्वापर विचारिके वाणीसे तौ अपने आत्मा को उनके अर्पण करे कि हम तुम्हारे हैं क्षमाकरो इत्यादि पर हृदय करके द्वैधीभावसे वर्त्ते सो उस प्रकार अलक्षित भाव से कि जैसे कौआके नेत्र कोई नहीं लखपाता इत्यादि और भी नानाभेद इस द्वैधीभावकेहोतेहैं(यथा)-बलिनोर्द्विषतोर्मध्येवाचात्मानं

समर्पयेत् ।। द्वैधीभावेनवर्तेतकाकाक्षिवदलक्षितः) (अथद्विविधस्संश्रयः-अर्थसंपादनार्थं चपीड्यमानस्यशत्रुभिःसाधुपुव्यपदेशार्थंद्विविधःसंश्रयःस्मृतः)अर्थात् (संश्रयः) किसी का आश्रय लेना सो यह भी दो प्रकारका होताहे एक तौ शत्रुओंकरके पीड़ित किये का अपने (अर्थसंपादन) के अर्थ कहिये उन्हींशत्रुओंकी दीहुई पीड़ा निवृत्तिके लिये किसीकी शरणमें जाघुसना १ दूसरा संश्रय वह कि शत्रुकीपीड़ा वर्त्तमानमें नहींपर होनेवालीपीड़ा की शंका से किसी का अवलंबमात्र लेना क्योंकि (साधुपुव्यपदेशार्थं) अर्थात् अच्छे भलोंमें कि जब तक पीड़ा का प्रारम्भ न होने पाया तवतक सर्वत्रसर्व जनों पर यह व्यपदेश व्याजमात्र किंतु चर्चा का बहानामात्र प्रकट होजानेके लिये कि वह नृपति अमुक अतिबलवान् राजाके आश्रय होगया जिस्से कोई पीड़ादेनेका बिचारही फिर न करसके ३४६ ॥

अब अगलेश्लोकमें यात्राके उद्देश पूर्व इनछहूगुणके भिन्न २ वर्तावामध्ये काल वर्णन करते हैं ॥

यदासस्यगुणोपेतंपरराष्ट्रंतदाव्रजेत् । परश्चहीनआत्मा चहृष्टवाहनपूरुषः ३४७ ॥

ऐ०—जो निजशत्रुपर चढ़ाईकरने की आवश्यकता हो तौ जब उसका देश(सस्य) नाम धान्यादि सर्ववस्तु से संपन्न फलाफूला और गुणोंसे भी उपेतहो किन्तु समान जल ईंधन तृण घासफूस आदिसे संपन्नहो तब यात्राकरै सो यह ऐसा वानकबहुधा शरदकाल में होताहे इसीलिये मनुजीने मार्गशीर्षआदि मास युद्धयात्राको गुणकारी कहे और लोकमें भी विदित हैं क्योंकि उनमासोंमें युद्धकारियों को बहुधा आतप आदिसे पीड़ा नहींहोती परन्तु केवल कालसेही कुछ सिद्धिनहीं किंतु(परश्चहीन) अर्थात् वह अपना शत्रुभी बलादिकोंसे हीनहो और आप अपने वाहन और पुरुषोंसे भी हृष्टहो किंतु अपने हाथी घोड़ा आदि और सेनाभी हृष्टपुष्टहो तबयात्राकरै३४७॥

अधि०—पूर्वोक्त षट्गुणोंके वर्त्तावामध्ये जो २ कालउनके मनुजीने कहेहैं सो इस प्रसंगमें यथा क्रमसे दर्शाते हैं (तत्रादौ-यथासंधिः-यदावगच्छेदायत्यामाधिक्यंध्रुवमात्मनः । तदात्वेचाल्पिकांपीड़ांतदासंधिसमाश्रयेत्) अर्थात्-जहां कहीं युद्धकरना पराहो और कदाचित् उसकी(आयत्यां)आयतीमें किंतु युद्धकेपीछे उत्तरकालमें(आत्मनःआधिक्यं-ध्रुवं अवगच्छेत्)किंतु अपनी जयरूप अधिकता निश्चयजाने(तदातत्कालही) थोड़ा भी अपना धनादिक जो हानि हुआहो सोलेना अंगीकार करिके संधिके आश्रय होजाय किंतु अरिसेमिलापकरलेवे-क्योंकि(तदात्वेचअल्पिकांपीड़ां)अर्थात् उसकालमेंतौ थोड़ीहीपीड़ा या हानिको पहुँचाहे और इसमें अपनी वात रहती हे न जानिये अबके युद्धमें क्याहो १ (अथविग्रहकालः-यदाप्रकृष्टामन्येतसर्वास्तुप्रकृतीर्भृशम् । अत्युच्छ्रितंतथात्मानंतदाकुर्वीतविग्रहम्)अर्थात्-जब किसीसे अपना झगडा टंटालगाहो

उसदशामें निपट जब अपनी पूर्वोक्त द्रव्य प्रकृतीं अमात्य आदि सभी को (प्रकृष्ट) कहिये दान मानादि सत्कारोंसे संतुष्ट हुई अपनेमें श्रद्धावान् माने तथा निजआत्मा कोभी(मत्युच्छ्रित)कहिये अतिसमृद्ध जाने तो विग्रहकरै अन्यथानही २ (अथयानकालः-यदामन्येतभावेनहृष्टंपुष्टंबलंस्वकम्। परस्यविपरीतंचतदायायाद्रिपुंप्रति) अर्थात्-जब तबसे अपने अमात्य और सेनारूप बल (हृष्ट) हर्षयुक्त और (पुष्ट) धनादि संपत्ति से बलवान् जानै और शत्रुकाबल विपरीतनाम दुर्बल समझै तब उसरिपुपर यान कहिये यात्रा करै अन्यथा नहीं ३ (अथासनकालः-यदातुस्यात्परिक्षीणोवाहनेनबलेनच। तदाऽऽसीतप्रयत्नेनशनकैःसांत्वयन्नरीन्)-अर्थात्-जब कदाचित् आप हाथी घोड़े आदि वाहन और बल सेना और अमात्यादिक प्रकृतीभी इनसेपरिक्षीण दुर्बल हो तदा(प्रयत्नेनासीत)अर्थात् उसदशामें बड़े यतनकेसाथ अपनी रक्षापूर्वक आसन मार चुपकाहो बैठा रहे तथापि(अरीन् शनकैः सांत्वयन्)शत्रुओं को धीरे २ ठंढाकरता हुआ बैठारहे किंतु किसीको सामरूपी प्रियभाषण आदि उपायसेही ठंढाकरै किसी को(उपदान)से किंतु घूँस पचड़ आदि उपहारोंसे और किसीको(प्रदान)से अर्थात् पूर्वोक्तउपायोंसे भी न बनिआवे तो किसी भूमिभाग आदि रत्नके देडालनेसे ठंढाकरता हुआ बैठारहे क्योंकि इसीमें सबकल्याण हैं ४ (अथद्वैधीभावकालः-मन्येतारियदाराजा सर्वथाबलवत्तरम्। तदाद्विधाबलंकृत्वासाधयेत्कार्यमात्मनः) अर्थात् जबराजा अपने अरिको सबतरहसे बलवान्तर समझै किंतु पूर्वोक्त साम उपदान प्रदान इनसे भी वशमें नहीं आसकता हो तबलाचार निजसेना बलके द्विधा विभाग करिके अपना कार्य साधनकरै अर्थात् कुछेक बलसे तो आप अपने दुर्गमें रक्षासहित बैठारहै किंतु युद्धभूमिमें न जावै आप और कुछेकबलसे सेनापति द्वारा उनशत्रुओंसे युद्धको आचरै जो इसपर उद्यत हुयेहों यद्वा युद्धकी संभवता वर्तमान तो नहीं परतीव्र शंका उसकी संभवहो तो सीमाकी रखवाली आदि आधेबलसे करताहुआ-और आधेबल से दुर्गमें बैठाहुआ आप मित्रादिकों का संग्रहरूप अपनाकार्य साधन करै ५ (अथसंश्रयकाल -यदापरबलानांतुगमनीयतमोभवेत्। तदातुसंश्रयेत्क्षिप्रंधार्मिकंबलिनंनृपम्) अर्थात्-जब कदाचित् पूर्वोक्त रीतिसे द्विधाबल करनेपरभी निजरक्षा न होसकी हो किंतु अमात्यादि प्रकृतियों वा सेनापतियोंके उत्पन्न किये दोषकी बहुताइत से अपने आपको शत्रुओंके वशमें जाताहुआ समझै कि अब कोईभांतिसे रक्षा नहीं होसकी तब शीघ्र किसी अन्य राजाके पासजाकर उसकी शरणका आश्रय लेवे परन्तु ऐसे राजाका संश्रयकरे जो धार्मिक और निजशत्रुसे बलवान्भी हो क्योंकि उसमें इन बातोंविना वहांभी रक्षाहोनी कठिन है-इसलिये जो दैवाधीन ऐसाही मिलजाय तो यह आचरण करना चाहिये सो कहते हैं ६ (यथा-निग्रहंप्रकृतीनांचकुर्याद्योरिबलस्य

च। उपसेवेततंनित्यंसर्वयत्नैर्गुरुंयथा) अर्थात्-वह बलवान् और धार्मिक राजा जो इसके उन प्रकृतियों काभी निग्रहकरै किन्तु उन अमात्यादिक और सेनापतियों को दंडदेवै जिनके दोषकरके यह गमनीयतम हुआथा और इसके शत्रुबलकाभी निग्रह करै अथवा जिसके आश्रयभूत होनेसे यह आपही उनदोनोंका प्रतिकार करसकैतिस बलवान् राजा को यह नित्यंप्रति उसप्रकार से उपसेवन करै जैसे गुरुको निष्कपट होकर सेवनकरतेहैं-भलाजब ऐसानहींमिलै और इसमेंभी निर्वाह न होसक्ताहो तब क्याकरै सो कहतेहैं कि-(यदितत्रापिसंपश्येद्दोषंसंश्रयकारितम्। सुयुद्धमेवतत्रापिनिर्विशंकःसमाचरेत्)-अर्थात्-संश्रयभी अगतिकागतिहोता है किन्तु जिसका आश्रय लेनेगये नजानिये वह कैसामिलै इसलिये जब वहांभी संश्रयसे उत्पन्नहुआदोषकुछ विश्वास घात आदि भलीभांति देखै तब वहांभी निधड़क होकर फिर तीव्र युद्धको आचरै क्योंकि कहीं दुर्बलभी प्रबलको जीतलेता देखाहै अथवा यह नहीं तौ मारे जाने में स्वर्गफल तो कहीं नहींगया-इसलिये दबेहुये समयपर केवल युद्धकेही करनेमें भलाई होतीहै-तथाचनीतिः(यत्रायुद्धेध्रुवंनाशोयुद्धेजीवितसंशयः। तमेवकालंयुद्धस्य प्रवदंतिमनीषिणः) अर्थात्-जहांदबेहुये समयपर युद्धके नकरनेमें तौ निश्चय नाश होताहो और युद्धके करनेमें दोनों संशय किन्तु चाहे दैव सीधाभी होजाय तब ऐसे कालको मनीषीलोग युद्धकाही समय बतलाते हैं ३४७ भला वहकामही ऐसा क्यों करना जिस्से ये झगड़े और विपत्तें आदि खड़ीहों किन्तु सारा संसार दैवकेआधीन है उसीसे जीवोंके उदय और निपातभी होतेहैं-अर्थात् जोकुछ दैवमें बदा होगा सो सब आपसे आप चाहे उदय यद्वा निपात निस्संदेह सिद्धहोगा-और जो दैवमें नहीं सोआयास करनेपरभी नहींहोसक्ता इस्से उपायादिक आयास करनेही व्यर्थहैं-किंतु दैवपर होजाना उचितहै सोनहीं इसीलिये अबनीचे कहतेहैं॥

दैवेपुरुषकारेचकर्मसिद्धिर्व्यवस्थिता। तत्रदैवमभिव्यक्तंपौरुषंपौर्वदेहिकम् ३४८॥

पद०—कर्मकी सिद्धि दैवमें और पुरुषकारमेंभी व्यवस्थापित हुईहै तहां दैव प्रत्यक्ष पूर्वदेहिक पौरुषहै ३४८॥

अभि०—यहबात जोकोईकहे कि साधनभूत कर्मोंकी फलसिद्धि केवल दैवकेआधीन है सो नहींकिंतु वहइष्टानिष्टफल सिद्धि दैव और पुरुषार्थ दोनोंमें संस्थापित करीगई उस जगदीश करके क्योंकि(पुरुषकार)पुरुषार्थके बिना वह दैवही नहींहोता फिरदैवमें फलसिद्धि क्योंकर होसक्ती है इसीलिये पिछले अर्द्धासे यह सिद्धांत प्रकट करते हैं कि यद्यपि दोनोंमें फलसिद्धि धरीगई पर तथापि उनमें जिसकोदैव या प्रारब्धकहते हों सो वह दैवभी पूर्वदेहिक पौरुष रूप(अभिव्यक्त)है अर्थात् पूर्वजन्मके देहसे भले बुरे जो २ कर्म पुरुषार्थरूप संचित कियेथे वेही इसजन्म के प्रारब्धरूप होकर प्रकटहुये

इसीको दैव कहा करतेहैं तो यथार्थसे पुरुषकारही उसदैवसेभी बड़ा ठहरा कि जिसके प्रभावसे इष्ट या अनिष्टरूप दैवकी उत्पत्तिहुई जिस्से सुख या दुःख पाया इसहेतुसे अवश्यभाव करके पुरुषकारमें यत्नादिक उपाय कर्त्तव्य हैं तिसपीछे दैवपर अवलम्ब लेना चाहिये कि इस पुरुषकारमेंदैवकेअनुकूल जोकुछफल होनाहोगा सोहोगा-इसलिये कि जो पूर्वदेहिक पुरुषार्थरूप दैवबलवान् होताहै तबतो इसदेहसे थोड़ाभी उपाय करनेपर तत्काल वहीदैव महाफल सिद्धिरूप होकर उदय होजाताहै तथापि सिद्धांत में उस थोड़ेसे उपायकी आवश्यकता बनीरही किन्तु निपट न करनेमें उदयकीसंभवता नहीरही-अथवा-जहां दैव दुर्बल या पूर्वदैहिक दुष्कर्मोंके प्रभावसे दुर्दैव हुआ तोभी इसदेहके सुकर्मरूप यत्नोंसे यद्यपि थोड़े आयास पर महाफलका उदय नही होता परन्तु अति आयास और सुकर्मोंके प्रतापसे दुर्दैवत्वकी शांति होजाती है-अथवा-जहां यहभी नही किन्तु इस देहसे कियेहुये सुकर्म भी सर्वथा निष्फल देख परते तहां निस्संदेह वे सुकर्म संचित होकर अगले जन्मके प्रारब्धरूप दैव होजाते हैं-अर्थात् सर्वथा यही निश्चितहै कि पुरुषार्थ सेंही दैवबनताहै फिर उसी पुरुषार्थ के प्रभावसे उन्नति और उदयको पहुँचता है इसलिये सुकर्मों के पुरुषार्थ मध्ये यत्न करनेकी उपेक्षा करनी अनुचित है ३४८॥

अब इसीमें कुछ औरभी मतान्तर दर्शाते हैं॥

केचिद्दैवात्स्वभावाद्वाकालात्पुरुषकारतः। संयोगेकेचिदिच्छंतिफलंकुशलबुद्धयः ३४९॥

ऐ०-संसारमें कोई पुरुष तो नीके नाना लक्षणवाले फलको दैवसेही इच्छा करतेहैं कि जो कुछदैव करै सोईठीक है हमसे कुछ आयासमें उत्साह नहीं होता या कोईकरो तो कुछ होभीनहींसक्ता-और कोई पुरुषभलेबुरे फलोंको स्वभावसे अपेक्षा करते हैं कि आपसे आप जो कुछ होनहारहोता है सो हो जाताहै अर्थात् वे दैवको भी नहीं गिनते और न पुरुषार्थ आदि किसी को इसमें कारण कहते-कोई पुरुष कालके आधीन बतलातेहैंकिकाल जो कुछ करताहै सो होताहै और किसीकेभी करने से कुछ नही होता-कोई केवल पुरुषकारसेही अर्थात् निज उपाय और पुरुषार्थके करने धरनेसे होजाय सोई ठीकहै यह अभिमान करतेहैं-और (केचित्कुशलबुद्धय) किंतु कोई अतिप्रवीण बुद्धिवालेमनु आदिमहर्षिलोग (संयोगेफलंइच्छंति) अर्थात् दैव आदि जो २ पहले अद्यामें कहेगये तिनसबो के संयोग से फल होताहै यह कहते हैं किन्तु केवल किसी एक हेतुसे कुछ नहीं-इसीका दृष्टांत नीचे कहते हैं ३४९॥

यथाह्येकेनचक्रेणनरथस्यगतिर्भवेत्। एवंपुरुषकारेणविनादैवंनसिद्ध्यति ३५०॥

ऐ०-जैसे एक पहिया से रथकी गति नहीं होती ऐसेही पुरुष कारके विनादैव भी नही सिद्धहोता किन्तु जब दोनो और चक्रलगते हैं तब चलता है ३५०॥

हिरण्यभूमिलाभेभ्योमित्रलब्धिर्वरायतः। अतोयतेततत्प्राप्त्यैरक्षेत्सत्यंसमाहित. ३५१ ॥

ऐ०-पराये राज्यमें लाभके हेतु से पहुँचेहुये,को किसलाभपर अधिक दृष्टिकरनी चाहिये क्योंकि मुख्यलाभ तीनप्रकारके होतेहैं एकतौ धन१ पृथ्वी२ मित्र३ इसलिये कहते हैं कि-हिरण्य १ और भूमि २ इन दो लाभों की अपेक्षा मित्रलब्धि जिस हेतु से श्रेष्ठ कहलाती है इसीसे उस मित्रकी प्राप्तिमें यत्न करै पूर्वोक्त सामादिक उपायोंसे और समाहितहुआ सावधानी से अपने सत्यवचनकीभी रक्षाकरै किंतु जो कुछ वचन प्रतिज्ञारूपदिया हो संधिके हेतुसे तिसको पीछे मेटै नहीं क्योंकि मित्रलब्धिके विषय में सत्यता मूलमंत्रहै अर्थात् अपनी सत्यसे विचलैगा तो मित्रभी फिर उसका शत्रु होजायगा और न जाने पीछे कितने शत्रुहोजायँ इस अधर्मसे ३५१ ॥

भला मित्रऐसी क्या वस्तुहै जिसके लिये इतना बड़ा आगा पीछा वर्णन किया सो कहतेहैं नीचेकेश्लोकसेकि मित्रविनाराज्यके सातअंगपूरेनही होसक्तेयहसिद्धांतहै॥

स्वाम्यमात्याजनोदुर्गंकोशोदण्डस्तथैवच। मित्राण्येताः प्रकृतयोराज्यंसप्तांगमुच्यते ३५२ ॥

ऐ०-एक तौ (स्वामी) १ अर्थात् राजा आप और (अमात्याः) २ अर्थात् मंत्री और पुरोहित आदि (जनः) ३ अर्थात् चातुर्वर्ण्यादिसारे प्रजालोग जो राज्यके निवासी हों (दुर्ग)४ किला गढ़ कोट आदि अपने राज्यभरेमें जितनेहों (कोश)५ खज़ाने सबतरह के (दण्ड) ६ अर्थात् हाथी घोडा पैदल आदि सेना सब तरहकी (मित्राणि) ७ अर्थात् अनेक मित्र जितने होसकें और मिलसकें यह सात वस्तुराज्य की प्रकृती अर्थात् मूल कारण होतीहैं इन्हीं से सप्तांग राज्य पूरा कहलाता है ३५२ ॥

तदवाप्यनृपोदंडंदुर्वृत्तेषुनिपातयेत्। धर्मोहिदंडरूपेणब्रह्मणानिर्मितःपुरा ३५३ ॥

ऐ०-उस ऐसे राज्यको पाकर नृपति दुर्वृत्तोंमें दण्ड निपातकरै अर्थात् धूर्त्त,वंचक, शठ,परदार परद्रव्यापहारी परहिंसक आदि दुर्जनों को दण्डदेवे क्योंकि पहलेब्रह्माने (हि)जिसहेतुसे धर्म जोहै सोई दण्डरूप निर्मित कियाथा-किन्तु-अधर्मकी हानि और धर्म की प्रवृत्ति विना दण्डके नही होसक्ती ३५३ ॥

सनेतुंन्यायतोशक्योलुब्धेनाकृतबुद्धिना। सत्यसंधेनशुचिनासुसहायेनधीमता ३५४ ॥

ऐ०-वह दण्डभी (लुब्ध) कृपण प्रकृतिवाले से या (अकृतबुद्धि) चंचल बुद्धिवाले से न्याय पूर्व नहीं लगसक्ता किन्तु जो (सत्यसंध) हो अर्थात सत्यभावसे धर्मानुकूलप्रजा की रक्षामें तत्परहो और (शुचि) भी हो अर्थात् काम क्रोध लोभ मोहादिसे निर्मलहो और (सुसहाय) कहिये पूर्वोक्त सहायक जिसके श्रेष्ठहों और(धीमान) हो किंतु नय अ-नयके विचार में प्रवीणहो तबऐसे नृपतिसे वहदण्ड न्यायके अनुसारप्रयुक्तहोसक्ता है

यथाशास्त्रंप्रयुक्तः सन्सदेवासुरमानवम्। जगदानंदयेत्सर्वमन्यथातत्प्रकोपयेत् ३५५ ॥

ऐ०-क्योंकि वह दण्ड यथायोग्य शास्त्र विधिके अनुसार लगाया हुआ देव असुर

मानव इन सबों करके सहित सारे जगत् को आनंद करता है अन्यथा शास्त्र से विपरीत प्रयुक्त कियाहुआ उसी जगत् को प्रकोपित करदेता है-फिर सारे जगत् के प्रकोपित होनेमें राजाका भी कल्याणकहां ३५५ ॥

केवल जगत् का प्रकोपही नहीं किंतु और भी सर्वथा हानि होती है॥

अधर्मदण्डनंस्वर्गकीर्तिलोकांश्चनाशयेत्। सम्यक्दण्डनंराज्ञःस्वर्गकीर्तिजयावहम् ३५६॥

ऐ०-क्योंकि अधर्म दण्ड नाम अन्यायरूप दण्डकरना यहराजाके(स्वर्ग)नामऐश्वर्य तथा स्वर्ग प्राप्तिकोभी और (कीर्ति) नाम सुयश कोभी और (लोकान्) अर्थात् मनुष्यों और देशों तथा परलोकोंकोभी विनाश करदेताहै-और जो सम्यक् न्याय की रीति से शास्त्रोक्त दण्ड लोभादिक वर्जित करिके कियाजाता वही धर्मका हेतु निश्चयहोने से स्वर्ग कीर्ति जय इनका देने और वृद्धिकरनेवाला होजाता है ३५६॥

अपिभ्रातासुतोऽर्घ्योवाश्वशुरोमातुलोपिवा। नादंड्योनामराज्ञोस्तिधर्माद्विचलितःस्वकात् ३५७॥

ऐ०-(अपि)चाहे राजा का भ्राताहो या पुत्रहो अथवा (अर्घ्य) पूज्य हो या ससुराहो मामा आदि कोई हो जो अपने आत्मा सम्बन्धी धर्म मर्यादा से विचलित हों तो ये भी सब दंड्य हैं फिर इनसे इतरोंकी का कथा-क्योंकि- राजाकेनिकट कोई ऐसानाम नहीं जिसकोकहें कि वह अदंड्य है अर्थात् जो कोई अपनी उचित मर्यादा से पग· डिगावें वह कोई भी अदंड्य नहीं पर जैसा वह दोपहो या जैसादोपी मनुष्यहो उसी की योग्यता अनुकूल दण्ड योग्यहै ३५७॥

मषि०-स्मृत्यंतरेतु(अदंड्यौमातापितरौ स्नातकपरिव्राजकपुरोहितवानप्रस्थाःश्रुतशीलशौचाचारवंतस्तेहिधर्माधिकारिणः) अर्थात्-अन्यशास्त्रोंमें यह कहाहै किएक तौ मातापिता यह दोनों सदाही अदंड्यहोते और इनके सिवाय स्नातक आदिचार येभीजो ऊपर मूलवाक्यमें गिनायेगये सो अदंड्यहोते उस दशामेंकि जो ज्ञानशौच आचारसे संपन्न हों क्योंकि ये इनबातोंसे संपन्नहुये धर्मके अधिकारीहोतेहैं-इसकथन से और ऊर्ध्वोक्त योगीश्वर के मूल वाक्य से यद्यपि प्रत्यक्षभावमें विरुद्धदेख परताहै तथापि दोनों का परस्पर सिद्धांत एक है कुछ अन्तर नहीं-क्योंकि योगीश्वरने पूज्यों को भी दंड्य कहा उनके उपलक्षण से मातापिताभी गिनतीमें आगये परंतु योगीश्वरने यह नहीं कहा कि पूज्यों कोभी वेहीदंड देने जो अन्यसाधारणोंको दियेजातेहैं किन्तु पूज्यों के देनेयोग्य दंडभी कुछ और प्रकारके होतेहैं दृष्टांत जैसे मातापिता से कुछ अयोग्यता हो तो उनके लियेपरम दंड यहीहै कि उनसेमुख संभाषण आदिका त्याग करना ऐसेही अन्य पूज्योंसे साधारण अपराधमें मुख संभाषण आदिकात्याग यद्वा अपराध की अधिकतामें आजीवनकी न्यूनता यद्वापरम अपराधमें निज उन्हीं का परित्याग आदि-इसीप्रकार अधिकोक्ति के प्रारंभमें जिस वाक्यने मातापिता को

अदंडय कहा उसनेभी यह नहीं कहा कि उनकी उपेक्षामात्रभी न करनी किंतुयथार्थ में अदंडय कहा सो इसलिये कहा कि जो२ दंड औरोंको दियेजाते उनदंडोंके योग्य मातापिता नहींहैं पर उनके कियेहुये किसी अधर्मके अनुकूल उपेक्षा आदिके योग्य तो भी हैं ऐसेही-उन चारों कोभी समुझलेना इसप्रकारसे दोनोंका सिद्धांत मिलकर मध्यम है-इसीलिये ३५३ श्लोकसे लेकर ३५६ पर्यंत कहचुकेहैं कि दण्ड देनेमें अत्यंत न्यायदृष्टिकी आवश्यकता है-क्योंकि अज्ञानी राजा बिरली बातोंमें इसआग्रह से अनर्थरूप दण्डकरता है कि जो शास्त्रमें लिखाथा सो किया परंतु यथार्थमें उस-लिखेका आशय सिद्धांत कहीं दूर होताहै इसलिये सबसे पहले दंडय और अदंडय काही निश्चय करना योग्य है ३५७॥

योदंडयान्दंडयेद्राजासम्यग्वध्यांश्चघातयेत्। इष्टंस्यात्क्रतुभिस्तेनसमाप्तवरदक्षिणैः ३५८॥

ऐ०-जो राजा दंडनीयों को सम्यक् रीतिसे शास्त्र और विचार के अनुसार धि-ग्दंड आदिदंडों से दण्ड देवैहै और वधयोग्यों को सम्यक् रीतिसे घातकरे है उस राजाने जानो बहुतसी दक्षिणा वाले यज्ञोंसे यजन किया ३५८॥

भधि०-दंडनीयों को दंड न देने और अदंडयों को दण्ड देने में प्रायश्चित्तभी व-सिष्ठजीने कहा है-यथा (दंडोत्सर्गेराजैकरात्रमुपवसेत्त्रिरात्रंपुरोहितः कृच्छ्रमदंडयद ण्डनेपुरोहितस्त्रिरात्रंराजा) अर्थात्-दंडनीयों से दण्ड त्यागकरने किंतु न देनेमें राजा एक रात्रि उपवासरूप प्रायश्चित्तकरे पुरोहित तीनरात्रिकरे और कदाचित् अदंडय कोही दण्ड दियाहोतो राजा तीन रात्रि उपवासरूप प्रायश्चित्त और पुरोहित कृच्छ्र सांतपनव्रतकरे तब शुद्धहो परंतु यह प्रकार केवल अज्ञातभावमें होजानेपर कहा है किंतु जान बूझकर ऐसा करने में प्रायश्चित्तसेभी शुद्धिनहीं होती है ३५८॥

अब दंडय और अदंडय की परिज्ञान विधिकहते हैं॥

इतिसंचिंत्यनृपतिः क्रतुतुल्यफलंपृथक्। व्यवहारान्स्वयंपश्येत्सभ्यैः परिवृतोऽन्वहम् ३५९॥

ऐ०-(इति) यही ऊपर कहाहुआ यज्ञ फल जो दुष्टोंके दण्ड देनेमें होताहै तिसको और अदंडयों को दण्ड देनेमें जो सर्वस्व नाश होना कहा तिसकोभी राजा सम्यक् रीतिसे चिंतमन करिके कि मुझको केवलफलकी प्राप्तिहो पर दोष नहीं लगनेपावे इस्से दुष्ट और अदुष्टोंकेपरिज्ञानकेलिये राजा निज आप नित्यंप्रति (पृथक्२) भिन्न२ वर्णादि क्रमसे (सभ्यैः) सभाजनों करके (परिवृत) संयुक्तहुआ उनकेसाथ व्यवहारोंको देखे भाले ये व्यवहार आगे व्यवहाराध्यायनाम द्वितीय खंड में सब कहेंगे और उसीके प्रारंभ में सभाजनोंकेभी लक्षण कहेंगे कि ऐसे २ होने चाहिये ३५९॥

कुलानिजातीः श्रेणीश्चगणान्जानपदानपि। स्वधर्माच्चलितान्राजाविनीयस्थापयेत्पथि ३६०॥

अक्ष०-स्वधर्म से चलित हुये कुलों को जातोंको श्रेणियों को गणोंको जानपदों

को (अपि) निःसंदेह राजा (विनीय) दण्डसे बश करिके (पथिस्थापयेत्) उनके धर्म मार्ग में स्थापित करै ३६० ॥

अभि०-(कुलानि) अर्थात् ब्राह्मण आदि वर्णों के कुल कहिये परिकर (दृष्टांत) जैसे एक ब्राह्मणमें दशभेद या अनेकभेद ऐसेहीक्षत्रिय और वैश्यमें भी तिनसबोंकोभिन्न२ और (जातीः) अर्थात् मूर्द्धावसिक्त आदि छोटीमोटी औरभी अनेक जातोंको भिन्न२ और (श्रेणीः) अर्थात् वे जातें कि जो अपने २ जाती नामसे किसी नियत पेशेको करती चलीआती हैं जैसे तमोली,भरभूजा, नाई,वारी आदि अनेकोंको भिन्न २ और (गणान्) अर्थात् समूह उन मनुष्यों के कि जो एकही किसी काम को अनेक जातोंके लोग करतेहैं और उसी कामकेनामसे सबएकही गणमें गिनेजातेहैं(दृष्टांत) जैसे बजाज सराफ आदि अनेकों को और (जानपदान्) अर्थात् जनपदनाम राज भूमिमें उत्पन्न हुये (कारुक) नाम कारीगरलोग जैसे लुहार,बाढ़ई,सूपकार आदि अनेकोंको-किजो२ अपनी उचित मर्यादासे विचलें पगडिगावें तिनको राजा निश्चय दंडदेकर उनकी धर्म मर्यादामें स्थापित करै जो उचित से अनुचित नहीं करने पावैं इससे यहभी निश्चितहुआ कि बहुधा खिच्चर जातें और अज्ञातजातें जो निज कपोल्ल कल्पनाद्वारा अपने को शर्म वर्मादि पद प्रसिद्धि देतेहैं तिनको देशकालका राजा अपने देशकाल में निषेध करनेका अधिकारीहै और यही सिद्धांत३४२ केभीश्लोकसेनिर्णीतहै३६०॥

मधि०-स्वधर्म से विचलित हुये दुर्वृत्तों को सर्वथादंड देनाकहा वह दंडभी दो प्रकार का होताहै-तथाचनारदः (शारीरस्त्वर्थदण्डश्चदण्डस्तुद्विविधःस्मृतः। शारीरस्ताडनादिस्तुमरणांतःप्रकीर्त्तितः॥काकिन्यादिस्त्वर्थदण्डःसर्वस्वांतस्तथैवच)अर्थात्-एकतौ शारीरदण्ड १ दूसरा अर्थ दण्ड२ यह दो प्रकार का दण्ड कहाहै तिसमें शारीर दण्ड वह कहलाता जो ताड़न पीटन आदिलेकर मरणपर्यंत होताहै क्योंकिवह शरीरसेही सम्बन्ध रखता है और अर्थ दंड धन दंडको कहते हैं वह एक कौडी से लेकर सर्वस्व हरलेने पर्यंत जो कुछहो क्योंकि वह केवल धनसेही अपेक्षा रखता है-इन दो प्रकारोंमेंसे फिर अपराधके अनुसार अनेकप्रकार होजाते हैं-यथा (शारीरो दशधाप्रोक्तोह्यर्थदंडस्त्वनेकधा)अर्थात्-शरीर दण्ड दश प्रकारका कहा है और धन दण्ड अनेकधा असंख्य लक्षणवाला होताहै देश काल वस्तुके अनुसार सो सब लक्षण इन दोनोंके व्यवहारांग शास्त्र पढ़नेसे निश्चित होजाते हैं ३६० धनदंडकी संज्ञा भेदसे कृष्णल माष सुवर्ण पल इत्यादि शब्दोंसे बोलते हैं इसलिये किं धनवाचक शब्दोंके पर्याय देश भेदसे जुदे २ होतेहैं पर दंडके प्रयोजनमें एक रूपके अपराधमें भेद मतहो इससे उन शब्दोंको नियतरूप से दर्शाते हैं कि निज २ देशकी अपेक्षासे तुल्यता करके दंडका व्यवहार किया जावै ॥

जालसूर्यमरीचिस्थंत्रसरेणूरजःस्मृतम्। तेष्टौलिक्षातुतास्तिस्त्रोराजसर्षपउच्यते ३६१ ॥

ऐ०-जाल झरोखेमें प्रवेश हुई सूर्य किरणोंमें उड़ती हुई रजके परम छोटे विभाग जो चमकते हैं वेही (त्रसरेणु) नामसे विख्यातहैं वेही त्रसरेणु आठ मिलकर एक (लिक्षा) कहलाती है वे तीन ३ लिक्षा मिलकर एक (राजसर्षप) कही जाती है-लिक्षा लीखोंका नामहै जो बालोंमें पसीनेसे छोटी २ अंडेसे उत्पन्न होजाती हैं-और राजसर्षप यद्यपि गोरी या पीली सरसोंका नामहै पर इस वार्त्तामें राजसर्षप राईको कहते हैं ३६१ ॥

गौरस्तुतेत्रय.षट्तेयवोमध्यस्तुतेत्रय.। कृष्णल.पंचतेमाषस्तेसुवर्णस्तुषोडश॥पलंसुवर्णाश्चत्वारः पंचवापिप्रकीर्तितम् ३६२ ॥

ऐ०-वे पूर्वोक्त राजसर्षप तीन मिलानेसे एक (गौरसर्षप) किन्तु गोरी सरसों होती है यह सरसो सबकी सिद्धार्थरूपहै क्योंकि इसीसे सब बांट आदि बनते हैं-छःसरसों का एक मध्यम (यव) कहाताहै मध्यम इस्से कहा कि बहुत मोटाभी नहो बहुत पतला भी नहो उस जौ पर छः सरसों चढ़ती हैं-तीन मध्यम यवोंका एक (कृष्णल) कहलाता है कृष्णला गुंजा घुंघुची चोंटली यह नाम इसके लोकमें प्रसिद्धहैं बहुधा इसीको रक्तिकाभी कहते हैं-पांच कृष्णलोंका एक (माष) होताहै माष यद्यपि उड़दका नाम है पर इस वार्त्तामें उस्से कुछ अपेक्षा नहीं किन्तु मासेकी तोलसे अपेक्षा है पर लौकिक में जो आठ रत्तीका मासा प्रसिद्धहै उस्से इसकी तुल्यता नहीं होसक्ती अर्थात् यह दंड सम्बन्धी व्यवहारका मासा जुदाहै-ऐसे सोलह माषोंका एक (सुवर्ण) कहलाताहै और यथार्थ में यह सब नाम तोलसे भी अपेक्षा रखते हैं जैसे ऊर्ध्वोक्त सोलह मासोंभर तोलीहुई वस्तु एक सुवर्ण भर कहलावे-चार सुवर्णका एक (पल) कहलाताहै अथवा नारदादिकों ने पांच सुवर्ण काभी एक (पल) कहा है ३६२ ॥

अधि०-यद्यपि योगीश्वरका कहाहुआ मुख्य सिद्धांत ऊपर सिद्ध होचुका और इन बातोंसे बहुधा काम अब नहींपरता तथापि इस वार्त्तामें पहले लोगोंने अपने २ देश और काल और मतके अनुसार जो जो मान भेद संज्ञा रक्खीथी उनमें परस्पर एकसे दूसरी तुल्य नहीं होसक्ती तिसका अन्तरमात्र जान लेनेके लिये एक दो भेद उनके इस अधिकोक्तिमें लिखते हैं-नारदादिकोंने पांच पलकाभी सुवर्ण होता बतलाया इस अपेक्षामें तीन ३ स्थूल अति मोटे यवोंसे कृष्णल एक माना इस कृष्णला को व्यवहारिक निष्कोंका सोलहवां अंश माना अर्थात् ऐसी १६ कृष्णलोंका एक (निष्क) हुआ परन्तु ऐसी पांच कृष्णलका एक (माष) माना इन्हीं १६ माषोंका एक सुवर्ण माना इस हिसाबसे व्यवहारिक पांच निष्कोंका एक सुवर्ण ठहरा इस हिसाबसे चार सुवर्णोंका एक पल माना तो वीस २० निष्कोंका एक पल हुआ-जहां तीन सूक्ष्म यवों का (कृष्णल) एक मानाहै तहां उस पूर्वोक्त व्यवहारिक निष्कका बारहवांभाग कृष्णल

कहलाता अर्थात् १२ कृष्णलका एक (निष्क) होता है इस पक्षमें सुवर्ण एक अढ़ाई निष्कोंसे होताहै और एक पल दश निष्कोंका होताहै-जहां मध्यम तीनि यवोंसे कृष्णल एक मानागया तहां उस व्यवहारिक निष्कका बीसवां अंश कृष्णल एक अर्थात् २० कृष्णलका एक निष्क होताहै और चार ४ निष्कोंका एक सुवर्ण होता है इसी हिसाबसे १६ निष्कोंका एक पल होताहै-इसीसे-पांच सुवर्णों का (पल) जिसने माना उसका २० निष्कोंका एक पल हुआ-ऐसेही कहीं निष्कका चालीसवां भाग कृष्णल अर्थात्४०कृष्णलका एक निष्क और दोनिष्कोंका एकसुवर्ण आठनिष्कोंका एक पल इत्यादि मत भेदसे या देश भेदसे संज्ञा भेदभी नाना भांतिसे पाये जाते हैं इनमेंसे जिसको जहां जिस भांतिकी अपेक्षा हो वह अपने देशके व्यवहारिक बांट मान या मुद्राओंसे निज बुद्धिसे तुल्यता करलेवै ३६२ ॥

यह तो सुवर्णका उन्मान कहा-अब रजतका उन्मान कहते हैं ॥

द्वेकृष्णलेरूप्यमाषोधरणंषोडशैवते। शतमानंतुदशभिर्धरणैः पलमेवतु ३६३ ॥

ऐ०—उपर सोनेके मानमें योगीश्वरके कहेहुये दो कृष्णलोंका रूपे सम्बन्धी मान में एक माष होताहै वे रूप्यमाष १६ मिलकर एक (धरण) कहलाता है इसीको मनुजीने पुराण भी कहाहै ऐसे दश१० धरणोंका एक (शतमान) कहलाता है इसीको चाँदी सम्बन्धी (पल) भी कहा करते हैं ३६३ पहले कहेहुये चार ४ सुवर्णोंभर एक (निष्क) चाँदी सम्बन्धी होताहै-यह नीचेके श्लोकसे लियागया ३६३ ॥

अब ताँबा सम्बन्धी उन्मान संज्ञा कहते हैं ॥

निष्कंसुवर्णाश्चत्वारःकार्षिकस्ताम्रिकःपणः ३६४ ॥

ऐ०—इसके एक पादका अर्थ ऊपरचाँदीमेंगया-दूसरे चरणमें ताँबा कहतेहैं किएक (पल) का चतुर्थांश (कर्ष) कहलाता यह लोकमें प्रसिद्ध है तिस कर्ष के उन्मानसे तुला हुआ ताम्र का विकार पैसा आदि जो कुछ होताहो इसलिये उसको (कार्षिक) भी कहते हैं(ताम्रिक)भी कहतेहैं परन्तु उसका मुख्यनाम (पण)कहते हैं उसीको संज्ञा भेदसे (कार्षापण) भी कहते हैं ३६४ ॥

भाषि०—इसताम्र संबंधी नामोंको मनुजीने स्पष्ट भावसे एकसाथकहा-यथा (कार्षापणस्तुविज्ञेयस्ताम्रिकःकार्षिकःपणः) अर्थ इसका वही है जो बात ऊपर कहचुके-जहां पांच सुवर्णों का एक (पल) बांट मानागया उस पक्षमें२०माषोंका एक (पण) ताम्रिक होताहै इस हिसाबसे एक (माष) पणका बीसवांभाग होताहै-जहां चारसुवर्णोंका एक पल मानागया उसपक्षमें १६ माषोंका एक (पण) होताहै इसपक्षमें यद्यपि सुवर्ण कार्षापण पण इन शब्दों का समान अर्थ होताहै तथा सुवर्ण संज्ञा तो सुवर्णके दण्ड में होती और ताम्र विषयिक दण्डव्यवहार में पण अथवा कार्षापण कहते-इसप्रकार

सोना चाँदी तांवेके उन्मानकहेगये ऐसेही लोकव्यवहारांगभूत कांसे या पीतलआदि में समुझने चाहिये परन्तु यहां परकेवल दंडसंवंधी व्यवहारकेउपयोगी उन्मानकहे हैं अर्थात् वैद्यक परिभाषामेंजुदे और लौकिकव्यवहारमें जुदे२संज्ञाभेद होतेहैं ३६४ ॥

अव दंडपरिमाणोंकी परिभाषा कहते हैं ॥

साशीतिःपणसाहस्रोदंडउत्तमसाहसः। तदर्द्धंमध्यमःप्रोक्तस्तदर्द्धमधमःस्मृतः ३६५ ॥

ऐ०–(साशीतिः) अस्सीसहित (पणसाहस्रोदंडः) सहस्रपणका दण्ड अर्थात् १०८० पणका दंड(उत्तमसाहस) नामदंड कहलाता क्योंकि यह इतनादंड उसपर कियाजाता जो उच्चप्रकारसे साहस नामका अपराधकरे साहस अर्थात् किसीके साथ जोरावरी करना-उस्से आधा ५४० पणकादंड (मध्यमसाहस) दंडकहलाता क्योंकि जो मध्यम रीतिसे साहसरूप अपराधकरे उसके योग्य होताहै-इस्से आधा २७० पणकादंड (अधमसाहस) नामदंड कहलाता क्योंकि जो कोई अधमकहिये स्वल्परीतिसे साहस-रूपअपराध किसी परकरे तिसके योग्यहोताहै यह मन्वादिकोंने कहाथा ३६५ ॥

अधि०–मनुजीने पूरे एक हज़ार पणकहेथे किंतु अस्सी अधिक नहीं-यथा (पणानांद्वेशतेसार्धेप्रथमःसाहसःस्मृतः। मध्यमःपंचविज्ञेयःसहस्रंत्वेवचोत्तमः) अर्थात्-अढ़ाई सौ२५० पणोंका (प्रथमसाहस) नाम दण्ड किंतु सवसे छोटा१ और पांचसौ५०० पणोंका दण्ड (मध्यमसाहस) नाम २ और पूरेएक सहस्र १००० पणोंका (उत्तमसाहस) नाम ३ विज्ञेय है-मनुजीने जव एक सहस्रपण कहेथे तव सतयुगके प्रभावसे मनुष्यों की थोड़े अपराधमें तत्परताथी किंतु उनसे अज्ञातभावसे अपराधहोताथा जानवूझ कर इच्छा पूर्वक नहीं करते थे और योगीश्वरःके समयतक मनुष्यों की प्रकृति अधिक अपराधों पर आरूढ़ होगई किंतु वहुधा जानि वूझकर अपेक्षा पूर्वकरनेलगे इस्से उन्होंने अस्सी और भी वढ़ादिये कि अधिक सुनिकर अपराधी भयमानें और अपराधों से हाथ खींचें-यह उत्तम मध्यम नीच जो तीनभेद धन दण्डके कहे तिनका यही नियम नहीं है कि उतनेका उतनाही सर्वत्रकरे किंतु तीन प्रकारकी परम अवधि कही हैं इसलिये कि जिस अपराध की लघुता गुरुता के समान एक कौड़ी से लेकर २७० पण पर्यंत जो कुछ दण्ड हो वह (अधम) या (नीचसाहस) दण्ड कहलावें १ जव इस्सेभी अधिक अपराध हो और उसकी समताके अनुसार २७० से कुछ अधिक एक कौड़ी से लेकरदूने पर्यंत अर्थात्५४०पण ताईं जो कुछदण्डहो वह(मध्यमसाहस) दण्डकहलावे २ जव इस्से भी कुछ अधिक अपराध निश्चितहो और उसकी समता के अनुसार ५४० के सिवाय एक कौड़ी से लेकर दूने पर्यंत अर्थात् १०८० पणतक जो कुछ दण्ड हो वह (उत्तमसाहस) दंड कहलावे यह सिद्धांत है-यह डौल केवल (जुरमाने) का वताया ३६५ ॥

कहलाता अर्थात् १२ कृष्णलका एक (निष्क) होता है इस पक्षमें सुवर्ण एक अढ़ाई निष्कोंसे होताहै और एक पल दश निष्कोंका होताहै-जहां मध्यम तीनि यवोंसे कृष्णल एक मानागया तहां उस व्यवहारिक निष्कका बीसवां अंश कृष्णल एक अर्थात् २० कृष्णलका एक निष्क होताहै और चार ४ निष्कोंका एक सुवर्ण होता है इसी हिसावसे १६ निष्कोंका एक पल होताहै-इसीसे-पांच सुवर्णों का (पल) जिसने माना उसका २० निष्कोंका एक पल हुआ-ऐसेही कहीं निष्कका चालीसवां भाग कृष्णल अर्थात् ४० कृष्णलका एक निष्क और दोनिष्कोंका एकसुवर्ण आठनिष्कोंका एक पल इत्यादि मत भेदसे या देश भेदसे संज्ञा भेदभी नाना भांतिसे पाये जाते हैं इनमेंसे जिसको जहां जिस भांतिकी अपेक्षा हो वह अपने देशके व्यवहारिक बांट मान या मुद्राओंसे निज बुद्धिसे तुल्यता करलेवै ३६२ ॥

यह तो सुवर्णका उन्मान कहा-अब रजतका उन्मान कहते हैं ॥

द्वेकृष्णलेरूप्यमापोधरणंषोडशैवते। शतमानंतुदशभिर्धरणैःपलमेवतु ३६३ ॥

ऐ०—ऊपर सोनेके मानमें योगीश्वरके कहेहुये दो कृष्णलोंका रूपे सम्बन्धी मान में एक माष होताहै वे रूप्यमाष १६ मिलकर एक (धरण) कहलाता है इसीको मनुजीने पुराण भी कहाहै ऐसे दश १० धरणोंका एक (शतमान) कहलाता है इसीको चाँदी सम्बन्धी (पल) भी कहा करते हैं ३६३ पहले कहेहुये चार ४ सुवर्णोंभर एक (निष्क) चाँदी सम्बन्धी होताहै-यह नीचेके श्लोकसे लियागया ३६३ ॥

अब ताँबा सम्बन्धी उन्मान संज्ञा कहते हैं ॥

निष्कंसुवर्णाश्चत्वारःकार्षिकस्ताम्रिकःपणः ३६४ ॥

ऐ०—इसके एक पादकाअर्थ ऊपरचाँदीमेंगया-दूसरे चरणमें ताँबा कहतेहैं किएक (पल) का चतुर्थांश (कर्ष) कहलाता यह लोकमें प्रसिद्ध है तिस कर्ष के उन्मानसे तुला हुआ ताम्र का विकार पैसा आदि जो कुछ होताहो इसलिये उसको (कार्षिक) भी कहते हैं (ताम्रिक) भी कहतेहैं परन्तु उसका मुख्यनाम (पण) कहते हैं उसीको संज्ञा भेदसे (कार्षापण) भी कहते हैं ३६४ ॥

अथि०—इसताम्र संबंधी नामोंको मनुजीने स्पष्ट भावसे एकसाथकहा-यथा (कार्षापणस्तुविज्ञेयस्ताम्रिकःकार्षिकःपणः) अर्थ इसका वही है जो बात ऊपर कहचुके-जहां पांच सुवर्णों का एक (पल) बांट मानागया उस पक्षमें २० माषोंका एक (पण) ताम्रिक होताहै इस हिसावसे एक (माष) पणका बीसवांभाग होताहै-जहां चारसुवर्णोंका एक पल मानागया उसपक्षमें १६ माषोंका एक (पण) होताहै इसपक्षमें यद्यपि सुवर्ण कार्षापण पण इन शब्दों का समान अर्थ होताहै तथा सुवर्ण संज्ञा तो सुवर्णके दण्ड मे होती और ताम्र विषयिक दण्डव्यवहार में पण अथवा कार्षापण कहते-इसप्रकार

सोना चाँदी तांबेके उन्मानकहेगये ऐसेही लोकव्यवहारांगभूत कांसे या पीतलआदि में समुझने चाहिये परन्तु यहां परकेवल दंडसंबंधी व्यवहारकेउपयोगी उन्मानकहे हैं अर्थात् वैद्यक परिभाषामेंजुदे और लौकिकव्यवहारमें जुदे२संज्ञाभेद होतेहैं ३६४॥

अब दंडपरिमाणोंकी परिभाषा कहते हैं॥

साशीतिःपणसाहस्रोदंडउत्तमसाहसः। तदर्द्धंमध्यमःप्रोक्तस्तदर्द्धमधमःस्मृतः ३६५॥

पं०-(साशीतिः) अस्सीसहित (पणसाहस्रोदंडः) सहस्रपणका दण्ड अर्थात् १०८० पणका दंड(उत्तमसाहस) नामदंड कहलाता क्योंकि यह इतनादंड उसपर कियाजाता जो उच्चप्रकारसे साहस नामका अपराधकरै साहस अर्थात् किसीके साथ जोरावरी करना-उस्से आधा ५४० पणकादंड (मध्यमसाहस) दंडकहलाता क्योंकि जो मध्यम रीतिसे साहसरूप अपराधकरै उसके योग्य होताहै-इस्से आधा २७० पणकादंड (अधमसाहस) नामदंड कहलाता क्योंकि जो कोई अधमकहिये स्वल्परीतिसे साहस-रूपअपराध किसी परकरै तिसके योग्यहोताहै यह मन्वादिकोंने कहाथा ३६५॥

मधि०-मनुजीने पूरे एक हज़ार पणकहेथे किंतु अस्सी अधिक नहीं-यथा (पणानांद्वेशतेसार्धेप्रथमःसाहसःस्मृतः। मध्यमःपंचविज्ञेयःसहस्रंत्वेवचोत्तमः) अर्थात्-अढ़ाई सौ२५० पणोंका (प्रथमसाहस) नाम दण्ड किंतु सबसे छोटा१ और पांचसौ५०० पणोंका दण्ड (मध्यमसाहस) नाम २ और पूरेएक सहस्र १००० पणोंका (उत्तमसाहस) नाम ३ विज्ञेय है-मनुजीने जब एक सहस्रपण कहेथे तब सतयुगके प्रभावसे मनुष्यों की थोड़े अपराधमें तत्परताथी किंतु उनसे अज्ञातभावसे अपराधहोताथा जानबूझ कर इच्छा पूर्वक नहीं करते थे और योगीश्वर के समयतक मनुष्यों की प्रकृति अधिक अपराधों पर आरूढ़ होगई किंतु बहुधा जानि बूझकर अपेक्षा पूर्वकरनेलगे इस्से उन्होंने अस्सी और भी बढ़ादिये कि अधिक सुनिकर अपराधी भयमानैं और अपराधों से हाथ खींचें-यह उत्तम मध्यम नीच जो तीनभेद धन दण्डके कहे तिनका यही नियम नहीं है कि उतनेका उतनाही सर्वत्रकरै किंतु तीन प्रकारकी परम अवधि कही हैं इसलिये कि जिस अपराध की लघुता गुरुता के समान एक कौड़ी से लेकर २७० पण पर्यंत जो कुछ दण्ड हो वह (अधम) या (नीचसाहस) दण्ड कहलावे १ जब इस्सेभी अधिक अपराध हो और उसकी समताके अनुसार २७० से कुछ अधिक एक कौड़ी से लेकरदूने पर्यंत अर्थात्५४०पण ताईं जो कुछदण्डहो वह(मध्यमसाहस) दण्डकहलावे २ जब इस्से भी कुछ अधिक अपराध निश्चितहो और उसकी समता के अनुसार ५४० के सिवाय एक कौड़ी से लेकर दूने पर्यंत अर्थात् १०८० पणतक जो कुछ दण्ड हो वह (उत्तमसाहस) दंड कहलावे यह सिद्धांत है-यह डौल केवल (जुरमाने) का बताया ३६५॥

अब दंड के मुख्यभेद कहते हैं ॥

धिग्दंडस्त्वथवाग्दंडोधनदंडोवधस्तथा। योज्याव्यस्ताःसमस्तावाह्यपराधवशादिमे३६६ ॥

ऐ०—पहला (धिग्दंड) धिकार आदि देकर छोड़देना दूसरा (वाग्दंड) वाणीमात्रसे दंडदेना अर्थात् आगेको दंडदेना कहकर छोड़ना तीसरा (धनदण्ड) अर्थात् एककौड़ी से आदि लेकर १०८० पण तक जुरमाना जो ऊपर के श्लोकमें कहचुके वहभी इ-सीके भीतर आगया और उसके उपरांत(सर्वस्वहरण)जिसे, यावनभाषामें (जब्तीजाय-दाद) कहते हैं तहांतक सब दशायें धन दंडही कहलाता है तथैव चौथा (वधदण्ड)अ-र्थात् शरीर दंड इसके भी अनेक प्रकार हैं सो (तथा) शब्दसे सब लियेगये किंतु यद्यपि वधशब्द प्राणघात पर्यंत का वाचक है पर यथा धन दंड कहने से जुरमाना आदि सब दशायें समुझीगई तथा इसमें भी (रोध) घेरना बंदकरना या (बंधन) कैद करना या (ताडन) मारना पीटना या (देशनिकाला) आदि दशलक्षण सब एकही वध-दंड के भीतर २ समुझेगये (इमे) यह चारोंदंड (अपराध-वशात्) अपराधके अनुकूल जैसा अपराधहो तैसेही (व्यस्ताः) एक२ जुदे या दोतीन या(समस्ताः) चारोंदंडएकही पर अपराध की प्रवलता में जोड़ने चाहिये ३६६ ॥

मधि०—यही चारभेद मनुने भी कहेथे-यथा(धिग्दंडंप्रथमंकुर्याद्वाग्दंडंतदनंतरम्। तृतीयंधनदंडंतुवधदंडमतःपरम्) अर्थ इसकाभी वहीहै जो ऊपर कहाथा-परन्तु-य-थार्थ भावसे मुख्य दोही दंड होतेहैं किंतु एक धन दंड दूसरा वधदंड वसइन्हीं दोके अंतर्गत अनेक भेद होजाते हैं जैसा २ ऊपरसे कथन चला आताहै वरन धिग्दंड१ वाग्दंड २ यह दोनों भी उन्हीं के उपभेदमें आजाते हैं क्योंकि धिग्दंड तो शरीरदंड में गिनती होकर वधदंडमें समुझागया सो यह ऐसीदशामें कामआताहै कि जब कोई तुच्छनर अपराधीहोऔर तुच्छही उसका अपराधहोसोभी उसपरभलीभांति निश्चित नहीं होताहोतब धिग्दंडहोकर छूटजाताहै अथवा कोईसेवक वर्गोंमेंसे अपराधीहुआ और उसकेअधिकार संबंधीकुछ थोड़ा अथवा पहलाही अपराधहुआ तब धिग्दंडदे कर मुआफरहा-इसके सिवाय जब दुसराकर फिर उसने वहीअपराध यद्वा उस्सेभी कुछअधिक कोई अन्य अपराध किया तब उसपर वाग्दंडकी आवश्यकता हुई और (वाग्दण्ड)का सिद्धांत भाव (मुचल्कह) होनेपर आरूढ होताहै अर्थात् उसपर दंडकिया तो नहीं गया पर वाणी से यह कहागया कि फिर आगे को ऐसा करेगा तब या तो इतनाधनदंड लियाजायगा अथवा इतने दिनोंका बन्धन किया जायगा इत्यादि ल-क्षणों से जो कुछ मुखसे कहागया सोई उस्से लिखवालिया इसहेतु से यह वाग्दंड प्रथम तो विशेषकर धनदंडकीही गिनती में आजाताहै यद्वा उस मुचलिकेमें शरीर-सम्बन्धी भी कुछ दंड होने को लिखागया तो दोनोंकी गिनतीमें आगया परन्तु य-

थार्थ में दंड दोही प्रकारके होतेहैं, और सब उपभेद गिनेजाते हैं-यद्यपि (वाग्दण्ड)को विरले गालिदान या शापादि आक्रोशन अर्थ कहतेहै परन्तु वह बात धर्मसे बिरुद्ध है क्योंकि गालिदान आदि यह अवगुण राजाके व्यसनों में गिनती होचुका है और लोकसेभी विरुद्धहै इसके सिवाय जब धिग्दंडपहले कहचुकेतो वह धिक्कारही वाग्दंड कहलाचुकी फिर वाग्दंडका दूसराभेदगालिदान आदिकैसे निर्णय होसक्ताहै ३६६॥

अब दंडकी व्यवस्था निर्णय करने के लिये उसके निमित्तों को जतलाते हैं॥

ज्ञात्वापराधंदेशंचकालंबलमथापिवा। वय:कर्मचवित्तंचदंडंदंड्येषुपातयेत् ३६७॥

अक्ष०—अपराध को देशको भी कालको और बलकोभी अवस्था को कर्म को वित्तको जानिकर दंड योग्यों में दंडडाले ३६७॥

अभि०—किसी अपराधी को दंडदेना निश्चितहोजानेपरभी प्रथम इतनी बातोंका निर्णय करिलेवै तबदड उसकोकरे क्योंकि इसमें न्यूनाधिकरूप अधर्म्म दण्डहोजाने का बडाभयहोताहै इसलिये प्रथम तो (अपराध) का स्वरूपदेखे कि वह अपराधकिसविषयका हुआहै-फिर (देश) को इसलिये देखे कि वही अपराध एकदेशमें अधिक दंडके योग्यहोताहै पुनिवही अपराध किसीदेशमें वहांके आचारके अनुसार थोडे दंडयोग्य होताहै पुनि वही अपराध किसीदेशके आचार अनुसार अपराधकी गिनतीमेंभी नहीं आसक्ता फिरदंड होना क्योंकर उचितहो-ऐसेही देशके दृष्टांतवत्(काल) काभी विचारकरै-फिर(बल)काभी बिचारकरै कि इस अपराधीको कितना दंडसहलेने का बलहै या कितने दंडको यहगिनतीमेंभी कुछनही लासक्ता तबकुछ दंडहोनाचाहिये यद्वा अपनेबलका बिचारकरै कि हमको कहातक दंडदेनेका अधिकारहै और किस दंडमें नहीं-इसके सिवाय अपराधीकी अवस्था औरजिसके साथ वह अपराधकिया गया उसकीभी अवस्थाका विचारकरै-दृष्टांत जैसे एक अति बूढा और कुरोगी जो थोडे दिनमें मरनेहारथा दैवयोगसे किसीलघु अवस्थाके बालकने ईंटमारी वहमरगया इसमें वहबालक जो अतिअचेतहै तौ निपटअदंड्यहै यद्वा समर्थहै तौ थोडे दंडयोग्यहै परप्राणांतिक दंडउसको नहीं इत्यादि कर्मभेदसे अवस्थाभेदका मिलानकरना अथवा-अवस्थाशब्दसे अपराधकी दशाकाभी विचारकरै कि किसदशाकी उपस्थितिसे अपराधहुआ (दृष्टांत) जैसे कईसहस्र आदिमियों के मेलेमें हाथीके सन्मुख आजानेसे बैल या घोडेने अकस्मात् गाडीको धर उडाया इसदशामें यद्यपि अनेक जीवोंका नाशहुआहो परगाडीवान्का अपराध थोडा है दूसरा (दृष्टांत) सावकाशके मार्ग में प्रमादसे गाडी दौडाई इसदशामें यद्यपि एकही जीवकानाश यद्वा ध्यंगभंगहुआहो परगाडीवान्का अपराध अपरिमितहै इत्यादिनाना दशाओंकानिर्णयकरै-फिरउन्हीं सबदशाओंके साथमें कर्मका विचारहोना यह कि किसकर्म द्वारा

वह अपराध हुआ किंतु जो उसकर्मसे किसीकी प्रतिष्ठा अथवा धर्मकी हानि हुईहो तौ बालकभी दंडनीयहै या उसकर्मका अपराधीयुवा औरसमर्थ ज्ञानवान्है तौ अतिशयदंडनीयहै-इसके सिवायवित्त अर्थात् अपराधीकी हैसियतभी देखनीचाहिये किंतु उसी अपराध में निर्धनपर एक पैसा और उसी अपराधमें सधन पर एक रुपयादंड उचितहोताहै-इसीहेतुसे ३६५श्लोकमेंकहेहुये तीनभांतिकेधन दंडजोपणों द्वाराकहेथे वे नियमसाथ उतनेही नहीं होसके किंतु जहां जैसा उचितहो सो उनसे न्यूनाधिकभी होताहै-तिसपरभी वह अपराध बुद्धिपूर्व जानिबूझकर हुआहो या दैव योगसे धोखेमे हुआहो यह देखाचाहिये-तिसपरभी वह अपराध पहलीवार कियाहै या कईवारपहले भी ऐसा करचुका है यह देखा चाहिये ३६७॥

भधि०-यद्यपि राज धर्मका संपूर्ण कलापराजाके अवलंबसे वर्णनकियागया क्योंकि राजा इसकामुख्य अधिकारी होताहै तथापि केवल राजाकेही शिरटीका नहींकिंतुचाहे कोई वर्णहों जो राजाके अधिकारसे किसी देश विभाग मंडल आदिके अधिकर्त्ता हों उनसभी का यह धर्महै-और राजकरकालेना प्रजारक्षाका हेतुहै और दंड इन दोनों का साधक है अर्थात् दंडसेहीकरभी लियाजाता और दंडसेही रक्षाकरीजाती है-दंड नाम यद्यपि मुख्यकर सज़ाको कहते हैं पर दंड सेनाका भी नाम है राजकरलेने को भी दंडकहतेहैं जुर्मानेकोभी दंडकहते हैं धर्मकोभी दंडकहतेहैं-यथा(दंडःशास्तिप्रजाः सर्वादंडएवाभिरक्षति। दंडःसुप्तेषुजागर्त्तिदण्डंधर्मंविदुर्बुधाः) ३६७॥

इतिश्रीशुक्लख्यातिवंशीयमर्य्यादप्रियपंडितदुर्गाप्रसादाभिधेयेनयोगीश्वरयाज्ञवल्क्यमुनिप्रणीतधर्मशास्त्रमधिकृत्यऋजुमिताक्षरार्थवादमवलंब्यसंपादितमर्य्यादापरिपाटीतिनामधर्मशास्त्रग्रंथेसदाचार-प्रथमोऽध्याय-समाप्तः १॥

तीसरे भागमें (८) कर्णपर्व्व (९)शल्यपर्व्व (१०)सौप्तिकपर्व्व (११)योपिक व विशोकपर्व्व (१२) स्त्रीपर्व्व (१३) शान्तिपर्व्व—राज्यधर्म्म, आपद्धर्म्म, मोक्षधर्म्म सफ़े ४५६ जुज़ २८ वर्क़ ४ क़ीमत३)

चौथे भागमें (१४)शांतिपर्व्व दानधर्म्म व अश्वमेध (१५) आश्रमवासिकपर्व्व (१६) मुसल पर्व्व (१७) महाप्रस्थानपर्व्व (१८) स्वर्गारोहण व हरिवंशपर्व्व सफ़े ५२८ जुज़ ३३ क़ीमत ३)

महाभारत के पर्व्व अलग २ भी मिलते हैं ॥

१ आदिपर्व्व १	क़ीमत १)	२ सभापर्व्व २	क़ीमत ।-)
३ वनपर्व्व ३	तथा १।=)	४ विराटपर्व्व ४	तथा ।)
५ उद्योगपर्व्व ५	तथा ॥)	६ भीष्मपर्व्व ६	तथा॥=)
७ द्रोणपर्व्व ७	तथा ॥≡)	८ कर्णपर्व्व ८	तथा ॥)

९ शल्यवगदा ९ सौप्तिक १० योपिकवविशोक ११ स्त्रीपर्व्व १२ तथा ।=)
१० शांतिपर्व्व १३ राजधर्म, आपद्धर्म, मोक्षधर्म्म, दानधर्म्म, सफ़े ५२८ तथा ३)
११ अश्वमेध १४ आश्रमवासिक १५ मुसलपर्व्व १६ महाप्रस्थान १७ स्वर्गारोहण १८ तथा ।)
१२ हरिवंशपर्व्व १९ तथा१=)

महाभारत सबलसिंह चौहान कृत॥

यह पुस्तक ऐसी उत्तम है कि सम्पूर्ण महाभारत की कथा दोहे चौपाई आदि छन्दोंमें है ऐसी सरलहै कि कमपढ़ेहुये मनुष्यों को भी भली भांति समझमें आती है इसका आनन्द देखनेही से मालूमहोगा नीचे लिखेहुये पर्व्व छपेहुये तय्यार हैं यह पुस्तक बहुतही कम मिलती है बड़ी मुश्किलों से जो पर्व मिलेहैं वह छापेगये ॥

(१) आदिपर्व्व सफ़े ७४ जुज ४ वर्क ५ कीमत।) पैमाना ११+७ छपीहुई सन् १८८४ ई०
(२) सभापर्व सफ़े ७८ जुज़ ४ वर्क ७ क़ीमत ।)

ऊपर लिखेहुये अलंकारों सहित पैमाना ११ + ७ छपीहुई सन् १८८३ ई०

(३) वनपर्व्व तथा तथा सफे ४२ जुज़ २ वर्क ५ क़ीमत ।)
(४) विराटपर्व्व तथा तथा सफे ७६ जुज़ ४ वर्क़ ६ क़ीमत ।)
(५) उद्योगपर्व तथा तथा सफ़े १४४ जुज़ ९ क़ीमत ।)॥
(६) भीष्मपर्व, द्रोणपर्व, कर्णपर्व, शल्यपर्व, व गदापर्व सफ़े १७६ जुज़ ११ कीमत ॥)
(७) स्त्रीपर्व तथा सफ़े २४ जुज़ १ वर्क ४ क़ीमत)॥।
(८) स्वर्गारोहण तथा सफ़े २८ जुज़ १ वर्क़ ६ क़ीमत —)

बाकी जब इसके पर्व्व मिलेंगे छापेजावेंगे जिनमहाशयों को मिलसकी हैं कृपाकरके भेजदें तो छपजावें ॥

भगवद्गीतानवलभाष्यकाविज्ञापनपत्र ॥

प्रकटहो कि यहपुस्तक श्रीमद्भगवद्गीता सकल निगम पुराण स्मृति सांख्यादि सारभूत परम रहस्यगीताशास्त्रका सर्व्वविद्यानिधान सौशील्य विनयौदार्य्य सत्यसंगर शौर्य्यादि गुणसंपन्न नरावतार महानुभाव अर्जुनको परमअधिकारी जानके हृदयजनित मोहनाशार्थ सबप्रकार अपारसंसार निस्तारक भगवद्भक्तिमार्ग दृष्टिगोचरकराया है-यही उक्त भगवद्गीतावजूवत्वेदान्त व योगशास्त्रान्तर्गत जिसको अच्छे २ शास्त्रवेत्तार अपनीबुद्धिसे पारनहींपासके तबमंदबुद्धी जिनको कि केवल देशभाषाही पठनपाठन करने की सामर्थ्य है वह कब इसके अन्तराभिप्रायको जानसकेहैं—औरयह प्रत्यक्षही है कि जबतक किसी पुस्तक अथवा किसी वस्तुका अन्तराभिप्राय अच्छेप्रकार बुद्धिमें न भासितहो तबतक आनन्द क्योंकरमिले इसप्रकार सम्पूर्ण भारतनिवासी भगवद्भक्तपादाब्जरसिकजनों के चित्तानन्दार्थ व बुद्धिबोधार्थ सन्तत धर्म्मधुरीण सकलकलाचातुरीण सर्व्वविद्याविलासीभगवद्भक्तअनुरागी श्रीमन्मुन्शीनवलकिशोरजी सी, आई, ई ने बहुतसाधनव्ययकर फ़र्रुखाबाद निवासि स्वर्गवासि पण्डितउमादत्तजीसे इसमनोरंजन वेदवेदान्तशास्त्रोपरिपुस्तकको श्रीशंकराचार्य्य निर्मितभाष्यानुसार संस्कृतसे सरलदेशभाषामेंतिलककराय नवलभाष्यआख्यसे प्रभातकालिककमलसरिस प्रफुल्लित करादियाहै कि जिसको भाषामात्रके जाननेवालेपुरुषभी जानसक्ते हैं ॥

जबछपनेका समयआया तो बहुतसे विद्वज्जन महात्माओंकी सम्मतिसे यहविचारहुआ किइस अमूल्य व अपूर्व्व ग्रन्थकी भाष्यमें अधिकतरउत्तमता उससमयपरहोगी कि इसशंकराचार्य्य कृत भाष्य भाषाके साथ और इस ग्रन्थके टीकाकारोंकी टीका भी जितनीमिलें शामिलकीजावें जिसमें उन टीकाकारोंके अभिप्राय का भी बोधहोवे इसकारणसे श्रीस्वामी शंकराचार्य्यजी की शंकरभाष्य कातिलक व श्री आनन्दगिरिकृत तिलक अरु श्रीधरस्वामिकृत तिलकभी मूल श्लोकों सहितइस पुस्तकमें उपस्थित है ॥

इश्तिहार ॥

माहमार्च सन् १८८६ ई० से मुमालिक मग़रबी व शिमालीका बुकडिपो इलाहाबाद क्यूरेटर बुकडिपो से मतया मुंशीनवलकिशोर मुकाम लखनऊमें आगया है इस बुकडिपो में मग़रबी व शिमाली एजूकेशनलबुक किताबोंके सिवाय औरभी हरएक विद्याकी किताबें मौजूदहैं इन हरएक किताबोंकी ख़रीदारीकी कुलशर्तेंकीमतके सहित इस छापेखानेकी छपीहुई फ़ेहरिस्तमें दर्ज हैं जो दरख़्वास्त करनेपर हरएक चाहनेवालोंको बिलाक़ीमत मिलसक्तीहै जिनसाहबोंको इनकिताबोंकी ख़रीदकरनाहो वे इसेख़रीदकरें और फ़ेहरिस्त तलबकरें ॥

द० मैनेजर अवध अख़बार
लखनऊमुहल्लाहज़रतगंज
